तन्त्रो पैथी

चिकित्सा की नवीन पद्धति

अपने जीवन की नींव को मजबूत करके ही हम स्वस्थ, सफल, आकर्षक और आनन्दपूर्ण व्यक्तित्व का विशाल और आकर्षक भवन खड़ा कर सकते हैं। तंत्रोपैथी इसके लिए बुनियाद के पत्थर का काम करता है। इसके अनुसार हमारा संकल्पित लक्ष्य ही हमें सक्रिय करके अधिक तेजी से अपने–आप बीमारियां दूर करने की शक्ति बढ़ाता है, आनन्दपूर्ण भविष्य की ओर ले जाता है क्योंकि मित्रवत 'अणुजीवत्' ऐसी स्थिति में ही आकर्षित होते हैं। तंत्रोपैथी परहेज और रोगों के इलाज के क्षेत्र में एक व्यावहारिक, सरल, सुगम, नुकसान रहित और सुलभ इलाज की विधि है।

मन को विभिन्न अलग–अलग शारीरिक और मानसिक क्रियाओं द्वारा ऊपर उठाकर क्रमशः अपने आप इलाज की क्षमता (रोग निवारण क्षमता) को ज्यादा से ज्यादा विकसित करना एवं सुलभ प्रकृति–प्रदत्त वस्तुओं द्वारा निरापद, हानिरहित और परहेज इलाज की ही विधि है। दूसरे शब्दों में इसे संयम और उपचार की आध्यात्मिक–मनो–रसो–देहो–प्राकृतिक विधि भी कहते हैं।

तंत्रोपैथी

(तांत्रिक संयम और उपचार)

भाग-1

स्वस्थ, सफल, आकर्षक और आह्लादित व्यक्तित्व पाने का एक सरल और सुगम तरीका

डा.आर.पी.उपाध्याय

डायमण्ड पॉकेट बुक्स

I S B N 81-7182-319-X

© प्रकाशधीन

प्रकाशक : डायमंड पॉकेट बुक्स (प्रा॰) लि॰
X-30, ओखला इंडस्ट्रियल एरिया
फेज़-II, नई दिल्ली-110020
फोन : 6841033, 6822803, 6822804
फैक्स : 011-6925020
E-mail : mverma@nde.vsnl.net.in
Website : www Diamond Pocket Books.com

संस्करण : 2000

पेपर बैक संस्करण : 100.00

साजिल्द संस्करण : 300.00

टाइप सेटिंग : दीपांशु लेज़र प्रिंट्स द्वारा
1617, उल्धनपुर, नवीन शाहदरा, दिल्ली-32

फोन न॰ : 2281974

मुद्रक : आदर्श प्रिन्टर्स, नवीन शाहदरा, दिल्ली-32

TANTROPAITHY Dr. R. P. Upadhayay

समर्पण

पूज्यवर बाबा,

आज जो मैं हूँ वह तुम्हारी ही देन है, और कल जो बनूँगा वह तुम्हारी ही कृपा होगी। इसलिए "त्वदीयं वस्तु गोविन्दम् तुभ्यमेव समर्पयेत्" की स्तुति के साथ तांत्रिकी संयम और उपचार संस्थान का यह प्रथम पुष्प तुम्हारे चरण कमलों में सादर समर्पित।

तुम्हारा ही केवल
आर. पी. उपाध्याय

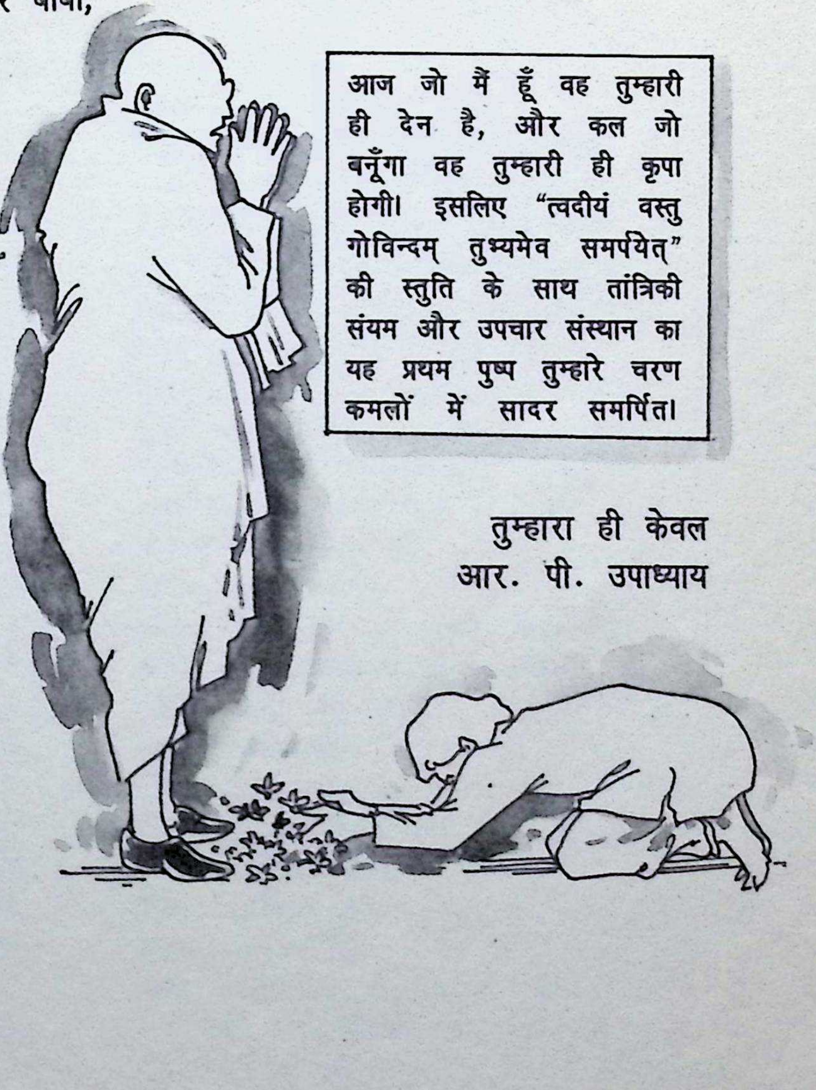

विषय सूची

क्रम	विषय	पृष्ठ
1.	तंत्रोपैथी और उपचार	9
2.	तांत्रिकी संयम और उपचार की सार्थकता	16
3.	संयम सम्बन्धी तंत्रोपैथिक दृष्टिकोण	21
4.	तांत्रिकी संयम और अन्य चिकित्सा-पद्धति	26
5.	स्वतः रोगनिवारण-क्षमता और संयम	32
6.	स्वतः रोगनिवारण-क्षमता और शारीरिक क्रियाएं	37
7.	स्नायु तंत्र और संयम	43
8.	सिरदर्द और संयम	44
9.	बुखार और संयम	45
10.	मानसिक क्रियाएं और संयम	46
11.	रक्त-संचार, तंत्र और संयम	50
12.	त्वचा-तंत्र और संयम	52
13.	पाचन-तंत्र और संयम	55
14.	थकान, नींद, श्रम व्यायाम और संयम	58
15.	हमारी इन्द्रियाँ, प्रवृत्तियाँ और संयम	64
16.	गन्धेन्द्रिय तंत्र और संयम	67
17.	प्रवृत्तियाँ और संयम	69
18.	तंत्रोपैथी की आवश्यकता	70
19.	उपचार संबंधी तांत्रिकी दृष्टिकोण	73
20.	तांत्रिकी उपचार विधियाँ	76
21.	प्रक्षेपण आरोपण विधि	79
22.	अजपा क्रमाक्रम विधि	83
23.	निमेष वर्जन विधि और लक्ष्यभेद विधि	86
24.	अधः उर्ध्व क्रमाक्रम विधि और कर्म और ज्ञान उद्धबोधन विधि	88
25.	अंगोपांगशोधन-भेदन विधि	89
26.	शवासनारूढ़-वक-मुद्रा शोधन-भेदन विधि	93
27.	वीरासनारूढ़ अश्विनी बंध शोधन-भेदन विधि	94
28.	शवासनारूढ़ उडिडया बंध कुकुट मुद्रा शोधन-भेदन विधि	96
29.	शवासनारूढ़ मरजार मुद्रा शोधन-भेदन विधि	97

30. अर्द्ध पदमासनारूढ़ कच्छप मुद्रा शोधन-भेदन विधि 98
31. सिंहासनारूढ़ जालंधर बंध टीटिण्डा मुद्रा शोधन-भेदन की विधि 99
32. सिंहासनारूढ़ मारकट मुद्रा शोधन-भेदन विधि 99
33. सिंहासनारूढ़ श्वान मुद्रा शोधन-भेदन विधि और जामवंत मुद्रा शोधन-भेदन विधि 100
34. सिंहासनारूढ़ व्याध्र मुद्रा शोधन-भेदन विधि 101
35. सिंहासनारूढ़ हस्ति मुद्रा शोधन-भेदन विधि और जामवंत मुद्रा शोधन-भेदन विधि 102
36. वीरासनारूढ़ भुजंग मुद्रा शोधन-भेदन विधि 102
37. सिंहासनारूढ़ उलूक मुद्रा शोधन-भेदन विधि 103
38. तंत्रिकी रागानुराग प्रक्षेपण विधि नं 1, नं.2, नं.3 और नं.4 104
39. भस्मासुर थेन्इया नृत्य 107
40. तंत्रोपैथी की दृष्टि में भाव मुद्रा और शारीरिक क्रियाएं 109
41. नटराज मुद्रा नं. 1 से 15 112
42. उपचारात्मक प्राणायाम विधियां 120
43. वक्षोगहर संकोचन-प्रसारण प्राणायाम विधि 121
44. सिरोगहर संकोचन-प्रसारण प्राणायाम विधि और उदरोगहर विधि संकोचन-प्रसारण प्रणायाम 122
45. कटिगहर संकोचन प्रसारण प्रणायाम विधि 123
46. हास्य मुद्रा 124
47. इष्ट प्रणाम 129
48. शक्ति सम्पात कराने के नियम 132
49. विश्राम मुद्रा 133
50 पारम्परिक देव मुद्राएं और उपचार 136

तंत्रोपैथी और उपचार

यह हमें मानकर चलना होगा कि परमात्मा ने हमें रोगी नहीं निरोग, दास नहीं देव, भक्षक नहीं रक्षक, निष्क्रिय नहीं सक्रिय, नकारात्मक चिन्तक नहीं सकारात्मक चिन्तक बनाकर इस पृथ्वी पर भेजा है। उसने रंग-विरंगे पशु-पक्षियों, कीट पतंगों, लतावृक्षों को बनाकर हमारे पूरे परिवेश में नैसर्गिक आभा बिखेर दी है और दूसरी ओर जंगल-पहाड़ों, तारों से भरा आकाश तथा उसमें अठखेलियाँ करते विभिन्न रूपों में बादल तथा छः ऋतुओं के सतरंग-परिधानों में लिपटी यह सुन्दर सलोनी सृष्टि हममें और अधिक जीने, शरीर से पुष्ट, मन से संतुलित और उग्र विचारों से स्थिर हो, इस संसार को सुन्दर-से-सुन्दर बना कर वह भोगने की ललक पैदा करता है । यह भाव मन में आते ही सारे संसार का चेहरा बदला हुआ दिखाई पड़ने लगेगा । जहाँ अकारण भय से जीवन की गहराइयों में डुबकी लगाने से हम भयभीत हो जाते हैं और ऊटपटांग सोच-सोच कर नकारात्मक चिन्तक, निराशावादी होकर रोगी बन जाते हैं, वहाँ प्यार और हँसी खुशी हमारे रोम-रोम में घुलकर जीवन को एक नए ताल, छंद और सुर पर थिरकाने लगेगी।

तंत्रोपैथी 20वीं सदी के महान चिंतक और दार्शनिक श्री पी. आर. सरकार द्वारा प्रतिपादित अणुजीवत् (माइक्रोवाइटम) के सिद्धान्त पर आधारित है । उन्हीं के शब्दों में यह भूमाचेतिक धातु का रहस्यजनक उत्सरण है। अणुजीवत् एक प्रकार का अतिसूक्ष्म जीव है, जो मानस और भौतिकी दोनों स्तरों में ही पाया जाता है । यह और जीवों की भाँति अंगार-अणुओं और अंगार-परमाणुओं द्वारा नहीं बना है। इसकी स्थिति चित्ताणुओं और विद्युताणुओं के मध्य है । परन्तु यह स्वतंत्र सत्ता है । यह न चित्ताणु है और न विद्युताणु । ये स्वभाव से नकारात्मक चिंतन रोगवाहक नकारात्मक अणुजीवत् को आकर्षित कर हमें जीवन में रोगी, अनाकर्षक और असफल बनाता है । सकारात्मक चिन्तन सकारात्मक अणुजीवत् को अपनी ओर आकर्षित कर स्वस्थ, सुन्दर आकर्षक और आह्लादित व्यक्तित्व प्रदान करता है। इसके लिए आधुनिक चिकित्सा शास्त्र में व्यवहृत 'वाइरस' उपयुक्त शब्द नहीं है । उन्हें माइक्रोवाइटम या अणुजीवत् कहना ठीक होगा। तंत्रोपैथी सकारात्मक अणुजीवत् को आकृष्ट कर हमें पूर्ण स्वस्थ बनाता है।

अपने जीवन की नींव को मजबूत करके ही हम स्वस्थ, सफल आकर्षक, और आनन्दपूर्ण व्यक्तित्व का विशाल और आकर्षक भवन खड़ा कर सकते हैं । तंत्रोपैथी इसके लिए बुनियाद के पत्थर का काम करता है। इसके अनुसार हमारा संकल्पित लक्ष्य ही हमें सक्रिय करके अधिक तेजी से अपने-आप बीमारियां दूर करने की शक्ति बढ़ाता है। आनन्दपूर्ण भविष्य की ओर ले जाता है, क्योंकि

मित्रवत 'अणुजीवत्' ऐसी स्थिति में ही आकर्षित होते हैं। तंत्रोपैथी परहेज और रोगों के इलाज के क्षेत्र में एक व्यावहारिक, सरल, सुगम, नुकसान रहित और सुलभ इलाज की विधि है। हमारा निठल्लापन, ऊटपटांग सोच-विचार और बाहरी तथा भीतरी सफाई में रुचि न होना, नकारात्मक चिन्तन करना तथा निराश होकर डरे-डरे रहना शत्रुवत तथा नकारात्मक अणुजीवत् को निमंत्रण देना है और शारीरिक, मानसिक दृष्टि से रोगी बनाना है। एक बार रोगी हो जाने पर हम और अधिक आलसी, निराश और डरे-डरे रहने लगते हैं। इसी अवधि में रोगी अपने छोटे-मोटे रोग को भी उलझनपूर्ण और लाइलाज बना लेता है।

निष्क्रियता ही रोग है और सक्रियता निरोग। हमारे शरीर के वह अंगविशेष जो प्रायः निष्क्रिय रहते हैं कमजोर और रोगी बन जाते हैं एवं सक्रिय अंग स्वस्थ सुपुष्ट और निरोग बने रहते हैं। अपने दाहिने हाथ को बाएं हाथ से अधिक मजबूत और सुपुष्ट होना इसी सन्दर्भ में देखा जा सकता है। नौकरी से रिटायर करने के बाद सरकारी ऑफिसर या कर्मचारी का निष्क्रिय होना, उनका जल्द रोगी बनकर मर जाना तथा आलसी और बुजदिल को "कोढ़िया" कहकर पुकारना इसका ही प्रतीक है। अंग्रेजी दवाओं में विभिन्न तरह के इन्जेक्शन, कैप्सूल, टेबलेट, मालिश की दवा, प्राकृतिक चिकित्सा में जल, मिट्टी और धूप का प्रयोग अपने ढंग से उस अंग विशेष को रोगमुक्त करता है, जो निष्क्रिय होकर रोगी वन गये थे। तंत्रोपैथी में विभिन्न क्रियाओं, खान-पान, रख-रखाव आदि से रोगी का इलाज होता है। द्रव्य गुण और यौगिक विधियों का इस्तेमाल रोग की उग्रता और तीव्रता को देखते हुए किया जाता है। मन को विभिन्न अलग-अलग शारीरिक और मानसिक क्रियाओं द्वारा ऊपर उठाकर क्रमशः अपने आप इलाज की क्षमता (रोग निवारण क्षमता) को ज्यादा-से-ज्यादा विकसित करना एंव सुलभ प्रकृति-प्रदत्त वस्तुओं द्वारा निरापद, हानिरहित और परहेज इलाज की ही विधि है। दूसरे शब्दों में इसे संयम और उपचार की आध्यात्मिक-मनो-रसो-देहो-प्राकृतिक विधि भी कहते हैं।

तंत्रोपैथी से आध्यात्मिक विकास होता है और उससे मन शांत और शरीर अपनी स्वाभाविक गति की स्थिति को प्राप्त करता है। 'स्वास्थ्य ही धन है; इस वाक्य को हम प्रायः दुहाराया करते हैं, लेकिन इस ओर हमारा ध्यान तब जाता है, जब हम रोगी बन जाते हैं और अपनी गाढ़ी कमाई को स्वाहा करके भी उसे पुनः प्राप्त करना चाहते हैं। किसी लम्बी बीमारी के बाद बिस्तर पकड़े रहने की कल्पना मात्र से ही मनुष्य घबरा जाता है। रोगी का कष्ट या तो वह खुद जानता है या परम पिता परमेश्वर।

स्वास्थ्य शब्द का अर्थ शारीरिक, मानसिक सांविगिक-आवेगिक एवम् आध्यात्मिक स्वास्थ्य से है, क्योंकि शरीर और मन, विचारों की क्रिया-प्रतिक्रिया से प्रभावति होता है। वैज्ञानिकों ने यह साबित कर दिया है कि प्रायः मन के डावांडोल रहने से शारीरिक बीमारियां होती हैं तथा अस्वस्थ शरीर से मन बीमार बन जाता है। दोनों स्थितियों में हमारे विचार और विवेक की क्रिया-प्रतिक्रिया डगमगा जाती है या आवेग-संवेग अस्थिर होने से स्वस्थ शरीर

एवं सन्तुलित क्रमशः बीमार डावांडोल हो जाता है। हममें मे अधिकतर बहुत स्वार्थी या अपने आप में चिपटे हुए होते हैं जिसके कारण ऐसे लोग अपने शरीर, मन, विचारों, एवम् विवेक पर से अपनी पकड़ खो बैठते हैं। वे ही इसके चलते जीवन में सदा बीमार, असफल, अनाकर्षक तथा दुखी बनकर त्रिशंकु की तरह मानसिक तनाव-दबाव की स्थिति में लटके रहते हैं। अध्यात्म यह हमारे स्वास्थ्य के लिए राम-बाण का कार्य करता है।

एक स्वार्थी न कभी हँसी-खुशी से भरा घर-संसार बसा सकता है और न स्वयं खुश रह सकता है। अपने 'स्व' की सीमा की दीवार को खड़ी कर न उसके बाहर देखना और न उसके भीतर किसी को झांकने की इजाजत देना स्व का सिमटना है तथा स्व की सीमा को बढ़ाकर उसके अन्दर परिवार, समाज और सारी मानव जाति को समेट लेना ही 'स्व' का फैलाव है। यही अध्यात्मिक या सहज, सरल स्वास्थ्य है।

'स्व' का उचित हद तक सिमटन या फैलाव (समुचित संकोचन-प्रसारण) एक तांत्रिकी प्रक्रिया है। तंत्रोपैथी के निर्देशन की जानकारी के अभाव में 'स्व' को जरूरत की सीमा से अधिक सिमटना (संकोचन) हमारी कई प्रकार की शारीरिक, मानसिक तथा सांवेगिक बीमारियों को बुलावा देता है तथा 'स्व' की सीमा का बहुत अधिक फैलाव हमें पूजा की वस्तु बनाकर छोड़ता है। दोनों हद की स्थिति से बचने की विधि ही तंत्रोपैथी है।

आज सरकार आर्थिक विकास के लिए पंचवर्षीय योजना बनाती है, राजनीतिक विकास के लिए नारे लगाती है एवं आधुनिक अस्पतालों का निर्माण कर, रोग से मरने के बजाय रोगी बनकर जीने के लिए बाध्य किया करती है। हम कितना प्रतिशत स्वयं मानसिक और शारीरिक विचारों की दृष्टि से इसके चलते टूट-टूट कर विवश होते जा रहे हैं एवम् हर तरह से आने वाली पीढ़ी की हानि करते जा रहे हैं, जिन पर कल का हमारा समाज और भविष्य निर्भर है, उस ओर किसी सरकार या नेता का ध्यान जाता ही नहीं।

हमारे 'स्व' की रस्सी न फैलने के कारण उलझ-उलझ कर हमारे स्वयं के गले की फाँसी बनती जा रही है और हम उसे और संकुचित कर, स्वार्थ के मद में चूर, अनेक रोगों की शूली पर लटकते जा रहे हैं। तंत्रोपैथिक पद्धति से रोगों के उपचार के लिए उपचारक को रोगी के शरीर की विभिन्न ग्रन्थियों और उपग्रन्थियों तथा उसके द्वारा स्रावित हारमोन की ठीक-ठीक और पूर्ण जानकारी होनी चाहिए। उसके अभाव में उपचारक न रोगी को विशेष फायदा पहुँचा सकता है और न रोगी इस पद्धति के इलाज द्वारा आशातीत फायदा ही उठा सकता है।

रसस्राव ग्रन्थियां

श्री श्री आनन्दमूर्ति के शब्दों में-"शारीरिक ग्रन्थियां रसायनिक रस-स्राव करती रहती हैं जिसे 'हारमोन्स' कहते हैं। जिसका प्रभाव शरीर और मन पर

अधिक पड़ता है। प्रत्येक रसस्राव-ग्रन्थियों का सम्बन्ध विशिष्ट चक्रों के साथ होता है जो सूक्ष्म ऊर्जा के केन्द्र हैं। इसी प्रकार हर चक्र पर कुछ उपग्रन्थियां होती हैं जो उस चक्र से सम्वन्धित वृत्ति को प्रभावित करती हैं।" 12 वर्ष की उम्र तक सारी ग्रन्थियां शरीर में सक्रिय हो जाती हैं और 24 वर्ष की उम्र तक ये पूर्ण रूप से विकसित हो जाती हैं। लेकिन इन ग्रन्थियों को विकसित होने में शीत प्रधान देशों में एक वर्ष से अधिक समय लगता है। इन ग्रन्थियों का अधिक स्राव उस चक्र से सम्वन्धित वृत्तियों को अधिक सक्रिय और कम स्राव धीरे-धीरे निष्क्रिय कर देता है। विभिन्न तंत्रोपैथिक मुद्राएं विशिष्ट चक्रों को पूर्ण सक्रिय कर देती हैं। जो स्वभाव से प्राणप्रयात्मक, ध्यानात्मक और चक्र से सम्वन्धित मांस-पेशियों का संकोचन-प्रसारणात्मक होते हैं। इस प्रकार तंत्रोपैथिक मुद्राएं ग्रन्थियों के रसस्राव को घटाती-बढ़ाती हैं, जिससे वृत्तियों पर नियंत्रण होता है और उससे संबंधित रोग का सफल इलाज हो जाता है। इसलिए विभिन्न रोगों के लिए उपचारक को विशिष्ट मुद्रा का चयन बड़ी होशियारी से करना चाहिए।

पीनियल ग्लैण्ड

हमारे शरीर की रसस्रावी ग्रन्थियों में पीनियल ग्लैण्ड का प्रमुख स्थान है। यह ग्रन्थि वृहद् मस्तिष्क के केन्द्र में स्थित होती है तथा पिटियूटरी ग्लैण्ड और शरीर के निचले भागों में स्थित विभिन्न ग्रन्थियों को प्रभावित करती है। यद्यपि यह ग्रन्थि वैज्ञानिकों के लिए काफी दिनों तक रहस्यपूर्ण बनी रही और आज भी पूर्ण रूप से इसकी जानकारी न प्राप्त होने के बावजूद भी इसकी महत्ता को उन्होंने स्वीकारा है। पाश्चात्य दार्शनिकों में डेकारटिज ने तो इस ग्रन्थि को आत्मा का निवास स्थान माना। पीनियल ग्लैण्ड का सम्बन्ध सहस्रार चक्र से है, जो व्यक्ति में चेतनता का केन्द्र है। यह ग्रन्थि 'मेलाटोनिन' नाम का रस स्राव करती है जिससे हमारे चित्त की एकाग्र-शक्ति के विकास में बड़ी मदद मिलती है और साथ-ही-साथ व्यक्ति को अन्तर्मुखी बनाती है। जो 'नर्वसनेस' और असामान्य व्यवहार के रोगी होते हैं, उन्हें 'मेलाटोनिन' दिया जाता है जिससे रोगी पूर्ण शान्ति और स्वस्थ महसूस करता है। मेलाटोनिन ग्रन्थि से रसस्राव ध्यान के गहन अभ्यास से स्वयंमेव स्रावित होता है और इसी कारण भारतीय योग, "समाधि में अमृत रस पान" की घोषणा करता है।

लाखों वर्ष पहले रेंगने वाले जीवों–जैसे छिपकली आदि के सिर में तीसरी आँख हुआ करती थी, जो प्रकाश के प्रति काफी संवेदनशील होती थी और उसके शरीर के स्वाभाविक प्राकृतिक लयात्मकता को बरकार रखती थी। लाखों वर्षों की विकासात्मक पद्धति से वह आँख लघु मस्तिष्क में स्थित हो गई और उसे ही पिट्यूटरी कहते हैं। मनुष्य विकासक्रम में सर्वोत्तम प्राणी है और उसमें मनुष्येतर

प्राणियों से भिन्न लघु मस्तिष्क के अलावा वृहद मस्तिष्क का विकास हुआ। और पीनियल ग्लैण्ड उसी में स्थित है। तंत्र शास्त्र में उसे ही तृतीय नेत्र कहा गया है, जो तंत्र योग के विभिन्न अभ्यासों के द्वारा खुलता है और व्यक्ति अध्यात्म के उच्च शिखर पर पहुँच कर परम उपलब्धि के रूप में परम पुरुष को प्राप्त करता है।

मेलाटोनिन रसस्राव पीनियल ग्लैण्ड से दिन में वहुत कम होता है, क्योंकि दिन में हम अत्यधिक वर्हिमुखी रहते हैं और सांसारिक कार्य में व्यस्त होते हैं। इस रस का स्राव अधिक रात के अंधेरे में और विशेष कर 12 से 3 बजे के वीच में होता है। इसलिए तंत्रशास्त्र में 12 से 3 वजे रात ध्यान के लिए उपयुक्त समय माना गया है। हास्य मुद्रा, इष्ट प्रणाम तथा शशांक मुद्रा का अभ्यास इस ग्रन्थि को उत्तेजित करता है। इसीलिए ये मुद्राएं मस्तिष्क को शान्त करने और केन्द्रित करने में मदद पहुँचाती हैं।

पिट्यूटरी रस स्रावग्रन्थि

त्रिकुटी के ठीक पीछे मस्तिष्क के अगले भाग से यह ग्रन्थि लटकती है। यह नीचे की सारी रसस्रावक ग्रन्थियों को नियंत्रित करती है। श्री श्री आनन्दमूर्ति जी ने इस ग्रन्थि को अधिक महत्त्वपूर्ण बताया है। इस ग्रन्थि का समानुपातिक स्राव हमारे सकारात्मक चिन्तन के लिए जिम्मेदार है। इस ग्रन्थि से समानुपातिक स्राव कराने और मजबूत बनाने के लिए सुवह-शाम ध्यान-साधना करना जरूरी है। इस ग्रन्थि के रोगग्रस्त होने से 'गेन्टस' और 'मीडजेटस' पैदा करती है।

थाइराएड ग्लैण्ड

यह ग्रन्थि गले के केन्द्र में स्थित होती है और इसका सम्बन्ध विशुद्ध चक्र से होता है। यह शरीर के मेटावोलिक रेट का नियंत्रण करती है, जिससे शरीर रूपी मशीन की रफ्तार तेज हो जाती है। यह थाईराक्सीन नाम का रसस्राव करती है, जिससे शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य संतुलित रहता है। अगर यह ग्रन्थि अधिक स्राव करने लगे तो व्यक्ति का वजन घटने लगता है, उसमें नर्वसनेस बढ़ जाती है, दुःचिन्ता होने लगती है और व्यक्ति झगड़ालू हो जाता है। और व्यक्ति ऐसा लगता है कि चौथे गियर में चल रहा है लेकिन कभी उसे मानसिक और शारीरिक आराम नहीं मिलता।

अगर इस ग्रन्थि का स्राव कम होता है तो रोगी के कम खाने पर भी वजन बढ़ता जाता है, मानसिक दृष्टि से सुस्त हो जाता है, आलसी हो जाता है और वह 13-14 घंटा प्रतिदिन सोता है। इस ग्रन्थि के रस थाइराक्सीन को संतुलित करने के लिए इष्ट प्रणाम अेर गिरगिर मुद्रा बहुत लाभदायक होता है। अमेरिकन डॉ० स्टेफेन ब्रेना ने 'योग ऐन्ड द मेडिसिन' नामक अपनी किताब में लिखा है कि मत्स्यासन इस ग्रन्थि को विपरीत दिशा में खींचता है, जिससे वह स्वस्थ हो

जाती है। शलभ मुद्रा और इष्ट प्रणाम इस ग्रन्थि का समानुपतिक संकोचन, प्रसारण और हिलाडुला कर स्वस्थ कर देता है। उच्च रक्त चाप, अल्प रक्त चाप और हृदय रोग की स्थिति में इस मुद्रा के करने से पहले उपचारक से राय ले लेनी चाहिए ।

थाइमस ग्रन्थि

यह ग्रन्थि हृदय के करीब होती है और इसका सम्बन्ध अनाहत्चक्र से होता है । इस ग्रन्थि के समानुपातिक रस स्राव से शरीर की रोग निवारण क्षमता बढ़ जाती है । व्यक्ति को रोग से मुक्त होने में अधिक बल मिलता है। नकारात्मक चिन्तन से हृदयदाह का रोग होता है और वह ग्रन्थि कमजोर हो जाती है और इससे शरीर की सम्पूर्ण प्रतिरक्षात्मक व्यवस्था बिगड़ जाती है जिससे कैन्सर, टी. बी. आदि भयंकर बीमारियों की संभावना बढ़ जाती है। भुजंग मुद्रा और वक्षोगहर प्राणायाम से अनाहृत चक्र मजबूत होता है और शरीर के ऊपरी भाग से रोग दूर होते हैं।

एड्रिनल ग्रन्थि

इस ग्रन्थि के रस स्राव को एड्रीनलीन कहते हैं और इसका सम्बन्ध मणिपुर चक्र से होता है। यह ग्रन्थि शरीर में अचानक शक्ति सम्पात को नियंत्रित करती है और यह दोनों किडनी के ऊपर दो टोपी की तरह चिपकी होती है। इसके समानुपातिक स्राव से व्यक्ति में खतरे से लड़ने या भागने की क्षमता आ जाती है। लौहयुग के व्यक्तियों को आदमखोर जानवरों से अपनी गुफाओं में सदा भय बना रहता था और वे मानसिक तनाव और दबाव की स्थिति में रहा करते थे और वे उनसे लड़कर या भाग कर मानसिक तनाव और दबाव से छुटकारा पा लेते थे। लेकिन आज का आधुनिक समाज अत्यधिक प्रतिस्पर्धा और भाग दौड़ से गुजर रहा है। उसे नौकरी चाहिए, व्यवसाय चाहिए, समाज में प्रतिष्ठा चाहिए और इसके चलते वह अत्यधिक तनाव और दबाव की स्थिति में रहता है। वह आदि मानव की तरह शारीरिक दृष्टि से लड़कर या भागकर इससे छुटकारा नहीं पा सकता। इसलिए सदा तनाव-दबाव की स्थिति में वह रहता है। इसी से उच्च रक्त-चाप, हृदय रोग, अलसर, कैंसर, आत्महीनता, और असामान्य व्यक्तियों की भरमार सारे विश्व में हो गई है। इन रोगों को कोई भी आधुनिक दवा दूर नहीं कर सकती । तांत्रिकी संयम और उपचार में बावा शैया मुद्रा, शवासन, हास्यमुद्रा आदि अभ्यास उपर्युक्त रोगों से छुटकारा के लिए आवश्यक है।

मणिपुर चक्र की कमजोरी व्यक्ति में भय वृत्ति अधिक ला देती है। भाषण देने में भय इसका उपयुक्त उदाहरण है। इष्ट प्रणाम् के अभ्यास से यह वृत्ति नियंत्रित हो जाती है। आवर्त, कीर्तन, ताण्डव नृत्य, थेन्इया नृत्य आदि का कुछ दिनों का अभ्यास एड्रिनल ग्रन्थि के रोगी को अवश्य करना चाहिए।

गोनाड्स ग्रन्थि

यह ग्रन्थि नारी के भगोदर और पुरुष के अण्डकोष के रूप में पाई जाती है। इसका सम्बन्ध स्वाधिष्ठान चक्र से होता है। इसके कम स्राव होने से व्यक्ति में अविश्वास, निर्दयता और क्रूरता-वृत्ति बढ़ता है। कटि गह्वर प्रणायाम, कुकुट मुद्रा, वक्र मुद्रा, बाबा शैय्या मुद्रा का अभ्यास गोनाड्स ग्रन्थि को मजबूत करता और उपर्युक्त वृत्तियों से छुटकारा दिलाता है ।

प्रोस्टेट ग्रन्थि

इस ग्रन्थि का सम्बन्ध मूलाधार चक्र से होता है। इस ग्रन्थि से अधिक स्राव व्यक्ति के जीवन में असहायता और निराशा भर देता है। इसके स्राव को संतुलित करने के लिए चक्र शोधन भेदन मुद्रा का अभ्यास आवश्यक है।

तंत्रोपैथी एक व्यवहारात्मक नया शारीरिक, मानसिक विज्ञान है, केवल सिद्धान्त मात्र नहीं है। इससे हमारी पूर्ण काया पलट हो जाती है और हम स्वस्थ, आकर्षक और अह्लादित व्यक्तित्व को पा लेते हैं । शारीरिक ग्रन्थियों और उप-ग्रन्थियों पर विभिन्न तंत्रोपैथिक मुद्राओं द्वारा दबा-दबा कर उनकी मालिश कर, उनसे सम्बन्धित मांसपेशियों और स्नायुओं का संकोचन-प्रसारण कर, हम उनके रक्त-स्राव को संतुलित कर देते हैं तथा उसकी नकरात्मक वृत्ति को दूर कर देते हैं। हम इससे कुछ दिनों के अभ्यास से ही महसूस करेंगे कि हमें एक नया जीवन मिल गया है, एक नए व्यक्तित्व का हममें उदय हो गया है।

आज मनुष्य सुपर कम्प्यूटरों और उच्च्व तकनीकी युग में है। सुपर कम्प्यूटरों से आज मानव के जीवन का रक्षाकवच है। ऐसी हालत में हमें शारीरिक मानसिक और आध्यात्मिक इलाज की भूमिका और उसी पद्धति के सम्बन्ध में नए सिरे, से खोज-बीन करना आवश्यक हो गया है, क्योंकि रसायनिक दवाओं के सम्बन्ध में अनुसंधान और खोज अत्यधिक हुआ है। सफलता भी उसी मात्रा में मिली है। लेकिन इसके साथ ही यह सत्य है कि रसायनिक दवाओं में ऐसी कोई भी दवा नहीं है, जो मामूली सर्दी-जुकाम का इलाज कर सके। वास्तव में आधुनिक चिकित्सा के लक्षणों के इलाज का निरोग की पद्धति से दूर हट कर इस परिकल्पना पर दवाओं की खोज करनी होगी। 'स्वस्थ होना, लक्षणों को दूर कर निरोग होना मात्र नहीं है, बल्कि प्राण और आत्मा के शारीरिक, मानसिक और अध्यात्मिक वाहनों में सकारात्मक सामंजस्य स्थापित करना है। जीवन गति (हरकत) है, जिसमें गति नहीं वही रोगी और मृत है। जीवन की गति वृत्ताकार गोल-गोल नहीं होती बल्कि वह साँप की कुण्डली की तरह होती है। जब जीवन-गति नाभि या नाभि से नीचे की ओर होती है तब उस गति को नकारात्मक अधोगति कहते हैं। वही गति जीवन में रोगी, असफल, अनाकर्षक और दुखी बनाने का प्रमुख कारण है। उपचार (इलाज) उस गति को नाभी से ऊपर की ओर मोड़ता है। यही सकारात्मक उर्ध्व गति है। यही जीवन की

सम-संतुलित गति है। इसमें रसायनिक दवाओं की बहुत कम आवश्यकता पड़ती है। हर्बोमिनरल (जड़ी बुटियों और खनिज द्रवों) की कभी-कभी थोड़ी बहु आवश्यकता है लेकिन हम उसी पर पूर्ण निर्भर नहीं हो सकते हैं। उपचार क तांत्रिक विधि मुद्रा, मंत्र, विधि, परिवेश, परिष्कार आदि को मनुष्य, को शारीरिक मानसिक और आध्यात्मिक दृष्टि से स्वस्थ रखने के लिए परमावश्यक मानता है सक्रिय ध्यान एक मानसिक चिन्तन है और जीवन गति बढ़ाने में उसकी विशे भूमिका होती है।

तांत्रिकी संयम और उपचार की सार्थकता

तांत्रिकी परहेज और इलाज की उपयोगिता का मूल्यांकन करने के पह तांत्रिकी परहेज और इलाज शब्दों की वैज्ञानिक व्याख्या करनी होगी तथा उ काम में लाने की विधि को जानना जरूरी हो जाता है। विषय गम्भीर है फि भी सरल, सुगम और समझने लायक भाषा में इस विज्ञान का रख-रखा उपयोगिता और जरूरीपन का खुलासा इस प्रकार से मैंने किया है:–

(क) तंत्र एक पूरा जीवन दर्शन है। इसकी शुरुआत हमारे जीवन के साथ हो जाती है और जीवन भर चलती रहती है। तंत्र भोजन करने से ले दैनिक क्रिया की छोटी-बड़ी बातों तक और जन्म से मृत्यु तक के स कामों को पूजा मानता है। आध्यात्मिकता के साथ-साथ शरीर औ सांसारिक कर्मों के प्रति ऐसी ऊंची भावना विश्व में दूसरी जगह कहीं न मिलेगी। अतः तांत्रिक विधि से जीवन गुजारना ही साधना है और इ तरह की साधना ही तंत्रोपैथी है। इससे हमें जीवन में स्वस्थ, सफल, सुन और आनन्द-पूर्ण व्यक्तित्व मिलता है।

अच्छा स्वास्थ्य, आकर्षण, सफलता और हंसी-खुशी, चारों एक दूसरे के पू हैं। इनमें से किसी एक के अभाव में हमारा व्यक्तित्व अधूरा रह जा है। हममें ऊंची किस्म की अभिलाषा, जानने खीखने की इच्छा, काम रचनात्मक रूप से करने की चाह होना जरूरी है। किसी काम को शु कर देना उसके प्रति हमारी अंदरूनी इच्छा की निशानी है और यहीं स्वास्थ्य और सफलता की पहल हमारे जीवन में शुरू हो जाती है। क्यों किसी काम को शुरू करना ही हमारी आधी सफलता है। अप जानने-सीखने की चाह को बढ़ाकर जब हम उस शुरू किये हुए काम अच्छी तरह योजना के अनुसार करने योग्य बन जाते हैं एवं उस कार्यरूप देने के लिये अधिक मात्रा में रुचि लेने वालों और मित्रों अपने इर्द-गिर्द इकट्ठा कर लेते हैं तब वह हमारे व्यक्तित्व का आक कहलाता है।

हम काम के लिए जीते हैं, जीने के लिए काम नहीं करते। यही हमारे जीवन की सही मान्यता है। किसी बड़े रूप में सफलता पाने के लिए छोटी-मोटी असफलताओं का सामना करना ठीक उसी तरह जरूरी है जिस तरह बच्चों को खड़ा होकर चलना सीखने के लिये कई बार गिरना और गिरने पर फिर मुस्कुरा कर चलने के लिए प्रयत्न करते हुए दौड़ना सीख लेना। इस प्रकार जहां हममें रचनात्मक हरकत आयी, खुशी अपने आप दौड़ी चली आती है और जब तक पूरी सफलता हमें मिल नहीं जाती, यही खुशी हमें रचनात्मक काम करने के लिए प्रेरित करती रहती है। हमारा शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक संतुलन और संविगिक-आवेगिक स्थिरता एंव आध्यात्मिक प्रगति .(कल्याणकारी विचारों की ओर कदम) ही अह्लाद (खुशी) और क्रिया-शीलता है।

वस्तुतः अच्छा स्वास्थ्य, सफलता, आकर्षण और खुशी हमारी किसी लक्ष्य की प्राप्ति, मन की चाह (उत्कट अभिलाषा), उससे सम्बन्धित बातों को जानने सीखने का रुझान एंव छोटी-मोटी असफलताओं से घबराये बिना लक्ष्य पाने तक बढ़ते रहने का प्रतिफल (देन) है। इसके अभाव में हमारी हालत उन शराबी नाविकों की तरह हो जाती है, जो शराब के नशे में लक्ष्य तक पहुंचने के लिए पूरी रात नाव खेते हैं, और सुबह अपने को उसी स्थान पर पाते हैं जहां से वे चले थे क्योंकि नशे में वे नाव के लंगर को ही उठाना भूल गये थे। हममें से अधिकांश इन्हीं नाविकों की तरह हैं, जो सर्वोत्तम स्वास्थ्य, सफल, आकर्षक और आह्लादित व्यक्तित्व पाने के लिए कोशिश तो करते हैं लेकिन अपनी जीवन-नैया का लंगर उठाना ही भूल जाते हैं। तंत्र इसी कूड़ा करकट के समान कुसंस्कार रूपी लंगर को उठाने की वैज्ञानिक, व्यावहारिक एंव मान्य विधि है और इसकी वैज्ञानिकता, उपयोगिता जरूरीपन को देखते हुए जो कुछ किया जाता है, उसे साधना या पूजा-विधि कहते हैं जिसे तंत्रोपैथी के रूप में स्वस्थ्य लाभ के लिए इस्तेमाल किया जाता है।

(ख) तंत्र कहता है कि हमारी अनगिनत इच्छायें होती हैं और साधन सीमित, इसलिए उसे सीमित रखो। उन असीमित इच्छाओं (पौजिटिव विशेष) को पूरा करने के लिए ही संकल्प लेकर उसे अपना लो। अनुपयोगी इच्छाओं (निगेटिव विशेष) को अपनाने से वे पूरी नहीं होंगी । अनुपयोगी इच्छायें (निगेटिव विशेष) को संकल्पित कर इष्ट बना लेने के कारण ही हम अस्वस्थ होते हैं। हम चाहे रेल से सफर करते हों या बस से या हवाई जहाज से, अपने सहयात्रियों के चेहरे पर हवाईयां उड़ते हुए पाते हैं। यही अनुपयोगी इच्छाएं अपनाने की निशानी है। ढूंढ़ने पर भी किसी के चेहरे पर अह्लाद खुशी, शान्ति, चैन और चमक देखने को नहीं मिलती। उनका चेहरा दुर्दिन के थपेड़ों से झुलसा और झाइयों से भरा हुआ होता है। उनकी आंखों से उत्साह की जगह निराशा और भविष्य का भय झांकता

रहता है, उनकी बातें वर्तमान की काली रात, भूत की निराशा एवं भविष्य की अनश्चितता रही है।

(ग) वैसे अधिकाशं लोग ईमानदारी से कबूल भी कर लेते हैं कि उनके मनमें जैसे-तैसे पैसा कमा लेने और जीवन में आराम से रहने के अलावा और कोई चाह नहीं है। लेकिन उन अभागों को यह पता नहीं कि अच्छा खाना, मुलायम बिस्तर, जैसे तैसे कुछ पैसा कमा लेना आदि स्वयं लक्ष्य नहीं है, बल्कि विशेष चाह को पूरा करने का एक साधन-मात्र है। ऐसे ही भ्रम या विचार के भटकाव की मार से हममें से अधिक लोग रोगी, दुःखी असफल एंव दीन रहा करते हैं। क्योंकि एक निश्चित लक्ष्य की कमी के कारण उनके पास किसी कार्य की कोई योजना ही नहीं होती। भविष्य की योजनायें हम क्या चाहते हैं यह जान लेने के वाद ही बन सकती हैं। जीवन का उद्देश्य स्पष्ट होने पर ही आवश्यक रूप से हम उसे पाने की कोशिश कर सकेंगे। हमारा निश्चित उद्देश्य अपने अवचेतन मन में सर्वोत्तम स्वास्थ्य, सफलता, आकर्षण और खुशी की पेटियों को पहचानने में संकेत (लेबुल) का काम करता है। हमसे से अधिकांश लोग अपने जीवन का लक्ष्य तय न कर पाने के कारण अपने ही अचेतन मन की उन शक्तियों का इस्तेमाल शुरू कर देते हैं जो नुकसानदेह है और उससे बीज निकाल कर अपने जीवन रूपी खेत में बोते रहते हैं। "बोये पेड़ बबूल का आम कहाँ से होय" की उक्ति चरितार्थ करते हुए हम अच्छे स्वास्थ्य की जगह रोगी बनकर, स किया-पहलवान बन जाते हैं। इसी प्रकार आनन्द के स्थान पर दुःख, सफलता की जगह असफलता एंव आकर्षण का फल पाते हैं और जीवन भर आठ-आठ आँसू रोकर भाग्य को कोसते हैं।

(घ) तंत्र का यह कहना है कि जीवन सार्थक है। निरर्थक नहीं। इसके लिये हमें केवल असीमित इच्छाओं में से किसी एक रचनात्मक इच्छा को पूरा करने का लक्ष्य बनाना होगा एंव अपनी तरह-तरह की शक्तियों को अपने अन्दर विकसित करके उसे इष्ट का रूप देना होगा। हमारे जीवन की गाड़ी जैसे-तैसे करके चल रही है। इससे सन्तुष्ट न होकर, जैसा हम चाहते हैं वैसा उसे हमें बनाना होगा। आज जैसा हम सोचते, विचारते और करते हैं, उसी आधार पर हमारा कल बनता है। हमें अपनी अनगिनत जीवनी-शक्ति (चित्त-शक्ति) को इधर-उधर के कार्य में बरबाद होने से बचाने कि लिए आत्म नियंत्रण की कला में माहिर होना पड़ेगा। क्योंकि हमारी शारीरिक मानसिक, आवेगिक एंव आध्यात्मिक शक्ति भी विजंली के सदृश्य है और उसे नियंत्रित कर अपने जीवन की वगिया को सींचना होगा, जिससे वह अच्छी तरह फल फूल सके। आज हमारी वह शक्ति काबू से बाहर है। बरसात में विजली गिरने के समान हमें बर्बाद और तवाह कर सकती है। "मैं जीवन से तंग आ चुका हूं" या "जीवन में अव रहा ही क्या" आदि वाक्य उसी व्यक्ति के मुंह से, जिसका कोई लक्ष्य नहीं, निकलता है। विना उद्देश्य का जीवन, जिन्दगी भर के लिए

सजा पाए उस अपराधी की तरह है, जो निराशा के झूले में झूलते हुए संसार से छुटकारा मिलने की ही बातें सोचा करता है। आज हमारी सबसे बड़ी वदकिस्मती यह है कि हम सर्वोत्तम स्वास्थ्य, सफलता, आकर्षण और आनन्द को किसी भी कीमत पर खरीदना चाहते हैं। स्वयं कोशिश करके उसे पाना नहीं चाहते। ऐसी परिस्थिति में "शरीरम्व्याधि मन्दिरम्" शरीर बीमारियों का घर है, मानते हुए नैराश्य को छिपाना चाहते हैं तो यह आश्चर्य नहीं है। हम स्वयं रोग को बुलाते हैं। हम रोगी अपने आप बनते हैं। तांत्रिकी तरीके से जीवन बिताने से उसी प्रकार निरोग भी हम अपने आप हो जाते हैं। दवा और वैद्य का सहयोग हमें निरोग बनाने में नामपात्र का ही होता है।

(च) मनुष्य एक शरीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक प्राणी है। इसलिए उसकी समस्याएं भी शारीरिक मानसिक और आध्यात्मिक स्तर की होती हैं। एक बीमार व्यक्ति का समाधान हमें उपर्युक्त तीनों स्तरों पर ढूढ़ंना होगा। रसायनिक दवाएं कुछ समय तक शारीरिक और मानसिक रोगों के लक्षणों को स्थायी रूप से दबा देने में सफल तो हो जाती हैं लेकिन आध्यात्मिक स्तर पर उनकीं पहुंच न होने के कारण पुनः उन बीमारियों के लक्षण दिखाई पड़ने लगते हैं या प्रतिक्रिया स्वरूप कोई अन्य उग्र बीमारी के वे शिकार हो जाते हैं। अतः हर बीमारी का इलाज तीन स्तर पर होना चाहिए–शारीरिक, संतुलित वनस्पति खनिज द्रव्य (हरबो मिनरल), मानसिक बौधिक प्रक्षेपण आरोपण क्रियाएं, तथा आध्यात्मिक अतीन्द्रिय क्रियाएं। शरीरिक और मानसिक क्रियाओं को संतुलित कर 'प्रमा' स्थापति करने के लिए आध्यात्मिक क्रियाएं सहयोग करती हैं। उसके लिए माइक्रोवाइटम थ्योरी के प्रणेता श्री पी. आर सरकार ने 'इक्विलिब्रियम', और 'इक्विपोज' शब्दों का प्रयोग किया है। इक्विलिब्रियम मानसिक और शारीरिक शक्ति संतुलन और इक्वीपोज भार संतुलन के लिए उन्होंने किया है। इस लिए रोगी का सफल इलाज उसके रोगों के लक्षणों को दूर कर देना और शारीरिक वजन को बढ़ा देना ही नहीं है बल्कि उसकी शारीरिक, मानसिक ऊर्जाओं और शक्तियों को समसंतुलित कर, उसमें उमंग और उत्साह भर देना है। क्योंकि एक बीमार व्यक्ति में उमंग और उत्साह की कमी होती है। या दूसरे शब्दों में उमंग और उत्साह का अभाव ही व्यक्ति को रोगी बनाता है। अतः रोग निवारण के लिए संतुलन और भार-संतुलन दोनों आवश्यक हैं। जीवन में गति इन्हीं से आती है और इसके लिए जीवन के प्रति प्रेम का होना ही पर्याप्त नहीं, बल्कि जीवन-दाता के प्रति अगाध भक्ति होना भी आवश्यक है। जीवन-दाता के प्रति अगाध भक्ति का अर्थ है उन सारे प्राणियों और वस्तुओं के प्रति भक्ति, जो जीवनी–शक्ति के व्यक्त रूप हैं या जीवन दाता की संरचना हैं। व्यक्ति से ही समाज बनता है। इसलिए समाज में भी उच्च मूल्यों की स्थापना करना मनुष्य के सामान्य स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है।

(छ) वास्तव में तंत्रोपैथी भरपूर जीवन जीने की एक कला है और निरोग, सफल, आकर्षक और अह्लादित बनकर सम्पूर्ण जीवन भोगने का विज्ञान। हम जीना तो चाहते हैं लेकिन जीने की कला हमें नहीं आती और जीने के विज्ञान को समझने की आवश्यकता हमने महसूस की ही नहीं। जब हम बीमार होते हैं, तब इस ओर हमारा ध्यान अवश्य जाता है लेकिन रोगों के लक्षण दूर होते ही वह रफ्तार बढ़ेगी जो पहले थी सो अव भी है। कला हमें सम्पूर्णता का बोध कराती है जबकि विज्ञान हममें विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण देता है तथा हमें शरीर, मन, और अध्यात्म की तह तक पहुँचने के लिए प्रेरित करता है। तंत्रोपैथी कला और विज्ञान की लड़ी को पिरोता, हममें और अधिक जीने, और जीवन में बहुत कुछ कर दिखाने की ललक पैदा करता है। तंत्रोपैथी अपनी शैली से समस्त रोगों का उपचार करती है। यह देह-तंत्र की तांत्रिक व्यवस्था को समझाकर स्वयं रोगी द्वारा की गई क्रियाओं की सहायता से रोग से मुक्त करती है तथा समष्टि पर नियंत्रण प्राप्त करने को प्रेरित करती है। तंत्रोपैथी एक दृष्टि है जो तनावों से दूर रहने की मनोवृत्ति देती है। वह कुछ कोणों और वलयों के प्रतीकों के माध्यम से प्रकृति पर नियंत्रण स्थापित करती है। यह रोगी में शक्ति जगा कर रोग मुक्त कराना, पुनः रोगी न बनने के लिए विशिष्ट क्रियाओं को करते रहने का निर्देश देती है।

(ज) हम अदृश्य शक्तियों के महासमुद्र से घिरे हैं। अपनी विभिन्न इन्द्रियों के द्वारा हम उसे ग्रहण करते हैं और विसर्जित कर देते हैं। शक्ति प्राण है, गति अभिव्यक्ति, और संसार एक स्वचलित प्रक्रिया है। हमारा मन, बुद्धि और चित्त भी शक्ति के ही आवास हैं। वाह्यजगत में जो है वह सब कुछ अंतरजगत में मौजूद है। वही प्रक्रिया स्थूल से सूक्ष्म की ओर और सूक्ष्म से स्थूल की ओर आती जाती रहती है। रोगी विभिन्न तांत्रिकी मुद्राओं में इतना तल्लीन हो जाता है कि वह अपनी सुध-बुध ही कुछ क्षणों के लिए खो बैठता है और इसी आत्मविस्मृति के क्षणों की अनुभूति और अभिव्यक्ति उसमें शक्ति समाप्त कराकर रोग-मुक्ति की ओर ले जाती है। संसार अपने आप में एक निरपेक्ष सत्ता है। इसकी एक तत्त्वशक्ति दूसरे तत्त्व के साथ संयुक्त होकर क्रियाशील है और सबसे विलक्षण बात यह है कि ये दोनों तत्त्व एक दूसरे से किसी भी प्रकार का साम्य नहीं रखते। दो विषम तत्त्वों का संयुक्त होकर क्रियाशील होने का कारण है संसार की केन्द्र शक्ति का सक्रिय रहना। और इसी दृष्टि से प्रत्येक अणु गतिशील और स्पंदित होते रहते हैं और क्रिया के रूप में शक्ति प्रतिष्ठित है। लेकिन क्रिया का परिणाम कर्म और कर्म का परिणाम भोग होता है। एक शक्ति क्रिया, कर्म और भोग में परिणत होता रहता है। यह चक्र वास्तविक है। तंत्रोपैथी इसी चक्र के माध्यम से रोगी की सफल चिकित्सा करता है।

संयम

संयम सम्बन्धी तंत्रोपैथिक दृष्टिकोण

हममें से अधिकांश न स्वस्थ हैं और न अस्वस्थ, न रोगी हैं और न निरोग। हम अधमरा बने हाड़-मांस के पुतले की तरह भविष्य की डोर में लटके इधर-उधर कठपुतली का नाच दिखाते चलते हैं। कैसी असहाय अवस्था आज के विश्व के अधिकांश लोगों की है। न हम इतना बीमार ही हैं कि बिस्तर पर लेटे रहें और न इतना स्वस्थ ही हैं कि अपना काम अच्छी तरह करके निरोग, सफल, आकर्षक और आह्लादित व्यक्तित्व पा सकें। ऐसे हजारों लोगों के अध्ययन से पता चला है कि सभी हालत में असंतुलित आहार-विहार और आवेग-सम्वेग की अस्थिरता ही इसका मूल कारण है। वस्तुतः हममें से अधिकांश व्यक्ति इतने अधिक स्वार्थी या स्वकेन्द्रित होते हैं कि दो व्यक्ति भी कुछ दिन तक खुशी और अपनत्व के साथ-साथ नहीं रह सकते हैं और सदा "तीन कनौजिया तेरह चूल्हा" की उक्ति चरितार्थ करते हैं। हमें स्वस्थ रहने के लिए 'एक चौका एक चूल्हा, एक मानव समाज' का संस्कार दृढ़ करना होगा। यही आध्यात्मिक संयम है। एक स्वार्थी व्यक्ति का मानसिक विकास हो ही नहीं सकता और वह बुढ़ापे तक अविकसित और अपरिपक्व बालक बना रहता है। हमें यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि एक स्वस्थ, सफल, आकर्षक और आह्लादित माता-पिता ही हंसी-खुशी का घर-संसार बसा सकते हैं और निरोग, खुशकिस्मत तथा होनहार बच्चों को पैदा कर सकते हैं। होनहार बच्चे ही किसी जाति, देश और मानवता को अपने रचनात्मक क्रियाशीलता से जीवन प्रदान कर सकते हैं, जिसकी आज के प्रतियोगिता, शीतयुद्ध, आपसी कलह और विभिन्न बीमारियों के भूत से भयभीत विश्व को आवश्यकता है। यह काम न व्याख्यान देने, न कुछ पुस्तकें प्रकाशित करने और न गाँव-गाँव में आधुनिक अस्पतालों को खोलने से हो सकता है। बल्कि यह तांत्रिकी संयम और उपचार विधि से जीवन-यापन करने से सम्भव हो सकता है।

हमारी चिन्ता और दुःख का सिर्फ एक ही कारण है कि हम इस चलायमान संसार में, जहाँ कुछ ठहरता नहीं, हर क्षण, हर पल परिवर्तन होता रहता है, वहाँ मनोवांछित वस्तु, व्यक्ति और भाव को ठहराने की कोशिश करते हैं। हममें से कोई धन, दौलत और ऐश्वर्य को पकड़े रहना चाहता है तो कोई मान-मर्यादा, इज्जत-प्रतिष्ठा से चिपका रहना, कोई पति, पत्नी, प्रेमी, प्रेमिका, माता, पिता की संगत मृत्यु पर्यन्त तक चाहता है तो कोई जीवन भर ऐशो-आराम में रहना चाहता

है। यहीं से हमारे असंयम की नींव पड़ती है और तरह-तरह की शारीरिक, मानसिक, आवेगिक, सांवेगिक बीमारियों की कहानी प्रारम्भ होती है तथा हमें रोगी, अनाकर्षक असफल और दुःखी बनाकर, अल्पायु में ही प्राण लेकर इस कहानी की समाप्ति होती है। हमें यह सीधी बात समझ में नहीं आती कि इस संसार में कोई चीज न शाश्वत है और न स्थिर। फिर हमारे चाहने से न कुछ ठहर सकता है और न स्थिर रह सकता है। वैज्ञानिकों का मत है कि वर्ष में हमारे शरीर का अणु-अणु परिवर्तित हो जाता है और शरीर नया हो जाता है। इस प्रकार 70 साल जीने वाला व्यक्ति 10 बार अपने पूरे शरीर को बदल चुका होता है। हमारे शरीर में रोज नये कोष्ट बनते हैं और पुराने मरकर मल द्वारा फेंके जा रहे हैं। इसी कारण से नाखून और बाल को काटने से दर्द नहीं होता है। हमारा बचपन, देखते-देखते जवानी और जवानी, बुढ़ापे में बदल रही है। हमारा बचपन और जवानी बुढ़ापे के विपरीत नहीं, बल्कि जीवन धारा का एक अंग है। इसी प्रकार मृत्यु, जन्म का आखिरी कदम और जन्म मृत्यु का पहला कदम है। तांत्रिकी संयम, इस यर्थाथ को अच्छी तरह जानता है। मिलन-बिछड़न, सुख-दुःख, जन्म-मृत्यु आदि ही यर्थाथ जीवन है। इसलिए योगेश्वर श्री कृष्ण की यह सीख हमें सदा याद रखनी चाहिए 'सुख-दुःखे समेकृत्चा लाभालोभो जया जयौ'।

संयम और चिकित्सा-विधि में बहुत अन्तर होता है। संयम शारीरिक, मानसिक और साम्वेगिक रोगों के रोक-थाम की विधि है, जब व्यक्ति स्वस्थ रहता है। उपचार रोग की रोकथाम की विधि है। संयम विधि से उपचार हो सकता है। लेकिन उपचार विधि से संयम नहीं। उपचार रोगों के लक्षण पर आधारित होता है, जबकि संयम सर्वोत्तम स्वास्थ्य के मानदण्ड पर। इसीलिए किसी भी चिकित्सा पद्धिति से सर्वोत्म स्वास्थ्य की प्राप्ति नहीं हो सकती। आज चिकित्सा की प्रमुख विधियों में एलोपैथी, होमियोपैथी, यूनानी, आयुर्वेदिक, नेचुरोपैथी, हाइड्रोपैथी (जलीय चिकित्सा), इलेक्ट्रोपैथी (विद्युत चिकित्सा), डिवाईन हीलिंग (प्रभुचिकित्सा), मन्त्रोपचार, झाड़ फूँक आदि हैं। इनमें कुछ विधियाँ भारी उपकरण तथा साधनों पर आधारित और काफी खर्चीली हैं तो कुछ विधि कम खर्चीली होते हुए भी उस विधि के आड़ में अपना उल्लू सीधा करने और उस विधि के विशेषज्ञों की कमी के कारण कारगर इलाज नहीं हो पाता। वस्तुतः इन विधियों की उपादेयता को देखते हुए कुछ कहना उचित नहीं प्रतीत होता। फिर भी इतना तो कहा ही जा सकता है कि उपर्युक्त उपचार विधियाँ एक दूसरे की पूरक हैं, स्वतंत्र चिकित्सा विधि नहीं। अपनी स्वतंत्र अस्तित्व की रक्षा के लिए इन विधियों ने मानव जाति के उपकार से अधिक रोगों का भय उनके मन में अच्छी तरह से अपने आकर्षक प्रचार-प्रसार के माध्यम से बैठा दिया है। इसके चलते हमारी स्थिति यह हो गई है कि हम रोग से अधिक 'रोगों के भय के भूत से' परेशान हैं और इस भय रूपी भूत का इलाज किसी चिकित्सा विधि में नहीं है। तांत्रिकी संयम और उपचार विधि ने इस भूत को ही सर्व प्रथम भगाने का अभियान छेड़

दिया है। यही पूर्ण संयम की विधि है, क्योंकि यह प्रमुख कहावत सत्य है कि भूत मारता नहीं, बल्कि जीवन भर परेशान करता रहता है।

भूलें करना मनुष्य का स्वभाव है, ऐसा कहा गया है। यह कथन अक्षरशः सत्य है क्योंकि अपने विकास के क्रम में उसने यह विरासत के रूप में पाया है। ये हमारी मूल प्रवृत्तियां हैं। आहार, निद्रा और मैथुन को जानवरों में प्रकृति स्वयं नियंत्रण करती है और हममें इन पर नियंत्रण विवेक से प्राप्त होता है। उसी विवेक की व्यावहारिक उपलब्धि है तांत्रिकी संयम और उपचार विधि। आहार के स्तर पर होने वाली भूलें शारीरिक, निद्रा के स्तर पर होने वाली भूलें मानसिक, भय के स्तर पर होने वाली भूलें आवेगिक सांवेगिक, मैथुन के स्तर पर होने वाली भूलें सामाजिक और चारों स्तरों पर बराबर भूल होते रहने से आध्यात्मिक स्वास्थ्य ही चौपट हो जाता है। ऐसी स्थिति में सर्वोत्तम स्वास्थ्य, सफलता, आकर्षण, अह्लाद यदि हमसे कोसों दूर भागता है और हम पुनः मानव से पशु के स्तर पर आ जाते हैं तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? तांत्रिकी संयम आहार, निद्रा, भय और मैथुन को नियंत्रित और अनुशासित कर देश, काल, पात्र (टाइम, स्पेस, परसन) के मुताबिक संतुलित, व्यावहारिक, सरल, सुगम और सुलभ विधियों को बताता है। संयम रोग को दूर करने की नहीं, स्वस्थ व्यक्ति को रोगी नहीं बनने देने और रोगी को सर्वोत्तम स्वास्थ्य लाभ कराने की विधि है।

आज परिवार हो या समाज, हाट बाजार हो या सामूहिक गोष्ठी अथवा सिनेमा गृह हो या कोई मजहबी अनुष्ठान, हर जगह हमारी विकृत मानसिकता का नंगा नाच देखने को मिलेगा। हमारे कुसंस्कारों की प्रेत लीला यत्र-तत्र-सर्वत्र देखने को मिलती है। इस पागलों की दुनिया में हम विवश होकर जी रहे हैं। रोजमर्रा की वस्तुओं की आकाश छूती हुई कीमतें, खाद्यान्नों में अखाद्य वस्तुओं की धड़ल्ले से मिलावट की होड़, कालाबाजारी, घूसखोरी से हम त्राहि-त्राहि चिल्ला रहे हैं। ऐसा कुत्ते-सुअर की तरह जीना भी कोई जीना है? और ऐसी स्थिति में दोनों पक्षों में किसी से सर्वोत्तम स्वास्थ्य की आशा करना असम्भव नहीं तो मुश्किल अवश्य है। आज न हमारे व्यक्तिगत जीवन के सामने कोई महान् कर्तव्य शेष रह गया है और न समाज के सामने कोई सार्थक लक्ष्य। अच्छा खाना, अच्छा पहनना, अच्छे घर में रहना, रातों रात लखपति बन जाना, किसी की मजबूरी से अधिक फायदा उठा लेना एवं स्वधर्म भूल 'मंत्रस्य परमार्थम् सर्वनाशनम' मंत्र का जाप करते रहना, हमारा कर्तव्य और लक्ष्य बन गया है। फलतः व्यर्थ की लड़ाई झगड़ा बेमतलब का आपसी विरोध, निरुदेश्य आपसी टकराव और बेमानी संघर्ष आज हर ओर देखने को मिलता है। उपर्युक्त सारी विकृत प्रवृत्तियों की जननी है अत्यन्त संकुचित कुटिल और अपने आप में बुरी तरह उलझी हुई आज की राजनीति। यह राजनीति रूपी प्लेग की बीमारी हमारे घर-घर में, जाति-जाति में सम्प्रदाय-सम्प्रदाय में, राष्ट्र-राष्ट्र में तथा यहां तक कि

चिकित्सा की आपसी विधियों में घुस कर व्यक्तिगत और समाज के मूल तत्त्वों को ही नष्ट कर रही है। इसने मानवता को ही भेड़-बकरी की कतार में आज ला खड़ा किया है और उसे विनाश के अंतिम गह्वर में ढकेलने की कोशिश में है। शारीरिक, मानसिक, आवेगिक-सांवेगिक बीमारियों के अधिक बढ़ने का यही सबसे बड़ा कारण है और तांत्रिकी संयम ऐसी प्रवृत्तियों पर पूर्ण विराम देने की व्यावहारिक विधि प्रस्तुत करता है।

हमारे शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याएं आज दिन-प्रतिदिन इतनी जटिल होती जा रही हैं तथा आज के तनावपूर्ण वातावरण के कारण हम इतना अधिक शारीरिक और मानसिक दृष्टि से टूटते जा रहे हैं कि इसका सामना करने के लिए आधुनिक चिकित्सकों का हर समुदाय अपनी-अपनी दृष्टि से अपने उपचारात्मक पहलू को और अधिक विकसित करने के लिए प्राणपण से सचेष्ट हो गया है। लेकिन तांत्रिकी संयम और उपचार विधि की दृष्टि से इस समस्या का समाधान केवल उपचारात्मक ही नहीं, संयमात्मक भी है। स्वास्थ्य सम्बन्धी किसी समस्या के उठ खड़ा होने के पहले ही उसे उखाड़ फेंकना या धर दबोचना उपयुक्त होता है। भले ही इस ओर विभिन्न चिकित्सक समुदायों का ध्यान गया हो लेकिन अभी तक कोई सर्वमान्य हल नहीं निकल पाया है। तांत्रिक साधकों ने संयामात्मक और उपचारात्मक दोनों पहलुओं को समान महत्त्व देकर उसे नियंत्रण करने के लिए विभिन्न विधियों को जन्म सदियों पहले दिया है और आज भी मूलरूप से भारतीय जन जीवन में वह प्रचलित है। उन संयमात्मक और उपचारात्मक विधियों का आज की वैज्ञानिक उपलब्धियों के संदर्भ में पुनः उसके महत्व का मूल्यांकन और परीक्षण करना, उसकी उपलब्धियों से शारीरिक मानसिक और आवेगिक दृष्टि से पीड़ित विश्वमानव को परिचित कराकर फायदा पहुंचाना है।

आधुनिक मनोविज्ञान ने चिकित्सा के संयमात्मक पहलू को परामर्श के रूप में विशेष स्थान दिया है और चोटी के विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने इस पर काफी शोध कार्य भी किया है। अमेरिका, इंग्लैंड वगैरह पाश्चात्य देशों में परामर्श काफी जन प्रिय हो चुका है। लेकिन उसने अपने को साक्षात्कार तकनीकी और व्यावसायिक परामर्श के लिए विभिन्न मापक यंत्रों तक ही सीमित रख छोड़ा है। इस क्षेत्र में विशेष सक्रिय मनोविश्लेषण और गेस्टाल्ट समुदाय के मनोवैज्ञानिक दिखते हैं। फिर भी वर्तमान स्थिति को देखते हुए ऐसा लगता है कि ये दोनों दल अपने पूर्वाग्रहों के चलते दिग्भ्रमित हो गये हैं और इन्हें निकट भविष्य में चिकित्सा के संयमात्मक और उपचारात्मक दोनों में से किसी पर भी विशेष सफलता नहीं मिलने जा रही है।

किसी राष्ट्र के विकास का मूलस्रोत वहां का नागरिक होता है। संयम और उपचार की प्राकृतिक मना, रसो, देहो, आध्यात्मिक विधि का उद्देश्य उस स्रोत को ही विकसित कर, उसे क्रियाशील और गत्यात्मक बनाना है। जब हम आधुनिक

जटिल समाज में क्रियाशील रहते हैं तो विभिन्न शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य-सम्बन्धी समस्याएं आयेंगी-ही। हमारे जीवन के किसी स्तर में समस्याएँ उठ खड़ी हो सकती हैं। तथा हमें निर्वल और निष्क्रिय बना सकती हैं। इसीलिए तांत्रिकी संयम और उपचार की विधि की उपादेयता सभी जाति सम्प्रदाय, उम्र और लिंग के लोगों के लिए समान है। इसका उद्‌देश्य विश्वमानव को शारीरिक मानसिक और प्राणिक दृष्टि से रचनात्मक क्रियाशील बनाना है। यही व्यक्तिगत समस्याओं का समाधान है। यही भविष्य की समस्याओं से छुटकारा और वर्तमान की समस्याओं से निवृत्ति दिलाने और सर्वोत्तम स्वास्थ्य-लाभ की विधि है।

तांत्रिकी संयम और अन्य चिकित्सा पद्धति

तांत्रिकी संयम और उपचार एक सरल और सुलभ विधि है जिसका प्रचार-प्रसार तांत्रिक साधकों ने हजारों वर्ष पूर्व ही किया था। यह विधि साधकों के वर्षों प्रकृति की गोद में स्वयं को प्रयोगवस्तु बना कर खोज और आविष्कार का प्रतिफल है जिसकी वैज्ञानिकता की पुष्टि आज का आधुनिक विज्ञान और मनोविज्ञान करता जा रहा है। इस विधि के अनुसार सारी शारीरिक और मानसिक बीमारियों की जड़ प्राणिक आवेग-सम्वेग निष्क्रियता और अप्राकृतिक आहार-विहार है। आज की बढ़ती आबादी से प्राकृतिक आहार-विहार तथा आधुनिक सभ्यता का अत्यधिक प्रतियोगिता और प्रतिस्पर्धा की देन प्राणिक आवेग-सम्वेग की अस्थिरता और मानसिक असंतुलन हैं। इन दोनों ने हमें शारीरिक और मानसिक दृष्टि से रोगी बना दिया है। आधुनिक वैज्ञानिक आविष्कारों और खोजों ने हमारे सुख-सुविधा की वस्तुओं की उपलब्धि जिस मात्रा में कराई है, उसी मात्रा में हम प्राकृतिक आहार-विहार से दूर हो निष्क्रिय एवं प्राणिक आवेग-सम्वेगों के शिकार होते जा रहे हैं। वास्तव में पहले लोग रोग से मरते थे और आज रोगी बनकर जीते हैं। मिलावट और काला बाजारी करने वाले यमदूत की औलाद की तरह एक तरफ प्राकृतिक आहार-विहार को असम्भव करते जा रहे हैं तो दूसरी ओर ईंट और कंकरीट की आज की सभ्यता आलीशान भवनों को प्राकृतिक अमराई की लाश पर खड़ाकर बनावटी साज-सज्जा के पीछे हमें पागल बना कर मानसिक दृष्टि से अस्थिर और असंतुलित करती जा रही है।

तांत्रिकी संयम और उपचार विधि ने आधुनिकता को शैतान की खुराफात बताकर वैरागी और भिखारी बनाने की राय देता है, न प्राकृतिक रहन-सहन, आहार-विहार को आत्मघाती कूड़ा- करकट बताकर आज के हिप्पीवाद की वकालत करता है। वास्तव में आधुनिकता से उदासीन होना और पौराणिकता से पूर्ण रूपेण चिपका रहना, दोनों हमारे शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के लिए अभिशाप हैं। न आधुनिकता पूर्ण शैतानी खुराफात है और न पौराणिकता सम्पूर्ण रूप से आदर्श। दोनों में कुछ-न-कुछ अनुकरणीय तत्त्व हैं और कुछ उपेक्षित एवं हमारे शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के लिए घातक। हमारे प्राणिक आवेग-सम्वेग शरीर और मन के माध्यम से ही व्यक्त होते हैं और प्राकृतिक आहार-विहार से संयमित। शारीरिक अनुशासन मानसिक नियंत्रण हममें लाता है और मानसिक

अनुशासन से शारीरिक नियंत्रण होता है। अगर इसके साथ युक्तायुक्त आहार-विहार को सम्मिलित कर दिया जाये तो हम संयमित हो रोग को पास न फटकने दें या रोगी होने पर रोग को अपने से दूर मार भगायें। यह आज तक की सारी मान्यताप्राप्त विधियों से भिन्न, तांत्रिक साधना विज्ञान के सिद्धांत पर आधारित विधि है तथा अपने व्यापक प्रभाव के कारण अन्य उपचारात्मक विधियों में विशिष्ट स्थान रखती है।

जब हम किसी रोगी व्यक्ति के व्यक्तित्व का विश्लेषण करने बैठते हैं तो हमारे समक्ष उसका शरीर, मन, प्राण (आवेग-सम्वेग) और वाह्य अभिव्यक्ति आ जाती है। विभिन्न चिकित्सा सम्प्रदाय इनमें से किसी एक या दो का आश्रय ले उसके लक्षणों के आधार पर अपनी चिकित्सा विधि का ताना-बाना बुनते और परिचालित करते हैं। प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति नैसर्गिक आहार और उपवास के द्वारा शारीरिक मलशुद्धि कराकर रोग दूर करने का प्रयास करता है। यह एक उत्तम विधि है। लेकिन इसने सम्प्रदायिकता का रूप लेकर अपने अन्दर पूर्वाग्रह पाल रखा है, जिससे आधुनिक चिकित्सा की उपलब्धियों को अनर्गल प्रलाप और व्यर्थ की बकवास के सिवा अधिक नहीं मानता। यह विधि शारीरिक मल-निष्कासन के चक्कर में मानसिक नियंत्रण सम्बन्धी बातों की उपेक्षा पग-पग पर कर डालता है। प्राकृतिक चिकित्सक इस बात को बिल्कुल भूल जाते हैं कि रोगी को चिकित्सालय के नियंत्रित वातावरण से निकलने के बाद पुनः उसे पूर्व वातावरण में अभियोजित होने के लिए किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा। साथ-ही-साथ आज की महंगाई में फलाहार, रसाहार, दुग्धाहार आदि जन साधारण के लिए उपलब्ध कराना, फ्रांस की महारानी द्वारा अपनी दुर्भिक्ष से पीड़ित जनता को केक खाने की राय देने की उक्ति चरितार्थ करना है। प्राकृतिक चिकित्सालय के नियंत्रित आहार-विहार के चलते रोगी को निश्चय ही स्वास्थ्य लाभ होता नजर आता है लेकिन महीनों आश्रमवास और मानसिक-प्राणिक प्रशिक्षण न होने के कारण वाहर के उन्मुक्त वातावरण में आते ही रोगी भूखे भेड़िए की तरह, वे सारे कार्यक्रम और तीव्र गति से करने लगते हैं जिसके चलते बीमार होकर उन्हें प्राकृतिक चिकित्सालय जाना पड़ा था। कुछ चिकित्सालयों के अव्यवहारिक वातावरण और अधिक खर्च के कारण बींच में ही रोगी भाग खड़े होते हैं। तात्पर्य यह है कि साप्रदायिक दल-दल में फंसी आज की प्राकृतिक चिकित्सा की उपलब्धि को भी जोड़-घटाव करने के बाद उपलब्धि के रूप में शून्य की प्राप्ति होती है। कभी-कभी तो प्राकृतिक और अप्राकृतिक आहार के चक्कर में रोगी के अन्दर संदेह का भूत इस प्रकार सवार रहता है कि थोड़े ही दिनों में वह सारे परिवार को नाकोंदम करने के साथ-साथ स्वयं कई मानसिक बीमारियों का शिकार वन जाता है।

आधुनिक मनोविज्ञान की उपलब्धियाँ चिकित्सा क्षेत्र में अद्वितीय हैं और जब इसने अपने मानसोपचार पहलू के साथ चिकित्सा में बड़ी धूमधाम से प्रवेश किया तो इससे विश्व को बड़ी आशा बंधी। लेकिन इसने भी अपने को विशिष्ट दल

में बांध कर .विभिन्न प्रकार के पूर्वाग्रह पाल लिए। आवेग-संवेग के चक्रव्यूह आधुनिक मानसोपचारशास्त्री मानवीय रोगों को फतह करने के लिए चिकित्सा चक्रव्यूह में घुस तो गया लेकिन अभिमन्यु की तरह आने का रास्ता मालूम होने के कारण बीच में ही फँसा रह गया। यही कारण है कि आधुनिक मान अस्पतालों से अच्छा होकर निकले रोगी को बार-बार अस्पतालों के चक्कर मा पड़ते हैं या अस्पताल में ही स्थायी बसेरा कर लेना पड़ता है। मानसोपचार शा की सबसे बड़ी उपलब्धि है शारीरिक, मानसिक रोगों के कारण के रूप में प्राणि आवेग-संवेग की खोज। लेकिन मन और आवेग-संवेग को एक स्तर पर ही खड़ा करना और मन एवं प्राण में कोई अन्तर न मानना एक भयंकर भूल मनोविज्ञान के अनुसार हमारी चेतना के तीन स्तर हैं अवचेतना, चेत अन्तश्चेतना जिसे भारतीय साधकों ने क्रमशः प्राण, मन और आत्मा कहा आवेग-संवेग आदि प्राण के गुण हैं, जो शरीर के अणु-अणु में व्याप्त हैं अ मन उसका स्विचबोर्ड है। हमारी संगठनात्मकता सहयोगात्मकता और समन्वयात्मक की क्षमता आत्मिक गुण है, जो मन और प्राण दोनों का नियंत्रण करता इसलिए बिना आत्मिक विकास किये मानसिक रोगियों को स्थायी रूप से रोगमु नहीं किया जा सकता। इसकी सीधी और सरल बात की उपेक्षा मानसोप शास्त्र में इसलिए हो जाती है कि वह मानसिक रोगियों के अध्ययन से ही उस उपचार की सामग्री को ढूंढ़ना चाहता है और इसी कारण से यह उपचारात्म पहलू अधूरा रह गया है। मनोचिकित्सा के कोर्स के अन्तिम दिन एक छात्र प्रोफेसर से पूछा–"सर! आपने हमें असामान्य व्यक्तियों और उनके व्यवहारों सम्बन्ध में बड़े विस्तार से बतलाया है लेकिन सामान्य व्यक्ति के बा में . . . . ." प्रोफेसर साहब छात्र के इस प्रश्न से थोड़ा सकते में आ गये अ अपनी पेशानी पर बल देते हुए तपाक से बोले–"अगर कोई सामान्य व्यक्ति मि तो हमें तुरन्त उसका इलाज करना चाहिए।"

आधुनिक मनोविज्ञान की स्थिति को यह चुटकला स्पष्टतः व्यक्त करता हमें आवेग-संवेग आदि प्राणिक वृत्तियों के उपद्रवों से उत्पन्न रोगों की चिकि के लिए शारीरिक अनुशासन और मानसिक नियंत्रण द्वारा आत्मिक (आध्यात्मि विकास करना होगा। रोगों का सफल निदान और बात है और उपचार औ अगर निदान को ही उपचार मान लिया जाये, जैसा कि मानसोपचार में होता तो रोगी अस्पताल से निकलते या थोड़े दिनों के मुक्त वातावरण में रहने के बा पुनः बीमार पड़ जाता है तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। सांवेगिक उपद्रव रोगी को घरेलू वातावरण चाहिए, अस्पताल नहीं। उसे एक मित्र औ शुभ-चिन्तक, चाहिए डॉक्टर नहीं। उसके मानसिक शिक्षण-प्रशिक्षण द्वारा विभि सुषुप्त शक्तियों को जागृत कर, स्वतः रोग निवारण क्षमता का भार स्व चिकित्सक को लेना चाहिए। चिकित्सा की मानसोपचार विधि भी प्राकृतिक उपचा विधि की तरह ही अधिक समय लगाने वाली और खर्चीली विधि है जो आ लोगों की पहुँच से बाहर है। इसी प्रकार आजकल 'हेल्थ क्लबों' की भरमा

बड़े-बड़े शहरों में दिखाई पड़ती है जिसमें योगासनों से लेकर साइकिल चलाने के माध्यम से उपचार किया जाता है। ये क्लब आधुनिक साज-सज्जा से पूर्ण नव-पूंजीपति वर्ग को अवश्य आकर्षित करते हैं लेकिन मानसिक प्रशिक्षण के लिए अपनी कोई जीवनसंहिता प्रस्तुत न कर सकने के कारण इनकी हालत भी उपर्युक्त उपचार-संस्थानों की तरह ही है। 'आधा-तीतर, आधा-बटेर' की उक्ति चरितार्थ करते हुए कोई उपचार संस्थान थोड़े दिनों के लिए भले ही मजमा इकट्ठा कर ले लेकिन स्थायी रूप से वह टिक नहीं सकता। उपचार की एक बहुत बड़ी विशेषता यह है कि वह सरल, सुगम और सुलभ हो लेकिन हेल्थ-क्लबों की सुविधाएँ कुछ अंशों में उपयोगी होते हुए भी औसत आय के व्यक्तियों के लिए उपलब्ध नहीं हो सकतीं। ये पूर्णरूपेण व्यवसायिक संस्थान हैं फिर भी योग को बलात् उसमें घसीटते हैं। योग केवल आसन नहीं है।

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान और दवाओं के सम्बन्ध में भी हमें थोड़ी जानकारी प्राप्त कर लेनी आवश्यक है कि वे अमृत हैं या विष। क्योंकि हर छोटे-बड़े शहर में दवाओं की दुकानों की भरमार हो गई है और बिना सोचे-समझे हम विभिन्न दवाओं को उदरस्थ करते जा रहे हैं। हम उससे प्राचीन प्रसिद्ध वैज्ञानिक 'पारा सोलस' के कथन को भुला बैठे हैं कि अगर कोई रसायनिक दवा उचित मात्रा में न ली जाये तो वह विष का काम करती है। वास्तव में बीमारी को जान लेने के बाद ही दवाओं की उपयोगिता सामने आती है। व्यक्ति को केवल हाड़-मांस, रक्त, मज्जा का पुतला मानकर अगर आधुनिक चिकित्सा लक्षण को ही रोग समझ बैठता और लक्षणों को मिटाने के चक्कर में रसायनिक दवाओं से पूरा पेट भर देता है तो कोई आश्चर्य नहीं। ऐसी स्थिति में किसी एक रोग के लक्षण दबकर अन्य रोगों के लक्षणों का सृजन करते हैं और हम रोगी बनकर जीने के लिए बाध्य होते हैं तो आश्चर्य नहीं। हमारा सामान्य स्वास्थ्य किसी प्रकार का घाव होने या चोट लग जाने से बैक्टीरिया, वायरस, या फंगस आदि सूक्ष्म जीवों का शरीर में प्रवेश हो जाता है। किसी विशिष्ट कारण से हमारे शरीर की कोशिकाओं के बदल जाने से असामान्य स्थिति हो जाती है। तब हममें रोगों के विशिष्ट लक्षण प्रकट होते हैं और रासायनिक दवाएं हमारे शरीर की उस असामान्य स्थिति को सामान्य बनाकर हमारी स्वत-रोग-निवारण-क्षमता की वृद्धि कराती हैं। डॉ. शिवनन्दन प्रसाद सिन्हा प्राध्यापक पटना मेडिकल कॉलेज के शब्दों में किसी दवा की मात्रा, रोगी की उम्र, शारीरिक स्थिति, लिंग, देश, जाति और वातावरण आदि पर विष और अमृत होना निर्भर करता है। विभिन्न दवाओं का उत्पादन कम्पनियां भिन्न-भिन्न नामों से करती हैं तथा हर कम्पनी अपनी दवाओं का गुण, वस्तु बढ़ा-चढ़ा करके विभिन्न साधनों और विज्ञापनों द्वारा उसे प्रभावशाली और सुरक्षित होने का प्रसार-प्रचार करती है। जिससे चिकित्सक के साथ-ही-साथ आम जनता भी भ्रमित हो उसे धड़ल्ले से प्रयोग करने लगती है। लेकिन अन्त में जब तक उन दवाओं के कुप्रभाव का पता चलता है तब तक हजारों लोग उसके कुपरिणामों के भुक्तभोगी हो चुके होते हैं। लक्षणों को ही रोग

मान बैठने और उसे दूर करने की धुन में दवाओं का अंधाधुंध प्रयोग करने यही नतीजा होता है।

1929 में एलेक्जेन्डर फलेमिंगको द्वारा पेनिसिलीन के अविष्कार निमोनिया, सिफलिस और पुरानी असाध्य बीमारियों को दूर करने में जादूई अ डाला। इससे लाखों लोगों की जान बचाई जा सकी। इसके लिए उन्हें नो पुरस्कार भी मिला पर इसके कुपरिणाम भी कुछ दिनों बाद भयंकर रूप से सा आये। इसका अत्यधिक प्रयोग होने से यह दवा भी कम उपयोगी सिद्ध होने और इसके चलते 'स्ट्रैप्टोमाइसीन' का अविष्कार हुआ। एक तरफ राज्यक्ष्मा रोगों को इससे दूर किया जाने लगा किन्तु दूसरी ओर इसके अत्यधिक प्र से सिर में चक्कर और बहरापन के शिकार भी लोग होने लगे। इसी प्र 'क्लोरोमाइसीटीन' से रक्त बनाने के अवयवों पर बुरा पभाव पड़ता है और ह शरीर की स्वतः रोग-निवारण-क्षमता क्षीण होती है और रक्ताल्पता आती टेट्रासाईक्लीन वच्चों के विकास में बाधा पहुंचाती है और इससे गर्भवती स्त्री गर्भस्य शिशु पर बड़ा बुरा प्रभाव पड़ता है, दांत खराब हो जाते हैं, आंत के स्वास्थ्य-वर्धक कीटाणु मर जाते हैं और आवश्यक तत्त्वों की कमी पड़ ज है। इस प्रकार 'मर्ज बढ़ता गया ज्यों-ज्यों दवा की' की उक्ति चरितार्थ होती रही है। थोड़े दर्द में 'एनासिन', 'एस्प्रो', 'एनालजिन' का प्रयोग हम धड़ल्ले करते हैं लेकिन ऐस्प्रीन की एक गोली पेट में ऐसा घाव पैदा कर देती है जिससे 60 से. मी. खून बह जाता है। प्रायः पेट में फोड़ा होने का कारण दवाएं ही हैं। इन दवाओं से रक्ताल्पता होती है तथा शारीरिक-रोग-निरोधक क्ष की कमी भी तेजी से आती है। 'पेरासिटामोल' नामक दर्द की दवा मूत्राशय गुर्दों में खराबी पैदा करती है। 'केफिन' और 'फेनाजोन' भी इसी श्रेणी दवायें हैं।

आज हम टानिक और विटामिन के पीछे पागल हो गये हैं लेकिन हमें नहीं कि विटामिन ए अधिक लेने से हड्डी में सूजन आती है और जिगर यकृत और तिल्ली बढ़ जाती है। इसी प्रकार विटामिनों के अधिक प्रयोग से के अन्य अंगों में चूना जम जाता है। गुर्दों में पथरी की बीमारी होती 'लारजेक्टिल' यकृत खराव करती है, जबकि मस्तिष्क को शान्त करती है। लाने वाली दवाओं का अत्यधिक व्यवहार भी मस्तिष्क पर कुप्रभाव डालता है कभी-कभी इससे मृत्यु भी हो जाती है। इसी प्रकार लक्षणों को ही रोग मा आयुर्वेद, यूनानी आदि की अन्य प्रचलित दवाएं भी कितना अधिक मानव को, एक रोग को दूर कर दूसरे कई प्रकार के रोगों के दलदल में फंसाने काम किया है, इस ओर चिकित्सकों का अभी ध्यान गया ही नहीं है। अ दवाओं को राज्य प्रश्रय मिलने के कारण उसका प्रचार-प्रसार होने के साथ उसके कुप्रभावों की छानबीन भी होती रही है जिससे उपर्युक्त तथ्य स आये हैं।

हमारा उद्देश्य दवाओं के कुप्रभावों को स्पष्ट कर, उनकी उपादेयता

नकारना नहीं, बल्कि दवा खाने के उन्माद और पागलपन को दूर करना है।

जब तक दवा की जरूरत नहीं, उसे न खाना और रासायनिक दवाओं पर ही निर्भर न रहकर तांत्रिकी संयम और उपचार विधि द्वारा अपने स्वतः-रोग-निवारण क्षमता को विकसित करते रहना है। दवा वरदान और अमृत-स्वरूप हमें प्राप्त हुई है। उसका अत्यधिक सेवन करना, उसके पीछे पागल बना रहना एवं अन्य तरह से उसका दुरुप्रयोग करना, उसे अभिशाप और विष तुल्य बनाकर अपनी जान अपने हाथों लेना है। कोई भी प्रचलित चिकित्सा पद्धति कुछ विशिष्ट गुण रखते हुए भी पूर्ण निरापद नहीं। क्योंकि मनुष्य प्राण (आवेग-सम्वेग),मन (चेतना), आत्मा (रचनात्मक क्रियाशीलता और नैसर्गिकता) और शारीरिक एवं सामाजिक वंषानुक्रमिता का समुच्चय है। आधुनिक चिकित्सक समुदाय हमारे इन चारों स्तरों में किसी एक या दो स्तर को ध्यान में रखते हुए अपनी चिकित्सा का ताना-वाना बुनता है और पूर्वाग्रह के कारण एक दूसरे के उपयोगी तत्त्वों को अपनाने के बजाय आलोचना-प्रत्यालोचना में संलग्न रहता है। निष्क्रियता सारे रोगों की जड़ है इसलिए रोगी को सक्रिय बनाने की विशिष्ट जीवन-संहिता का अभ्यास कर, उसे रोगमुक्त करने जैसी सरल और स्पष्ट बातें भी इनकी समझ में नहीं आतीं।

तांत्रिकी संयम और उपचार विधि केवल रोगों के उपचार में ही दिलचस्पी नहीं रखता, बल्कि हम रोगी नहीं बनें, इसके लिए संयम की विशिष्ट विधियों की उपादेयता को कबूल करता है। यह आज की समस्त चिकित्सा विधियों की उपादेयता को कबूल करता है और किसी विशिष्ट विधि को सर्वोपरि और अद्वितीय न समझ, एक दूसरे की पूरक की दृष्टि से देखता है। संतुलित आहार-विहार द्वारा मलशुद्धि का प्राकृतिक चिकित्सा-सिद्धान्त, रासायनिक दवा द्वारा सूक्ष्म कीटाणु-नाश का आधुनिक चिकित्सा विज्ञान का सिद्धान्त और आवेग-संवेग की अस्थिरता से शारीरिक और मानसिक रोगों के प्रादुर्भाव का मानसोपचर शास्त्र का सिद्धान्त, तीनों एकांगी होते हुए भी रोगों के विभिन्न पक्षों पर विस्तृत प्रकाश डालते हैं और मानव जीवन में मलवृद्धि, आवेग-संवेग और सूक्ष्म कीटाणुओं की महत्वपूर्ण भूमिका को स्पष्ट करते हैं। इन तीनों सिद्धान्तों को ध्यान में रखते हुए ही कोई आदर्श चिकित्सा विधि हमारे लिए उपयोगी और महत्त्वपूर्ण हो सकती है। प्रमुख तीनों विधियों के उपचारात्मक पहलू की उपर्युक्त विवेचनाओं से यह बात स्पष्ट हो गई है कि किसी रोग निवारण के लिए उनसे मदद ली जा सकती है पर इन पर निर्भर नहीं रहा जा सकता। निर्भर रहने से लेने के देने पड़ सकते हैं। वास्तव में हमें रोग मुक्त करने की क्षमता तीनों में से किसी में नहीं है। ये केवल हमारे अन्दर की स्वतः रोग-निवारण-क्षमता को किसी विशिष्ट परिस्थिति में विकसित कर देते हैं, जिससे रोगों के लक्षण दूर हो जाते हैं और किसी विशिष्ट परिस्थिति में ये स्वतः रोग-निवारण क्षमता को अवरुद्ध कर हमारे विभिन्न रोगों को जन्म दे देते हैं या उसे असाध्य बना देते हैं। वस्तुतः हमारी स्वतः रोग निवारण क्षमता का विकास होता है हमारी रचनात्मक क्रियाशीलता से। यही कारण है कि निष्क्रिय और आलसी या स्वकेन्द्रित क्रियाशील व्यक्ति ही रोगियों में 95 प्रतिशत पाये जाते हैं। विभिन्न उपचार विधियों से हमें रोग मुक्त

होने में बहुत-थोड़ी मदद मिलती है। रोग दूर होता है हमारे स्वयं की रचनात्मक क्रियाशीलता से।

हमारा व्यक्तित्व है, शारीरिक प्राणिक, मानसिक और बौद्धिक संरचना क समन्वित रूप। शारीरिक स्तर पर हमारी स्वतः रोग-निवारण शक्ति या बल सुषुप्त शक्ति के रूप में विद्यमान रहती है। इसमें स्पंदन होता है अपनी किसी विशिष्ट इच्छा को धनात्मक लक्ष्य बनाने से ही। सुषुप्त शक्ति में स्पंदन होते ही मानसिक स्तर पर वह मनःशक्ति का रूप ले लेती है और हममें आत्म-विश्वास, उमंग और उत्साह का संचार हो जाता है। बौद्धिक स्तर पर वह आत्मनियंत्रण और यथार्थ चिन्तन का सृजन कर भावनाशक्ति के रूप में विकसित होती है जिससे हममें कल्पनाशीलता आत्मनिर्भरता और उद्यमशीलता आ जाती है। उपर्युक्त शक्तियों की अन्तिम परिणति जब क्रियाशक्ति में होती है तब एकाग्रता और रचनात्मक क्रियाशीलता आती है। इसी स्तर पर स्वतः रोग-निंवारण-क्षमता का पूर्ण विकास होता है। कभी-कभी असंतुलित आहार-विहार, अक्स्मात् दुर्घटना, अत्यधिक दुखद या सुखद संवाद आदि से इन शक्तियों का संतुलन बिगड़ जाता है, जिससे स्वतः रोग-निवारण-क्षमता में कमी आ जाती है। और हम शारीरिक, मानसिक और सांवेगिक दृष्टि से बीमार हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में सीमित रासायनिक दवाओं, समसंतुलित आहार-विहार और बिखरी शक्तियों को श्रम, मुद्रा, आसन, प्राणायाम और ध्यान द्वारा रोगों का निवारण और भविष्य में उसे पुनः न होने देने की विधि ही संयम और उपचार की प्राकृतिक मनो, रसो, देहो, आध्यात्मिक विधि है। वस्तुतः व्यक्ति के स्वतः रोगनिवारण शक्ति को शारीरिक, मानसिक, प्राणिक और बौद्धिक स्तर पर विकसित कर, विभिन्न रोगों को नियंत्रित, अनुशासित और संयमित करना इस विधि का मुख्य उद्देश्य है।

स्वतः रोग-निवारण

क्षमता और संयम

हमारे मस्तिष्क की तुलना विद्युत बैटरी से की जा सकती है। जो विद्युत वे न होने से वायुशून्य होता है या उसके कोष्ठक बैठ जाते हैं। हमारा मस्तिष्क भ उत्साह और उमंग के अभाव में तरंगित नहीं होता और थक जाता या बैठ जात है। ऐसी स्थिति में उसे पुनः शक्ति-सम्पन्न करने की आवश्यकता होती है जो या तो अधिक उमंग-सम्पन्न मन वाले व्यक्ति के सम्पर्क में आने से होता है य साधना के विभिन्न शारीरिक, मानसिक और प्राणिक अभ्यासों द्वारा। जिसे यह कला आती है वह हमेशा सफल होता है, स्वस्थ रहता है और अपने अनुयायिये या सगे-साथियों द्वारा आदर की दृष्टि से देखा जाता है। बड़े-बड़े डाक्टरों ने भ अपने विभिन्न प्रयोगों के आधार पर यह पाया है कि व्यक्ति उसी हालत में रोग

बनता है, जब उस का मन गिरा हुआ होता है या थका हुआ होता है। अतः जिसका मन उत्साह और उमंग से भरा हुआ होता है वह मानसिक और शारीरिक दृष्टि से शक्ति सम्पन्न बना रहता है। उसमें स्वतः-रोग-निवारण-क्षमता अधिक होती है। सभी तरह की चिकित्सा-विधियों या दवाओं का उद्देश्य कृत्रिम तरीके से स्वतः रोग-निवारण-क्षमता को बढ़ाने में मदद करना और मन के रसायन को गतिशील बनाना होता है जिससे वह शरीर के कोष्ठक और टिशू का निर्माण, विकास और मरम्मत ठीक-ठाक कर सके। हमारे शरीर रूपी मानव मशीन को क्रियाशील रखने के लिए स्वतः रोग-निवारण-क्षमता को बढ़ाना अति आवश्यक हो जाता है और वह आता है संयम और आत्मनियंत्रण से। आसन, मुद्रा, प्राणायाम और ध्यान से शारीरिक मानसिक और सांवेगिक (प्राणिक) संयम और नियंत्रण होता है। इससे मन की चंचलता जो विभिन्न तनाव और दवाव के चलते बढ़ जाती है, शान्त होकर समन्वित हो जाती है। मन की समन्वयता का प्रतिफल ही हमारा अच्छा स्वास्थ्य है और असंतुलन का परिणाम बीमारी।

विश्व के प्रमुख रसायन शास्त्रियों ने पाया है कि पृथ्वी पर के हजारों संश्लेषणात्मक पदार्थ हाइड्रोजन, ऑक्सीजन, नाइट्रोजन और कार्बन इन चार परमाणुओं से बने हैं और इनमें परमाणुओं के विद्युत की विभिन्नता ही विभिन्न पदार्थों में गुणात्मक या रासायनिक फर्क लाता है, जब कि किसी भी तत्त्व के परमाणु रासायनिक दृष्टि से एक ही होते हैं। एक प्रकार के परमाणुओं के विभिन्न समानुपातिक सम्मेलन ही अलग-अलग भौतिक पदार्थों के रूप में दीखते हैं। परमाणु ही प्रकृति का सांचा है। जिससे प्रकृति सोना और लोहा, पहाड़ और मिट्टी, पेड़ और झाड़ी, हाथी और चूहा बनाती है। अणु (मोलेक्यूल्स) स्पंदित होते हैं, तेज गति से स्पंदित होने वाले परमाणुओं से और परमाणु द्रुतगति से स्पंदित होने वाले विद्युती से। इस प्रकार सभी भौतिक पदार्थ ऊपर से स्थिर दीखते हुए भी अन्दर से निरंतर स्पंदनावस्था में हैं। प्रत्येक भौतिक पदार्थ के कण में तरल द्रव या शक्ति रहती है। वह परमाणुओं को एक दूसरे के वृत में अकल्पनीय गति में घुमाता है। द्रव एक प्रकार की शक्ति है, जिसका विश्लेषण नहीं किया जा सकता। इसे कोई कोई वैज्ञानिक विद्युतशक्ति और कोई स्पंदन कहते हैं। 32 से 38 हजार स्पन्दनात्मक ध्वनि को हमारा कान सुन सकता है। प्रति सेकण्ड 15 लाख ध्वनि स्पन्दन से गर्मी पैदा हो जाती है और 30 लाख ध्वनि स्पंदन प्रति सेकन्ड होने से वह गहरे नीले रंग की रोशनी में परिवर्तित हो जाती है। इससे अधिक ध्वनि स्पंदन अल्ट्रा वायलेट रेंज उत्पन्न होता है, जिसे हमारी आँखें देख नहीं सकती हैं और इससे भी अधिक ध्वनि स्पन्दनों से हमारे सोचने की शक्ति का सृजन होता है जो स्वतः रोग-निवारण-शक्ति को विकसित करने का एक मात्र स्रोत बनता है और शारीरिक और मानसिक दृष्टि से हमें स्वस्थ रखता है। इसीलिए ॐ ध्वनि के कैसेट की मधुर ध्वनि रोगियों के विश्राम के कमरे में बजाना आवश्यक है।

हमारे स्वतः रोग निवारण-क्षमता का सबसे बड़ा दुश्मन है वह, जो शारीरिक

और सामाजिक वंशानुक्रमिक रूप में हमें प्राप्त होता है। बुढ़ापा, बीमारी और मृत्यु का भय हमें विभिन्न योनियों के विकासात्मक क्रम में प्राप्त होता है। प्रकृति एक निर्दय श्रष्टा है। छोटे और कमजोर जानवर का शिकार बड़े और मजबूत जानवर बड़ी निर्दयता से करते हैं। इस प्रकार विभिन्न योनियों के क्रमिक विकास का इतिहास निर्दयता, अत्याचार और दर्दनाक हत्या का इतिहास है और इसीलिए हम शारीरिक वंशानुक्रमिक रूप में अपनी जान के लिए शंकित रहते हैं और बीमारी, बुढ़ापा और मृत्यु का भय पाल लेते हैं। मरने वालों में 5 प्रतिशत वास्तविक रूप में रोग से मरते हैं और 95 प्रतिशत को भय का भूत मार डालता है। क्योंकि भयाक्रांत स्थिति में हमारे शरीर की स्वतः रोग-निवारण क्षमता तेजी से नष्ट होती है और उस स्थिति में किसी प्रकार का बाह्य रासायनिक प्रयोग उपयोगी सिद्ध नहीं होता। ये भयरूपी भूत और अधिक शक्तिशाली बन जाते हैं, जब हम जाने-अनजाने स्वगत भावना और परगत भावना से ऋृणात्मक चिन्तन करते हैं। माता-पिता, स्वजन, इष्ट-मित्र या चिकित्सक आदि की रोगी के सम्बन्ध में ऋृणात्मक बातें परगत भावना और स्वतः रोगी बनने का बार-बार चिन्तन और मनन स्वगत भावना के क्षेत्र में आता है और इसका प्रभाव व शारीरिक अणुओं पर बड़ी तेजी से पड़कर उसके स्वतःरोग-निवारण क्षमता को नष्ट कर देता है। निष्क्रिय और आलसी व्यक्ति का खाली दिमाग भय रूपी शैतानों का निवास स्थल बना रहता है और किसी काम में व्यस्त न रहने का कारण विभिन्न प्रकार के रोगों को पाल लेता है। स्वस्थ रिटायर्ड ऑफिसर या कर्मचारी इसी कारण से नौकरी छोड़ने के कुछ दिनों के बाद ही विभिन्न रोगों का शिकार बनकर मर जाते हैं।

सामाजिक वंशानुक्रमिक रूप में हम दरिद्रता, वियोग और आलोचना के भय को अपने अन्दर पाल लेते हैं। दरिद्रता के भय से ग्रस्त होकर हम अत्यधिक भौतिक वस्तुओं को पाने, उसे संग्रह करने और सुरक्षित रखने के भय के मा रक्तचाप, हृदय रोग और उदरविकारों से पीड़ित हो जाते हैं, चाहे वह धन, मान मर्यादा सत्ता या ज्ञान की ही चाह क्यों न हो। इसी प्रकार अपने प्रियजनों क वियोग और विछोह का भय हमें विभिन्न सांवेगिक उपद्रवों का शिकार बना देत है। आलोचना के भय से हम सदा सशंकित और घबराये हुए रहते हैं और बहु ऐसी आदतों को अनजाने पाल लेते हैं, जो हमारी मानसिक विकृति का कारण बनती हैं। गंजी खोपड़ी होने का प्रमुख कारण आलोचना का भय हुआ करत है। इन भय रूपी भूतों को भी हम स्वगत भावना और परगत भावना के माध्यम से ही पालते हैं और अन्त में ये भूत विभिन्न रोगों के रूप धारण कर हमें मा डालते हैं। रचनात्मक क्रियाशीलता द्वारा ही अपनी क्रियाशक्ति को विकसित क हम इन भूतों को मार भगा सकते हैं। अन्यथा किसी भी प्रचलित चिकित्सा-शास् में इनकी दवा नहीं है। प्राकृतिक, मनो, रसो, देहो, आध्यात्मिक-विधि (तंत्रोपैथी का निर्माण इस कठिनाई को देखते हुए ही किया गया है। मानसोपचार चिकित्स स्नायु मनोरोगियों की बीमारियों का कारण दमित मनोग्रन्थियों को बताते हैं औ

नियंत्रित वातावरण में उसे चेतना में लाने के बाद अच्छा कर देते हैं। लेकिन उन्मुक्त वातावरण मिलते ही 'पुनः' 'मूषिको भवः' की उक्ति चरितार्थ होती है। वास्तव में हमारी असीमित इच्छा अधिकांश नैराश्य होकर दमित होगी ही। जाने-अनजाने विशिष्ट भूलों के चलते 'अपराध भावना' हमारे अन्दर आयेगी ही। स्वगत तथा परगत भावना द्वारा हममें ॠणात्मक और निराशावादी चिन्तन का प्रार्दुभाव होता रहेगा ही। अगर इस संसार में रहना है तो यह समस्या नहीं स्वाभाविकता है। इससे बचने का एक ही उपाय है प्राकृतिक, मनो, रसो, देहो, आध्यात्मिक-विधि द्वारा उसे संयमित और नियंत्रित कर, प्रभावहीन बना देना। जिसे मनोवैज्ञानिक मनोग्रंथियाँ कहते हैं, वह उपर्युक्त विभिन्न भयों के भूत के सिवा और कुछ नहीं है और जिसके चलते हम स्वतः रोग-निवारण-क्षमता को गंवाकर विभिन्न शारीरिक मानसिक और प्राणिक रोगों का शिकार बन जाते हैं तथा अल्पायु में ही रोगी बन किसी तरह जीते हैं या रोग से मर जाते हैं। शुभ भावना, स्वाध्याय भावना और सत्संग भावना इसके लिए उपयुक्त विधि है।

स्वतः रोग-निवारण-शक्ति ही हमारी जीवनी शक्ति या क्रिया शाक्ति है और इसमें रुकावट आते ही हमारा जीवन-यंत्र जब ठप प्रायः हो जाता है, तब इस हालत में हममें शारीरिक, प्राणिक, मानसिक रोग के लक्षण दीखने लगते हैं। इस शक्ति में बंधा समुचित शारीरिक मल-निष्कासन न होने के कारण भी होता है। आज की परिस्थिति में संतुलित आहार-विहार को कौन कहे, मिलावट करने वाले मौत के व्यापारी कब, कहाँ और किस मात्रा में हमारे खाद्यानों में अखाद्य पदार्थों को मिश्रित, कर हमें यमदूत के दरवाजे पर पहुँचाने का कार्य कर देते हैं, कोई ठीक नहीं। ऐसी स्थिति में शारीरिक शुद्धि के लिए समय से समुचित मात्रा में मल का निष्कासन होना अति आवश्यक हो जाता है। हमारी हड्डियों को छोड़कर यह शारीरिक इन्जन स्थिति स्थापक और स्पंज जैसे पदार्थ से बना है, जिसमें वायु के दबाव से रक्त और रस का संचालन और परिभ्रमण होता है। हमारे वक्षो-गह्वर के प्रमुख संस्थान हृदय और फेफड़ा पंप का काम करता है। हमारी श्वांस-प्रश्वास की क्रिया करीब चौदह पौंड प्रति वर्ग इंच वायुमण्डलीय भार के कारण अपने आप ही चलती रहती है। ऊँचे पहाड़ पर वायु-भार उपर्युक्त मात्रा से कम होने के कारण ही हमारे श्वास लेने में कठिनाई होने लगती है। स्वतः रोग-निवारण-क्षमता के विकास में ये दोनों शारीरिक क्रियाएं महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं और इनमें गड़बड़ी आने से ही हममें विभिन्न रोगों के लक्षण दीखने लगते हैं। विभिन्न रासायनिक दवाएं या अन्य उपचार शारीरिक कोष्टकों में स्पन्दन पैदा कर, विजातीय द्रव्य द्वारा की गई रुकावटों को दूर करता है और कृत्रिम उपायों से शरीर मे रक्त-संचार क्रिया की गति तीव्र करता या वायुभार की वृद्धि करता है। इस प्रकार हमारे अन्दर स्वतः-रोग-निवारण-क्षमता की वृद्धि हो जाती है और रोगों से हमें मुक्ति मिल जाती है। लेकिन फेफड़ा यकृत, वृक आदि के ऊपर इसका बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है और उनकी स्वाभाविक क्षमता कम हो जाती है। यही कारण है कि एक रोग के लक्षण दूर होते ही दूसरे रोग

के लक्षण पैदा होने लगते हैं। इसके लिए संतुलित आहार, अल्पाहार, रसाहार या निराहार विधियां उपयुक्त होती हैं।

हमारी स्वतः रोगनिवारण क्षमता का विकास प्रमुख रूप से श्रम, आसन, मुद्रा, खेल, प्राणायाम, ध्यान और संतुलित आहार, विहार पर निर्भर करता है। शारीरिक मल-विसर्जन या परिष्कार के लिये हमें उपर्युक्त विधियों का सहारा लेना पड़ता है। वास्तव में हमारे अन्दर शक्ति का विकास होता है गहरी निद्रा विश्राम और सुपाच्य आहार से जो श्रम, आसन, मुद्रा, खेल, प्राणायाम और ध्यान के बिना सम्भव नहीं। ये हैं हमारी क्रियाशक्ति को विकसित करने के तत्त्व जिससे हममें स्वतःनिरोग होने की शक्ति या हर रोग के निवारण की प्रतिरोधात्मक क्षमता आती है। यही हमारी गत्यात्मकता, संगठनात्मकता, सहयोगात्मकता और समन्वयात्मकता का स्रोत है। यही हमारी जीवनी-शक्ति है। चाहे हम जितना अधिक शारीरिक और मानसिक दृष्टि से बलवान क्यों न हों, बिना क्रियाशील बनें स्वतः रोग-निवारणशक्ति से वंचित रह जाते हैं। ऐसे बहुत धनी-मानी व्यक्ति हैं जो मांस, मछली, अण्डा आदि प्रोटिन बहुल्य आहार, टानिक और घी-दूध, मलाई खाते रहते हैं लेकिन श्रम, आसन, मुद्रा, खेल, प्राणायाम और ध्यान के अभ्यास के अभाव में उनका शरीर चर्बी से लद जाता है और मन 'खाली दिमाग शैतान का बसेरा' की उक्ति चरितार्थ करते हुए संविगिक अस्थिरता ला देता है। प्रायः ऐसे लोग ही अपनी बीमारी का रोना रोया करते हैं क्योंकि स्वतः रोग निवारण क्षमता की कमी उनमें होती है। अतः निरोग रहने के लिए रचनात्मक क्रियाशीलता के अभ्यास द्वारा आपकी क्षमता को बढ़ाकर अधिक-से-अधिक स्वतःरोग-निवारण-शक्ति को विकसित करना होगा। साथ-ही-साथ यह सदा ध्यान में रखना होगा कि शक्ति का संचय नहीं होता। इसलिए किसी अवसर या समय विशेष की प्रतीक्षा न कर क्रियाशील बने रहना होगा। हमेशा के लिए स्वतः रोग निवारण क्षमता को नहीं बढ़ाया जा सकता। स्वस्थ रहने के लिए जीवन भर क्रियाशील बने रहना होगा और रोगी को भी रोगमुक्त कराने के लिए भूतयज्ञ, नृत्य, ब्रह्मयज्ञ और पितृयज्ञ का अभ्यास कराना होगा। (इन यज्ञों पर चार खण्डों में पुस्तक लिखी जा चुकी है।) वस्तुतः प्राकृतिक, मनो, रसो, देहो, आध्यात्मिक विधि या तांत्रिकी संयम और उपचार चिकित्सालय का एक साधन-सम्पन्न आश्रम हो सकता है, आधुनिक अस्पताल, क्लिनिक या मानसिक अस्पताल नहीं।

स्वतः रोग-निवारण-शक्ति यथेष्ट मात्रा में सभी मनुष्यों के अन्दर पायी जाती है और जीवन में रचनात्मक क्रियाशीलता के अभ्यस्त बने रहने से, अगर कोई रोग विशेष का आक्रमण होता है, उसे परास्त कर सकते हैं और रोग को धक्केमार कर निकाल सकते हैं। बच्चे क्रियाशीलता की प्रतिमूर्त्ति होते हैं। इसीलिए वे पक्षियों की तरह चहकते-फुदकते, हिरण की तरह कुलांचें-भरते, चौकड़ी मारते और चेहरे पर आह्लाद की रश्मियां बिखेर, मन में आत्मविश्वास, उमंग और उत्साह की स्रोतस्विनी बहाते रहते हैं। किसी काम से ऊब जाना, थक जाना या उस काम का बोझ बन जाना, हमारे स्वतः रोग-निवारण-शक्ति की कमी का

द्योतक है। ऐसी स्थिति में ही हम सिर दर्द, कब्ज, रक्तचाप आदि बीमारियों को मोल लेते हैं। जब हम किसी सुरम्य नैसर्गिक वातावरण में होते हैं, चाहे वह गृहउद्यान की पुष्पवाटिका हों या झर-झर झरता हुआ किसी पहाड़ी प्रदेश का झरना या कल-कल करती हुई स्रोतस्विनी का किनारा हो या किसी वन-प्रदेश का चौकड़ी भरते हुए वन-पशुओं का झुंड, चाहे वह सूर्योदय और सूर्यास्त का आकाश और वसुन्धरा की नैसर्गिक छटा हो या अच्छी तरह प्राकृतिक दृश्यों और फूलों के गुलदस्ता से सजा हुआ कमरा या बालकों के साथ खेलना हो या पालतू जानवरों के साथ हंसना-बोलना या प्रियजनों के साथ कुछ क्षण प्यार भरी हंसी-ठिठोली हो या शत प्रतिशत खुशखबरी को पाना, आधे घंटे के लिए निमेष-वर्जन विधि द्वारा ध्यान साधना से हमारा मन अह्लादित हो कर एक अद्वितीय प्रकार के स्फुरण से भर जाता है और हमारा अंग-अंग थिरकने लगता है। यही है स्वतः रोग-निवारण-क्षमता की बाह्य अभिव्यक्ति। इसी अवस्था को विकसित कर हम शारीरिक और मानसिक दृष्टि से स्वस्थ रह सकते हैं। यही है सौंदर्य-साधना द्वारा अपने अन्दर सौंदर्यानुभूति को विकसित करना और स्वतःरोग-निवारण-शक्ति से अपने को भरना।

हमारा शरीर ऊपर से देखने में जितना आकर्षक, स्वस्थ और अह्लादित है, भीतर से उतना ही अधिक जटिल और क्रियाशील। हमारे अन्दर विभिन्न तन्त्र (क्रियाप्रणाली) स्वयमेव चौबीसों घंटे कार्य करते रहते हैं जिनमें अधिकांश का तो हमें पता भी नहीं होता। किसी विशिष्ट तन्त्र (क्रियाप्रणाली) का ज्ञान हमें तब होता है जब हम किसी विशेष रोग से पीड़ित हो जाते हैं। हमारी ये प्रमुख शारीरिक कार्य-प्रणालियां (तन्त्र) हैं—स्नायुतन्त्र, रक्त-संचार तन्त्र, पाचन-क्रियातन्त्र, त्वचातन्त्र, ग्रन्थि-स्राव-तन्त्र, स्वांस-क्रियातन्त्र, अस्थिपंजर-तन्त्र, आदि। इन शारीरिक कार्य प्रणालियों का अध्ययन स्वतः रोगनिवारण क्षमता को ध्यान में रखते हुए करेंगे और प्रत्येक कार्यप्रणाली की विशिष्ट असामान्य शारीरिक लक्षणों को संयम के लिए कुछ सुझावों को भी देखते जायेंगे। संयम उपर्युक्त कार्यप्रणालियों में गड़बड़ी न आने देने के लिए प्रतिरोधात्मक तरीका है जब कि उपचार विशिष्ट रोग का होता है। इसलिए ऋषियों ने कहा है 'सौ दवा न एक संयम।' आज की विभिन्न चिकित्सा-पद्धतियां रोग और रोगी के लक्षणों पर आधारित हैं इसीलिए रोग के लक्षणों को दूर करना रोग का दूर हो जाना माना जाता है। रोग और रोगी के लक्षणों पर आधारित दवाई हमें सर्वोत्तम स्वास्थ्य नहीं दे सकते। तांत्रिक-संयम और उपचार सर्वोत्तम स्वास्थ्य दिलाने के लिए उत्तम स्वास्थ्य के लक्षणों को शरीर में प्रकट कराने की विधि है जिससे रोग दूर हों ही साथ-ही-साथ हम सफल आर्कषक और अह्लादित व्यक्तित्व को भी प्राप्त कर लें।

स्वतः रोगनिवारण क्षमता और शारीरिक क्रियाएं

आज विश्व में विभिन्न प्रकार की उपचार विधियां प्रचलित हैं, जिनमें प्रमुख हैं औषधोपचार, मानसोपचार, शरीरोपचार और प्राकृतिक उपचार। हमारे संयम

उपचार की प्राकृतिक, मनो, रसो, देहो, आध्यात्मिक विधि को हम तंत्रोपचार विधि कह सकते हैं, जिसे भ्रम और अज्ञानतावश हम केवल जादू, टोना और झाड़-फूंक से अधिक और कुछ नहीं जानते। यहां तंत्रोपचार के आज के समाज में प्रचलित विभिन्न वैज्ञानिक उपचार विधियों के संदर्भ में हम इसकी वैज्ञानिकता का मूल्यांकन करेंगे। साथ-ही-साथ हम यह भी देखेंगे कि विभिन्न उपचार विधियां किस प्रकार आपस में भिन्न दीखते हुए भी एक दूसरे की पूरक हैं। उनका समन्वित रूप ही कुछ विशिष्टता लिए हुए किस प्रकार सर्वोपयोगी प्राकृतिक, मनो, रसो, देहो आध्यात्मिक विधि या तंत्रोपचार के समकक्ष आ खड़ी होती है। ये विधियां विभिन्न सम्प्रदाय के रूप में खड़ी होकर किस प्रकार मांनव जाति के लिए वरदान अभिशाप के बीच त्रिशंकु की तरह लटकी पड़ी हैं। चिकित्सा विधियों में औषधोपचार विधि के वैज्ञानिक खोजों और विभिन्न तकनीकों के आविष्कारों के प्रति समस्त मानव जाति ऋणी है। इसे आज की विभिन्न चिकित्सा विधियों का जनक कहा जाय तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। इस विधि ने पौराणिक उपचार विधियों को अपने संदर्भ में वैज्ञानिक मूल्यांकन करने का अवसर प्रदान किया जिसके अभाव में वह अत्यधिक उपयोगी होते हुए भी सदियों से उपेक्षित अवस्था में पड़ी रही। प्राकृतिक, मनो, रसो, देहो, आध्यात्मिक विधि को भी सदियों से इस अवस्था में गुजरना पड़ा है।

इस विधि का आधारभूत सिद्धान्त है कि व्याधि का जन्म शरीर, प्राण, मन और आत्मा, के बीच सामंजस्य न होने, मन अस्वस्थ रहने से प्राण और शरीर व्याधिग्रस्त हो जाते हैं और शरीर, प्राण अस्वस्थ रहने से मन भी रोगी बन जाता है। उपर्युक्त सभी स्थिति में आत्मिक अनुशासन और नियंत्रण न होना सम्पूर्ण व्यक्तित्व को रोगी बना देता है। इसलिए किसी व्याधि का उपचार करने के लिए मन, प्राण, शरीर और आत्मा की विषमता के कारणों का पता लगाना एवं उसमें समता लाने की व्यवस्था करना उपयुक्त होता है। वस्तुतः शरीर, प्राण, मन और आत्मा, चारों की स्वाभाविक अवस्था ही स्वस्थ व्यक्ति की पहचान है और जो स्वगत और परगत भावनाओं द्वारा निर्मित संस्कारों पर आश्रित होता है।

सर्वप्रथम तांत्रिक साधकों ने शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य तथा प्राणिक आवेगों सम्वेगों के नियंत्रण सम्बन्धी खोजों में ईसा से सदियों पूर्व दिलचस्पी लेना शुरू कर दिया था और अपने को स्वयं प्रयोग वस्तु बनाकर वर्षों निर्जन, सघन वन और गुफाओं में प्रयोग करते रहे थे। उसका तुलनात्मक अध्ययन पशु-व्यवहारों के साथ कर, अपने शिष्यों पर परिक्षण करने के बाद ही उन सिद्धान्तों की स्वयं प्रतिमूर्ति बन जन साधारण में प्रचार-प्रसार करते थे और उन सिद्धान्तों की उपयोगिता से आश्चर्यचकित हो उन्हें जन साधारण ऋषि, मुनि आदि कहकर श्रद्धान्वित होते थे। इसके साथ-ही-साथ कुछ साधक जंगली जड़ी-बूटियों और अन्य रासायनिक औषाधियों में भी दिलचस्पी रखते थे और उसी परम्परा में चरक, सुश्रुत आदि औषधि वैज्ञानिकों ने वैज्ञानिक विधि से कई प्रयोग कर प्लास्टिक सर्जरी आदि का भी आविष्कार कर डाला था। वे जाति, सम्प्रदाय, राजनीति आदि के पूर्वाग्रहों से पूर्ण मुक्त संन्यासी और विरागी थे। पाश्चात्य देशों में सर्वप्रथम

5 पांचवीं शताब्दी में 'हिपोक्रेटस' ने इस परम्परा को आगे बढ़ाया और पुजारियों द्वारा प्रचारित 'भूत-प्रेत ही रोगों के कारण हैं' का पर्दाफाश किया। एरिस्टोटल ने सर्वप्रथम जानवरों के शरीर का वैज्ञानिक परीक्षण किया। गैलेन और ऐरिफटोटल का व्यवच्छेद-शास्त्र (एनाटोमी) जानवरों के शव परीक्षण पर ही आधारित है। सर्व प्रथम पूर्ण विश्वास से इस सम्बन्ध में लिखी गई पुस्तक डॉ० लीगन की 'मानवीय शरीर' है, जिसमें मनुष्य का धैर्य, शारीरिक गठन, चेहरा और बाह्य अभिव्यक्ति के गुणों के आधार पर वर्गीकरण किया गया है। शारीरिक आदतों और विचारों द्वारा हमारे व्यक्तित्व का निर्माण होता है। हमारे चेहरे की रेखाएँ और मुंह की रंगत भी हमारे सोचने की आदतों के अनुसार बनते बिगड़ते हैं। हमारी मूर्खता या विद्वत्ता, आदतें और शारीरिक बनावट तथा शरीरिक और मानसिक रोग हमारी मनः-स्थिति पर निर्भर करते हैं।

रक्त हमारे तंतुओं को खुराक पहुँचाता है, जिस पर मांसपेशियां, अस्थिपंजर, चमड़ा और बाल निर्भर करते हैं इसी प्रकार विभिन्न शारीरिक ग्रन्थियों और पाचन-प्रणाली का हमारे शारीरिक संचालन में महत्त्वपूर्ण हाथ होता है। हमारी चमड़ी की ऊपरी सतह शारीरिक ग्रन्थियों, रक्त संचार क्रिया, पाचनक्रिया और स्नायु प्रणाली को प्रतिबिम्बित करती है। वस्तुतः हममें से प्रत्येक व्यक्ति अपने चेहरे पर अपनी शारीरिक और मानसिक क्रिया की प्रतिछाया ढोता है। हमारी चमड़ी दबाव, दर्द, सर्द, गर्म आदि के प्रति सम्वेदनशील होती है तो वायु स्पन्दन को कर्णयंत्री, स्वाद और गर्मी को जीभयंत्री, गंध को नासिकायंत्री, तथा रोशनी को चक्षुयंत्री क्रियाशील करती है। हमारा मस्तिष्क बाह्य जगत क्रिया, प्रतिक्रिया और प्रसारण अवस्थान का कार्य करता है। एक तरफ रक्त करीब 3 खरब लाल कोष्ठक और 5 खरब उजली कोशिकाओं से बना है जो शरीर के प्रत्येक तंतु को उपयोगी तत्त्व प्रदान कराता है और अनुपयोगी तत्त्व को तंतुओं से वापस लेकर पखाना, पेशाब और पसीना द्वारा बाहर निकाल देता है तो दूसरी ओर रक्त में कुछ गैसीय तत्त्व भी वर्तमान रहता है, जो किसी अंग विशेष में काट-कूट, टूट-फूट होने से क्षति पूर्ति करता है। इसके अलावा रक्त में शर्करा, प्रोटीन, एसिड, चर्बी तथा विभिन्न ग्रन्थियों का स्राव भी मिश्रित रहता है, जो हमारे शारीरिक स्वास्थ्य के लिए प्रमुख तत्त्व होता है।

हमारी पाचनक्रिया-तंत्र शरीर के अधिकांश भाग को घेरता है जो एक रासायनिक कारखाना के सदृश्य है। पाचन क्रिया और श्वास-प्रश्वास क्रिया हमारे शरीर को स्वस्थ रखने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। शारीरिक ग्रन्थियाँ विशेषकर यौन-ग्रन्थियाँ हमारे सभी प्रकार की मानसिक, शारीरिक और आध्यात्मिक क्रिया को संचालित करती हैं जिसका स्राव का प्रतिफल हमारा चरित्र होता है, चाहे हम वैज्ञानिक, दार्शनिक, साहित्यकार हों या बहुत बड़े अपराधी! हमारा मस्तिष्क और शारीरिक अंग के सुचारु रूप से संचालन के लिए रक्त में विशिष्ट तापमान की आवश्यकता होती है जिसमें कमी होते ही हम निम्न या उच्च रक्त चाप के शिकार हो जाते हैं। इस प्रकार रक्त संचार क्रिया पर ही हमारा स्वास्थ्य

विशेष प्रकार से निर्भर करता है। इसमें हमारे संतुलित आहार और विहार क विशेष हाथ होता है।

वास्तव में हमारा शरीर अत्यधिक कठोर और मज़बूत है जितना मजबूत औ कठोर किसी जानवर का शरीर नहीं हो सकता। यह अत्यधिक गर्मी और सर्द को भी बर्दाश्त कर सकता है और किसी मौसम विशेष की भयंकरता, थकान औ कठिनाइयों आदि को भी सह सकता है। हमारे शरीर में बर्दाश्त करने की क्षमत कोष्टकों के लचीलेपन के चलते आती है। यह कठिन परिस्थितियों में टूटने के बजाय बढ़ता है। इसमें रोगों को दूर भगाने, कठिन-से-कठिन काम को कर गुजरने और कठिनाइयों में उपयुक्त प्रतिक्रिया करने की अद्वितीय क्षमता होती है। इसी कारण मनुष्य पशु से श्रेष्ठ दीखता है। हमारा मस्तिष्क मेरुदण्डात्मक-मस्तिष्क द्रव से भरा रहता है जिसमें सारे शरीर के कोष्ठकों और ग्रन्थियों का स्राव भी सम्मिलित रहता है। इस प्रकार शरीर का प्रत्येक अंग मस्तिष्क में वर्तमान रहता है। यही कारण है कि रक्त में विशिष्ट कमी आने से, किसी ग्रन्थि-स्राव के विकृत होने से या किसी अंगविशेष से अधिक रक्त निकल जाने पर मस्तिष्क सुस्त और निष्क्रिय हो जाता है। भय, घृणा, दुश्मनी आदि मानसिक स्थिति में इसी कारण शरीर के अंगों में परिवर्तन आने लगता है, जिससे वास्तविक रोग उत्पन्न हो जाता है। खुशी में चेहरा चमकना और भय में उसका पीला पड़ जाना इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। क्योंकि सम्वेग हमारे गतिवाही नाड़ियों में संकोचन या प्रसारण शुरू कर देता है। आधुनिक युग की देन अत्यधिक प्रतियोगिता, जीवन की अस्थिरता और क्रमिक मानसिक उत्तेजना हमारे मन और शरीर को रोगी बना देती है। इसी कारण हमारी पाचन क्रिया और रक्त संचार क्रिया में गड़बड़ी आती है। अतः स्वस्थ रहने के लिए केवल एक मात्र उपाय है—सर्वांग, शारीरिक अभ्यास और मानसिक ध्यान-अभ्यास। कुछ मिनट का ही शारीरिक, मानसिक अभ्यास हमें स्वस्थ रहने में विशेष मदद पहुँचाता है। हमारे शरीर के प्रत्येक तत्त्व, शारीरिक द्रव और स्नायु प्रणाली के संयोग से अपने आप अभियोजित होते रहते हैं और ऐसा दीखता है कि शरीर का प्रत्येक भाग अपनी वर्तमान और भविष्य की आवश्यकताओं को समग्ररूप से जानता है और इसके लिए सम्मिलित रूप से क्रिया भी करता है। सर्वांग व्यायाम, प्राणायाम और ध्यान का आधे घंटे का प्रतिदिन का अभ्यास इस क्रिया में अत्यधिक मदद पहुँचाता है और स्वतः रोग-निवारण क्षमता को विकसित कर, शरीर मन को स्वस्थ रखता है।

भय और संयम

प्रत्येक क्षण हमारे शरीर की करोड़ों कोशिकाएं बिना जाने-समझे अज्ञात रूप से जन्म लेती रहती हैं। प्रकृति इस विधान के चलते हमारे शरीर में शान्त रूप में मगर तेजी से यह उत्पादन, संग्रह, मरम्मत, संचार और सम्पर्क भारवाहन, मलनिष्कासन तापमान-नियंत्रण आदि क्रियाएं करती रहती है। हमारे शरीर की कोशिका के तीन प्रमुख भाग होते हैं, जिससे उपर्युक्त क्रियाएं सम्पादित होती हैं। जिससे हमारे शरीर के ढांचे का स्वमेव नियंत्रण होता है। सिटोप्लाज्म जेली की

तरह द्रव पदार्थ है जिसमें सभी प्रमुख न्यूक्लियस तैरते रहते हैं। यह श्वास, प्रश्वास, शारीरिक वृद्धि, मलनिष्कासन आदि की क्रिया को नियंत्रित करता है। मेम्ब्रेन के माध्यम से ही कोशिकाओं में पोषण तत्त्व पहुंचता है और इसी के माध्यम से तंतुओं का मल निष्कासन होता है। हमारी प्रत्येक कोशिका के न्यूक्लियस में अनुमानतः क्रोमोजोम्स होते हैं जो प्रजनन का काम करते हैं और इनके अन्दर जेनिज होते हैं जिसे वंश सूत्र कहा जाता है। चौरासी लाख योनियों के भ्रमण और क्रमिक विकास क्रम में प्राप्त हमारी बाह्य शक्ल-सूरत, बुढ़ापा, बीमारी और मृत्यु का भय है। इन्हीं वंश सूत्रों के माध्यम से हमें शारीरिक वंशानुक्रम के रूप में वर्तमान जीवन प्राप्त हुआ है। क्रमिक विकास के क्रम में छोटे जानवर का बड़े जानवरों द्वारा और कमजोर जीव का मजबूत जीवों द्वारा बेरहमी के साथ शिकार किया जाता है। इस प्रकार जीवों के क्रमिक विकास का इतिहास बरबादी, जान-लेवा बुढ़ापा, बीमारी का भय और निर्मम एवं निर्दयता पूर्ण हत्या की कहानी है। ये भय विरासत रूप में हमें प्राप्त हुए हैं। इसीलिए बुढ़ापा, बीमारी और मृत्यु से हम अत्यधिक भयभीत रहते हैं। ये भय हमारे स्वतः रोग-निवारण-शक्ति को अत्यधिक क्षति पहुंचाते हैं और हमें विभिन्न रोगों का शिकार बना देते हैं। इन भयों में और अधिकता आ जाती है। अपने माता-पिता, मित्र आदि द्वारा बीमारी बुढ़ापा और मृत्यु की विभीषिका की बातों को प्रायः सुनने और परगत भावना और स्वगत भावना द्वारा उसे बार-बार चिन्तन करने की आदत डाल लेने से उपर्युक्त भय रूपी भूतों द्वारा हम अधिक सताये जाते हैं बनिस्बत वास्तविक रोगों के। इसलिए उसे दूर भगाने के लिए एक सिद्धांत है–सम्मोहन सिद्धांत। जिसकी तीन विधियाँ हैं–शुभ भावना विधि, स्वाध्याय विधि और सत्संग विधि। आज भी भय रूपी भूत को भगाने के लिए साधु-संन्यासी भस्मीभूत, जिसका अपभ्रंश 'भभूत हो गया है' बांटा करते हैं। रोगी को साधना विज्ञान में भय रूपी भूतों द्वारा अभिश्रापित माना गया है और उसे अभिमंत्रित जल पिलाकर रोग निवारण की परिपाटी आज भी चली आ रही है। वास्तव में सम्मोहन सिद्धान्त के ही ये विकृत रूप हैं जिसकी विषद व्याख्या उपयुक्त स्थान पर की जायेगी। भय की विभीषिका का सजीव चित्रण शास्त्रों ने निम्न कहानी के माध्यम से किया है।

नारद मुनि विश्वभ्रमण के बाद ब्रह्मा के दरबार में पहुंचते हैं और पूछने पर किसी विशिष्ट गांव के दो पापियों के उत्पातों की चर्चा करते हैं। ब्रह्माजी मृत्यु के देवता यमदूत को बुलाकर उन दोनों पापियों को मार डालने का आदेश देते हैं। यमदूत कालरा को इस आदेश को तत्काल पालन करने का निर्देश देते हैं। इधर कालरा उस गाँव में फैलता है और दो पापियों के साथ और सैकड़ों लोग मर जाते हैं। इस बात की फरियाद लेकर नारद जी ब्रह्मा के पास पहुंचते हैं जिस पर यमदूत कालरा को ब्रह्मा के समक्ष अभियुक्त के रूप में प्रस्तुत कर जवाब देने के लिए बाध्य करते हैं। भयभीत कालरा बतलाता है–"हुजूर, मैंने तो

उन दोनों पापियों को ही मारा है बाकी तो भय का भूत खड़ा कर स्वयं डर के मारे मर गये हैं।" इस कहानी से भी बुढ़ापा, बीमारी और मृत्यु के भय की भयंकरता स्पष्ट होती है।

हमें अपने शरीर की विलक्षण प्रति-रक्षात्मक व्यवस्था को देख कर एक बार आश्चर्यचकित रह जाना पड़ता है। एक बार इंग्लैंड में डॉ. रिचार्ड कवट और रसेल डीक्स के अस्पताल में एक वयस्क रोगी की मृत्यु हो गई, जो बुरी तरह दुर्घटना ग्रस्त हो गया था। उसकी पत्नी ने बतलाया कि जीवन में वे अधिक सक्रिय रहे थे और कभी बीमार भी नहीं पड़े थे। लेकिन उसकी शव परीक्षा के बाद डॉ. ने पाया कि उसके फेफड़ों में राजयक्ष्मा की बीमारी दूर होने के लक्षण विद्यामान थे। लीवर दोष के कारण रक्त का एक दूसरे नये रास्ते से प्रवाहित होने का मार्ग बना था। दोनों किडनी दूषित होते हुए भी अत्यधिक कोशिका मौजूद होने के कारण सुचारु रूप से चल रही थीं और उसका बड़ा हृदय और तंतुओं का कड़ापन इस बात का द्योतक था कि वह रक्त चाप और हृदय रोग से भी पीड़ित था। स्वतः रोग-निवारण-क्षमता एवं अपनी विलक्षण प्रतिरक्षात्मक व्यवस्था के चलते ही वह व्यक्ति इन जान लेवा रोगों से छुटकारा पाकर जीवन में अत्यधिक सक्रिय वना रहा और कभी बीमार नहीं पड़ा था। उसने जीवन की सक्रियता रूपी दवा द्वारा अपनी चिकित्सा स्वयं कर ली थी और इसमें मानव शरीर की विलक्षण प्रतिरोधात्मक क्षमता ने उसकी मदद की थी। उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर हम दावे के साथ कह सकते हैं कि 90 प्रतिशत रोगी संतुलित आहार-विहार, शारीरिक, प्राणिक, मानसिक अभ्यास, उपयुक्त आराम-विश्राम और जीवन में सक्रियता लाकर अच्छे हो सकते हैं। हमारे शरीर में प्रत्येक रोग निवारण की सामग्री सुरक्षित और संचित भरी पड़ी है केवल उपर्युक्त तरीके से स्वतः रोग-निवारण-क्षमता को विकसित कर, उसका सम्य पर समुचित उपयोग करने की कला हममें आनी चाहिए और वह कला है तांत्रिकी संयम और उपचार की विधि। घावों का मवाद हमारे शरीर के परमाणुओं के शव हैं, जो बाह्य सूक्ष्म जीवाणु से लड़ते-लड़ते शहीद हो जाते हैं। ये मरे हुए स्वेद अणुओं से प्रतिरक्षात्मक दीवार खड़ी कर वाह्य सूक्ष्म जीवाणुओं के आक्रमण का प्रतिरोध करते हैं। यह प्रतिरक्षात्मक दीवार आक्रामक सूक्ष्म जीवाणुओं और स्वतंत्र रक्त संचालन के बीच में होती है। पेट के फोड़ा की हालत में प्रत्येक रोगी मर जाता अगर यह दीवार स्वतः रोग-निवारण-क्षमता द्वारा खड़ी न की जाती। साधारण कटने-फटने की स्थिति में इसे हम प्रत्यक्ष देख सकते हैं। इस मवाद की दीवार के पीछे से ही घाव भरने की क्रिया प्रारम्भ होती है। रासायनिक दवाएं एक सीमा तक ही हमारी स्वतः रोग-निवारण-क्षमता को मदद पहुंचाती हैं। क्योंकि दवाओं के अधिक व्यवहार से इसकी स्वतंत्र क्रिया में अधिक बाधा पहुंचती है और यह शक्ति निर्वल होकर कई बीमारियों के प्रजनन की क्षमता विकसित कर लेती है। यही कारण है कि रासायनिक दवाओं के प्रयोग करने वाले कई नये-नये बीमारियों का शिकार होते रहते हैं।

स्नायु तंत्र और संयम

हमारे शरीर के अन्दर अपने आप तापमान नियंत्रण होता रहता है। हमारे आहार द्वारा उत्पादित शक्ति का 70 प्रतिशत मांस-पेशियां शरीर में सामान्य तापमान बनाये रखने के लिए उपभोग कर लेती हैं। पूरे एक क्वार्ट बर्फ को प्रतिघंटे गर्म करने की क्षमता हमारी मांसपेशियों में इसी कारण से होती है तथा अगर वे पूर्ण क्रियाशील रहती हैं तो इसमें ऊर्जा उत्पादन की और अधिक क्षमता बढ़ जाती है। थोड़ा हाथ-पैर हिलाकर काम करना या सर्वांग व्यायाम करना मांसपेशियों की धमनभठी में ऊर्जा की मात्रा सामान्य रूप से बढ़ा देती है। इसी प्रकार ठंडे जल से स्नान करने से या जाड़े की ऋतु में स्वतः इन मांसपेशियों में ऊर्जा-शक्ति बढ़ जाती है, जो स्वतः रोग निवारण क्षमता को विकसित करने में अत्यधिक मदद पहुंचाती है। ऐसी स्थिति में भूख का बढ़ जाना 'मल निष्कासन समय से पर्याप्त मात्रा में होना' मन का शान्त और प्रसन्न रहना और अंग-अंग में स्फुरण होना स्वाभाविक होता है। वैज्ञानिकों का मत है कि एक अंश शारीरिक तापमान के लिए 15 केलोरिज की आवश्यकता पड़ती है। हमारी चमड़ी की क्षमता इस बात पर निर्भर करती है कि उसके नीचे चर्बी का वितरण हुआ रहता है उसमें अत्यधिक सर्दी को बर्दाश्त करने की क्षमता होती है लेकिन दुबले-पतले लोगों में इस क्षमता का अभाव पाया जाता है। यही शारीरिक सुपुष्टता और गठीलेपन की निशानी है, मोटापा और थल-थलपन का नहीं। मोटे आदमी में तो सर्दी, गर्मी से डरने की अत्यधिक प्रवृत्ति पायी जाती है। हमारे शारीरिक रक्त संचार क्रिया और त्वचा व्यवस्था शारीरिक अंगों के तापमान को नियंत्रण करने के लिए ठीक मोटरगाड़ी के रेडियेटर की तरह काम करता है। वक्षगहर के संस्थानों से संचालित उष्ण रक्त त्वचा के माध्यम से प्रायः 50 से 80 गैलन प्रति घंटा ठंडा किया जाता है। जीवन में क्रियाशील न रहने, सर्वांग व्यायाम, प्राणायाम और ध्यान का नियमित रूप से अभ्यास न करने तथा 50 वर्ष से अधिक उम्र में प्रवेश करने के कारण इस क्रिया में व्यवधान पड़ता है और विभिन्न बीमारियों के शिकार हम हो जाया करते हैं। हमारे कटि-गहर, उदर-गहर, वक्षगहर और शिरगहर के स्नायु सुसुम्ना के जरिये मेरुदण्ड के उस स्थान पर मिलते हैं, जहां से वह मस्तिष्क में प्रवेश करता है तथा वहीं से शारीरिक तापमान का नियंत्रण होता है। अधिक संवेदनशील अंग की त्वचा से मस्तिष्क के बाह्य तापमान की सूचना मिलती है और मस्तिष्क उसके अनुसार आन्तरिक तापमान को समायोजित और नियंत्रित करता रहता है। ये सारी क्रियाएं स्वतःरोग निवारण क्षमता के संयत्र हैं, जिनको सुंचारु रूप से चलाने के लिए संयम या किसी रोग से क्षतिग्रस्त होने पर उपचार की सरल, सुगम और सुलभ विधि है तंत्रोपैथी।

सिर दर्द और संयम

सिर दर्द किसी तरह की किसी अंग में शारीरिक, मानसिक और प्रा गडबड़ी की प्रथम सूचना देता है और ऐसी स्थिति में अगर हम सतर्क नहीं तो विभिन्न रोगों के शिकार बन जाते हैं। व्यथा या दर्द हमारे रूप, रस, स्पर्श आदि इन्द्रिय ज्ञान के सदृश्य है। हमारे स्नायुओं का अंतिम द्वार व्यथा प्रति संवेदनशील होता है, जो सारे शरीर की त्वचा और इन्द्रियों में फैली है। इसलिए इन अंगों की संवेदना से हम व्यथा का अनुभव करते हैं। वि ने यह सावित कर दिया है कि दर्द में कमी-बेशी होना कोशिकाओं के परि पर नहीं, बल्कि चोट की गति पर निर्भर करता है। व्यथा एक ओर स्पीडोमी की तरह कोशिकाओं के व्याधिग्रस्त होने की गति की माप को बतलाता है दूसरी ओर थोड़ा व्याधि की गम्भीरता की ओर भी इशारा करता है। साथ-ही- यह इस बात की चेतावनी भी देता है कि अगर सतर्क होकर संयम और उप नहीं किया गया तो वह व्याधि तेजी से बढ़ती और फैलती जायेगी।

हमारा मस्तिष्क भूरा मेरुदण्डात्मक मस्तिष्क-द्रव जो खोपड़ी की हड्डियों सुरक्षित रहता है, विभिन्न स्नायुओं के दर्द को ले लेता है और रक्त सं व्यवस्था की धमनियों को प्रभावित कर देता है। इस प्रकार सिर दर्द मस्तिष्क दर्द नहीं, बल्कि सिर के रक्त वाहिनी धमनियों का दर्द है। क्रियाशीलता या वि काम में व्यस्त रहना, सिर, कमर और अन्य अंगों की व्यथा की व्याकुलता घवराहट को कम कर देता है और रात को जब हम निष्क्रिय और बेकार रहते हैं, तब वह असह्य बन जाता है। यही कारण है कि इन दर्दों में हमें खे या पढ़ने से बहुत आराम मिलता है। देश, काल और पात्र के अनुसार दर्द प्रतिक्रियाएं भी विभिन्न हुआ करती हैं। दर्द शान्त और खुश मिजाज आदमी भी चिड़चिड़ा और उदास बना देता है। उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर सिर स्वतंत्र रोग न होकर विभिन्न शारीरिक रोगों का लक्षण मात्र है। क्रियाशीलता अवस्था में जब शरीर और मन व्यस्त रहता है तो इसकी तीव्रता कम हो ज है या स्वयं दूर हो जाती है। यह साबित करता है कि क्रियाशीलता सिर दर्द अन्य व्यथाओं का शर्तिया उपचार है, क्योंकि इससे स्वतः रोग निवारण क्ष का विकास अत्यधिक हो जाता है। इस सिर दर्द की स्थिति में कभी एक गोली रासायनिक दवा का लेना बुरा नहीं लेकिन अधिक रासायनिक दवाओं सेवन, चाहे वह विटामिन की गोलियां ही क्यों न हों बहुत अधिक ह प्रतिरोधात्मक क्षमता को क्षति पहुंचाती है। किसी प्रकार की व्यथा की डोलोमीटर से की जाती है और माप के प्रत्येक अंश को डोल कहते हैं। ठंडा स्नान कराकर या व्यापक शौच कराकर अजपा-जाप कराने से दर्द रासायनिक दवा के ही ठीक हो जाता है और गहरी नींद आ जाती है।

सिर दर्द अत्यधिक मानसिक थकान, शारीरिक परिश्रम, सर्दी, जुकाम, बु आदि कारणों से हुआ करता है। सिर दर्द कभी-कभी किसी काम की जटि

और उसे न कर पाने की स्थिति में भी होता है। सिर दर्द स्वयं कोई रोग नहीं बल्कि अन्य बीमारियों का लक्षण है। अगर सिर दर्द के वास्तविक कारणों को पहचानने में सक्षम नहीं हैं तो फिर सर्व प्रथम रोगी को व्यापक शौच करा देना चाहिए और आराम से किसी आरामदेह बिस्तर पर लिटा देना चाहिए और उसे अद्यः उर्ध्व क्रमाक्रम विधि द्वारा स्नायुओं को शान्त कर देना चाहिए। अगर इससे भी नींद न आए और रोगी बेचैनी महसूस करे तो सिरोगहर प्राणायाम को तीन-वार लेटे-लेटे ही कर लेना चाहिए। यह दर्द को शान्त करने और अच्छी नींद लाने की अचूक विधि है। सिर मालिश भी करा लेना चाहिए। उपर्युक्त अजपा जाप, व्यापक शौच, अधः उर्ध्व क्रमाक्रम विधि, सिरोगहर प्राणायाम के सम्बन्ध में उपचार परिशिष्ट में विस्तार से बताया गया है। मुस्कुराकर या हँस कर अपने प्रियजनों से बातें करना या हंसी मजाक करना, सिर दर्द के रोगी को कभी नहीं भूलना चाहिए। ऐसा करने से रोगी अपने सिर दर्द का इलाज तो स्वयं कर ही लेता है साथ-ही-साथ अपने प्रियजनों को भी हँसा-खेला कर राहत दिलाता है जो रोग की गम्भीरता के कारण घबराए हुए रहते हैं। इस रोग में कालीमिर्च के साथ-साथ श्यामा तुलसी के पत्ते भी लेना उपयुक्त होगा।

बुखार एवं संयम

बुखार भी अपने आप में कोई रोग नहीं है, बल्कि कई रोगों का लक्षण है। हमें सर्दी लग जाय, पेट में किसी तरह की गड़वड़ी हो जाय, शारीरिक-मानसिक दृष्टि से हम थक जायं, शरीर में वाइरस का संक्रमण हो जाय आदि स्थितियों में बुखार का आ जाना स्वाभाविक है। लोग बुखार को ही रोग समझते हैं और उसकी तीव्रता को देखते हुए बुरी तरह घबरा जाते हैं और डॉक्टर के लिए दौड़ पड़ते हैं। किसी भी तरह का बुखार हो या उपर्युक्त कारणों में से कोई कारण हो, ९5% बुखार साधारण और सामान्य होता है। अतः बुखार की स्थिति में पूर्ण आराम, हलका खान-पान तथा श्यामा तुलसी, गोली मिर्च, सौंफ का काढ़ा, नमक और चीनी के साथ लेना आवश्यक होता है। सिरोगहर वक्षोगहर, और कटिगहर संकोचन प्राणायाम विधि का सुबह-शाम अभ्यास करना बुखार के लिए अति उत्तम उपचार है। तलवे की मालिश पीतल की कटोरी और सरसों के तेल के साथ करना भी अति लाभदायक होता है।

इसी प्रकार प्रायः हम विश्वास करते हैं कि अधिक बुखार बीमारी की भयंकरता का द्योतक है लेकिन यह गलत धारणा है। बुखार सिर्फ इस वात का निर्देश करता है कि अपने ठंडा करने की क्षमता से अधिक, शरीर तापमान को पैदा कर रहा है। हम जो खाना खाते हैं उसे मांसपेशियों द्वारा जलाया जाता है और उसकी ऊर्जा रक्त के माध्यम से सारे शरीर में व्याप्त हो जाती है। त्वचा के नीचे की चर्बी इस तापमान को संतुलित रखती है। हमारे शरीर का तापमान मस्तिष्क के हाईपैथेलमस द्वारा नियंत्रित होता है। असंतुलित आहार-विहार या किसी सूक्ष्म जीवाणुओं के आक्रमण की स्थिति में स्वतः रोग-निवारण क्षमता कुछ

देर के लिए कुंठित हो जाती है और तापमान नियंत्रण के संस्थान पूरी तरह क नहीं कर पाते। पसीना बनाने वाली ग्रन्थियां अपना काम बन्द कर देती हैं त्वचा गर्म और सूखी हो जाती है। इसी स्थिति में वह बुखार से पीड़ित हैं। बुखार थर्मामीटर से मापा जाता है। हमारे शरीर का सामान्य तापमान 97 से 98.5 के बीच होता है। बुखार की स्थिति में स्वतः रोग-निवारण-क्षमता विकास के लिए द्रव पदार्थ द्वारा रोगी के प्यास बुझाने और हलका सुपाच्य आ की आवश्यकता होती है। इस स्थिति में रोगी को पूर्ण उपवास करा देना रो के अन्दर अन्य बीमारियों को पैदाकर मार डालने के सदृश्य है। इसी प्र बुखार से पीड़ित रोगी को स्वच्छ खुली हवा की आवश्यकता होती है। इस उसकी प्रतिरक्षात्मक क्षमता की वृद्धि होती है। ऐसी स्थिति में रोगी के शयन-क को चारों ओर से बन्द कर देना और पैर से लेकर सिर तक कम्बल या र से ढक देना रोगी को मार डालने का उपक्रम करना है। बुखार की स्थिति शरीर के बढ़े तापमान से छुटकारा पाने के लिए रोगी छपपटाता रहता है औ स्वच्छ हवा न मिलने से वह काम और कठिन हो जाता है। बुखार में रोगी अपने श्वास-प्रश्वास पर ध्यान केन्द्रित कराकर उसे 100 तक गिनने के लि कहना चाहिए और साथ-ही-साथ तौलिया से गर्म ठंडा स्नान करा देना चाहि इससे बुखार धीरे-धीरे स्वयं बिना रासायनिक दवा के सेवन के ही उतर जा है और रोगी आराम से सो जाता है।

मानसिक क्रियाएं और संयम

हमारा मस्तिष्क विकसित सहस्रदल कमल के सदृश्य है जिसका नाल (ड स्वेनदस्नायु तंतुओं द्वारा बनता है। वैज्ञानिक इसे मस्तिष्क डंठल (Brain ste कहते हैं, जो पूर्ण रूप से खोपड़ी की हड्डियों के अन्दर होता है। इस मस्ति डंठल का ऊपरी भाग का कुछ हिस्सा मस्तिष्क में दबा रहता है और नि हिस्सा सुषुम्ना से सम्बन्धि होता है, जो मेरुदण्ड के माध्यम से मस्तिष्क और शरीर से सम्पर्क बनाये रहता है एवं विभिन्न अंगों को नियंत्रित करता है। इ सूक्ष्म तंतुओं द्वारा हमारे बाल और पैर के अंगूठे का भी सम्पर्क मस्तिष्क होता रहता है। मस्तिष्क ठोस तत्त्व का बना होता है, जो वजन में करीब के० जी० का होता है और मेरुदण्डात्मक-मस्तिष्क-द्रव (Cerebro spinalflue से गीला और लसोड़ बना रहता है। वह आकार में नारियल के सदृश्य है। यह तीन तह झिलियों (Membrane) से लिपटा होता है और उसके ऊ खोपड़ी की हड्डी होती है। माईक्रोस्कोपिक निरीक्षण से इसमें 1005 कोशि दीखती हैं और सभी मिलकर विकसित कमल दल की तरह दीखते हैं। तां साधकों ने इसीलिए मस्तिष्क को सहस्रदल-कमल कहा है। ज्ञान-अज्ञान, भला-बुरा देखने के अलावा हमारे शारीरिक क्रियाओं का संतुलन भी मस्तिष्क होता है और इसी कारण रक्त में शर्करा के थोड़े से भी असंतुलन से शारीरिक और मानसिक क्रियाओं में व्यतिक्रम हो जाता है। यह बाह्य संवाद

और आन्तरिक संवाद प्रसारण करने में आकाशवाणी के प्राप्ति और प्रसारण अवस्थान की तरह कार्य करता है। यह किसी शारीरिक और मानसिक क्लेश और झंझट की अग्रिम सूचना पा लेता है और स्वतः रोग निवारण शक्ति को सतर्क कर देता है। यह प्रायः स्वगत और परगत भावनाओं द्वारा संचित अवचेतना मन की आदतों और संस्कारों तथा अत्यधिक अलकोहल और रासायनिक दवाओं के प्रयोग से दिग्भ्रमित हो जाता है। ऐसी स्थिति में वह न स्वतः रोगनिवारण-शक्ति को समुचित आदेश समस्या समाधान के लिए दे पाता है और न उसे नियंत्रित ही कर पाता है। ऐसी स्थिति में ही हम आलसी और सुस्त बन जाते हैं। क्रियाशीलता के अभाव में हमारी प्रतिरक्षात्मक क्षमताओं का विकास तो रुक जाता है साथ-ही-साथ समयानुकूल समुचित मात्रा में उसका प्रयोग भी नहीं हो पाता। इसी के फलस्वरूप हम असफल, नैराश्य, दुश्चिंता आदि से ग्रसित हो जाते हैं और उदर विकार, सिर दर्द, रक्त-चाप, हृदय रोग आदि व्याधियों के शिकार हो जाते हैं। स्वस्थ रहने के लिए हमारे मस्तिष्क में एक हवाई जहाज के पाईलेट की तरह भयंकर बीमारियों के तूफान में भी शरीर रूपी जहाज को प्रभावपूर्ण ढंग से उचित मार्ग दिखाने की क्षमता होती है। उसका समुचित उपयोग हम आधा घंटा ध्यान के अभ्यास द्वारा अन्तर्मुखी बनकर ही कर सकते हैं और व्याधिमुक्त होकर स्वस्थ, सफल, आकर्षक और अह्लादित व्यक्तित्व को प्राप्त कर सकते हैं। हमारे मस्तिष्क के तीन प्रमुख कार्य होते हैं–इन्द्रियों द्वारा संवाद प्राप्त करना और तथ्यात्मक चिन्तन, विगत अनुभवों और भविष्य की योजना को संगठित रूप देना तथा विभिन्न व्यक्त और अव्यक्त क्रियाओं द्वारा अनुकूल फल की प्राप्ति करना।

हमें यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि हमारी शारीरिक, मानसिक क्रियाएं बिजली के सदृश्य हैं। हमारी स्नायु-प्रणाली (मस्तिष्क सुषुम्ना स्नायु) एक वेट सेल एलेक्ट्रिक बैट्री की तरह है, जो एक वोल्ट के दसवें हिस्से के बराबर बिजली पैदा करता है और जिससे एक टार्च का प्रकाश हो सकता है। हमारे शरीर में खाद्य पदार्थ से सोडियम और पोटैशियम नामक रासायनिक तत्त्व द्वारा शारीरिक ऊर्जा या शक्ति का निर्माण होता है, जो शारीरिक द्रव में सराबोर हुए स्नायु कोशिकाओं को गति प्रदान करता है। ये स्नायु कोशिकाएं ही मुख्य रूप से शारीरिक शक्ति वाहिनी हैं और अपनी प्रतिक्रिया, प्रत्येक आवेग केन्द्र सम्वेग को प्राप्त कर, शरीर विभिन्न इलेक्ट्रीकल सरकिट के माध्यम से भेजता है। इन सम्वादों पर हमारी चेतना कुछ तत्काल प्रतिक्रिया भेज देती है और कुछ को अवचेतना में ठेलकर बन्द कर देती है, जिससे अपने अस्तित्व पर किसी प्रकार का खतरा न आने पाये। मनोवैज्ञानिकों ने मानसिक उपचारात्मक विधियों द्वारा रोगी के बचपन की दमित इच्छाओं और घटनाओं को पुनः स्मरण कराकर इस बात की पुष्टि की है।

वैज्ञानिकों ने पता लगाया है कि हमारे जीवन का प्रत्येक अनुभव हमारे शरीर के विभिन्न प्रमुख इलेक्ट्रिकल सर्किट से होकर गुजरता है। तांत्रिक साधकों का षटचक्र और कुछ नहीं, विभिन्न प्रमुख इलेक्ट्रिकल सर्किट ही है। आधुनिक

वैज्ञानिक्र प्रमुख संवाद-वाहक केन्द्र को मानते हैं। सुषुम्ना शीर्षक और लघुमस्तिष्क श्वास-प्रश्वास क्रिया; रक्त संचार क्रिया; पाचन क्रिया आदि स्वगत या अनैच्छिक क्रियाओं को संचालित करता है। अपने भूरे मेरुदण्डात्मक मस्तिष्क द्रव से ढक वृहद मस्तिष्क, चेतना, स्मृति, तर्क आदि पूर्ण व्यक्तित्व को नियंत्रित और संचालित करता है। मानसिक बीमारी का अर्थ है मस्तिष्क की कोशिकाओं में कुछ गड़बड़ी का होना या शारीरिक विद्युत प्रवाह के विभिन्न सर्किटों का खराब हो जाना। अत्यधिक दुश्चिन्ता, अनियंत्रित, गुस्सा तथा अन्य अविवेकपूर्ण प्राणिक (आवेगिक-सम्वेगिक क्रियाओं के चलते स्नायु इलेक्ट्रिक सर्किट में गड़बड़ी आती है। जितना हम पढ़ते और भ्रमण करते हैं हमारी स्मृति का कोष उतना ही समृद्ध होता जाता है जितना अधिक शारीरिक, मानसिक अभ्यास हम करते हैं उतना ही अधिक हमारे शरीर के विभिन्न इलेक्ट्रिकल सर्किट के क्रियाशीलता की क्षमता बढ़ती जाती है यही तन्त्र साधना का सिद्धान्त है। यही संयम और उपचार की प्राकृतिक, मनो रसो, देहो, आध्यात्मिक विधि है। यही तंत्रोपैथी है।

मानसिक थकान के अस्तित्व को ही प्राकृतिक, मनो, रसो, देहो, आध्यात्मिक विधि तंत्रोपैथी (तांत्रिकी संयम और उपचार) मान्यता नहीं देता। क्योंकि हमारे मांसपेशियों की तरह मस्तिष्क में कोई चीज नहीं है जिससे थकने का प्रश्न उठता हो। मस्तिष्क की क्रियाएं पूर्ण रूप में विद्युत रासायनिक होती हैं। अगर कई घं लगातार काम करने से हमारा मस्तिष्क थकता हुआ दीखता है तो वह मस्तिष्क की थकान नहीं हो सकती है। वह आँख की मासंपेशियों की थकान हो सकती है या गर्दन और पीठ की मांसपेशियों की। हमारे मस्तिष्क में आंखों के कोशिकाओं से सम्बन्धित न्यूरोन होते हैं। कोशिकाओं को विद्युत को रासायनिक रूप में संवाद लेते और देते हैं। हमारी स्मृति इन्हीं विद्युत रासायनिक संवादों के मार्ग से सम्बंधित होती है। हम दुर्भाग्य से अपने मस्तिष्क की पूर्ण क्षमता के 1 से 12 प्रतिशत ही अपने दैनिक जीवन में प्रयोग कर पाते हैं, जबकि उससे क गुना कार्य-भार को वह सुचारु रूप से वहन कर सकता है।

बीसवीं सदी के महान तांत्रिक श्री आनन्दमूर्ति जी ने कहा है कि शारीरिक मानसिक और अध्यात्मिक स्तर पर मनुष्य में कई शक्तियां होती हैं। जिनमें रो निवारण और अध्यात्मिक विकास के लिए मानसिक शक्ति का अत्यधिक मह है। मानसिक शक्ति का प्रथम गुण है—मन सोचता है, नई चीजों की खोज कर है तथा विभिन्न क्षेत्रों में आविष्कार कर नई-नई चीजें देता है। मन का सोच हुए केन्द्रित होना ध्यान है। अतः मन को सोचते हुए केन्द्रित होने की क्रिया ए सीखने की क्रिया है। यह क्रिया रोग निवारण और विभिन्न रोगों के उपचार अलावा, शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक विकास के लिए, अगर इस इस्तेमाल वैज्ञानिक तरीके से किया जाय तो निश्चय है 95% सकरात्मक फल प्राप्ति हो सकती है। मन की इस शक्ति का अवैज्ञानिक प्रयोग ही अधिक शारीरिक, मानसिक बीमारियों को जन्म देता है। विशिष्ट रूप से रोगोपचार रोगियों को संवैधानिक तरीके से सोचने की क्रिया को तंत्रोपैथिक संस्थानों

वतलाना और अभ्यास कराना होगा, नहीं तो इस वैज्ञानिक युग में मानसिक शक्ति के इस महत्त्वपूर्ण गुण का दुरुप्रयोग होता रहेगा। ध्यान-केन्द्रीकारण के साथ सोचना भी सूक्ष्मतर विज्ञान है और उपचारक को रोग निवारण में पूर्ण रूप से इन पर निर्भर रहना होगा।

ध्यान की इस क्रिया को उपचारक सफलता पूर्वक रोग-निवारण के लिए तभी इस्तेमाल कर सकता है, जब उसे पूर्ण रूप से शारीरिक ग्रन्थियों, उपग्रन्थियों, उनके रस स्रावों के विभिन्न गुण, स्थिति तथा मस्तिष्क के विभिन्न कोष्ठक और उनकी क्रियाओं का ज्ञान हो। अतः डॉक्टर को ध्यान प्रक्रिया के इलाज करने के लिए शरीर-विज्ञान का ज्ञान आवश्यक है। वैज्ञानिक चिन्तन का अर्थ है विभिन्न शारीरिक ग्रन्थियों, उपग्रन्थियों और मस्तिष्क के विभिन्न कोष्ठकों के निश्चित स्थान, उनकी क्रियाएं, स्राव आदि को जान कर उस पर मन को केन्द्रित करना।

मानसिक शक्ति का दूसरा गुण है पुनः स्मरण करना(रिमेम्बर), याद करना और खोज करना। किसी चीज को याद करते वक्त मानसिक ग्रन्थियों के साथ उसका सहयोग करना और उस वस्तु से सम्बन्धित होना। पुनः स्मरण करने में मानसिक और शारीरिक प्रयत्न दोनों होना चाहिए। किसी-किसी स्थिति में अध्यात्मिक प्रयत्न भी होना चाहिए। स्मरण की विधि विभिन्न चक्रों के गुण उसके वास्तविक स्थान पर ही ध्यान केन्द्रित की उपग्रन्थियों के असमानुपातिक स्राव को रोकना होता है।

मानसिक शक्ति का तीसरा गुण है मानसिक ग्रन्थियों को वैज्ञानिक तरीके से कैसे शारीरिक और आध्यात्मिक क्रियाओं में रूपान्तरित, परिवर्तित और परिवर्द्धित कर लिया जाए। मानसिक शक्ति के इस वैज्ञानिक चिन्तन से मानसिक रोग निवारण में अधिक सहायता मिलेगी। मानसिक ग्रन्थियों के रूपान्तरण, परिवर्तन और परिधान की प्रक्रिया हर व्यक्ति के लिए एक जैसी नहीं होगी, बल्कि व्यक्तिगत विभिन्नता के साथ भिन्न-भिन्न तरीके होंगे। इसके लिए तंत्रोपैथी कॉलेजों में विशेष प्रकार के कोर्स निश्चित किए जाएंगे और जिसका नाम "साइकिक ट्रेनिंग" कोर्स होगा।

मानसिक शक्ति की चौथी विशेषता है शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक स्तर पर युक्तिपूर्वक विचार करने के लिए अधिक-से-अधिक क्षेत्र का उपलब्ध करना और उसकी ट्रेनिंग देकर मन को उपयुक्त करना। मस्तिष्क की इसी क्षमता का अधिकतम इस्तेमाल हमारी स्वतः रोग-निवारण-क्षमता के विकास के लिए आवश्यक होता है। संयम और उपचार की प्राकृतिक, मनो, रसो, देहो, आध्यात्मिक विधि इसमें सहयोग करती है। हमारी बुद्धि मापने से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है कि हम क्या सोचते हैं? हमारी सीखने की क्षमता और मस्तिष्क की क्रियाशीलता में जितना अधिक बाधक हमारा आलसपन और निष्क्रियता बनती है, उतनी अधिक बढ़ती उम्र नहीं। सीखना-पढ़ना हमारे मस्तिष्क के एलेक्ट्रिक सर्किट को स्पंदित करने की क्रिया से सम्बन्ध रखता है और 90 वर्ष की उम्र में भी यह क्रिया अबाध रूप से चलती रहती है। हमारी मानसिक शक्ति का विकास

उसके अधिक व्यवहार से विकसित होता है। हमारे मस्तिष्क की कोशिकाएं एक गाढ़े तत्त्व से घिरी रहती हैं, जिसे मेलिन कहते हैं तथा इनका विकास हमारी मानसिक शक्ति की क्षमताओं को बढ़ाने के लिए बहुत जरूरी होता है। छोटे बच्चों में मेलिन का अभाव होता है इसलिए अधिक दिनों तक मानसिक दृष्टि से वे असहाय बने रहते हैं। प्रमुख वैज्ञानिकों ने भी खोज किया है कि मस्तिष्क के किसी अंश का व्यायाम मेलिन की अधिक वृद्धि करता है। वैज्ञानिक पढ़ने-लिखने, गवेषणा, प्रयोग आदि में जाने अनजाने मानसिक में इसीलिए मेलिन की बहुलता पायी जाती है। साधक ध्यान और अत्यधिक क्रियाशीलता के कारण अपने मस्तिष्क में अत्यधिक मेलिन का विकास कर लेते हैं जिससे उनमें अद्वितीय मानसिक शक्ति आ जाती है और वे सर्वदेशिक और सर्वकालिक बन जाते हैं।

रक्तसंचारतंत्र और संयम

हमारे शरीर की रक्तवाहिनी धमनियों में रक्त का दबाव असामान्य होना उच्च रक्तचाप है। हृदय की प्रत्येक धड़कन सिस्टोलिक और धड़कनों के बीच को डायोस्टोलिक कहते हैं। रक्त चाप मापने का यंत्र सिस्टोलिक और डायोस्टोलिक दोनों का माप करता है। रक्त चाप का सामान्य माप 120/80 है 120 सिस्टोलिक और 80 डायोसिस्टोलिक। बच्चों का रक्त चाप, अगर वह 15 से 19 वर्ष तक की लड़की है तो 118/72 और लड़का है तो 118/72, 60 से 64 वर्ष की नारी है तो 114/70 और पुरुष है तो 130/80। इस प्रकार हम देखते हैं कि सामान्य रक्त चाप उम्र के साथ स्वाभाविक रूप से बढ़ता है लेकिन असामान्य वृद्धि हमें रक्तचाप का शिकार बना देती है। इससे सिर दर्द, थकान, अनिद्रा, कमजोरी, सिर का चक्कर खाना और हृदय गति बढ़ना आदि लक्षण हममें दीखने लगते हैं। देखा गया है कि 'बॉस' से डांट खाकर किरानी या छोटा ऑफिसर, नौकरी चली जाने या पदोन्नति न होने के भय से गुस्से को उस वक्त दबा देते हैं लेकिन घर लौटते ही पत्नी की प्यार भरी बातों या बच्चों की मनमोहक किलकारियों की भी उपेक्षा कर, उबल पड़ते हैं। ऐसी स्थिति में पत्नी गुस्सा को पी जाती है लेकिन बार-बार इस स्थिति से गुजरने पर वह उच्च रक्त-चाप का शिकार बन जाती है। हमारे ऋणात्मक चिन्तन या भय, क्रोध, निराशा आदि तामसिक विचार रक्त चाप को बढ़ाते हैं और सहयोग, प्रेम, करुणा आशा आदि धनात्मक चिन्तन या सात्विक विचार रक्त चाप को सामान्य बनाए रखते हैं।

सर्वांग व्यायाम, प्राणायाम और ध्यान का अभ्यास रक्तचाप को सामान्य बनाए रखता है। आलस और निष्क्रियता उच्च रक्चाप का प्रमुख कारण है। धन, यश और सत्ता को येन-केन-प्रकारेण हथियाने के घुड़दौड में हम उच्च रक्तचाप को मोल ले लेते हैं। आधुनिक युवाओं में अधिकांश लोगों का उच्च रक्त चाप का शिकार होने का प्रमुख कारण आत्मकेन्द्रित होना ही है! स्वार्थ के वशीभूत हो हम अपने चारों ओर एक मजबूत दीवार खड़ी कर लेते हैं। जिसके बाहर न

हम जाने का प्रयत्न करते हैं और न बाहर के लोगों को उसमें प्रवेश की अनुमति देते हैं। इसी निम्न कोटि के विचार के चलते हम उच्च रक्त चाप का शिकार होते हैं और हृदय रोग से मरते हैं। निम्न रक्त चाप प्रायः भूखा रहने और संतुलित आहार न लेने के कारण होता देखा गया है। निम्न रक्त चाप को एक चम्मच के दसवें हिस्से के बराबर नमक का घोल या 'क्लोरोथियाजाइड' रासायनिक दवा देकर सामान्य किया जा सकता है लेकिन इसके लिए सतुंलित सुपाच्य आहार का लेते रहना अति आवश्यक है।

उच्च रक्त चाप से हृदय, जो रक्त संचार व्यवस्था का प्रमुख केन्द्र है कमजोर पड़ जाता है और रक्तचाप का रोगी हृदय रोगी बन जाता है। वस्तुतः उच्च रक्त चाप, हृदय रोग भविष्य में होने वाला है, इसकी सूचना देता है। रक्त चाप के रोगी को सर्वप्रथम अपने वजन को घटाने और स्नायुमण्डल को सुव्यवस्थित रखने के लिए सर्वांग व्यायाम, प्राणायाम और ध्यान का अभ्यास नित्य सुबह-शाम 45 मिनट तक करना चाहिए। उपर्युक्त साधना विधि इस पुस्तक के दूसरे परिच्छेद में सविस्तार दी गई है। ऐनिमा द्वारा नित्य तीन दिन तक बड़ी आंत की सफाई कर संतुलित और सुपाच्य आहार लेना चाहिए। जिससे मल निष्कासन होने में गड़बड़ी न आये। सुबह सुर्योदय के पूर्व खुली हवा में टहलना चाहिए और पालतू जानवरों और बच्चों के साथ कुछ क्षण खेलना चाहिए, जिससे मन तरोताजा बना रहे। मांस और चर्बीयुक्त आहार गरिष्ट होता है इसलिए पूर्ण वर्जित है। शुभभावना द्वारा सदा धनात्मक विचारों से अपने को भरते रहना चाहिए। रक्त चाप में श्वास-प्रश्वास को नियंत्रित रखना अति आवश्यक है।

श्वांस लेना-छोड़ना इस रोग में अधिक महत्त्वपूर्ण होता है, जिसे अजपा-जपा क्रमा-क्रम विधि द्वारा नियंत्रण किया जाता है। उच्च-रक्त चाप नियंत्रण में इस विधि का बहुत बड़ा हाथ होता है। इस क्रिया से हम किसी प्रकार के मानसिक तनाव, दबाव से जल्द ही मुक्त हो जाते हैं। वक्ता, गायक और धावक (दौड़ने वाले) इस बात को अच्छी तरह जानते हैं कि पेट से स्वाँस लेने और स्वांस छोड़ने पर ध्यान केन्द्रित करने से शक्ति का संचय होता है। इस क्रिया से हमें किसी भी प्रकार के मानसिक तनाव-दबाव से जल्द ही छुटकारा मिल जाता है। रक्त को ऑक्सीजन की खुराक के रूप में 14 बार एक मिनट में हमें श्वास लेना चाहिए। प्राणायाम की विभिन्न विधियां इसके लिए अधिक उपयुक्त हैं। बोलकर पढ़ना भी अधिक फायदा पहुँचाता है। इससे सांवेगिक प्रतिक्रियाएं अपने आप नियंत्रित हो जाती हैं। आधुनिक युग की अत्यधिक तनावपूर्ण परिस्थिति में हमारी स्वगत श्वांस-प्रश्वांस क्रिया अच्छे स्वास्थ्य के लिए पर्याप्त नहीं है। बैठे-बैठे समय बिताने वाले या ऊबने वाले काम को करने वालों के श्वांस-प्रश्वांस की क्रिया अपने आप असामान्य हो जाती है और उसे रक्त चाप और स्वांस रोग का रोगी बना देती है। ऐसे लोगों के लिए प्राणायाम द्वारा श्वांस-प्रश्वांस नियंत्रण आवश्यक

हो जाता है। ऑफिसर, दफ्तर में काम करने वाले कर्मचारी, व्यवसायिक, तथा वकील, राजनीतिक आदि पेशे वाले लोगों के लिए प्राणायाम का अभ्यास आवश्यक हो जाता है, क्योंकि उन्हें अधिक रक्त-चाप के शिकार होने की संभावना रहती है।

त्वचातंत्र और संयम

हमारी कोमल त्वचा भी रक्त चाप को नियंत्रित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। यह वह इन्द्रिय है, जिसे मस्तिष्क, हृदय और फुफ्फुस की श्रेणी में रखा जा सकता है। यह हमारे स्वास्थ्य की दृष्टि से वे आवश्यक और उपयोगी सेवाएं हमें अर्पित करते हैं जिस ओर मुश्किल से हमारा ध्यान जाता है। त्वचा का चिथड़ा, मोटा और खुर्दरा होना संतुलित शारीरिक रक्त संचार व्यवस्था के लिए अनुपयुक्त होता है। त्वचा आपात्काल में चाहे हम दुर्घटना के शिकार हों या रक्त चाप से बीमार, रक्त की आपूर्ति करने या उसे समशीतोष्ण बनाने में विशेष मदद करती है। किसी अंग विशेष के कट जाने पर जब अधिक खून की आपूर्ति की आवश्यकता उस अंग के लिए होती है, तब त्वचा ही अपने हिस्से का रक्त लेना बन्द कर उसको तत्काल आपूर्ति करती है। त्वचा की रक्त धमनियां रक्त के तापमान को सामान्य रखने में भी मदद पहुँचाती हैं। जब रक्त का दवाव बढ़ता है तब त्वचा की रक्तवाहिनी धमनियां चौड़ी होकर अधिक रक्त को लेती हैं और स्वेद ग्रन्थियाँ पसीना के माध्यम से उसे तीव्र गति से टंडा करती हैं, और मल को निकालकर दवाव को हलका कर रक्तचाप को सामान्य करने में मदद पहुंचाती हैं। प्रणायाम का अभ्यास गर्म-टंडा स्नान द्वारा शारीरिक शौच और सर्वांग-व्यायाम त्वचा की इस क्रिया को और आसान बना देता है।

हमारे आवेग-सम्वेग का विशेष हाथ रक्तचाप और 'सईनस' का रोग पैदा करने में भी होता है। आवेगं-सम्वेग से पीड़ित मस्तिष्क एलेकट्रिक इप्पलसेज पैदा कर पेट में अत्यधिक एसिड पैदा करता है और वही 'सईन' का कारण बन सकता है या इसके चलते हमारे रक्च संचार के पात्रों की मांसपेशियाँ तनाव युक्त होकर रक्त-चाप का कारण बन सकती हैं। ऐसी स्थिति में हमारी स्नायुप्रणाली, बुरी खबरों को ले जाने ले आने के लिए संचार व्यवस्था का काम करती रहती है। इस दृष्टि से केवल हमारी स्नायु-प्रणाली मानसिक तनाव का कारण नहीं बनती, बल्कि मस्तिष्क का सम्वेगिक द्वन्द्व मूल कारण है और रक्त-चाप का प्रमुख स्रोत।

हमारे शरीर की सभी प्रकार की मांसपेशियाँ वह उपयुक्त यंत्र है जो रासायनिक शक्ति या खाद्य पदार्थ की शक्ति को, यांत्रिक शक्ति या क्रिया शक्ति के रूप में बदलती है। नोबेल प्राइज प्राप्त डॉ० अलवर्ट रेन्ट ज्योंगयी के अनुसा जिस किसी तरह भी हमारी मांसपेशियों के समुचित संकोचन-प्रसारण और लगाव न होने के कारण अधिकांश लोग रक्तचाप, हृदय रोग और दूसरी तरह की व्याधियों का शिकार बनकर मरते हैं। हमें संतुलि आहार द्वारा प्रोटीन औ

कारबोहाइड्रेट पर्याप्त मात्रा में लेने के आलावा नियमित व्यायाम करने से मांसपेशियों को लचीला, संकोचन-प्रसारणयुक्त और अच्छे लगावयुक्त बनाया जा सकता है। क्योंकि हमारी दुर्बल मांसपेशियों को केवल व्यायाम से ही मजबूत होने में मदद मिल पाती है। अमेरिका के भूतपूर्व अध्यक्ष जान केनेडी के चिकित्सक डॉ० ट्रानेल का कहना है कि मांसपेशयों में किसी प्रकार के अस्वाभाविक तनाव और व्यथा के लिए हमें व्यायाम करने के बाद तत्काल गर्म पानी से स्नान करना आवश्यक है।

हमारी रक्तसंचार व्यवस्था दिन-रात अबाधगति से क्रियाशील रहती है। शरीर के विभिन्न अंगों की कोशिकाओं को समुचित मात्रा में रक्त पहुंचाने का काम ठीक समय पर करना और उससे 'मल' को ले लेना इसी का काम है। रक्त के साथ कोशिकाओं के मरम्मत के लिये एमिनोएसीड, शक्ति के लिए शर्करा, विटामिन, खनिज पदार्थ, ग्रन्थिस्राव आदि परिवहन करते हैं और लौटते वक्त कोशिकाओं से कार्बनडाईअक्साइड गैस हेन के माध्यम से ले आती हैं। साथ-ही-साथ यह कोशिकाएं एकत्रित जल और प्रोटीन के मलवा को हटा देती हैं। कान्वेयरबेल्ट की तरह रक्त प्रोटीन, विटामिन आदि को ढोता है और जिस अंग को जिस मात्रा में उसकी आवश्यक्ता होती है आपूर्ति करता जाता है। इसी से बच्चों की मांसपेशियों का विकास होता है और जले और कटे अंग पर नयी चमड़ी की परत चढ़ जाती है। इसके लिये रक्त 'लसिका' से महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कराता रहता है। यह शारीरिक अभियोजनशीलता का महत्त्वपूर्ण यांत्रिकी का काम करता है। इसके अभाव में आन्तरिक संतुलन बिगड़ जाता है। यह हमारी जीवनी शक्ति और स्वतः रोग-निवारण-शक्ति का प्रमुख यंत्र है। इस लसिका प्रवाह क्रिया की व्युत्पत्ति रक्त संचार क्रिया से होती है। इससे ही रक्त का पोषण और संतुलन होता है। प्राकृतिक मनो-रसो-देहो आध्यात्मिक क्रिया (तंत्रोपैथी) के सर्वांग व्यायाम की विभिन्न मुद्रायें विभिन्न अंगों की 'लसिका' प्रवाह क्रिया को मजबूत बनाती हैं और माध्यम से उच्च या निम्न रक्तचापों को नियंत्रित कर देती हैं। हमारे शारीरिक तत्त्वों में वजन का 60 से 70 प्रतिशत जल का अंश होता है। हमारी हड्डियों में एक तरफ 20 प्रतिशत जलांश होता है तो दूसरी ओर रक्त में 95 प्रतिशत जलांश होता है। शरीर का कोई भी अंग विशेष बिना जल के टिका नहीं रह सकता। क्योंकि यह अपनी ही शारीरिक अग्नि से अंगों को भस्मीभूत होने से बचाता है।

हमारे शरीर में दिन-रात रासायनिक क्रियाएं होती रहती हैं। ये क्रियाएं शारीरिक, मानसिक क्रियाओं द्वारा होती रहती हैं या शरीर के विभिन्न ऐच्छिक और अनैच्छिक क्रियाओं द्वारा। शारीरिक मेहनत का काम करने या व्यायाम करने में हमारे शरीर के अन्दर इतनी गर्मी पैदा होती है कि शरीर में जल के अभाव होने से इस शरीर को ही जला दे। लेकिन हमारी कोशिकाओं को निमग्न रखने वाले शरीर का जल शरीर के अधिक तापमान को तेजी से सोख लेता है और साथ-ही-साथ शाक-आबजर्वर का काम करता है। इसके व्यतिक्रम का परिणाम भी

निम्न या उच्च रक्तचाप हो सकता है और इसके लिए तांत्रिकी संयम उपचार से अधिक उपयुक्त चिकित्सा और कोई हो नहीं सकती है।

अच्छे स्वास्थ्य के लिए चर्बी, प्रोटीन और ऑक्सीजन की आपूर्ति करनी होती है। लौह मिश्रित प्रोटीन ही हेमोग्लोबीन कहलाता है, जो हमारे रक्त को लाल रंग प्रदान करता है और जीवन रक्षा के लिए विभिन्न गैसों का परिवहन करता है। 'हेन' प्रोटीन के मलबा के रूप में कार्बनडाईअक्साइड, और नाइट्रोजन जल की कोशिकाओं से लेकर ढोता है और उसे फुफ्फुस और वृक में फेंक देता है। रक्त संचार व्यवस्था का नियंत्रण मस्तिष्क के भास-मोटर-सेन्टर द्वारा होता है। डा० जे० डी० रेटक्लीक के शब्दों में रक्त संचार व्यवस्था के नियंत्रण का एक और दूसरा केन्द्र है और वह है अपने शरीर के रक्त प्रवाह-व्यवस्था पर ध्यान केन्द्रित करना या हृदय की धड़कनों को गिनना। हृदयगति एक प्राणयाम विधि है, जो विभिन्न प्राणायामों में एक है और उच्च रक्त चाप और हृदय के रोगी को इसका अभ्यास कमजोरी की अवस्था में केवल लेटकर करना चाहिए। खाने से स्वाभाविक रूप से रक्त चाप की वृद्धि हो जाती है। प्रकृति के चमत्कारों में यह भी एक है कि कलाई पर हाथ रखते ही स्वाभाविक या अस्वाभाविक रक्तसंचार का पता लग जाता है।

हमारी त्वचा और कोशिका के बीच खाली पड़ती जगह में लसिका वाहक धमनियों का जाल बिछा होता है। इससे भूरे रंग की लसिका प्रवाहित होती रहती है, जो हमारे स्वास्थ्य के लिए शारीरिक-रासायनिक क्रिया को पूरा करती रहती है। सूक्ष्म जीवाणु इसमें प्रवेश कर 'फोड़ा, फुन्सी' और 'साइन' पैदा कर देते हैं और इस स्थिति में शल्य चिकित्सा द्वारा संक्रमित ग्रन्थि को ही हटाना उपयुक्त होता है। फीलपांव या हाथीपांव एक प्रकार के 'आकाशबंवर' की तरह है। इसके कीड़े 'लसिका' प्रवाह की कोशिकाओं से लसिका को निकाल देते हैं, जिससे पांव फूलने लगता है। लसिका रूपी नदी का प्रवाह हमारे विभिन्न अंगों की कोशिकाओं के माध्यम से होता है। उसे तांत्रिकी अभ्यासों द्वारा, स्वस्थ रहने के लिए अलकालाईन करके अपनी पूरी त्वचा प्रणाली को नदी में स्नान कराना होता है।

भारतीय समाज में एक कहावत प्रचलित है–जिसे बैठना, उठना और चलना फिरना ही नहीं आता उससे क्या आशा की जा सकती है, यह बात अक्षरशः सत्य है। हमारा मेरुदण्ड शारीरिक, मानसिक स्वास्थ्य का मापदण्ड है। जब तक हम अपने मेरुदण्ड को स्वस्थ नहीं रखेंगे स्वयं स्वस्थ नहीं रह पायेंगे। इसी कारण तंत्रसाधना-विज्ञान आसन और मेरुदण्ड को ठीक रखने पर विशेष जोर देता है। आसन ठीक न रहने से विभिन्न परिस्थिति में हमारा स्वास्थ्य भी ठीक उल्टा हो जाता है और हम शारीरिक, मानसिक दृष्टि से बीमार हो जाते हैं। हमारी त्वचा की सतह कवच की तरह है और मछलियों के छिलके की तरह एक दूसरे के छोर पर चढ़ा हुआ होता है। त्वचा में करोडोलोम कूप हैं, जिनके माध्यम से करोड़ों छोटी ग्रन्थियां त्वचा की सतह को सुखाने और नीरस होने से बचाती हैं तथा अनगिनत लचीली तंतुवें इसे कोमल बनाती हैं। इसी के बीच चर्बी इन्सुलेशन

का कार्य करती रहती है। वह त्वचा के संकोचन-प्रसारण के साथ-साथ सर्दी नहीं लगने देता। बूढ़े लोग सर्दी में इसी की कमी के कारण हाय-तोबा मचाया करते हैं। त्वचा हमारे आवेग-संवेग की स्थिति से अधिक प्रभावित होती है। छोटे-छोटे फोड़ा-फुन्सी, खाज-खुजली आदि भी मानसिक दुख का कारण होता देखा गया है। जेलों में खाज खुजली भी अधिक होने का कारण मानसिक कष्ट ही है। चिकित्सकों ने पाया है और लोगों का व्यक्तिगत अनुभव भी है कि जेल से छूटने, अच्छी नौकरी पा जाने, या पति पत्नी में प्रेम-पूर्ण सम्वन्ध स्थापति होने के बाद चर्म रोग भी खरगोश की सींग की तरह गायब हो जाता है। खुशियों के अवसर पर हमारी त्वचा एक दूसरे से खिंची हुई रहती है चाहे वह सामाजिक-सांस्कृतिक उत्सव हों या आपसी प्रेमपूर्ण मिलन के कुछ क्षण या किसी की सेवा-सुश्रुषा, लाड़-प्यार आमोद-प्रमोद आदि का अवसर। ऐसे अवसरों पर हम ध्यान देकर देखें तो हमारे मेरुदण्ड की स्वाभाविक स्थिति का अन्दाजा लग जाएगा। वीरासन, पद्मासन, स्वस्तिकासन, सिद्धासन और सुखासन की स्थिति ही स्वाभाविक मेरुदण्ड की स्थिति होती है और इसमें बैठने से शरीर की त्वचा की स्वाभाविक स्थिति होती है इसीलिए ध्यान के अभ्यास के लिए इन्हीं आसनों को लगाने की राय साधना में दी जाती है। साधारण उठने-बैठने, चलने-फिरने, बोलने-चालने की बहुत बड़ी क्षति होती है और विभिन्न रोगों का शिकार हम बन जाते हैं। धूप में सिर और ललाट को ढके रखने और सर्वांग व्यायाम को करते रहने से चेहरे व शरीर की अनावश्यक झुर्रियां तत्काल दूर हो जाती हैं। ये विधियां दो प्रमुख काम करती हैं। शारीरिक रक्त संचालन को ठीक रखती हैं और नित्य प्रति के कामों से अर्जित मानसिक तनाव दबाव को दूर कर देती हैं।

हमारी त्वचा की सतह कवच की तरह है और मछलियों के चोईटा की तरह एक दूसरे के छोरों पर चढ़ा हुआ होता है। प्रकृति की इस त्वचा रूपी बरसाती की तरह विश्व के वैज्ञानिक कोई और आविष्कार न कर सके। त्वचा में करोड़ों रोम कूप हैं, जिनके माध्यम से करोड़ों छोटी ग्रन्थियां अपने स्राव से त्वचा की सतह को सूखने और नीरस होने से बचाती हैं तथा अनगिनत लचीली तंतुएं इसे कोमल बनाती हैं। इसी के नीचे चर्बी इन्सुलेशन का कार्य करती है जो त्वचा के संकोचन-प्रसारण के साथ-साथ सर्दी नहीं लगने देती। त्वचा हमारे आवेग सम्वेग की स्थिति से अधिक प्रभावित होती है।

पाचनतंत्र और संयम

अत्यधिक आवेग-सम्वेग हमारे आमाशय पर भी आक्रमण करता है। मानसिक तनाव और दबाव सांवेगिक, आवेगिक अस्थिरता का ही परिणाम है, जिससे हम उदर रोग से पीड़ित हो जाते हैं। सामान्य स्वास्थ्य के लिए आमाशय को न अधिक ठंडा, गर्म और न जल्दी-जल्दी खाए हुये मात्रा से अधिक भोजन चाहिए। भोजन न क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष आदि सांवेगिक स्थिति में करना और न भूख लगने

पर ठूंस-ठूंस कर, तत्काल नहीं खा लेना चाहिए। भोजन की अत्यधिक चाह पाचन प्रणाली के स्नायुओं और तंतुओं को असामान्य और अशान्त कर देती है। अच्छी तरह स्नान करने के बाद भूख अधिक बढ़ जाती है और पाचन प्रणाली की तन्तुएं शान्त और सामान्य हो जाती हैं। इसीलिए स्नान के बाद ध्यान का अभ्यास 25-30 मिनट कर लेने के बाद ही भोजन करना चाहिए। इसी प्रकार भोजन करने के दो घंटे बाद ही स्नान करना स्वास्थ की दृष्टि से उपयुक्त होता है। अधिक भोजन करना पाचन क्रिया प्रणाली के लिए अत्यधिक असुविधा जनक होता है। पेट में प्रथम ग्रास के पहुंचते ही पाचनक्रिया अपना काम प्रारम्भ कर देती है। विभिन्न प्रकार का पाचकरस स्राव होने लगता है। इस क्रिया को उत्तेजित करने में हमारी स्नायु-प्रणाली भोजन के गंध, रस, रंग और विचार से तरंगित होकर अधिक मदद करती है।

पूर्ण पाचनप्रक्रिया

जिस प्रकार पूर्ण और स्वस्थ पाचन के लिए सही किस्म के भोजन की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार मस्तिष्क की सकारात्मक स्थिति भी स्वस्थकर आहार को पचाने के लिए आवश्यक होती है।

अगर भोजन संतुलित है, स्वादिष्ट है तथा भूख भी लगी है फिर भी अगर मस्तिष्क तनाव युक्त है तो खाना अच्छी तरह नहीं पचेगा। पाचन क्रिया मुंह से प्रारम्भ होती है और जब तक भोजन अतड़ियों में नहीं जाता है तब तक वह प्रक्रिया जारी रहती है।

मुंह, लीवर, पैंक्रियाज, छोटी, आँत तथा बड़ी आँत, भोजन पचाने में अहम भूमिका अदा करती हैं। क्योंकि ये पाचन सम्बन्धी विभिन्न रस स्राव करती रहती हैं, इनका रस स्राव स्नायुओं की स्थिति पर निर्भर करता है, जो मस्तिष्क के संवाद वाहक हैं। इसलिए स्नायु और ग्रन्थियों के सम्मिलित प्रयास से ही अच्छी तरह खाना पचता है।

भय, गुस्सा और ईष्या, कभी अधिक और कभी कम, ग्रन्थियों द्वारा रस स्राव करने पर मजबूर करती है और इससे हमारी पाचन क्रिया बाधित होती है। क्रोध की अवस्था में 'इष्ट प्रणाम' कर लेने या श्वांस-प्रश्वांस पर ध्यान केन्द्रित करने से, ईर्ष्या की स्थिति 'हास्याकृति' या 'प्रसन्नाकृति' या मस्तिष्क में आने वाले विचारों को मात्र देखते रहने से तथा भय की स्थिति आंखों की अनुसंधनात्मक मुद्रा या त्रिकुटी में अन्तर त्राटक करने से सामान्य स्थिति हो जाती है या उपर्युक्त आवेगों पर नियंत्रण हो जाता है। प्रतिदिन खाने से पहले या बाद में व्यापक शौच करने या स्नान करने के बाद पांच मिनट अनुसंधानात्मक मुद्रा और अन्तर त्राटक कर लेना पाचन क्रिया को ठीक रखने के लिए बहुत जरूरी है। भयभीत व्यक्ति की तुलना जाड़े की रात में नंगे खड़े उस व्यक्ति से की जा सकती है, जो मेरुदण्ड को सीधा कर, खड़ा नहीं हो सकता और कांपता रहता है।

इसीलिए अच्छी तरह पका और ढंग से सजा हुआ सुंगधित भोज्यपदार्थ, स्वच्छ भोजनशाला रुचिवर्धक होती है। आज कल लोगों का होटलों और रेस्ट्राँ के प्रति आकर्षण बढ़ने का कारण यही है। हमारे आमाशय में प्रत्येक तीन या चार घंटे के बाद अपने आप संकोचन प्रसारण होने लगता है। जिसे 'भूख की व्यथा' या 'भूख लगना' कहते हैं। हमारे आमाशय का महत्त्वपूर्ण स्राव हाइड्रोक्लोरिक एसिड होता है, जो आमाशय के बीमारी में लगे श्लेष्मा बनाता है और अपने स्राव से ही स्वयं पहचान लिया जाय इसकी भी व्यस्वथा कर लेता है।

यकृत का महत्त्वपूर्ण स्थान हमारी पाचन क्रिया प्रणाली में नहीं बल्कि रक्त संचार व्यवस्था में भी है। अगर हमारा यकृत मजबूत है तो हृदय की धमनियां भी मजबूत होंगी और हृदयगति भी सामान्य बनी रहेगी। हमारी सारी इन्द्रियों को सुचारु रूप से संचालित करने का श्रेय यकृत को ही है। अगर हमारा यकृत खराब है तो सारे शरीर की रासायनिक प्रक्रियाएं अव्यवस्थित हो जाती हैं। वृक को मल त्याग करने में असुविधा होने लगती है। यकृत ही आवश्यक विटामिनों को संचित करता है, जिसकी रक्त निर्माण में बड़ी आवश्यकता पड़ती है। यह हमारी यौन क्रियाओं को भी नियंत्रित करता है जिससे यौन के लिए हम न जानवर की तरह व्यवहार करते हैं और न नपुंसक बनते हैं। ऐमिनोएसीड भी यही बनाता है जिससे शारीरिक जल और नमक नियंत्रित होता है तथा पित्त का निर्माण कर, उदर की पाचन क्रिया को संचालित करता है। वृक सारी शारीरिक ग्रन्थियों से बड़ा और अकेला होता है और इसका रंग गहरा लाल होता है। यह उदर के दाहिने तरफ वक्ष की हड्डियों के बीच स्थित है। वृक की खराबी होने से ही उदर सम्बन्धी रोग और पीलिया रोग होता है, जिसका उपचार चिकित्सक विटामिन बी-12 और विटामिन सी की अधिक मात्रा तथा सूक्ष्म कीटाणु नाशक दवाओं द्वारा करते हैं।

वृक हमारे शरीर का रसायन कार्यस्थल है। यही रक्त और जल की समानुपातिक मात्रा का नियंत्रण करता है। शरीर में खनिज द्रव्यों का संतुलन भी इसी ग्रन्थि के माध्यम से होता है। इसका समुचित रूप में काम न करने के कारण रक्त में पोटेशियम की अधिकता हो सकती है, जो हृदय गति को किसी क्षण भी बन्द कर सकती है। इसी के द्वारा एसिड अलकाली संतुलन होता है। तथा शारीरिक मल त्याग होता है। पैंक्रियाज ग्रन्थि दो प्रकार का रस स्राव करती है। एक अंतड़ियों की नलियों में और दूसरा रक्त में, जिसे इनसुलिन कहते हैं इसी स्राव की कमी होने से मधुमेह की बीमारी होती है। हमारी पाचन प्रक्रिया में खाद्य पदार्थ के साथ मिश्रित शर्करा, प्रोटीन, चर्बी, आदि ग्लूकोज में परिणत हो जाता है, जो जलकर शरीर के विभिन्न अंगों की क्रियाशीलता के लिए ईंधन का काम करता है। जो ग्लूकोज बच जाता है वह यकृत या मांसपेशियों में चर्बी के रूप में संचित हो जाता है। बिना इनसुलीन के, ग्लूकोज न शारीरिक क्रियाशीलता के लिए जलाया ही जा सकता है और न उसे शरीर में संचित ही

रखा जा सकता है। इसी स्थिति में हम मधुदेह की व्याधि को आमंत्रण देते है। पैंक्रियाज की क्रियाओं में अत्यधिक मानसिक तनाव, अलकोहल पीने की आदत पड़ने, शारीरिक और मानसिक दृष्टि से निष्क्रिय होने तथा शारीरिक मल का पूर्ण परिष्कार न होने के चलते व्यवधान आता है।

हमारी अंतड़ियों का महत्त्व पाचन तंत्र में अत्यधिक है लेकिन सबसे अधिक इसकी उपेक्षा कर हम महत्त्वहीन बना देते हैं और उदर सम्बन्धी अनेक बीमारियों का शिकार हो जाते हैं। प्रायः हमें मल परिष्कार की शिकायत बनी रहती है और इसके लिए दवा के रूप में लैक्जेटिव दवाओं का प्रयोग करते हैं। हम जो भोजन करते हैं, उसे चार से छः घण्टे पचाने में पेट को समय लग जाता है और इसके बाद 72 फीट अंतड़ियों से गुजरने में उसे 18 घंटे समय लग जाता है। अगर मल निष्कासन सम्बन्धी गड़बड़ी महसूस होती है तो एनिमा ले लेना अच्छा होता है लेकिन इसका अभ्यस्त होने से हमारे स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है। इस दृष्टि से नीबू नमक के साथ गुनगुने पानी को, मल त्याग के पूर्व पीना भी अच्छा होता है। गणेश क्रिया भी मल त्याग में मदद पहुंचाती है। उदर विकार से पीड़ित रोगी को भोजन में साग-सब्जियों की मात्रा अधिक कर देनी चाहिए और चोकर के साथ आटा की रोटी और छिलके के साथ मौसमी फलों को लेना अधिक उत्तम होता है। मल त्याग करने के पूर्व वाजीकरण मुद्रा और कुक्कुटमुद्रा का 5 मिनट के लिए अभ्यास कर लेना उत्तम होता है। अजपा-जप क्रमाक्रम विधि, और उदर केन्द्रित प्राणायाम का अभ्यास, उदर रोग से पीड़ित व्यक्तियों को खाने के बाद 10 मिनट लेटकर या बैठकर अवश्य करना चाहिए।

थकान, नींद, श्रम, व्यायाम और संयम

किसी भी रोग का निदान करते वक्त थकान, नींद और व्यायाम की समस्या आड़े हाथों आ खड़ी होती है। सच पूछा जाय तो किसी रोग का निदान थकान, नींद और व्यायाम ही है। विभिन्न व्यायामों पर हार्वर्ड विश्वविद्यालय की खोजों के आधार पर पाया गया कि उन व्यक्तियों को जो नियमित और व्यवस्थित व्यायाम के अभ्यस्त हैं, उन्हें उसी मात्रा में काम करने के लिए बहुत कम आक्सीजन की आवश्यकता पड़ती है। सर्वांग व्यवस्थित अभ्यास, प्राणायाम और ध्यान से मांसपेशियां, फेफड़ों और मस्तिष्क की शक्ति, सामर्थ्य, योग्यता, कार्य-कुशलता एवं क्षमता बढ़ती है। इस बात को उपर्युक्त अध्ययन ने निर्विवाद घोषित कर दिया है। अगर कोई निष्क्रिय और आलसी व्यक्ति को, जो न कोई कार्य ही करते हैं और न सर्वांग व्यवस्थित व्यायाम ही या जो विभिन्न दफ्तरों और व्यवसायों में कर्मचारी, ऑफिसर और मालिक के रूप में कुर्सी पर बैठे केवल मानसिक कार्य किया करते हैं, उन्हें अचानक कोई कड़ा और कठिन शारीरिक कार्य करने या शरीर कड़ा कर डंड-बैठक और विभिन्न आसनों को करना पड़े तो, उसके 20 से 30 प्रतिशत रक्त की लाल कोशिकाएं नष्ट हो जाती

हैं। इससे रक्त द्वारा विभिन्न मांसपेशियों को ऑक्सीजन आपूर्ति करने की क्षमता तेजी से घट जाती है। यही कारण है कि बराबर कुर्सी-मेज पर काम करने वाले बाबू किस्म के लोगों को अवकाश के समय दूर-देहात के घर में पैदल जाने या फुटबाल, क्रिकेट आदि खेलों को खेलने में अत्यधिक थकान हो जाती है और चलने-फिरने में काफी तकलीफ होती है। इसे ही हाथ-पैर में कड़ापन लगना या मांसपेशियों का पर्याप्त मात्रा में रक्त द्वारा ऑक्सीजन की आपूर्ति न होने से कड़ा हो जाना कहते हैं।

हमारा मस्तिष्क वजन में सारे शरीर के वजन का 2 प्रतिशत ही है। शारीरिक मांसपेशियों की तरह वह कोई यांत्रिक कार्य नहीं करता फिर भी इसे हमारे रक्तकोष के 14 प्रतिशत रक्त की आवश्यकता होती है और सारे संचित ऑक्सीजन का 23 प्रतिशत। इसी प्रकार शर्करा की भी मस्तिष्क में अधिक खपत होती है। क्योंकि. शर्करा और ऑक्सीजन का संयोग ही रासायनिक शक्ति के रूप में परिणत होता है और हमारे मस्तिष्क के विद्युत लहरों के रूप में बदल जाता है। विना मस्तिष्कीय विद्युत लहरों के हमारी स्नायु प्रणाली काम नहीं कर सकती। यही कारण है कि शर्करा या ऑक्सीजन की अपूर्ति में थोड़ी कमी होने या बाधा पड़ने से हम वेहोश हो जाते हैं। चाहे वह शरीर से अधिक रक्त निकल जाने या श्वास-प्रश्वास की गति में किसी कारण व्यवधान के चलते हो या अत्यधिक भयभीत होने या खुश होने की स्थिति के कारण, रक्त संचार क्रिया के अवस्थित होने की स्थिति में हो। इस प्रकार थकान न जीवन में अत्यधिक क्रियाशील रहने व्यायाम करने के कारण होती है और न यदा-कदा थोड़ी क्रियाशीलता दिखाने या व्यायाम कर लेने की स्थिति में ही इसका प्रभाव हमारे ऊपर होता है। शारीरिक, मानसिक थकान की शिकायत करने वाले अधिकांश काहिल, आलसी, कमजोर और बहानेबाज लोग ही हुआ करते हैं। और थकान का रोना रोकर अपनी उपर्युक्त कमजोरियों को ही दूसरों के समक्ष दिखाते और दया का पात्र बनने का स्वांग रचते हैं। हमारा शारीरिक बल और मानसिक शक्ति का खजाना कभी खाली हो ही नहीं सकता, जिससे हम थक जाएं, चाहे जितना कार्यभार हम पर दिया जाय। अगर हम प्राकृतिक मनो, रसो, देहो, आध्यात्मिक विधि (तंत्रोपैथी) के अभ्यासों और नियमों का पालन कर जीवन में रचनात्मक क्रियाशीलता के अभ्यस्त बन जाते हैं।

रावर्डकघलोस के शब्दों में–मस्तिष्क की विद्युत लहरों के ज्वार की स्थिति में हम जागते हैं और भाटे की स्थिति में जब मस्तिष्क लहरें उलटी दिशा की स्थिति में होती हैं तो सो जाते हैं। अर्थात् तांत्रिक साधकों की दृष्टि में जब मस्तिष्क का स्पंदनात्मक विषय या वस्तु भौतिक या बाह्य जगत होता है, तब हमारी स्थिति वर्हिमुखी होती है और हम जगे रहते हैं और जब हम अर्न्तमुखी हो जाते या मस्तिष्क का स्पंदानात्मक विषय हमारे स्वयं का रक्त संचालन या श्वास-प्रश्वास की गति पर केन्द्रित हो जाता है, तब हम सो जाते हैं। एक सोते हुए व्यक्ति की श्वास इसी कारण धीमी चलती है। लेकिन उसमें तारतम्यता और एकरूपता

होती है तथा आंखों का गेंद ऊपर की ओर होता है। रक्त चाप की गति की अवस्था में वहुत निम्न हो जाती है जिससे हाथ की अंगुलियां ठंडी और का अंगूठा गर्म दीखता है एंव मस्तिष्क में रक्त चाप निम्न होने से मन या चे विलुप्त प्रायः रहती है। केवल चेतना या मन का यह निम्न स्तर जिसे चि प्राण या अवचेतना कहते हैं और जिसके लिए निम्न रक्तचाप भी प्रर्याप्त हो है सक्रिय रहता है। इसी कारण से गहरी नींद में अत्यधिक रक्तचाप कम रह है। स्वप्न नहीं आते, पर छिछली नींद में जब कुछ रक्त चाप बढ़ जाता है स्वप्न आया करते हैं। नींद के प्रथम तीन घंटों में रक्त चाप अधिक और नि रहता है और गहरी नींद आने लगती है। इस स्थिति में श्वास-प्रश्वास और हृ की गति धीमी होती है और अगले दो-तीन घंटों में वह और अधिक धीमी जाती है। शरीर का तापमान करीब 1/2 एफ घट जाता है। छः सात-घंटे साम सो लने के बाद नींद छिछली हो जाती है और इसी छिछली नींद में प्र अवचेतन मन में संचित विभिन्न संस्कार स्वप्न के रूप में दीखने लगते मस्तिष्क के अधिक तनावपूर्ण और शारीरिक थकान की स्थिति में हम इत अधिक बर्हिमुखी बने रहते हैं कि स्वाभाविक रूप से रक्तचाप और श्वास-प्रश्व का नियंत्रण या तो हमसे हो ही नहीं पाता या सोने की कला ही हम भूल ज हैं और देर तक विस्तर पर पड़े रहने के बावजूद सुबह मुंह लटकाये शिका किया करते हैं, आज नींद अच्छी नहीं आई। करवट बदलते ही रात कट ग वस्तुतः नींद की लम्बाई से नहीं, गहराई से हम तरोताजा और स्फूर्ति अपने अ में पाते हैं। सोना एक कला है और उस कला की जानकारी नहीं होने के का भी प्रायः हम गहरी नींद के लिए तरसते रहते हैं या रक्त चाप और दमा बीमारी को पाल लेते हैं। भारतीय साधना विज्ञान में इस पर सदियों पूर्व का खोज हुई है और साधकों ने बहुत उपयोगी और व्यावहारिक विधियों की का प्रतिपादन किया है। रोगी को स्वस्थ करने के लिए, उसे गहरी नींद में सु और रक्तचाप एवं श्वास-प्रश्वास की गति नियंत्रित करने के लिए तंत्रोपैथी उन्हीं विधियों का प्रमुख रूप से सहारा लिया जाता है। आधुनिक रासाय दवाओं का प्रयोग उसी स्थिति में किया जाता है, जब रोगी प्रारम्भ में असमर्थ व्यक्त करता है या इन विधियों के प्रति विशेष उत्साह नहीं दिखाता।

गहरी नींद के लिए नींद को पुकार कर, “आ रे निंदिया आ! आ! बु की आवश्यकता नहीं पड़ती। बल्कि मुझे गहरी नींद आयेगी ही इस विश्वास साफ-सुथरे बिस्तर पर चित्त लेट जाना चाहिए और धीरे-धीरे श्वास-प्रश्वास क्रिया करते हुए बारह तक गिनना चाहिए या आंखें बन्द कर अपने सोते चित्र को ध्यान में लाना चाहिए। अपने रक्त प्रवाह की गति की गिनती का प्रयास करना चाहिए। बायें करवट लेटकर इस क्रिया को केवल एक मि कर लेने के बाद ही हम गहरी नींद में चले जायेंगे। शारीरिक स्थिति, दाहिने पर बायां पैर थोड़ा लुढ़का हुआ पड़ा रहेगा। इसे ही बौद्ध जगत में तथागत कहते हैं। सोने से पूर्व, निरोग रहने, सुबह समय पर उठने या दूसरे दिन

क्रियाओं का सम्मान करने की पूरी कर लेने से दूसरे दिन सुबह हम समय पर जग जाते, बीमार होने से निरोग होने लगते और दूसरे दिन की क्रिया भी याद होकर समय से सम्पादित हो जाती है। अगर सम्भव हो तो बिस्तर पर जाने के पूर्व थोड़ी देर खुली वायु में टहल लेना, व्यापक शौच कर लेना, एक कप गरम दूध पी लेना, समय से नित्य सोने जाना, दिन भर आप को शारीरिक और मानसिक दृष्टि से व्यस्त रखना आदि अधिक अच्छा होता है।

वस्तुतः नींद हमारी शारीरिक और मानसिक यांत्रिकी को कुछ घंटों के लिए "पूर्ण ढीला" कर देती है। मांसपेशियों का पूर्ण शिथिल होना, शारीरिक तापमान का सामान्य से नीचे गिर जाना, तथा श्वास-प्रश्वास की गति का धीमा हो एक लय और तारतम्य हो जाना, नींद में सोए व्यक्ति की स्वाभाविक स्थिति होती है। सोते हुए व्यक्ति की कलाई की नब्ज लगभग एक बार प्रति सेकण्ड धड़कती है, जबकि जागृत अवस्था में इसकी गति प्रति 72 बार प्रतिमिनट होती है। हमारा मस्तिष्क, रक्तसंचार क्रिया को विद्युत लहरों से नियंत्रित करता रहता है और सोने की स्थिति में ये लहरें धीमी हो जाती हैं। इसी कारण रक्त संचार के अधिकांश केन्द्र बन्द हो जाते हैं और नब्ज की गति धीमी हो जाती है। वास्तव में गहरी नींद हमें स्फूर्ति से भर देती है, जिससे दूसरे दिन उत्साह से काम में हम जुट जाते हैं।

गहरी नींद का सबसे बड़ा दुश्मन है–गरिष्ट आहार, अधिक भोजन करना तथा श्रम और व्यायाम न करना। शारीरिक वजन का ऊंचाई और आयु और अनुपात से अधिक बढ़ जाना भी गहरी नींद आने में बाधा पहुंचाता है। वे व्यक्ति अधिक खाना खाते हैं, जो अपने परिवार और समाज से उपेक्षित होते हैं। ऐसे लोगों में साधारणतः आत्महीनता की भावना अधिक होती है और वे ईर्ष्या, क्रोध, दुश्चिन्ता तथा निराशा की आग में सदा जलते रहते हैं। अधिक खाना खाने के दूसरे कारणों में घर गृहस्थी तथा काम करने के स्थान और हालात का उबाने वाला भी हो सकता है। रात को अच्छी नींद लोने के लिए, रात का खाना न खाना, एक कप गर्म दूध ले लेना तथा सोने से पहले व्यापक शौच, थोड़ी देर के लिए खुली हवा में टहलना अधिक उपयुक्त होता है। वैसे चपाती का आकार बहुत छोटा करा कर दो-चार लेना, चार प्रकार के खाद्य वस्तु से अधिक न खाना, खट्टा, तीता का बहुत कम प्रयोग करना और गरिष्ट आहार का बहिष्कार रात के खाने में करना, गहरी नींद के लिए अति आवश्यक होता है।

'श्रम' चाहे शारीरिक हो या मानसिक, वर्तमान पूंजीवादी व्यावस्था में 'शर्म' बन गया है। वर्तमान वैज्ञानिक सुविधाओं के आविष्कार और प्रचार-प्रसार से नए पूंजीपतियों ने 'श्रम' को 'शर्म' के स्तर पर ला खड़ा किया है। "उल्वेचर कामु" नामक एक पाश्चात्य विचारक ने, लोगों के श्रम न करने की प्रवृत्ति पर, गहरा कटाक्ष करते हुए लिखा है–आज हमने अपना सारा काम यंत्रों और नौकरों से कराना शुरू कर दिया है और इसमें हम अपना बड़प्पन और इज्जत समझते हैं। वह दिन भी जल्द आ जायेगा, जब अपना प्रेम भी स्वयं न करके नौकरों

से कराना शुरू कर देंगे। श्रम से विमुख होकर हम अपने जीवन से सम्बन्ध विच्छेद कर रहे हैं। क्योंकि जीवन और श्रम में सीधा सम्बन्ध है। रचनात्मक क्रियाशीलता (क्रियाशक्ति) श्रम के माध्यम से ही जागृत होती है और हमें सर्वोत्तम स्वास्थ्य, सफलता, आकर्षण और अह्लादित व्यक्तित्व को प्राप्त कराती है। जहां श्रम नहीं, वहाँ जीवन नहीं और श्रम को शर्म समझने वालों जैसा वेशर्म संसार में और कोई नहीं। तांत्रिक साधकों ने भूतयज्ञ (सौंर्दय साधना) का विधान कर श्रम की महत्ता और गरिमा की ओर इशारा किया है। इसकी चर्चा हम दूसरी पुस्तक में विस्तार के साथ करेंगे।

आज श्रम उपेक्षित इसलिंए हो गया है कि लक्ष्मीपात्र (धनपति) श्रम को रुपये से खरीद सकता है। इसलिए वह श्रम से दूर हो गया है। संन्यासी श्रम से इस लिए भागे कि संसार को धर्माधिकारियों ने माया और मिथ्या करार दिया। इसलिए समाज द्वारा मान-मर्यादा-प्राप्त उच्च वर्ग श्रम से दूर हो गया। इसलिये आज जो श्रम करते हैं उपेक्षित हो गये हैं। धीरे-धीरे उपेक्षित 'श्रम' 'शर्म' बन गया और श्रम न करने की मानसिकता आम लोगों में भी आ गयी, क्योंकि उसका मूल्यांकन भी रुपये, पैसे में आंका जाने लगा। ऐसी स्थिति में सर्वोत्तम स्वास्थ्य, सफलता, आकर्षण, और अह्लादित व्यक्तित्व हमारे लिए कल्पना की वस्तु बन कर रह गयी है। इस पुस्तक में वर्णित अंग-प्रत्यंग शोधन-भेदन विधि हमारे पैर की अगुंलियों से लेकर सिर तक इस प्रकार झकझोर देता है जिससे शरीर की छोटी-से-छोटी धमनियों में सुचारु रूप से रक्तप्रवाह होने लगता है और मांसपेशियों में कड़ापन की जगह लचीलापन ला देता है। जिससे वह सुडौल, सुदृढ एंव सुन्दर बनने वाली हैं। डॉ० थोमस क्युरेटान के शव्दों में व्यायाम से हम अपने शरीर की सतर्कता को व्यवस्थित कर पुनः ढूंढ़ निकालते हैं।

डॉ० होवर्ड रोस ने, व्यायाम से समस्त मांसपेशियों और विभिन्न शारीरिक जोड़ों को मजवूत और अधिक क्रियाशील होने की वात कही है। भारतीय साधकों ने तो शारीरिक, मानसिक और प्राणिक व्यायामों पर ही अध्यात्म का मंदिर खड़ा किया है। वैज्ञानिकों के समक्ष इस बात का पर्याप्त प्रमाण मौजूद है कि व्यायाम से सुन्दर, स्वस्थ और लम्बी आयु की प्राप्ति होती है। विश्व के विख्यात चिकित्सकों ने तो संतुलित आहार-विहार, नींद और सक्रियता के साथ-साथ व्यायाम को अच्छे स्वास्थ्य के लिए अति आवश्यक बतलाया है। इस विधि से रक्त संचार, ग्रन्थिस्राव, श्वास-प्रश्वास क्रिया अस्थिपंजर और त्वचा पर तो अनुकूल प्रभाव पड़ता ही है, इससे हमारा शरीर सुडौल, स्वस्थ और शक्ति सम्पन्न भी होता है साथ-ही-साथ बुद्धि और स्मृति विकास का अभ्यास भी इससे हो जाता है। जवानी में हमारी प्रतिरोधक क्षमता करीब-करीब ठीक ही रहती है लेकिन जैसे-जैसे हमारी उम्र वढ़ती जाती है, सर्वांग व्यायाम की आवश्यकता होती जाती है। 30 वर्ष पार करने के वाद तो हम बिना व्यायाम के स्वस्थ रहने की कल्पना भी नहीं कर सकते हैं। जीवन के बढ़ते काल में पेट का आगे की ओर निकल जाना, कमर का घेरा वढ़ने से कब्ज अजीर्ण आदि उदर विकारों का होना, रोग-निवारण क्षमता में कमी आना, सदा आलस्य बना रहना आदि, लक्षण दीखने

लगते हैं। व्यायाम से ही अपनी कमर को क्रमशः कम और पेट निकलने पर नियंत्रण बनाये रखा जा सकता है। वस्तुतः अपने प्राकृतिक स्वास्थ्य को स्वाभाविक रूप में लाने, अपने खोये हुए प्राकृतिक स्वास्थ्य को पुनः प्राप्त करने तथा शैशवावस्था की प्रसन्नता निर्द्वन्द्वता और शान्ति को लौटाने के लिए आज से ही इस सर्वांग व्यायाम के अंगोपांग साधन-भेदन विधि सीख कर शुरू कर देना अपने प्रति सबसे बड़ी ईमानदारी का बर्ताव करना होगा।

सर्वांग व्यायाम का, तीन तरह का, महत्त्वपूर्ण प्रभाव हमारी रक्त संचार क्रिया पर पड़ता है। नियमित और क्रमिक व्यायाम से ही मांसपेशियां चाहे वे हाथ की हों या पैर की शक्ति सम्पन्न होती हैं और नाड़ी के ये रक्त संचार क्रिया को उन्नत करती हैं। वेन (नाड़ी) जब अच्छी हालत में रहती है, तब रक्त को गलत दिशा में बहने नहीं देती, क्योंकि हमारे अस्थिपंजर की मांसपेशियां दबाव डालकर वेन को (नाड़ी) पुनः हृदय की ओर दूषित रक्त भेजने के लिए पम्प करने में मदद देती हैं। इस क्रिया को अच्छी तरह सम्पादन कर सकती हैं, व्यायाम द्वारा लचीली बनाई गई मांसपेशियां ही, न कि बिल्कुल कड़ी मांसपेशियां। कड़ी मांसपेशियाँ तो वेन (नाड़ी) पर ही सवार हो जाती हैं और रक्त संचार क्रिया में बाधा पहुंचाती हैं। अधिक देर तक बैठने, शल्य चिकित्सा कराने या अधिक दिनों तक बीमार रहने की स्थिति में जब हम निष्क्रिय रहते हैं, यह अवस्था हममें प्रत्यक्ष देखने को मिलती है। खूब कड़ा व्यायाम करने या निष्क्रिय रहने की स्थिति में पैर और हाथ में नाड़ी में खून का थक्का जम कर थ्रोम्बोसिस नाम की बीमारी पैदा कर सकती है। इसका जानलेवा परिणाम भी हो सकता है। जब वेन नाड़ी में जमे रक्त का कोई टुकड़ा हमारे फेफड़े की किसी महत्त्वपूर्ण रक्त-नली को रोक दे तो आदमी मर भी सकता है। विभिन्न अंगों को लकवा मारने का प्रमुख कारण यही होता है। सर्वांग व्यायाम से हमारे सिर, वक्ष, उदर और कटि गह्वर की सारी मांसपेशियां मजबूत और शक्तिशाली होती हैं जिसके कारण श्वांस-प्रश्वास की क्रिया में ही हमें मदद नहीं मिलती बल्कि रक्तसंचार क्रिया को सुचारुरूप से संचालन में भी मदद पहुंचाती है।

सर्वांग व्यायाम (अंग-प्रत्यंग शोधन-भेदन विधि) से रक्त संचार क्रिया में व्यस्त सबसे छोटी कोशिकाएं भी स्वस्थ और मजबूत हो, अधिक सक्रिय हो जाती हैं। यद्यपि हमारा हृदय रक्त संचालन का प्रमुख केन्द्र है लेकिन इसे अपनी रक्त संचार की क्रिया को सुचारु रूप से सम्पादन करने में शरीर के कोने-कोने में फैली कोशिकाओं से अत्यधिक मदद मिलती है। इसी कारण विकलांग होने से सुन्दर स्वास्थ्य की कल्पना किसी और प्रकार की ही हो सकती है। सर्वांग व्यायाम से हमारी पाचन क्रिया पर अत्यधिक अनुकूल प्रभाव पड़ता है इससे पाचनक्रिया और मलपरिष्कार क्रिया दोनों में पाचन क्रिया, मल परिष्कार और गहरी नींद लाने में अधिक मदद मिलती है। अंग-प्रत्यंग शोधन, भेदन विधि को नियमित रूप से करने वाले साधक को शायद ही कभी दवाओं की आवश्यकता पड़ती है। एक साधक के चेहरे में चमक की आभा देखने और उसे सदा प्रसन्न और रचनात्मक क्रियाशीलता से पूर्ण रहने का यही रहस्य है।

व्यायाम की तीसरी उपयोगिता जो सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है, वह है स्नायुप्रणाली पर अनुकूल प्रभाव डालकर अधिक-से-अधिक अन्तर्मुखी बनाना, जिससे शक्ति 'शिव' का रूप ले ले और 'शिव-शक्ति' के रूप में बहिर्मुखी बन सर्वोत्तम स्वास्थ्य, सफलता, आकर्षण और अह्लादित व्यक्तित्व प्रादन कर दे। एक मानसिक तनाव-दबाव से पीड़ित (दुखी) व्यक्ति के लिए सर्वांग व्यायाम दुनिया की तमाम दवाओं और मानसोपचारों से कहीं अधिक उपयोगी सिद्ध होता है। हमारे संयम और उपचार गृह में ऐसे सैंकड़ों रोगियों को स्वस्थ कर सफल नागरिक के रूप में परिणत किया गया है। स्नायुनिक संयम के लिए सर्वांग-व्यायाम का नियमित अभ्यास करते रहना और उसकी आदत बना लेना, आज के अत्यधिक प्रतियोगितामय संसार में स्वस्थ रहने के लिए अत्यावश्यक है। वे जो अत्यधिक मानसिक काम करते हैं और कीमती खाना खाया करते हैं, उनके लिए सर्वांग-व्यायाम बहुत जरूरी है। व्यायाम से ही ध्यान के केन्द्रीकरण की अवधि बढ़ती है, इसे हमें कभी नहीं भूलना चाहिए। पुराने ग्रीस में भी यह विधि प्रचलित थी जिसने विश्व के अच्छे चिन्तकों को पैदा किया था। भारत इसी कारण से विश्व के लिए अनुकरणीय बना था।

सर्वांग-व्यायाम सभी उम्र के लोगों के लिए आवश्यक है। थ्रोम्बोसिस की एक मात्र चिकित्सा सर्वांग-व्यायाम है। हमारा जीवन बहुत बहुमूल्य है। यह केवल जैसे-तैसे जीने के लिए ही नहीं, बल्कि शारीरिक-मानसिक दृष्टि से स्वस्थ और सांवेगिक दृष्टि से संतुलित रह कर अपने परिवार, समाज और राष्ट्र के लिए कुछ करने के लिए है। हमारे जीवन की मांग है क्रियाशीलता और वह आती है, रचनात्मक क्रियाशीलता और सर्वांग-व्यायाम के संस्कार को दृढ़ कर जीने से। केवल सुबह-शाम का टहलना सर्वांगीण विकास के लिए काफी नहीं है। यह बात अक्षरशः सत्य है। इसी कारण से तंत्र साधना या मेरुदण्ड को ठीक रखने पर विशेष जोर देता है। आसन ठीक न रहने से विभिन्न परिस्थिति में हमारी मुद्राएं या तो विकृत होंगी या ठीक उल्टी स्थिति में। हमारा स्वास्थ्य भी उस स्थिति में ठीक उल्टा हो जाता है और हम शारीरिक-मानसिक दृष्टि से बीमार हो जाते हैं।

हमारी इन्द्रियां, प्रवृत्तियाँ और संयम

प्रकृति सौंदर्यमयी है, ठीक वैसे ही जैसे वसंत ऋतु में खिले विविध रंगों के फलों की क्यारियां। और हम हैं उस प्रकृति के सर्वोतम पुष्प। इस मानव रूपी पुष्प का सिंचन आवेग-सम्वेग रूपी जल से विभिन्न इन्द्रियों के माध्यम द्वारा होता है। इसी कारण सभी को अपना अलग-अलग व्यक्तित्व प्राप्त होता है और अपने अनोखे व्यक्तित्व के कारण हम हजारों व्यक्तियों के बीच भी पहचान लिये जाते हैं। जुड़वां बच्चे भी एक दूसरे के पूर्ण सदृश्य नहीं होते। इन विभिन्नताओं को हम विभिन्न व्यक्तियों की आकृति, स्वभाव और संस्कार के माध्यम से समझ पाते हैं। हम कुछ-न-कुछ जानते और मानते हैं। इसीलिए ऋषियों की उक्ति 'यथा नाम तथा गुण' चरितार्थ करते हुए मनुष्य या मानव कहलाते हैं। जानना और मानना

हमारी स्वाभाविक क्रिया है तथा जिसे हम जानते हैं, उसे आदर की दृष्टि से देखते हैं और मानते हैं उसकी प्रतिष्टा करते हैं विश्वास की दृष्टि से देखते हैं। वस्तुतः हमारी इन्द्रियों के माध्यम से जानी हुई वस्तु सम्वेदना, प्राणों द्वारा महसूस की हुई वस्तु, आवेग-सम्वेग और बुद्धि द्वारा अनुभूत की गई वस्तु को प्रत्यक्षीकरण कहते हैं। इसे ही साधना विज्ञान में क्रमशः रोग, भोग और संस्कार कहते हैं। इन्द्रियां, प्राण, मन और बुद्धि द्वारा अनुभूत वस्तु का नाम विज्ञान है। हमारी इन्द्रीय प्राणिक आवेगों और सम्वेगों में मन को आकृष्ट करने और उसे आविर्भूत कर लेने की अत्यधिक क्षमता होती है। प्रत्येक काम के बाद, चाहे वे इन्द्री सम्बन्धी हों, प्राणिक आवेग सम्बंधी हों या बुद्धि सम्बन्धी, हम विश्राम, एकान्त, आनन्द और शान्ति चाहते हैं। इसमें हम अंतरंग मित्र और प्राण प्रिय पति द्वारा दी गई बाधा भी बरदाश्त नहीं कर पाते। यह तंत्रसाधना विज्ञान में वर्णित सत्त्वगुण है। इसके अभाव में ही हम विभिन्न शारीरिक, मानसिक और प्राणिक रोगों के शिकार होते हैं और असफल, अनाकर्षक और दुखित हो हम रोगी बनकर जीने के लिए बाध्य हो जाते हैं।

स्पर्शेन्द्रिय तंत्र और संयम

हमारी कोमल त्वचा केवल शरीर का सुरक्षात्मक ढक्कन ही नहीं, बल्कि यह स्पर्श-इन्द्रिय भी है और इसका सम्बन्ध हमारे मस्तिष्क, हृदय और फुफ्फुस से सीधा रहता है। यह हमारे लिए जो महत्त्वपूर्ण सेवाएं करती है, उसकी जानकारी प्रायः हमें होती ही नहीं। तथा अगर वह किसी कारण, मोटी, कड़ी और भद्दी हो जाये तो वह हमारे लिए उपयोगी और महत्त्वपूर्ण सेवाओं के योग्य नहीं रह जाती। किसी दुर्घटना के शिकार होने, अत्यधिक खून, किसी रोग विशेष के कारण निकल जाने या किसी प्रकार के रक्त सम्बन्धी आपातकालीन स्थिति उठ खड़ी होने की स्थिति में यह त्वचा ही अतिरिक्त रक्त की आपूर्ति अपने राशन से करती है। इसी कारण भय की स्थिति या अधिक खून निकलने की स्थिति में शरीर को पीला पड़ते देखा जाता है। त्वचा की कोशिकाएं शारीरिक तापमान को बनाये रखने में मदद पहुंचाती हैं। जब किसी कारण से हमारे शरीर का रक्त चाप बढ़ जाता है, तब शरीर इसलिए गर्म हो जाता है कि त्वचा की कोशिकाएं चौड़ी (प्रसारित) होकर अपनी सतह पर अधिक रक्तप्रवाह कर लेती हैं। और स्वेद ग्रन्थियां उसे तत्काल ढंडा करने में संलग्न हो जाती हैं। इसी कारण से बुखार में पसीना आया करता है। स्नायु प्रणाली का अन्तिम छोर त्वचा में ही विलीन होता है, जिससे वह कुछ दबाव, कुछ सर्द, कुछ गर्म और कुछ वेदना के प्रति अधिक सम्वेदनशील होती है। इसी के आधार पर वैज्ञानिकों ने 16 अत्यधिक सम्वोदनशील स्थलों को हमारे शरीर में निश्चित किया है और जिसका महत्त्व हमारे सामान्य स्वास्थ्य और जीवन में सफलता के लिए बहुत अधिक होता है। स्पर्श का ज्ञान हमें इसी के चलते होता है।

रंग-रूपेन्द्रियतंत्र और संयम

जीवों के क्रमिक विकास (Evolutionery Process) के क्रम में आंखों का विकास सर्वप्रथम हुआ। विकास क्रम में सबसे अधिक निम्नकोटि का जीव एमिवा होता है, जिसके शरीर का प्रत्येक हिस्सा रोशनी को देख सकता है। इसके बाद ही अन्य कीड़े पतंगों का विकास हुआ है, जिनकी साधारण और मिश्रित दोनों प्रकार की आंखें होती हैं। किसी-किसी कीड़े में त्रिभुजाकर तीसरी आंखें भी पाई गई हैं। ये कीड़े अपनी मिश्रित आंखों से तीन चार गज दूरी को देखने का काम लेते हैं जब कि साधारण आंखों से वे केवल एक से दो इंच की दूरी तक ही देख पाते हैं। इनकी आंखें स्थिर रहती हैं। मछली ही मेरुदण्ड विकसित जानवर है जो अपनी आँखों को घुमा सकती, विभिन्न रंगों में फर्क कर सकती है। विकासक्रम में घोड़ा ही प्रथम जानवर है, जो अपनी पुतलियों को हिला-डुला सकता है और चरते वक्त अगल-बगल भी देख सकता है। इसके बाद मांसाहारी पशुओं का नम्बर आता है, जिन्हें सूर्य की रोशनी में कम और रात में अधिक दीखता है।

इसलिए आदि मानव रात में डरता था, क्योंकि दिन में वह जानवरों का शिकार करता था और रात को स्वयं शिकार हो जाया करता था। मानव आँखें ही पूर्ण विकसित आँखें हैं और जब वे गति में होती हैं, चाहे वह संकेत या इशारे की क्रिया ही क्यों न हो, निरी अंधी हो जाती हैं। केवल जिस वस्तु या विन्दु को हम देखते हैं, उससे नजर बदलते रहने की स्थिति में ही देख पाते हैं। क्योंकि हमारी रेटिना इस अंधगति के मध्य थोड़ा विश्राम कर लेती है और यह समय इतना क्षणिक होता है कि हमें इसका ज्ञान भी नहीं होता। गति विहीन खुली आंखें केवल पागलों की होती हैं। और वस्तुतः पागल देखते हुए भी कुछ देख नहीं पाता। मृतक और बेहोश व्यक्ति की आँखें गतिहीन और खुली होती हैं। आँखें रक्तचाप की अल्पता और अधिकता की सूचना भी देती हैं। इसी कारण से चिकित्सक रक्त अल्पता का अन्दाजा आँखें देखकर लगा लेते हैं। हमारी आँखें प्रमुख ज्ञानेन्द्रिय होने के नाते हमारी आन्तरिक मनोभावना को भी प्रकट करती हैं। जिससे किसी से आँखों-आँखों में ही प्यार हो जाता है या घृणा। स्वस्थ, चमकीली और भावपूर्ण आँखें हमारे शारीरिक, मानसिक और प्राणिक समसंतुलन की ही देन हैं और इसी से यथार्थ देखने तथा समझने में हमें मदद मिलती है। सर्वांग-व्यायाम के सिंहासनारूढ़ मरकट और जमवंत मुद्रा तथा दूर, करीब और अन्तर निमेषवर्जन विधि आँखों में वह आकर्षण पैदा करती है, जिसकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते।

ध्वनेन्द्रियतंत्र और संयम

हमारे शरीर की विभिन्न इन्द्रियों में कान की विचित्र यांत्रिकी है और ध्वनि स्पंदन का आंतरिक कान तक न पहुंच पाना ही बहरेपन की निशानी है। यह

स्थिति आती है जब कान में कोई चीज घुस जाये या कान में तरल पदार्थ की वृद्धि हो जाय, आन्तरिक कान की हड्डी बढ़ जाये या मध्य कान में सूजन आ जाये। हमारी खोपड़ी की हिड्डयां मध्य कान की ध्वनि स्पंदन का मार्ग दर्शन करती हैं इसलिए पूर्ण बहरापन इन कारणों के चलते होना सम्भव नहीं। पूर्ण बहरापन का कारण होता है, कान सम्बन्धी स्नायुओं का विकृत होना। बस, रेल और हवाई जहाज से सफर करने में अधिकांश लोग उल्टी (कय) करने लगते हैं और उनके सिर में चक्कर आने लगता है। डॉ० चेन ने इसे 'गति व्याधि' कहा है और इसके कारणों पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने बताया है कि गति व्याधि का कारण होता है हमारी सतुंलन पैदा करने वाली इन्द्रिय का तीव्र गति से असंतुलित होना। हमारे सिर के भीतर प्रत्येक कान में द्रव से भरी तीन अर्धवृत्ताकार अत्यंत छोटी नलिकाएं होती हैं। इनमें छोटे-छोटे बाल होते हैं, जो शारीरिक गति के साथ छोटी नलिकाओं के द्रव पदार्थ में हलचल होते ही झूम उठते हैं और संतुलन नियंत्रण के लिए सूचनाएं मस्तिष्क को भेजते हैं। लेकिन अत्यधिक अनैच्छिक शारीरिक गति में ये सूचनाएं 'कार्य' करने वाले केन्द्र में पहुंच जाती हैं।

प्रयोगशालाओं में गति व्याधि के अध्ययन से पता चला है कि किसी सवारी की क्रमिक गति जो ऊपर-नीचे, अगल-बगल शरीर को झकझोरती है, वह अधिक दुखदायी होती है और उस स्थिति में सिर को इधर-उधर घुमाने से और अधिक 'गतिव्याधि' के शिकार लोग होते हैं। और 'कय' करते रहते हैं। सिर को स्थिर कर बैठे रहने से गतिव्याधि अपने आप दूर हो जाती है। इसीलिए हवाई जहाज में सिर को स्थिर कर टिकाए रखने की व्यवस्था भी सीट के साथ रहती है। आज कल अन्य वाहनों में भी इसकी व्यवस्था होने लगी है। गतिव्याधि की स्थिति में सिर को पीछे की ओर झुकाकर स्थिर रखना चाहिए। गाड़ी में सोने की स्थिति में तकिया का प्रयोग नहीं करना चाहिए। गाड़ी में आकाश न देखने, बगल के यात्री का गतिव्याधि से बीमार हो जाने, किसी का पेपटिक अल्सर का रोगी होने तथा विशेषकार नारियों को गतिव्याधि से ग्रसित होने से, सहयात्री भी रोगी बन जाते हैं। अधिक खा लेने या पूर्ण उपवास करने, दोनों स्थिति में गति व्याधि के शिकार लोग होते हैं। हमारा कान एक प्रमुख इन्द्रिय है, जिसका स्वस्थ रहना हमारे व्यक्तित्व विकास में बहुत जरूरी होता है। कान से सटे जबड़ों में इन्जाइम की ग्रन्थियां भी होती हैं जो पाचन प्रणाली में मदद पहुंचाती हैं। सिंहासन युक्त हस्थिमुद्रा कर्णेन्द्रिय के प्रत्यके अवयव को स्वस्थ और संतुलित रखता है और कान सम्बन्धी विभिन्न बीमारियों को दूर करता है।

गंधेन्द्रियतंत्र और संयम

नाक हमारी सुन्दरता और प्रतिष्ठा की वस्तु नहीं, बल्कि एक प्रमुख ज्ञानेन्द्रिय है और भीतरी नाक की यांत्रिकी अत्यधिक कोमल, जटिल और अकल्पनीय सुकुमार है। नासिका के ऊपरी भाग में दोनों ओर छोटे-छोटे छिद्र होते हैं जिनमें

विशिष्ट स्नायु कोशिकाएं होती हैं। गंध के अणु, जो गैस के रूप में होते हैं या हवा और जल के अणु इन्हीं स्नायु कोशिकाओं के माध्यम से यात्रा करते हैं और रासायनिक प्रक्रिया पैदा करते हैं। भोज्य पदार्थ की सुरसता का आभास हमें नाक के पिछले दरवाजे से होता है। यह मुंह और गले के माध्यम से वायुवाहक नली तक पहुंचता है और वहां से नासिका-गह्वर तक सफर करता है। इसके बाद ही हमें सुरुचिपूर्ण भोजन (फ्लेवर) का ज्ञान होता है। यही कारण है कि गंध का अनुभव हमें स्वांस लेते समय होता है और सुरुचिपूर्ण पदार्थ का ज्ञान जब हम श्वास छोड़ते हैं। इसी प्रकार जितना अधिक गर्म खाने की वस्तुएं होती हैं उतनी ही अधिक सुरुचिता के अणु खाद्य पदार्थ से निकलते और उतनी अधिक भोज्य पदार्थ की सुगन्धि मिलती है।

अच्छा रसोइया या होटल वाला गरमागरम थाल ग्रहक को परोसता है और इसी से प्रभावित होकर मूंगफली बेचने वाला भी गरमागरम मूंगफली की हांक लगाता है और ग्राहकों को आकृष्ट करता है।

नासिका गह्वर में पैदा होने वाली बीमारियों में प्रमुख है साइनाइटिस और यह होता है नाक की अच्छी तरह सफाई और व्यायाम न करने के कारण। वैसे चिकित्सक शल्यचिकित्सा द्वारा इसका उपचार करते हैं लेकिन पूर्ण सफलता का दावा अभी भी वे नहीं कर सकते। प्राकृतिक, मनो, रसो, देहो, आध्यात्मिक चिकित्सा विधि में सिंहासनयुक्त शुकरमुद्रा और नेति से इस रोग का सफल उपचार किया गया है। रोग के चढ़ाव की स्थिति में कोई ऐंटी एलर्जिक दवाओं से ही काम निकाल लेने का प्रयत्न किया जाता है। साधारणतः सर्दी, जुकाम की स्थिति में थोड़ी सावधानी करने की आवश्यकता पड़ती है। नाक के गाढ़ा और दुर्गन्ध युक्त द्रव का निकलना नासिका के प्रति सर्तक होने की सूचना देता है।

रसेन्द्रियतंत्र और संयम

हमारा गला एक स्वतंत्र व्यवस्थापिका का काम करता है, जिसमें कई अलग-अलग रचनाएं एक कपाट से सम्बन्धित होती हैं। जिसमें रस निचोड़ने, उठाने और नीचे गिराने के संयंत्र लगे होते हैं और जिसके कारण ही हम, खाने, पीने और बोलने की क्रिया कर पाते हैं। हमारी रसेन्द्रिय या जीभ का उदगम स्थान यही है और यही सभी संयंत्रों में स्वचालित यंत्र है, जिसके द्वारा गले के अन्य संयंत्र ठीक-ठाक से चलाये जा सकते हैं। प्रातः मुंह धोने के बाद सिहुली करना और अनामिका और मध्यमा अंगुली देने से कंठ तक चार-छः बार आगे-पीछे, ऊपर-नीचे, दाएं-बाएं हल्का हिला देने से यहां की मांसपेशियों की अच्छी मालिश हो जाती है और साथ-ही-साथ इस स्थान का मल भी खखार-पोटा के रूप में बाहर निकल आता है। गले के सारे संयंत्र हमारे जीवन के लिए महत्त्वपूर्ण होते हैं और इसी कारण गला घोंटकर असानी से किसी को मार डालने की घटनाएं अकसर देखने-सुनने को मिलती हैं। गला ही विषाक्त सूक्ष्म जीवाणुओं के लिए विभिन्न इन्द्रिय गह्वर में प्रवेश पाने का प्रमुख मार्ग है। नाक के रास्ते

ये जीवाणु घुसकर भंयकर 'साइनसाईटिस' को एक तरफ जन्म देते हैं तो दूसरी ओर मध्यकान में प्रवेश कर, कान की बीमारियों को पैदा करते हैं। जिससे कान का बहरापन और घाव का होना अवश्यम्भावी हो जाता है। ये विषाक्त कीटाणु अगर फुफ्फुस में प्रवेश पा जाते हैं तो निमोनिया और प्लूरीसी पैदा कर देते हैं। जल से, गले में वाईरस का संक्रमण होता है। तो सामान्य सर्दी, जुकाम के हम शिकार हो जाते हैं और इस ओर तुरन्त ध्यान न देने के कारण वे फैल जाते हैं और ब्रोंकाइटिस, टान्सिलाइटिस या लेरिनजाईटिस नाम की बीमारियों को पैदा करते हैं। सिंहासनारूढ़ श्वानमुद्रा को दूर ही नहीं करता, बल्कि गले में स्वतः रोग-निवारण-क्षमता को बढ़ाता है और वहां की गुप्त मांसपेशियों को लचीला और दृढ़ बनाता है। वैज्ञानिकों ने काफी खोजबीन करने के बाद पता लगाया है कि हमारी जीभ में 3000 स्वादकलियां, कानों में 10,0000 ध्वनि कोशिकाएं, आंखों में 13,0000000 प्रकाश प्राप्ति कोशिकाएं तथा त्वचा में 30,000 गर्म सम्वेदन और 25,00000 ठंड सम्वेदन बिन्दु होते हैं और इनके पूर्ण व्यायाम के लिए सिंहासनारूढ़ मरकट, श्वान, सूकर, हस्ति, जामवंत, व्याघ्र और उल्लूक मुद्राएं संयमात्मक और उपचारात्मक महत्त्व रखते हैं।

प्रवृत्तियां और संयम

हमारे प्राणिक आवेग-सम्वेग अनियंत्रित होने पर विभिन्न अवयव के सईन (अल्सर) और रक्तचाप की बीमारी पैदा करते हैं। जैसा कि अभी तक लोग विश्वास करते हैं कि हमारी स्नायुप्रणाली मानसिक तनाव के लिए जिम्मेदार है यह पूर्ण सत्य नहीं है। मस्तिष्क का आवेगिक, सांवेगिक द्वन्द्व मानसिक तनाव-दबाव का प्रमुख कारण होता है। आवेगिक सांवेगिक प्रेरणाओं को भेज कर हमारे पेट में अत्यधिक एसीडिटी पैदा कर पेट में अल्सर पैदा कर सकता है। या वह रक्त-वाहिनी नाड़ियों की दीवार में लगी मांस पेशियों में अधिक तनाव पैदा करता है। जिससे हम उच्च रक्तचाप के शिकार हो सकते हैं। इस स्थिति में हमारी स्नायु प्रणाली केवल खराब सूचनाओं को ले आने, ले जाने वाली स्थिति संचार व्यवस्था का ही काम कर सकती है। हमारे शरीर की विभिन्न प्रकार की मांसपेशियां हमारी रासायनिक, शक्ति को जो भोजन से हमें प्राप्त होती है, यांत्रिकी शक्ति या क्रियाशीलता में परिवर्तित करने की पर्याप्त क्षमता रखती है और इसे रचनात्मक क्रियाशीलता में परिवर्तित कर हम विभिन्न प्रकार के मानसिक आवेगों-सम्वेगों और उसके द्वारा उत्पादित बीमारियों को दूर कर सकते हैं। यह है संयम और उपचार की प्राकृतिक, मनो, रसो, देहो, आध्यात्मिक (तांत्रिकी संयम और उपचार) चिकित्सा विधि।

हमारी प्रवृति हमारे व्यक्तित्व-विकास और शारीरिक मानसिक स्वास्थ्य के लिए अति आवश्यक है लेकिन ये अनियंत्रित हो हमें असफल और रोगी बनाने की क्षमता भी रखती है। इन प्रवृत्तियों की परिधि में ही हम सभी अपना कार्य क्षेत्र सीमित रखने के लिए बाध्य होते हैं। प्रवृत्तियां मुख्यतः स्वकेन्द्रित और स्वान्तः

सुखाय होती हैं। चाहे वह धनलिप्सा, यशलिप्सा और ज्ञानलिप्सा हो या यौनाचार लिप्सा और खाने-पहनने आदि की भोगाचार लिप्सा। इसके अलावा शारीरिक वंशानुक्रमिक रूप में हम बुढ़ापा, बीमारी, मृत्यु और सामाजिक वंशानुक्रमिक रूप में आलोचना, प्रिय-विछोह, दरिद्रता आदि के भय का संस्कार भी अर्जित कर लेते हैं जो उस परिधि के घेरे के बाहर निकलने के असफल प्रयत्न के बावजूद हमें अनजाने में पुनः उस ओर लौटा देती हैं। ये प्रवृत्तियां हमारे स्वभाव में बीजरूप से वर्तमान रहती हैं। होशियार और महत्त्वाकांक्षी व्यक्ति विभिन्न शारीरिक मानसिक अभ्यासों द्वारा ऐसी व्यवस्था कर लेता है, जो उसे स्वस्थ रहने और जीवन में सफल होने में सहायक बना देती है। जो इस पर नियंत्रण स्थापित न कर, इनके गुलाम बने रहते हैं उनके हाथ नैराश्य, असफलता, दुश्चिन्ता और जान-लेवा बीमारी लगती है। हमें यह कभी न भूलना चाहिए कि आज के प्रतियोगिता और प्रतिस्पर्धामय संसार में हमारा जीवन हलचल और दौड़-धूप के दो छोरों के बीच प्रवाहित हो रहा है। स्वकेन्द्रित महत्त्वाकांक्षाओं ने हमें पागल बना दिया है और ऐसे ही कार्यक्रमों में हम अत्यधिक व्यस्त और व्यग्र होकर, हर जगह, हर समय आंधी और तूफान की तरह दौड़ते नजर आते हैं। ऐसी स्थिति में आराम-हराम हो जाता है। दफ्तर, दुकान, व्यवसाय से थके-मांदे, लौटने पर घर का बोझिल वातावरण हमें काटने दौड़ता है और इसके चलते हम आधी रात तक सिनेमा, क्लब आदि का चक्कर लगाते रहते हैं। अंत में जब चांडाल चौकड़ी से झूमते-झामते घर लौटते हैं, तब बिस्तर पर पड़ जाते हैं। लेकिन बिस्तर पूर्ण आराम के लिए फूलों का सेज बनने के बजाय कांटों का बाड़ा बन जाता है और हमारी रात करवट बदलते कट जाती है। तंत्रोपैथी की तंत्रिकी संयम और उपचार विधियां इन प्रवृत्तियों की मूल जड़ पर ही प्रहार करती हैं और इस प्रकार हमें असाध्य बीमारियों से छुटकारा दिला देती हैं।

तंत्रोपैथी की आवश्यकता क्यों?

आज जबकि सुपर कम्प्यूटरों और उच्च तकनीकी ने हमारे जीवन की रक्षा कवच का रूप ले लिया है, मनुष्य के मानसिक और आध्यात्मिक इलाज की भूमिका और उसी बनावट के संबंध में अध्ययन करना बहुत जरूरी हो गया है। मनुष्य ने रासायनिक दवाओं के सम्बन्ध में अनुसंधान करना शुरू किया और उसमें निःसन्देह अत्यधिक सफलता हासिल कर ली। लेकिन यह भी बात सही है कि आज हम ऐसी स्थिति में आ गए हैं कि उन सारी दवाओं में ऐसी कोई भी दवा नहीं जो सामान्य सर्दी और जुकाम का इलाज कर सके। "ज्यों-ज्यों दवा की मर्ज बढ़ता गया।" आज हम (रासायनिक दवाओं को खाकर रोग से मरते नहीं बल्कि रोगी बनकर जीते हैं) वास्तव में हमें आधुनिक चिकित्सा पद्धतियों से भिन्न यह मानकर चलना होगा कि स्वस्थ होना, निरोग होना नहीं है, बल्कि स्वास्थ्य प्राण और आत्मा के विभिन्न वाहनों में, सकारात्मक सामंजस्य स्थापित करना है। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान अभी यह पूरी तरह मानने के लिए तैयार

नहीं है कि शारीरिक लक्षण रोग नहीं है, बल्कि मानसिक रोग ही विभिन्न शारीरिक लक्षणों में प्रकट होते हैं। निरोग होने में अध्यात्म की भूमिका की चर्चा करने से भी वे कतराते हैं।

जीवन एक गति है, हरकत है और जिसमें गति नहीं, वह या तो रोगी है या मृत। जीवन की गति एक वृत में नहीं होती, बल्कि वह सांप की कुण्डली की तरह होती है। यही स्वाभाविक जीवन गति है। इसी गति को सकारात्मक उर्ध्वगति कहते हैं। अगर हम किसी बिन्दु को केन्द्र मानकर एक लकीर साँप की कुण्डली की तरह खींचते जायें तो वह सकारात्मक, और बाहर से लकीर को केन्द्र की ओर खींचते जायें तो वह नकारात्मक लकीर होगी। जीवन की गति अगर उसी प्रकार आत्मा को केन्द्र मानकर आगे की ओर बढ़ती है तो उसे आध्यात्मिक (सकारात्मक) या उर्ध्वगति कहते हैं और तब प्राणिक आवेग-सम्वेग को केन्द्र मानकर उस ओर गति होती है, तब वह नकारात्मक या अधोगति होती है। जीवन की सकारात्मक गति ही समसंतुलित स्वाभाविक गति है, जो हमें सफल, आकर्षक, स्वस्थ और अह्लादित व्यक्तित्व वाला व्यक्ति बनाती है, जबकि जीवन की नकारात्मक गति होने से हम रोगी, अनाकर्षक और दुश्चिन्तक होते हैं।

जीवन की सकारात्मक गति ही उत्तम स्वास्थ्य की गति है, निरोग होने की गति है, आकर्षक और अह्लादित व्यक्तित्व पाने की गति है। जीवन गति को बढ़ाने में हमारे मानसिक चिन्तन का बहुत बड़ा हाथ होता है। इसीलिए तंत्रोपैथी में "विचार-परिष्कार नियम" पर बहुत अधिक जोर दिया जाता है। विचार परिष्कार के अभ्यास के प्रारम्भ में रोगी को थोड़ी परेशानी होती है, क्योंकि रोग की उंग्रता के कारण रोग की "प्रेतछाया" उसे बराबर परेशान करती रहती है। जीवन की स्वाभाविक गति है सक्रियता। सामंजस्यपूर्ण सकारात्मक उर्ध्वगति ही स्वाभाविक जीवन गति है। रोगों, दुश्चिन्ताओं और असफलताओं की प्रेतछाया इस गति के काफी पीछे छूट जाती है और रोगी चाहे वह शारीरिक रोग से पीड़ित हो या मानसिक रोग से, रोगमुक्त हो जाता है।

शास्त्रों में कारण-शरीर की चर्चा की गई है। इस कारण-शरीर को समझने के लिए अपनी छाया को समझना होगा। सूर्य की किरणें जिस ओर पड़ती हैं ठीक उसकी उल्टी दिशा में हमारे शरीर की छाया होती है। हमारा कारण शरीर छाया नहीं, बल्कि वह हमारे शरीर के चारों ओर, शरीर से मात्र कुछ इन्च की दूरी पर घेरे रहता है। इस कारण-शरीर का नियंत्रण केन्द्र शरीर के भीतर होता है जिन्हें तांत्रिक भाषा में चक्र कहते हैं। इस कारण शरीर का अनुभव हम उस वक्त करते हैं, जब किसी योगी या तांत्रिक, जिनके चक्रों का प्रस्फुटन पूर्णरूप से हो चुका होता है और जिससे उनके कारण शरीर का घेरा बहुत विस्तृत हो चुका होता है, जो सम्पर्क में आते हैं। ऐसे महात्मा से दूर रहकर भी उनका पूर्ण सान्निध्य हमें मिल जाता है। गुरुओं और महात्माओं के कारण शरीर ही उनके शिष्यों, प्रशसंकों और भक्तों को दूर रहते हुए भी शान्ति देता है। तथा उनकी जीवन-गति को बढ़ाता है। महर्षि रमण, योगी अरविन्द आदि अपने कारण

शरीर के माध्यम से ही अपने शिष्यों, प्रशंसकों से बिना बोले ही जवाब दे दिया करते थे और उनकी समस्याएं हल करते थे। इस कारण शरीर ही हमें रोगी बनाने और रोग मुक्त कराने में बहुत बड़ी भूमिका अदा करता है।

हमारे शरीर का प्रत्येक नस (नर्व) इथर के आवरण से ढका है और उसी सूक्ष्म आवरण का नाम नाड़ी है। यही प्राणशक्ति का वाहक है। इस इथर आवरण (सूक्ष्म शरीर) का प्रमाण उस वक्त मिल जाता है जब किसी के शरीर का कोई अंग किसी दुर्घटना में कट जाता है या डॉक्टर द्वारा किसी कारण वश काट दिया जाता है। ऐसी हालत में कटे हुए अंग को जो शरीर से अलग किया जा चुका होता है उसमें रोगी पीड़ा महसूस करता है। डॉक्टरों ने उसे 'फैन्टम पेन' या 'प्रेत पीड़ा' कहा है। वास्तव में सूक्ष्म शारीरिक आवरण मरने के बाद भी व्यक्ति के मृतशरीर के चारों और फड़फड़ाता रहता है, मंडराता रहता है, लटके रहता है, इसीलिए मृतशरीर को जलाना अधिक अच्छा होता है बनिस्बत गाड़ने के। बीसवीं सदी के महान तांत्रिक योगी और दार्शनिक श्री श्री आनन्दमूर्ति जी ने भी इसी कारण से मृत शरीर को जलाना अधिक वैज्ञानिक और उपयुक्त माना है। क्योंकि स्थूल शरीर जल जाने से, कारण शरीर (इथेरियल शारीरिक आवरण) का घोंसला या केन्द्र नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है और वह जल्द ही विघटित हो जाता है।

हमारे विचारों की अपनी आकृति होती है, अपना ढांचा होता है और अपना आकार होता है। प्रत्येक विचार के अपने स्वभाव पर उसकी आभा और रंग निर्भर करता है। वह प्रत्येक निन्दनीय और दुष्ट विचार, जो शरारती और दुष्कर्मी अभिप्रायः या संकल्प से किसी के प्रति प्रक्षेपण किया जाता है या फेंका जाता है, वह उस निर्मल अनजान व्यक्ति को आघात तो पहुंचाता ही है लेकिन वह उनसे टकराकर सोचने वाले पर ही बिना किसी प्रतिरोध के मैगनेटिक लाइन से (चुम्बकीय रेखा) होते हुए कई गुना तीव्रता से घायल कर देता है। ऐसे ही घायल व्यक्तियों में रक्तचाप, हृदयरोग, दमा आदि के रोगी आते हैं। "विचार परिष्कार नियम" द्वारा कुछ दिनों अभ्यास से ही सकारात्मक चिन्तन करने लगता है और तत्संबंधी बीमारी दूर होने लगती है।

आज का व्यक्ति अपने शरीर की कोशिकाओं (सेल) के संबंध में अधिक जानकारी रखता है, वह मानवीय शरीर की कोशिकाओं का परीक्षण कर सकता है। वह मस्तिष्क या शरीर के किसी अवयव को शल्य चिकित्सा द्वारा निकाल कर उसे सी.ए.डी. और पी. ई. टी. की मदद से उसकी जटिल बीमारियों का पता लगा सकता है। लेकिन सफल इलाज नहीं कर सकता। साधारण व्यक्ति भी आज यह महसूस करता है कि करोड़ों रुपये खर्च करने पर भी चिकित्सा शास्त्र सर्दी, जुकाम सम्वंधी साधारण रोग का सुराग नहीं पा सका है। एड, मधुमेह और पीलिया (जाँडिस) जैसी जटिल, बीमारियों के सम्बंध में विश्वसनीय जानकारी देना तो दूर रहा, आज डॉक्टर भी यह महसूस करने लगे हैं कि विभिन्न रोगों का सफल इलाज नहीं, रोगों से अस्थायी लाक्षणिक छुटकारा देने वाला है। विशेष कर लाइलाज रोगों के लिए, दर्द दूर करने की दवा तो अस्थायी आराम के लिए जहर

खाकर मरने जैसा है। आज वैज्ञानिक भी इस बात को महसूस करने लगे हैं कि मान व मन स्वर्ग में नरक और नरक में स्वर्ग का सृजन कर सकता है। इसी कारण सम्पूर्ण चिकित्सा पद्धति (तंत्रोपैथी) या होलिस्टिक मेडिकल सिस्टम की ओर लोगों का ध्यान गया है। लेकिन वे भी केवल मानसिकोपचार के प्रति हठधर्मी बनकर रह गए हैं। सैकड़ों वर्ष के प्रयत्न के बाद भी जहां से चले थे वहीं वे आज हैं।

मन, मस्तिष्क को नियंत्रित करता है और मस्तिष्क शरीर को। मन आज के अत्यधिक प्रतियोगिता और अभावग्रस्त में हमेशा तनाव, दवाव, अस्वस्थ रहने, काम करने के स्थान और वातावरण से भयभीत, शंकालु और शर्मीला बना रहता है जिससे विभिन्न शारीरिक यंत्रिकी असहयोगात्मक और विपरीतात्मक रास्ते अपना लेती है और हम मधुमेह, दमा, कैन्सर, आदि के रोगी बन जाते हैं। मन, शरीर और मस्तिष्क का हाकिम, नेता और सरदार तथा आत्मा का नियंत्रक। आधुनिक दवाओं की उस तक पहुंच नहीं इस लिये आज लोग रोग से मरते नहीं, रोगी बनकर जीतें हैं। तंत्रोपैथी आत्मा तक पहुंच कर रोगों के उपचार की विधि है।

तांत्रिकी उपचार

उपचार सम्बन्धी तांत्रिकी दृष्टिकोण

तांत्रिकी संयम और उपचार, स्वास्थ्य का अध्ययन करके सर्वोत्तम स्वास्थ्य, सफल, आकर्षक और अह्लादित व्यक्तित्व निर्माण सम्बन्धी, संयमात्मक और उपचारात्मक तरीके निकाले गये हैं। वस्तुतः तंत्र आत्मनियंत्रण को स्वास्थ्य की कुंजी मानता है। जितना अधिक हम अपने अंगों, उपांगों, आवेग-सम्वेगों और मन को नियंत्रित कर सकते हैं, उतना ही अधिक अपनी जीवनीशक्ति को संचित कर निरोग रह सकते हैं। हमारे शरीर के अगणित कोषों का सुचारु रूप से कार्य करते रहना और देश, काल, पात्र (टाइम, स्पेस, परसन) के मुताबिक उनका निर्माण एवं विसर्जन होते रहना हमारी जीवनीशक्ति है। नियंत्रण दमन से नहीं तांत्रिकी अनुशासन से होता है। दमन उच्छृंखलता और बदचलनी में प्रकट होती है। मन भी तनाव और दवाव से भर कर उस गेंद की तरह हो जाता है जिसे जितना ही अधिक दवाया या जमीन पर पटका जाये वह उतना ही अधिक उछलता है। आत्मनियंत्रण अनुशासन की एक कला है और यह क्रमिक और निरन्तर अभ्यास से आता है। इसी से हमारे सम्पूर्ण शारीरिक क्रियाओं का नियंत्रण, मानसिक संतुलन तथा साम्वेगिक-आवेगिक स्थिरता आती है और साथ-ही-साथ संकुचित मन को, जिससे रोगों को आमंत्रण मिलता है या रोगी बने होते हैं, विशाल कर हमारे हृदय को प्रेम, अह्लाद तथा उमंग से भर देता है

जिससे हम अपने मन, शरीर, आवेग का परिचालन इच्छानुसार करने लगते हैं। इस विधि से श्वास-प्रश्वास और ग्रन्थि स्राव भी नियंत्रित होता है एवं हमारे अड़ियल स्नायु शान्त और स्थिर हो जाते हैं।

तंत्र एक जीवन-संहिता है, आहार-विहार भी कला है और ये रचनात्मक क्रियाशीलता का स्रोत है। मानव मन के ऊपर, जितनी अधिक गहरी छाप, तंत्र की पड़ी है, उसे देखते हुए मानव सभ्यता का इसे उद्‌गम स्थान मान लिया जाये तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। तांत्रिकी संयम और उपचार की विधि का अभ्यास करने से हमारी अनैच्छिक क्रिया (फिलेक्सऐक्शन) पर पूर्ण नियंत्रण हो जाता है। इसके वाद शारीरिक-मानसिक व्याधियों को प्रवेश का कोई रास्ता नहीं मिलता। अगर किसी रोग के हम शिकार हो गये हैं तो वह इस विधि से जल्द ही दूर हो जाता है। तांत्रिकी संयम और उपचार की प्रमुख विधियां हैं–अंगोपांग शोधन-भेदन विधि और अधः ऊर्ध्वक्रमाक्रम विधि। अंगोपांग की शोधन-भेदन विधि से हमारे शरीर के स्नायु तंत्र रक्तसंचार तंत्र, अस्थिपंजर तंत्र, त्वचा तंत्र, पाचनक्रिया तंत्र, रक्तमज्जा तंत्र, श्वास-प्रशवास क्रिया तंत्र, ग्रन्थि तंत्र आदि पैर के अंगूठे से लेकर शिर के बाल तक का पूर्ण व्यायाम हो जाता है।

इस विधि का अभ्यास बाल-वृद्ध, नर-नारी, निरोग-रोगी, युवा-युवती, सभी अवस्थाओं में कर सकते हैं। अधःउर्ध्वक्रमाक्रम विधि आवेगिक, साम्वेगिक और मानसिक नियंत्रण का अभ्यास है। इसके अलावा दूर-करीब-अन्तर निर्मेवर्जन विधि, आत्म सम्मोहन विधि और न्यासाकर्षण विधि भी मानसिक तनाव-दबाव को कम करने की उपयुक्त विधि है। अंगोपांग शोधन-भेदन विधि मुख्यतः श्वासन, वीरासन, अर्ध्वपद्‌मासन और सिंहासन युक्त मुद्राएं हैं, जिसे केवल लेटकर या बैठकर किया जाता है। इसमें न हठयोग का पुट है और न व्यावसायिक महंगे उपकरणों द्वारा अनावश्यक और अस्वस्थकर व्यायामों का समिश्रण। यह तो सम्पूर्ण शारीरिक, मानसिक और आवेगिक तंत्रों को झंकृत कर, सहजता, सुलभता और मधुरता की एक लड़ी तैयार की गई है। इसके स्वर पर मनमयूर खूब नाचता, थिरकता और अपने आप अनुशासित, नियंत्रित और रोग मुक्त होने लगाता है। यह अभ्यास सक्रियता और निष्क्रियता, सचेष्ट और निश्चेष्ट की दूरी मिटा कर शरीर की क्लान्ति और मानसिक थकान को दूर करता है। इससे शरीर स्फूर्ति, मन हल्का, एंव ग्लानि, भय, चिन्ता आदि से मुक्त हो जाता है।

हमारा शरीर, सुन्दर और आकर्षक हो यह एक स्वाभाविक प्रवृत्ति है। लेकिन अपने सौंदर्य और आकर्षण को ही सब कुछ समझकर दूसरे से प्यार करने या प्यार पाने की ललक न जगाना एक मानसिक विकृति है। इसे ही मनोवैज्ञानिक 'औनानिज्म' कहते हैं। इसी प्रवृत्ति पर नियंत्रण पाने के लिए तंत्र में सौंदर्योपासना (भूतयज्ञ) द्वारा सुरुचि को हममें जगाने की व्यवस्था है। इसे आध्यात्मिक उपलब्धि कहा गया है। ऋषियों ने जिसे "ब्रहमानन्द सहोदर" उपाधि से विभूषित किया है, वह सुगठित; सुपुष्ट; सुसंस्कृत, शरीर; संतुलित, नियंत्रित मन तथा आवेगिक, साम्वेगिक स्थिरता ही है। जब हम वाल्यपन से किशोरावस्था में प्रविष्ट करने लगते

हैं तब हमारे शारीरिक विकास के साथ-साथ विभिन्न प्रकार का द्रव (हारमोन) निकल कर हमारे रक्त में मिश्रित होना शुरू हो जाता है। इससे हमारे मन में प्रेम और उमंगें हिलोरें लेने लगती हैं। इसी उम्र में तांत्रिकी संयम और उपचार की अधिक आवश्यकता पड़ती है। क्योंकि किसी विशिष्ट ग्रन्थि का अधिक स्राव, एक तरफ विभिन्न गलत-आदतों को डालकर हमें रोगी बना देता है और दूसरी ओर उमंग गलत दिशा में निर्देशित होकर हममें नैराश्य और अपराध भावना को ला देता है और हम मानसिक सतुंलन खो बैठते हैं।

हमारे असंयमित और रोगी होने का प्रमुख कारण है भय। इस तथ्य की पुष्टि आधुनिक मानसोपचार शास्त्री और मनोविश्लेषकों ने भी की है। मानव जीवन के क्रमिक विकास का इतिहास तैतीस कोटि योनियों के भय, संदेह, निर्ममता और दर्दनाक मृत्यु का इतिहास है। बड़े पेड़ छोटे पेड़ों का रस लेकर उसे सुखा देते हैं और बलिष्ट जानवर छोटे और कमजोर जीवों को मौका पाते ही अपना आहार बना लेते हैं तथा उन्हें निर्ममता से मारते हैं। बुढ़ापा, बीमारी और मृत्यु का भय इसी प्रकार हमने वंशानुक्रमिक रूप में पाया है। मनुष्य विवेकशील और सभ्य होने के नाते पशुओं की तरह अपने से कमजोर की हत्या तो नहीं करता लेकिन उसके धन का अपहरण कर दाने, दाने के लिए उसके सारे परिवार को तड़पा-तड़पा कर मारता है। यही कारण है कि दुनिया के न्याय की किताबों में सबसे अधिक धन संग्रह और सुरक्षा सम्बंधी कानून पाये जाते हैं।

आलोचना, दरिद्रता, प्रिय-विछोह आदि का भय भी सामाजिक भय के रूप में हमने अर्जित किया है। ये भय रूपी भूत ही हमें व्याधि के रूप में अधिक सताते हैं और इन भूतों को भगाने का समुचित प्रबंध नहीं किया गया तो जान भी ले लेते हैं। हमें सबसे अधिक खतरा अपने से है, अन्य से नहीं। कमजोर फल में ही कीड़े लगते हैं। उसी प्रकार विषाक्त सूक्ष्म जीवाणुओं का आक्रमण भी हम पर तभी होता है, जब हमारे शरीर का रक्त विभिन्न भय रूपी भूतों द्वारा पी लिया जाता है और हमें कमजोर कर दिया जाता है। भय की स्थिति में हमारे मस्तिष्क की स्वाभाविक लयात्मकता भंग हो जाती है और हम विभिन्न व्याधियों के चपेटे में आ जाते हैं।

भारतीय तंत्र की यह मान्यता है कि प्रत्येक विचार तरंग मन को, प्रत्येक मानसिक स्पंदन जीवन को और प्रत्येक प्राणिक आवेग-सम्वेग मन, प्राण एवं शरीर को प्रभावित करता है। इसकी पुष्टि आज के मनोविज्ञान और मानसोपचार शास्त्र ने भी की है। हम सब कुछ हासिल कर सकते हैं और विकट कठिनाइयों से छुटकारा पा सकते हैं, बशर्ते हम अपने मन को उसी प्रकार से प्रशिक्षित करें। अगर हम अपने मस्तिष्क को, जो पूर्ण शक्तिसम्पन और सक्षम है उत्साहित करते रहें तो हमारे लिए शारीरिक, मानसिक, साम्वेगिक एवं स्नायुविक समस्याओं तथा उपद्रवों को दूर करना कोई मुश्किल बात नहीं। हमारे मस्तिष्क की क्रिया में स्वाभाविक लयात्मकता होती है और यही हमारी अभियोजनशीलता को नियंत्रित

करती है। तांत्रिकी संयम और उपचार विधियों द्वारा मस्तिष्क की इसी लयात्मकता के आदि और अंत में परस्पर सम्बन्ध स्थापित किया जाता है साथ-ही-साथ वह मनोदैहिक क्रियाओं को करने के लिए पूर्ण सक्षम हो जाता है। इसे ही उपचार की भाषा में स्वतः निवारण-क्षमता को प्राप्त करना कहते हैं।

काया और माया एक स्वाभाविक प्रवृत्ति है। उसके विकास की इच्छा का जागना और उसका समुचित उपयोग होना, एक प्राकृतिक प्रक्रिया है। जीवन एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसे कलात्मक ढंग से छेड़ने से ही सुरीली आवाज निकलती है। आनाड़ी ही उसे छेड़कर, बेसुरा कर, रोगी बना देते हैं और अनाड़ी कहलाते हैं। संन्यासी की धुरी है आत्म-नियंत्रण और गृहस्थ की धुरी है सुसंस्कृत गृहस्थ जीवन। तांत्रिकी संयम और उपचार, दोनों ही अपनी-अपनी धुरी पर नाचने और निरोग बन जाने की, कला है। हमारे शरीर का कोई अंग घृणित और उपेक्षणीय नहीं है चाहे वह गुप्तांग हो या जननेन्द्री या नारी का स्तन। प्रकृति ने सारे शरीर की संरचना किसी बड़े उद्देश्य की पूर्ति के लिए की है। इस विधि से ये अंग भी निरोग, सुविकसित और सुपुष्ट होते हैं।

सदाशिव ने ध्वनि विज्ञान और स्वर विज्ञान को जन्म दिया था। उन्होंने यह पाया कि ध्वनि और स्वर स्वांस लेने की क्रिया पर आश्रित है। अपनी खोज के विषय को उन्होंने आगे बढ़ाया और इसके लिए विभिन्न मुद्राओं का आविष्कार किया और इन मुद्राओं का हमारे शरीर पर विभिन्न ग्रन्थिस्रावों के प्रभाव का भी गहन अध्ययन किया।

प्रत्येक मुद्रा का प्रभाव विशिष्ट ग्रन्थि पर पड़ता है औंर साथ-ही-साथ वह उसके इर्द-गिर्द के तनाव युक्त नसों पर सुखदायक प्रभाव छोड़ता है। उन मुद्राओं को लचीला बनाता है। इसके पहले व्यायाम मात्र जानवर की तरह उछलना, कूदना और शरीर के अंगों को जानवर की तरह फेंकना मात्र था। उन्होंने व्यायाम को व्यवस्थित लय युक्त और सार्थक बनाया। तंत्रोपैथी इसी प्रक्रिया को और अधिक लयात्मक और सार्थक बना कर शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य लाभ कराने की दिशा में प्रयत्न है।

तांत्रिकी उपचार विधियाँ

तांत्रिकी संयम और उपचार जीवन को एक वीणा मानता है। जिस प्रकार वीणा का तार बहुत कस दिया जाये तो उसे छेड़ते ही वह टूट जायेगा। मनुष्य अति संयम के कारण शारीरिक, मानसिक दृष्टि से रोगी हो जायेगा। जीवन रूपी वीणा के तार अधिक ढीले होने से भी संगीत पैदा नहीं होगा और हम कुत्ता-सुअर की तरह जी लेंगे। जीवन-वीणा के सुमधुर संगीत पर मन-मयूर को नचा देना ही स्वस्थ, सफल, आकर्षक और अह्लादित व्यक्तित्व को पा लेना है। जल, धूप हवा और मिट्टी जीवन का आधार है इसलिए उसे निरोग करने की क्षमता भी इसमें है। इसलिए देश, काल, पात्र के मुताबिक उपचार के लिए तंत्र सयंम और उपचार का निर्देश देता है। रासायनिक दवाओं का महत्त्व भी रोग

के वेग को कम कर देने की दृष्टि में कम नहीं है। क्योंकि किसी रोग के वेग को कम कर देना रोगी में सुषुप्त 'स्वतः रोग-निवारण-क्षमता' को तेजी से अपना काम करने का मौका देना है। रासायनिक दवाएं रोग दूर नहीं करतीं, बल्कि रोग के वेग को कम कर देती हैं। और अगर रोगी को अधिक मात्रा में रासायनिक दवाएं दी जाएं जो वह और रोगी बन जाता है। इसी प्रकार हम शल्य चिकित्सा तथा आधुनिक स्वास्थ्य जाँच के उपकरण को भी नजरअंदाज नहीं करते।

तांत्रिकी उपचार विधियों में हमने यहां न्यासाकर्षण विधि, प्रक्षेपण-आरोपण विधि, अजपा-क्रमाक्रम विधि, निमेष-वर्जन विधि, लक्ष्य भेद विधि, अधःउर्ध्वक्रमाक्रम विधि, कर्मज्ञान भाव उद्‌बोधन विधि, अंगोपंग शोधन-भेदन विधि आदि का वर्णन किया है।

न्यासाकर्षण विधि

इस विधि में चिकित्सक रोगी की आँखों में देखते हुए मधुर शब्दों में स्वागत करता है और रोगी का आत्मीय शुभचिन्तक बनकर उसकी नब्ज पर हाथ रखते हुए धैर्य के साथ उसके रोग का वृतान्त सुनता है। अपनी तरफ से सिर्फ कुछ शब्द ही आवश्यकता पड़ने पर बोलता है। इसके बाद वह रोगी के त्रिकुटी पर अपना ध्यान स्थिर कर देता है और उसे संयम और व्याधि के उपचार सम्बन्धी उत्साहवर्धक आवश्यक बातों को बताता है। उपचारक को इस बार रोगी को आरामदेह बिस्तर पर लिटाकर उसके फुफ्फुस, हृदय और शारीरिक तापमान की परीक्षा भी करते जाना चाहिए। आँखें, कलाई, त्वचा और त्रिकुटी अत्यधिक संवेदनशील स्थान होते हैं। इसलिए रोगी के स्वतः रोग निवारण क्षमता को उकसाने तथा अपनी उत्साह वर्द्धक बातों को उसके मस्तिष्क में बैठाने के लिए इसका पूरा प्रयोग करना चाहिए। हमें यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि एक चिकित्सक रोगी के आचार्य और शुभचिन्तक की भूमिका निभाने के बाद ही वह तांत्रिकी संयम और उपचार कर सकेगा और नये संस्कारों को डालकर उसे संयमित जीवन व्यतीत करने के लिए तैयार कर सकेगा। परिचारक और परिचारिका को भी रोगी के प्रति सौहार्द पूर्ण और अपने कर्तव्य में पूर्ण तत्पर होना अति आवश्यक है जिससे उपचार गृह को रोगी अपना घर समझने लगे। उपचारक और परिचारिका की पोशाक साफ सुथरी होनी चाहिए। उपचारक को केसरिया गाउन रोगी का परीक्षण करते वक्त पहने रहना उसके व्यक्तित्व को अधिक भव्य, आकर्षक और प्रभावोत्पादक बना देता है। परिचारक और परिचारिकाओं को भी इसका ध्यान रखना होगा। रोगी को तत्काल परीक्षण के बाद एक औंस अच्छा सुगंधित पेय आवश्यक रासायनिक दवा के साथ अपने हाथों से उपचारक को पिला देना चाहिए।

उपचारक का कमरा अलग होना चाहिए और उसमें साढ़े तीन से साढ़े छः फीट का एक कोमल तकिया के साथ परीक्षण बिस्तर होना चाहिए। उस तकिया पर 5 बार दाहिने हाथ को वायें-दायें, धीरे-धीरे, हल्के अपनी अंगुलियों को

घुमाकर उसके संवेदनशील अणुओं को उत्तेजित करने के बाद ही रोगी का कमरे में स्वागत करना और नब्ज परीक्षण करना चाहिए। रोगी की नब्ज पर बहुत हल्का दबाव अंगुलियों का होना चाहिए। तथा कम-से-कम आधुनिक रासायनिक दवाओं को लिखना चाहिए। रोगी को यह बतला देना उपचारक का कर्तव्य होता है कि वे दवाएं रोग को बढ़ाने से रोकेंगी लेकिन उसे समूल नष्ट करने के लिए संयम और उपचार की विधियों का नित्य प्रति अभ्यास जरूरी है। रोग की गम्भीरता को देखते हुए रोगी के खून, पेशाब, पाखाना और विशिष्ट अंगों का एक्सरे करा लेना आवश्वयक होगा, जिससे उपर्युक्त उपचारात्मक विधियों का अभ्यास कराया जा सके।

उपचारक के साथ रोगी का प्रथम साक्षात्कार स्वतः रोगनिवारण क्षमता के विकसित करने की दृष्टि से बड़ा महत्त्वपूर्ण होता है। इसीलिए कम-से-कम पांच मिनट और अधिक-से-अधिक 15 मिनट का समय प्रत्यक रोगी को देना अच्छे उपचारक के लिए आवश्यक है। उपचारक का चंचल और बातूनी होना और रोगी के सामने ही किसी दूसरे व्यक्ति से बातें करना या किसी अन्य विषय पर ध्यान देना उपचारक और रोगी दोनों के लिए घातक होता है। उपचारक को भी अजपाक्रमाक्रम विधि को रोगी की बातें सुनते वक्त करते रहना चाहिए। इससे उपचारक का मन स्थिर और शान्त रहता है और वह रोगी के त्रिकुटी पर ध्यान भी केन्द्रित रख सकता है। ध्यान रहे, ध्यान केन्द्रीकरण के वक्त अगर पलकों में तनाव रहेगा तो वे बार-बार गिरती रहेंगी। इसलिए उसे बार-बार गिरने से रोकने के लिए पलकों को ढीला और स्वाभाविक रखना चाहिए। इसका अभ्यास भी उपचारक को सुबह-शाम नजदीक निमेष-वर्जन विधि के अनुसार करते रहना चाहिए।

उपचारक को चार बातें हमेशा ध्यान में रखनी चाहिएं।

1. धीरे-धीरे प्रेमपूर्ण भाषा में बोली गई बातें चाहे वह कुछ शब्द या एक आध वाक्य ही क्यों न हो, रोगी के अन्तःकरण में प्रविष्ट कर जाती हैं। उपचारक के प्रति रोगी में श्रद्धा और विश्वास उत्पन्न करने का काम उपचार गृह के परिचारक और पारिचारिकाओं का होता है, उपचार-कक्ष का नहीं। वैसे उपचारक का साधक होना अति आवश्यक है।

2. रोगी की बातें उपचारक को ध्यान से सुननी चाहिएं और बिना बाधा दिये उसे बोलने देना चाहिए। अगर रोगी रुकता हुआ दिखाई पड़े तो उसे बोलने के लिए उत्साहित करना चाहिए और साथ-ही-साथ कागज पर अपना मन्तव्य भी लिखते जाना चाहिए। इस क्रम में रोगी अपने असाध्य व्याधि के शारीरिक मानसिक और सविगिक कारणों को किसी-न-किसी प्रसंग में व्यक्त करता रहता है।

3. रोगी को विभिन्न तांत्रिकी अभ्यासों को सुबह-शाम करते रहने की प्रेरणा देने का कार्य और निरीक्षण स्वयं उपचारक को करना होता है और साथ-ही-साथ

सत्संग आक्षेपण भावना के लिए स्वयं परिचारकों के साथ अभ्यास में उसे शरीक होना होगा। रोगी को कम बोलने, सदा अजपा क्रमाक्रम विधि और अधः-अर्ध्वक्रमाक्रम विधि करते रहने के लिए उपचारक को बीच में कई बार आदर सूचक शब्दों में पूछ लेना चाहिए और विभिन्न उपचार विधियों की शिक्षा विशिष्ट कमरे में रोगी की व्यथा कम होते ही दे देनी चाहिए।

उपचारक को सुबह सामूहिक रूप से समय पर नेति, धोति, व्यापक-शौच कौशिकों, आवर्त किर्तन आदि सभी रोगी को कुछ दिन अपने निरीक्षण में कराना चाहिए और उसके संतुलित आहार के प्रति स्वयं उपचारक को सतर्क रहना चाहिए।

प्रक्षेपण-आरोपण विधि

हमारी सभी क्रियाओं के तीन स्तर होते हैं–अवचेतना, अन्तःचेतना और अतिचेतना। इन तीनों में से किसी पर भी हमारा अधिकार नहीं होता और न पूर्व ज्ञान ही होता है। वस्तुतः जिस काम को हम करते हैं, जानते हैं, या करना चाहते हैं वह हमारी ऊपरी सत्ता है जिससे यंत्रवत सारा काम अपने आप चलता है। इन क्रियाओं का स्रोत अवचेतना, अन्तःचेतना और अतिचेतना है। चेतना के इस ऊपरी सतह का ही नाम अहंकार और अहम् है। इसे ही अभ्यासगत ज्ञात क्रिया के रूप में हम जानते हैं, करते हैं और करना चाहते हैं। यह चेतना की ऊपरी सतह है, जिसका अधिकांश भाग इन तीनों गुप्त और अज्ञात चेतना के स्तर के रूप में पड़ा रहता है। अवचेतना की तरंगों को तमोगुण, अन्तःचेतना के तरंगों को रजोगुण और अतिचेतना के तरंगों को सतोगुण के रूप में साधना विज्ञान ने वर्णन किया है। हमारी चेतना या प्रकृति को इसीलिए त्रिगुणात्मक कहा गया है। हम स्वस्थ हैं या रोगी, यह हमारे चेतना या प्रकृति, उपर्युक्त तीन विभिन्न स्तरों की लहरों (सत्व, रज, तम) के उठने और परिवर्तित-परिवर्धित होने का प्रतिफल है। साधकों ने अवचेतना को प्राण, अन्तःचेतना को मन और अतिचेतना को आत्मा कहा है।

अवचेतना दबी हुई अन्तर्निहित चेतना का निम्नतर स्तर है। जैसा कि निम्न चित्र से यह बात और अधिक स्पष्ट होगी। इसमें कुछ भी मूर्त्त या व्यक्त रूप नहीं होता। इसमें हमारी प्रवृत्यात्मक आवेग, सम्वेग, शारीरिक वंशनुक्रमिक और सामाजिक वंशानुक्रमिक, बुढ़ापा, बीमारी, मृत्यु, आलोचना, दरिद्रता, तथा प्रिय विछोह का भय एवं स्वगत भावना और परगत भावना आदि द्वारा अर्जित कूड़ाकर्कट सदृश्य अर्जित संस्कार और आदतें भी वर्तमान रहती हैं। ये विभिन्न स्तर की भावनाएं चेतना की ऊपरी सतह में उठने का प्रयत्न करती रहती हैं। वे सारी चीजें भी जिन्हें हमारा अहम् अनुभव करता है और जिसको सामाजिक भयों के चलते दमन कर दिया जाता है इसी अवचेतना में शरण पा लेती है और तमोगुणी लहरों के रूप में बाहर आने के लिए गर्जन-तर्जन करती रहती हैं। ये सुस्पष्ट स्मृति के रूप में नहीं बल्कि अस्पष्ट और कभी दूर न होने वाले संस्कारों

के रूप में वहां बनी रहती हैं। वे भावनाएं कभी स्वप्नों के रूप में और कभी पुराने विचारों, अनुभवों, क्रियाओं आदि के रूप में फट निकलने वाली जटिल मानसिक ग्रन्थियों के रूप में आ जाती हैं और हमारी विभिन्न व्याधियों और असामाजिक व्यवहारों के रूप में प्रकट होने लगती हैं।

यह दिलचस्प बात है कि हमारी प्रकृति का ऊपरी स्तर अहंकार या अहम् केवल 5 प्रतिशत भाग घेरता है। बाकी का 10 प्रतिशत अन्तःचेतना या मन, 5 प्रतिशत अतिचेतना या आत्मा तथा 80 प्रतिशत अन्तःचेतना या प्राण घेरते हैं। इस प्रकार हमारी प्रकृति का अवचेतना स्तर वास्तविक शक्ति और ज्ञान का स्रोत है। यह हमारे वास्तविक स्वास्थ्य, क्रिया और प्रेरणा का उद्गम स्थान है। यह अवचेतना भावना प्रक्षेपण-आरोपण हो या परगत भावना प्रक्षेपण-आरोपण। जो स्वगत भावना प्रक्षेपण-आरोपण से अत्यधिक प्रभावित होता है। चाहे वह स्वगत भावना प्रक्षेपण-आरोपण विधि से किया जाता है, वह शारीरिक, मानसिक और प्राणिक संयम और उपचारात्मक महत्त्व रखता है और विभिन्न शारीरिक, मानसिक बीमारियों में राम-वाण की तरह काम करता है। किसी साधुवावा की भभूत, गुरु की दीक्षा और तांत्रिक का अभिमंत्रित जल और कोई सामग्री, व्यक्ति की प्रकृति में आमूल परिवर्तन लाने और व्याधियों को दूर करने के पीछे यही प्रेक्षेपण-आरोपण विधि काम करती है। यह बात दूसरी है कि व्यक्ति जितना अधिक जाने-अनजाने विभिन्न साधनाजन्य अभ्यासों से अपने अवचेतन का संयमन और नियंत्रण करने में कुशल होता है, वह उतना ही अधिक विभिन्न व्याधियों को दूर करने और दूसरे को अभियोजनशील बनाकर उसे सफल आकर्षक और आह्लादित व्यक्तित्व प्रदान करने में सक्षम होता है। ऐसे ही महापुरुष को साधना विज्ञान में परम पुरुषार्थ, परम पुरुष, महाकौल, सद्गुरु आदि कहा गया है।

हमारा अवचेतन मन प्रक्षेपण आरोपण भावना प्राप्त करने और दूसरों को देने के लिए पूर्ण सक्षम होता है। मन जव दूसरे किसी स्रोत से आरोपण भावना करता है, तव परगत-प्रक्षेपण-आरोपण भावना कहलाता है, और जब स्वतः अपनी चेतना में किसी बात या भावना या घटना को बार-बार अभ्यास कर, (दुहराकर) करता है तव वह स्वतः प्रक्षेपण-आरोपण भावना कहलाता है। प्रत्येक व्यक्ति इन दोनों प्रकार की विधियों से स्वतः प्रशिक्षित होकर शारीरिक, मानसिक, सांवेगिक सामाजिक और आध्यात्मिक व्यवहार किया करता है। अगर हम चाहते हैं कि हमारी भावनाएं हमेशा हमारे लिये शुभ और स्वस्थ हों या अगर वह अस्वास्थ्यकर कुमार्ग की ओर मुड़ गयी हैं और विभिन्न व्याधियों का कारण बन गयी हैं तो उन्हें प्रक्षेपण-आरोपण विधि द्वारा ही ठीक किया जा सकता है।

आज मनोविज्ञान जिसकी खोज कर रहा है, उसे तंत्र ने हजारों वर्ष पूर्व ही हमें सिखाया था। भारत में इसका अनुसरण कर अच्छे-अच्छे साधक, वक्ता, ऐश्वर्यशाली, प्रशासक आदि बने थे। प्रक्षेपण-आरोपण पद्धति हमारे भावों को अधिक प्रभावित करती है वनिस्वत तर्क के। इसीलिए यह विधि विभिन्न व्याधियों के उपचार तथा आदतों और संस्कारों के संयमन के लिए अधिक उपयुक्त होती

है। केवल शब्द मात्र जो बोला गया या लिखा गया हो वह उतना प्रभाव हमारी अवचेतना पर नहीं डालता, बल्कि उससे कई गुना अधिक प्रभाव स्वतः उच्चारित, परिलक्षित और सुना हुआ शब्द डालता है। इसे ही क्रमशः शुभ-प्रक्षेपण-आरोपण भावना, स्वाध्याय, प्रक्षेपण आरोपण-भावना और सत्संग-प्रक्षेपण-आरोपण भावना कहते हैं। भारतीय दीक्षा देने सत्संग, प्रक्षेपण-आरोपण-विधि द्वारा निर्देशित विचारों के पैर निकल आते हैं।

प्रक्षेपण-आरोपण विधि हमारी प्रकृति या चेतना के उस बड़े भाग को प्रभावित करती है, जहां ज्ञान और तर्क द्वारा उपेक्षित मानसिक ग्रन्थियां होती हैं। इस विधि द्वारा आरोपित-प्रक्षेपित विचारों से आत्म-सम्मोहित होकर रोगी अपनी आदतों संस्कारों, विचारों, आवेग-सम्वेगों आदि को नियंत्रित करने लगता है। इससे उसकी जिह्वा अनुशासित हो जाती है। मानसिक अपराध भावना ग्रन्थि नष्क्रिय हो जाती है तथा उसमें दुश्चिन्ता, दर्द व्याधि आदि का मुकाबला करने के लिए प्रतिरोधक शक्तियां स्वतःरोग-निवारण शक्ति द्वारा प्रर्याप्त मात्रा में विकसित हो जाती हैं। इससे रोगी में आत्मविश्वास प्रचुर मात्रा में आ जाता है और रोगी उद्देश्यविहीन घूमने या निरुद्देश्य व्यस्त रहने की आदत से छुटकारा पाकर स्वस्थ, सफल, आकर्षक और अह्लादित व्यक्तित्व को प्राप्त कर लेता है। हमारी नीरस और उबाने वाली क्रियाओं को सरस और मोहक बनाने तथा विभिन्न असाध्य बीमारियों को दूर करने के काम को प्रक्षेपण-आरोपण विधि ही कर सकता है। तंत्र की अपनी मान्यता है कि भय और कुछ नहीं केवल हमारी अनियंत्रित कल्पनाशीलता है।

1. अवचेतना को अपनी पकड़ में लाने के लिए तथा प्रक्षेपण-आरोपण को उपयुक्त बनाने के लिए हमें आदमकद आइने के समक्ष सुखासन में बैठकर या ताड़ासन में खड़े होकर उसकी कोई छोटा-सा सार्थक नाम देना चाहिए, चाहे वह अपने ही नाम का छोटा रूप क्यों न हो, या मां, बाबा आदि कोई भी नाम रख लेना चाहिए और उसे कागज पर लिख कर आइने में सदा के लिए चिपकाए रखना चाहिए।

2. जब अपनी किसी आदत को छोड़ना हो या उससे सम्पर्क स्थापित करना हो तो सुखासन में आंखें बन्द कर तथा दोनों हाथों को गोद में एक दूसरे से जुड़ा हुआ, लेकर अधःउर्ध्व क्रमाक्रम विधि को 5 बार अन्तः निमेष-वर्जन विधि की स्थिति में करना चाहिए और इसके बाद मन-ही-मन उसी नाम से जो नाम अपने अवचेतन के लिए दिया है पुकारना चाहिए, "बाबा" मैं तुम्हारी आवश्यक मदद चाहता हूँ। मेरे साथ सदा रहकर हमारे अमुक कार्य को करने या व्याधि को दूर करने में मदद करो। हम तुम एक हैं और हमारी मदद करने से ही तुम्हारी मदद हो जाती है। इसे पाँच बार धीरे-धीरे या मानसिक रूप से दुहराएं।

3. अपनी इच्छा की ओर अवचेतन का झुकाव करने के लिए कल्पना मात्र ही नहीं, उस काम को मानसिक रूप से होते हुए देखें और ऐसा अनुभव करें

जैसे उस इच्छा की पूर्ति हो रही है। जैसे उस पार (दृष्टि अन्तर्दृष्टि) से हृदयरोग, रक्तचाप, दमा, आदि रोग जिससे पीड़ित हैं, मुक्त होकर अपनी महत्त्वपूर्ण इच्छा की पूर्ति, भले-चंगे होकर, कर रहे हैं। संयम की दृष्टि से बर्दाश्त करने (अहिंसा), गुण विवचेन करने (सत्य), पाने से अधिक करने (अस्तेय), आत्म-नियंत्रण (ब्रह्मचर्य), सादा जीवन यापन से कुछ बचाकर सामाजिक कल्याण में लगाने (अपरिग्रह) आदि क्रिया, मानसिक रूप से मानसिक कल्पना में किसी विशिष्ट परिस्थिति में कर रहे हैं। तांत्रिकी संयम और उपचार द्वितीय भाग में इसे और अधिक स्पष्ट किया गया है। पूर्ण विश्वास के साथ मन रूपी आइने में 15 मिनट इस चित्र को देखें। इसके बाद एक मिनट मस्तिष्क को विचार शून्य कर अवचेतना को दोनों हाथ जोड़कर नमस्कार, यह कहते हुए करें–बाबा तुम्हें बहुत-बहुत धन्यवाद। नमस्कार करने के इस प्रारम्भिक नियम को कभी न भूलें क्योंकि इसके अभाव में अवचेतना की अनुकूल प्रतिक्रिया से रोगी वंचित रह जायेगा। सोने से पूर्व और जागने से पहले इस विधि का अभ्यास नित्य प्रति व्याधिमुक्त होने के बाद अवश्य किया करें। इच्छा के अनुकूल विषयों के लिए विषय परिवर्तन करते रहना चाहिए।

हमें यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि हमारा अवेचतन मन एक क्षण के लिए भी सुस्त नहीं बैठता है। अगर हम स्वतः प्रक्षेपण, आरोपण विधि द्वारा अपने अवचेतन मन में किसी विचार या विषय का प्रक्षेपण-आरोपण नहीं करते तो वह स्वगत आक्षेपण-प्रक्षेपण और परगत-आक्षेपण-प्रक्षेपण द्वारा कूड़ाकर्कट सदृश्य विभिन्न आदतों और संस्कारों का खजाना बन जाता है और हमें शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक दृष्टि से व्याधिग्रस्त बना कर जीवन में अस्वस्थ, असफल, अनाकर्षक और दुखी व्यक्तित्व वाला बना देता है। इसे ध्यान में रखते हुए ही कहा गया है–खाली दिमाग शैतान का। इस बात को हमें सदा याद रखना चाहिए कि हम जीवन में तब तक कुछ नहीं कर सकते, जब तक अपनी कल्पना में उसे होते हुए नहीं देख पाते। मैंने स्वयं इस विधि द्वारा कई विभिन्न व्याधियों से ग्रस्त रोगियों को मौत की प्रतीक्षा क़रते हुए अवस्था में बचा लिया है।

हमें यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि अगर हमारी शारीरिक, मानसिक व्याधियों का कारण मन है तो उनका सफल उपचार भी मन ही कर सकता है। अपने अवचेतन मन में प्रक्षेपण-आरोपण कर हम बुरी आदतों से छुटकारा पा सकते हैं, इच्छाशक्ति को बढ़ा सकते हैं, शरीर को सुन्दर और आकर्षक बना सकते हैं, विभिन्न प्रकार के भय को दूर भगा सकते हैं तथा हेय व्यक्ति को भी सफल, आकर्षक और अह्लादित व्यक्तित्व प्रदान कर सकते हैं। विभिन्न प्रकार के सम्प्रदाय इस विधि को किसी-न-किसी प्रकार का रूप देकर, अपना उल्लू सीधा करने में लगे रहते हैं। ध्यान का अभ्यास कर, स्वयं को अन्तर्मुखी बनाना तथा अपने अवचेतन से सम्पर्क स्थापति कर इस विधि द्वारा हर दृष्टि से सफल आर्कषक और कल्याणकारी बनाना है। अगर हमारी कल्पना को अवचेतना की मदद सदा मिलती रहे तो वह अन्तर्दृष्टि और दूर दृष्टि में परिवर्तित हो जाता है। इसके समक्ष कोई चीज न असंभव है और न कोई व्यक्ति असफल।

अजपा-क्रमाक्रम-विधि

निरंतर, बिना विशिष्ट प्रयत्न के श्वास-प्रश्वास के ध्वनि स्पंदन से रोगी स्वयं आत्म-सम्मोहित हो जाता है तथा श्वास-प्रश्वास में तारतम्यता और एकरूपता आने से, जो व्याधि की स्थिति में व्यतिक्रम हुआ रहता है और स्नायु अड़ियल टट्टू की तरह मस्तिष्क को भ्रमित किये रहता है, शांत और संतुलित हो जाता है। रोगी का मस्तिष्क धीरे-धीरे उन विचारों के जाल से छुटकारा पा जाता है जो रोगी को भयाक्रान्त किये रहती है और वह कुछ देर के बाद गहरी नींद में सो जाता है। बुखार, रक्तचाप, हृदय की धड़कन में यह विधि बहुत उपयुक्त सिद्ध हुई है। इससे दिवास्वप्न, दुःचिन्ता और स्वगत एंव परगत भावना द्वारा संस्कारित कूड़ा-करकट सदृश्य हमारे अवचेतन मन के गहरे गर्त में पड़ी आदतें, जो अनजाने ही हमें अपनी ओर मोड़ देती हैं और कई व्याधियों का शिकार बनाकर जीवन क्षेत्र में बार-बार रोड़े अड़ातीं एंव असफल बनाती हैं, निष्क्रिय हो जाती हैं। इससे बड़ा प्रभावशाली सेडाटिव मैंने चिकित्सा विज्ञान में अभी तक नहीं देखा है।

तंत्र के अनुसार कुण्डलिनीतत्त्व हमारे गुदाद्वार से तीन से० मी० ऊपर के स्थल में फैली रहती है और स्वर्णवर्ण की होती है। इसे मूलाधार चक्र कहा गया है। यह स्थल कामोत्तेजक दृष्टि से अत्यधिक उत्तेजक स्थल होता है। इसीलिए शक्ति समागम तंत्र में विशेष रूप से इसका उल्लेख हुआ है कुण्डलिनी शान्त अवस्था में पड़ी रहती है। लेकिन इसका असर बिजली की तरह हमारे शरीर और मन पर होता है। कुण्डलिनी का जागरण व्यक्ति के अच्छे स्वास्थ्य, पुष्ट यौन ग्रन्थि और श्वास-प्रश्वांस नियंत्रण पर निर्भर करता है। आधारभूत कामेच्छा का समसंतुलित रूप ही कुण्डलिनी जागरण का स्रोत है। यह जीवनी शक्ति है, जिसका स्पंदन अपना क्रमाक्रम विधि से होता है। प्रायः समान्यावस्था में अधिकांश लोग 'श्वास' लिया और छोड़ा मात्र किया करते हैं और इसी कारण विभिन्न व्याधियों का शिकार हो जाया करते हैं। इससे रोगी की श्वास-प्रश्वास क्रिया तेज हो जाया करती है और उसके विशिष्ट कष्ट की मात्रा अधिक बढ़ जाती है। यक्ष्मा, दमा और हृदय रोग की व्याधियों में यह प्रक्रिया स्पष्ट देखने को मिलती है और इससे शारीरिक और मानसिक भूख, प्रर्याप्त मात्रा में ऑक्सीजन न मिल पाने के कारण अधिक बढ़ी हुई होती है। मन और शरीर को स्थिर, शान्त, नियंत्रित और अड़ियल स्नायुओं को बस में रखने की एकमात्र साधारण विधि है अजपा-क्रमाक्रम विधि।

इससे जीवनी शक्ति या कुण्डलिनी भी स्पंदित हो उठती है, स्वतः रोग निवारण-क्षमता हममें अधिक बढ़ जाती है और हम जल्द ही निरोग हो जाते हैं। वस्तुतः अजपा-क्रमाक्रम-विधि द्वारा चेतना, शरीर और जीवनी शक्ति एक सूत्र में पिरो दी जाती है। इसीलिए एक के नियंत्रित होने से दूसरा स्वतः नियंत्रित हो जाया करता है और आँख बंद कर अजपा क्रमाक्रम विधि करने से हम तत्काल ही कुण्डलिनी के प्रभाव और उपादेयता को महसूस और प्राप्त करने लगते हैं।

यह विधि शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक शक्ति से नई जीवनी हमें प्रदान करती है। इससे हर प्रकार की व्याधियां छूट जाती हैं, क्योंकि यह विधि मूलाधार में स्थित कुण्डलिनी शक्ति में स्पंदन पैदा करती है। कुण्डलिनी को उत्तेजित करने के लिए अजपा क्रमाक्रम विधि में मूलाधार पर जोर पड़ना आवश्यक हो जाता है यही हमारी छठी इन्द्रिय है।

अजपा क्रमाक्रम विधि सरल और सुगम साधना है। इसका अनुष्ठान हमारे श्वास-प्रश्वास की स्वाभाविक गति को आधार मान कर होता है। बुद्धदेव ने इसे 'आनापान सात' के नाम से अपने अंतरंग शिष्यों को बतलाया था। नाथपंथी तथा चैतन्यदेव ने इसे अजपाजाप कह कर गुणगान किया था। कबीरदास, तुलसीदास आदि महापुरुषों के शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक उत्थान का कारण भी अजपा क्रमाक्रम विधि ही है। सैकड़ों दमा, रक्तचाप, हृदय रोग् तथा स्नायु दुर्बल रोगी इस अजपा क्रमाक्रम विधि से ही रोग निवृत होकर सामान्य जीवन व्यतीत कर रहे हैं। हमें, इस पृथ्वी पर आते ही, श्वास लेना और इसे बन्द होते ही मर जाना है। इस प्रकार जीवन श्वास-प्रश्वासमय है। 24 घंटे में औसतन 21,600 बार हम श्वांस लेते हैं। श्वास की गति जब उथली होती है, तब हम जल्दी-जल्दी श्वास लेते और छोड़ते हैं और उस स्थिति में हमारा शरीर, मन और प्राण अस्थिर और बेचैन होकर "हाय तौबा" मचा देते हैं। इसके प्रतिकूल जब श्वास गहरी चलती है, तब हम मानसिक और शारीरिक दृष्टि से शान्त और स्थिर रहते हैं। आधुनिक वैज्ञानिकों ने भी पता लगाया है कि हमारी अधिकांश बीमारियों का कारण श्वास-प्रश्वास गति का उथला होना है। हमारे श्वास-प्रश्वास की दो प्रकार की गति होती है। व्यक्तिगत और वस्तुगत। जितना ही अधिक हम बर्हिमुखी होते हैं या हमारा वस्तुगत लगाव बढ़ता है, हमारी श्वास की गति तेज हो जाती है चाहे हम भोजन, भाषण और उद्‌घाटन में संलग्न हों या विषय वासना में। ईर्ष्या, घृणा, गुस्सा, लोभ आदि में इसकी गति और अधिक बढ़ जाती है। अन्तर्मुखी होने से हमारी व्यक्तिगत स्थिति होती है और सामान्यतः एक मिनट में 15 बार श्वास-प्रश्वास की गति हो जाती है। अजपा-क्रमाक्रम विधि के अभ्यास से यह गति और धीमी हो जाती है। इससे चित्त शान्त, मानसिक तनाव, दबाव कम और स्वतः रोग निवारण क्षमता के बढ़ जाने से असाध्य रोग भी ठीक होने लगता है।

श्वास का स्पंदन हमारे चित्त की दशा के अनुसार परिवर्तित होता रहता है। ठीक इसी प्रकार अगर हमारा श्वांस का स्पंदन लयबद्ध और संगीतूर्ण हो तो चित्त भी परिवर्तित होने लगता है। चित्त को बदलने से श्वास बदलता है और श्वास के बदलने से चित्त बदलता है। हमारी श्वास जितनी गहरी, लयबद्ध, संगीत पूर्ण और सूत की तरह धीरे-धीरे आती-जाती रहेगी, उतनी ही चेतना नाभी के आस-पास विस्तृत होकर फैलने लगेगी। गहरी श्वास पेट में कम्पन और नाभी क्षेत्र को आन्दोलित करता है। उथला श्वांस लेने से नाभी केन्द्र, जिसे मणिपुर चक्र भी कहते हैं सुस्त पड़ जाता है। निर्भीकता नाभी केन्द्र को बहुत मजबूत करती है। हमें यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि बुद्धि का केन्द्र मस्तिष्क, भाव

का केन्द्र 'हृदय' और संकल्प का केन्द्र नाभी है। हमारी नाभी जितनी सजग और विकसित होगी, संकल्प शक्ति भी उतनी ही दृढ़ होगी। संतुलित आहार-विहार, निद्रा और श्रम के साथ अजपा-क्रमाक्रम विधि का क्रमिक अभ्यास जीवन में एक नयी रोशनी बिखेर देता है। तंत्र की इस सीख को हम सदा याद रखें, जहां जीवन का भय बुलाता है (श्मशान), जहां असुरक्षा को देखते हुए भी साहस बुलाता हो (जीवट के काम), और जहाँ डर कर लोग भीगी बिल्ली बने हों (दलन, दमन और दोहन), वहाँ पहुंचकर प्रतिवाद कर देने से परमात्मा अवश्य मिल जायेंगे। जिसे वर्षों मंदिर, मस्जिद और गिरजारघर का चक्कर लगाने से भी पाना मुश्किल है। ऐसी स्थिति में रोग अपने आप भागता नजर आएगा।

अजपाक्रमाक्रम विधि नं० 1

अभ्यास के लिए रोगी को बिस्तर पर चित्त प्रेत शैय्या में लेट जाना चाहिए एंव बदन के सारे कपड़ों को ढीला कर देना चाहिए। रोगी की आँखें हल्के ढंग से बन्द होनी चाहिएं और सारा शरीर ढीला पड़ा रहना चाहिए। इसके लिए रोगी को मन-ही-मन अपने पैर की उंगलियों पर ध्यान स्थिर करते हुए सोचना चाहिए वह अंग पूर्ण ढीला हो गया और इसी प्रकार टखने, घुटने, कमर, दोनों बांह आदि होते हुए सिर तक कल्पना करनी चाहिए कि वह ढीला हो गया। इसके बाद रोगी को अपने श्वास-प्रश्वास पर ध्यान स्थिर कर, बिना उसकी गति में किसी तरह का व्यवधान डाले, यह कल्पना करनी चाहिए। श्वास को लेने और छोड़ने के साथ इष्ट मंत्र का उच्चारण हो रहा है। साथ-ही-साथ सुषुम्ना के माध्यम से श्वास लेने और छोड़ने की क्रिया हो रही है।' केवल पांच मिनट के इस अभ्यास से ही रोगी की शारीरिक और मानसिक बेचैनी दूर हो जाती है और अच्छी गहरी नींद भी आ जाती है।

रोगी को सुलाने के लिए दाहिने करवट सिंह शैय्या में लेटा देना चाहिए और अर्ध-उर्ध्व-क्रमाक्रम विधि का अभ्यास कराते हुए गहरी नींद में सुलाना चाहिए। क्योंकि प्रेत शैय्या पर रोगी के सो जाने से उसे श्वास-प्रश्वास में थोड़ी कठिनाई होती है और वह बुरा-बुरा स्वप्न भी देख सकता है या जोर-जोर से खुर्राटे लेकर अगल-बगल के रोगी की नींद में बाधा पहुंचा सकता है। हृदय रोग अथवा दमा आदि के रोगी को ये दोनों विधियों का अभ्यास प्रारम्भ में अवश्य कराना चाहिए और रासायनिक दवाओं का कम-से-कम प्रयोग करना चाहिए।

अजपाक्रमाक्रम विधि नं० 2

रोगी अगर शारीरिक दृष्टि से कमजोर नहीं है और साथ-ही-साथ उसे दमा और हृदय रोग का दौरा तत्काल नहीं हुआ है तो इस विधि के अभ्यास से श्वास, रक्त, हृदय और स्नायु के रोगियों को तीन सप्ताह में ही आशातीत स्वास्थ्य लाभ होता है और आधुनिक रासायनिक दवाओं की आवश्यकता उसे नहीं पड़ती। इस विधि का अभ्यास रोगी को उपचार गृह के नियंत्रित वातावरण में ही कराना

अच्छा होता है। क्योंकि प्रारम्भ में रोगी उत्साह में आकर कभी-कभी नियम का अतिक्रमण कर डालता है और कई परेशानी मोल ले लेता है। रोगी को इस विधि के अभ्यास के लिए आरामदेह बिस्तर पर चित पीठ के बल लेट जाना चाहिए। इसके बाद दाहिने हाथ के अंगूठे से दाहिनी नाक को बन्द कर, धीरे-धीरे श्वास तब तक लेते जाना चाहिए, जब तक पूरा फुस्फुस हवा से भर न जाय और दाहिने हाथ के मध्यम उंगली से बाएं नाक को तत्काल बंद कर पांच बार हृदय की धड़कन को गिनना चाहिए। जैसे ही गिनती खतम हो दाहिने नाक पर से अंगूठे को हटाते ही धीरे-धीरे हवा को छोड़ देना चाहिए। यह अजपाक्रमाक्रम विधि का एक चक्र हुआ। इसी प्रकार सात चक्र का अभ्यास रोगी को प्रतिदिन खुली हवा में सुबह-शाम करना चाहिए। रोगी के सारे वस्त्र को ढीला कर देना चाहिए। रोगी की अवस्था को देखते हुए कम या अधिक पूरक की मात्रा की जा सकती है। गुदा के रोगी को मूलाधार चक्र में पीले रंग के चतुर्भुज पर, जननेन्द्रिय सम्बंधी रोग को स्वाधिष्टान चक्र में दूज के धवल चांद पर, उदर विकारों के रोगी को मणिपुर चक्र में त्रिभुज पर दमा, यक्ष्मा और हृदय रोगी को अनाहत चक्र में घुमाकर वृत पर, कंठ संबंधी रोगी को विशुद्ध चक्र में छोटे तारे पर तथा ग्रन्थि स्राव स्नायु के रोगी को आज्ञा चक्र में प्रकाश पर ध्यान को केन्द्रित रखना चाहिए। यह अभ्यास संस्थान के उपचारक से भली-भांति सीखकर ही करना चाहिए।

निमेषवर्जन विधि

यह विधि उपचार के क्षेत्र में अपना विशिष्ट महत्त्व रखती है। रोगी का मन विशिष्ट व्याधि की दुःश्चिन्ता के कारण अशान्त रहता है और इस स्थिति में रोग की गंभीरता और शारीरिक कष्ट को वह कई गुना अधिक रूप में अनुभव करता है। बार-बार ऐसा करने से उसे इसका अभ्यास हो जाता है। अपने रोग की विशिष्ट स्थिति को बढ़ा-चढ़ाकर बतलाते-बतलाते वह रोग को ही वास्तविक रूप में बढ़ाकर और अधिक परेशानी मोल ले लेता है। इस अवस्था में निमेषवर्जन विधि बड़े काम की सिद्ध होती है। इस विधि का अभ्यास भी सुबह-शाम ही करना ठीक होता है। वैसे व्याधि की अधिकता की स्थिति में इसे कभी भी कराया जा सकता है। यह विधि तीन प्रकार की होती है—करीब निमेषवर्जन विधि, दूर निमेषवर्जन विधि और अन्तर निमेषवर्जन विधि। ये तीनों विधियां एक दूसरे की पूरक हैं। अत्यधिक मन अस्थिर होने की अवस्था में करीब निमेषवर्जन विधि का अभ्यास प्रारम्भिक रूप में कुछ दिन कर लेना आवश्यक होता है। यह मन को तत्काल स्थिर करने की क्षमता रखता है। दूर निमेषवर्जन विधि का अभ्यास सदा शाम को करते रहने से शारीरिक और मानसिक थकावट दूर होती है और प्राकृतिक दृश्यों से अधिक आनन्द की कला में हम प्रवीण हो जाते हैं। अन्तर निमेषवर्जन विधि के अभ्यास के बिना प्रक्षेपण-आरोपण विधि में प्रगति करना मुश्किल होता है। यही सारे उपचारात्मक विधियों की आधारभूत विधि है।

अन्तर-निमेषवर्जन विधि में रोगी को सुखासन में बैठाकर या कमजोर और तकलीफ की स्थिति में उसे शवासन में लिटाकर खुली आँख से अपनी दोनों भौंहों के बीच संधिस्थल (त्रिकुटी) को एक टक देखते हुए धीरे-धीरे श्वास-प्रश्वास, तब तक लेते-छोड़ते रहना चाहिए, जब तब आँख से आँसू न आ जायें; पलकें नहीं गिरने पायें इसलिए आँखों की पलकों को ढीला या तनावहीन रखना चाहिए। इस विधि को करने से कुछ ही क्षण में मन शान्त और श्वास-प्रश्वास एकलय और तारतम्य युक्त हो जाता है और किसी भी प्रकार की तकलीफ से रोगी को तत्काल 60 प्रतिशत आराम पहुँचता है। एक उजले बोर्ड या आइने के बीच में एक काला छोटा बिन्दु देकर उसे चार फुट की दूरी पर रखना चाहिए और उस पर करीब निमेषवर्जन विधि का अभ्यास करना चाहिए। किसी उपरर्युक्त आसन में ही आंखें बन्द कर जब त्रिकुटी में ध्यान केन्द्रित करने का अभ्यास किया जाता है तब: उसे अन्तर निमेषवर्जन विधि कहते हैं। शाम को खुले आकाश के नीचे एक टक बादलों में आँख मिचौनी आकाश के बदले रंग, तारों की झिलमिलाहट या प्राकृतिक दृश्यों का अवलोकन करने को, दूर-निमेषवर्जन विधि कहते हैं।

ये तीनों तांत्रिकी विधियां, ठीक उसी प्रकार चंचल मन को शान्त और स्वच्छ कर देती हैं, जिस प्रकार नदी का आन्दोलित जल, अपने साथ नीचे तक के कूड़ा-कर्कट को पानी से उठाकर ऊपरी सतह पर ला देता है, जिससे सारा जल गंदा दिखने लगता है और जल के शान्त होते ही सारी गदंगी नदी के निचले तल में बैठ जाती है और जल इतना स्वच्छ हो जाता है कि आदमी अपना मुँह भी देख सकता है। रोगी का मन नदी के गंदले जल की तरह अवचेतन मन के विभिन्न प्रकार के कुसंस्कारों और भयरूपी गंदगी और मल से अशान्त रहता है और उसी स्थिति में रोग की पीड़ा से कम और भय और कुसंस्कारों से अधिक वह घवड़ा उठता है। रोगी इस स्थिति में हाय तोबा मचा कर रोग को और अधिक गंभीर बना देता है। स्नायु-दुर्बल रोगियों के लिए तो ये विधियां राम वाण की तरह असर करती हैं। यह विधि वस्तुतः रोगी के विभिन्न प्रकार की शारीरिक वायु (प्राणवायु, अपान वायु, ब्यान वायु, उदान वायु, समान वायु) और दृष्टि स्थिर करने की साधना है, जिसका रोगी को अभ्यास कराना अधिक आवश्यक होता है।

लक्ष्यभेद विधि

यह विधि निमेष-वर्जन विधि की ही चरम परिणति है। इसके अभ्यास के बाद ही रोगी पूर्ण स्वस्थ हो जाता है और उस व्याधि के चपेट में पुनः कभी नहीं आता। रोगी द्वारा अपने को स्वस्थ रूप में, किसी महत्त्वपूर्ण अभिलाषा के लिए प्रयत्नशील होते हुए, अपने मानस पटल पर आँखें बन्द किये ही देखना और फिर आँखें खोल कर भी वह दृश्य मानस पटल पर दिखाई पड़ने के लिए मानसिक प्रयत्न करते रहना ही लक्ष्य भेद विधि है। इसमें सफलता प्राप्त होने से कैंसर, एडस आदि के असाध्य और पुराने रोगी शीघ्र ही अच्छे हो जाते हैं। इसीलिए

इसे लक्ष्य भेद विधि कहा जाता है। इसके लिए तांत्रिकी संयम और उपचार संस्थान से निकलते ही कुछ दिन तक घर में रोगी को अभ्यास जारी रखना आवश्यक हो जाता है। त्रिकुटी में ध्यान केन्द्रित करने से मन, एक टक देखने से दृष्टि, और लक्ष्य की पूर्ति होते हुए मानस पटल पर देखना, वायु स्थिरता है। मन, दृष्टि और वायु स्थिर होने से रोग शीघ्र ही दूर हो जाता है।

अधः-ऊर्ध्व-क्रमाक्रम विधि

इस विधि द्वारा रोगी को पूर्ण विश्राम की स्थित में लाया जाता है। रोगी में अनिद्रा का होना स्वाभाविक हो जाता है और आधुनिक चिकित्सक रोगी को गहरी नींद में सुलाने के लिए सेडेटिव गोलियों को खिलाते हैं। लेकिन कभी-कभी रोगी को इसके लिए कई गोली खाने की आवश्यकता पड़ जाती है, जिससे रोगी में असामान्य स्वास्थ्य और दवा का अभ्यस्त होने की आशंका अधिक बढ़ जाती है। अधः-उर्ध्व-क्रमाक्रम विधि पूर्ण सेडेटिव का कार्य करती है।

आरामदेह बिस्तर पर रोगी को चित्त (पीठ के बल) लिटा दें और आँखें बंद कराकर सारे बदन को ढीला छोड़ने का निर्देश दें। इसके बाद मानसिक दृष्टि से अपने अगूंठे से धीरे-धीरे देखते हुए ऊपर की ओर टखना, घुटना, कमर दोनों हाथ सहित गर्दन तक का भाग, मुँह, नाक, कान, ललाट, सिर के बालों के अग्र भाग का भी निरीक्षण करें। इसी प्रकार सिर के बालों के अग्रभग के नीचे की ओर से प्रारम्भ कर अंग-प्रत्यंग निरीक्षण करते हुए अंगूठे के अग्रभाग का निरीक्षण करें। इस विधि से पाँच बार निचले अंग को देखें और अन्त में पूरे शरीर को दो बार लेटे हुए सम्पूर्ण दशा में ही मानसिक दृष्टि से देखने का प्रयत्न करें। यही अधः-उर्ध्व-क्रमाक्रम विधि है। रोगी को सिंह शैय्या में लिटाकर इस विधि का अभ्यास करना ठीक होता है। दाहिने करवट लेटकर बायें पैर को धीरे से दाहिने पैर के घुटने पर थोड़ा मुड़ा हुआ लुढ़का देना और दाहिने हाथ की तलहटी पर सिर को तकिया की तरह रखना सिंह शैय्या है और निरोग होने की कल्पना करते हुए अधः-उर्ध्व-क्रमाक्रम विधि करना सिंह शैय्या रूढ़ क्रमाक्रम विधि है। इसे करने के बाद प्रायः गहरी नींद आ जाया करती है लेकिन रोगी की नाक जोर-जोर से बजने लगती है और कोई भयानक स्वप्न भी रोगी देखने लगता हैं। इसलिए चिकित्सक को अपने निरीक्षण में इस विधि से इलाज करना चाहिए और रोगी को गहरी नींद में जाने से पहले सिंह शैय्या में लेटने का निर्देश देना चाहिए।

वस्तुतः अपने लेटे शरीर को ही अनुलोम विलोम रूप से यह क्रिया करनी पड़ती है और इसमें अंग-प्रत्यंग का क्रमिक रूप से निरीक्षण करना पड़ता है। अगर इस विधि का अभ्यास स्वस्थ पुरुष या छात्र तव तक नित्य प्रति करे जब तक याद करते ही अपना पूर्ण चित्र मानस पटल पर न आ जाय। इससे स्मृति का विकास द्रुतगति से होने लगता है। शंकराचार्य का अल्पायु में ही मेधावी होने का कारण यह अधः-उर्ध्व-क्रमाक्रम विधि ही है। उपचारक और परिचारिकाओं को

तो नित्य ही इस अभ्यास को करते हुए सोना चाहिए। क्योंकि इससे नेत्र में एक प्रकार का आकर्षण और ऊर्जा आ जाती है और सौम्यता झलकने लगती है। इस विधि के अभ्यास से चमत्कारिक रूप से आत्म-नियंत्रण होता है और विभिन्न प्रकार से आवेगिक सांवेगिक वृत्तियों का दास और स्वयं का स्वामी बनाने में हम सक्षम हो जाते हैं। यह अभ्यास हमें अह्लादित व्यक्तित्व प्रदान करता है, जिससे हमारी अह्लादित शक्ति जो पाँचों शक्तियों का मुख्य रूप है प्रकट हो हमारे लक्ष्य को साकार कर देती है और व्यक्तित्व को सर्वांगीण रूप से विकसित कराने में सहयोग प्रदान करती है।

कर्म, ज्ञान और भाव उद्‌बोधन विधि

रोगी को थोड़ा स्वस्थ होते ही अपने नित्यक्रिया को स्वयं बिना किसी की मदद के निवटा लेने के लिए प्रोत्साहित करना शाम को किसी स्वच्छ स्थल पर उपचारक द्वारा स्वास्थ्य संबंधी तांत्रिकी संयम और उपचार की विधियों को सरस और सरल भाषा में बतलाना एंव सामूहिक शुभभावना कराना ज्ञान, तथा छोटे-छोटे बच्चों, पालतू पशु, पक्षियों और उद्यान में फूलों से हंसना-खेलना भाव उद्‌बोधन विधि है। इस प्रकार जहां रोगी के कर्म, पक्ष, ज्ञान पक्ष, और भाव पक्ष को उद्‌बोधित कराया गया वहां रोगी में स्वतः-रोग-निवारण क्षमता पहाड़ी झरने की तरह फूट निकलेगी और असाध्य रोग भी थोड़े समय में ही दूर हो जायेंगे। हमें यह कभी न भूलना चाहिए कि कर्म, संकल्प, ज्ञान और भाव उद्‌बोधन विधि के अभाव में ही हम शारीरिक, मानसिक दृष्टि से टूटते हैं और अपनी प्रतिरोधक क्षमता को गंवाकर असाध्य रोगों को आमंत्रण देते हैं। इस संबंध में किसी और स्थल पर विस्तार से चर्चा की जायेगी।

अंगोपांग-शोधनभेदन विधि

अंगोपांग शोधन-भेदन विधि तांत्रिकी संयम और उपचार की आधारभूत विधि है। इस विधि के नाम से ही पता चल जाता है कि इसमें हमारे सारे शरीर के अंगों और उपांगों के अणु का पूर्ण अभ्यास (भेदन) मानसिक निरीक्षण (शोधन) एंव सर्वोत्तम शारीरिक मानसिक और अध्यात्मिक स्वास्थ्य का संकल्प छिपा है। कोई भी आधुनिक व्यायाम न इतना व्यापक है और न प्रभावशाली है। इस विधि का निरंतर अभ्यास करते रहने से हमारे सामान्य स्वास्थ्य का स्तर बहुत ऊंचा हो जाता है तथा साधक का शरीर और मन हमेशा उत्फुल्ल रहता है। इसके थोड़े दिन के अभ्यास से ही शक्ति (एनर्जी) काफी बढ़ जाती है और दीर्घायु होने की इच्छा प्रवल हो जाती है। इससे विभिन्न ग्रन्थियों का समानुपातिक स्राव होना, अड़ियल स्नायुओं का शान्त और स्थिर होना, अस्थि पंजर के जोड़ों और संधियों की जकड़न का दूर होना, मेरुदण्ड के स्नायु-तंतुओं का अपने आप होना, त्वचातंत्र का पूर्ण मालिश होने से कोमल, चमकदार और आकर्षक होना, नारी

में पूर्ण नारीत्व और पुरुष में पूर्ण पुरुषत्व का आ जाना, श्वांस नियंत्रित होने से शरीर से हल्कापन और मन में ताजगी का भरना, पाचन क्रिया तंत्र और रक्त संचार क्रिया तंत्र का पूर्ण शक्ति सम्पन्न एंव बुद्धि और स्मृति का तीव्र और तीक्ष्ण होना अवश्यंभावी हो जाता है।

अंगोपांग शोधन-भेदन विधि हमेशा शरीर, प्राण और मन शुद्धि के बाद ही करनी चाहिए, जिसे संस्थान के उपचारक से सीखना आवश्यक हो जाता है। इस विधि की 14 मुद्रायें हैं, जो प्रमुख चार आसनों पर आधारित शरीर के विभिन्न अंगों-पांगों के संकोचन-प्रसारण की मुद्राएं हैं। इसे शरीर को सामान्य स्थिति में रखकर उस अंग विशेष और श्वास-प्रश्वास पर ध्यान रखते हुए किया जाता है। इस प्रकार अंगों के संकोचन-प्रसारण से अंगोपांग-भेदन और उस अंग विशेष और श्वास-प्रश्वास पर ध्यान रखने से शोधन हो जाता है। पूर्ण मनोयोग के साथ इस अभ्यास को करने से इसे साधना कहा जाता है। पैर के अंगूठे से लेकर सिर के वालों तक का यह सर्वांगीण व्यायाम है। शिरोगह्वर (सिर का गड्ढा) वक्षोगह्वर (छाती का गड्ढा), उदरोगह्वर (पेट का गड्ढा) और कटिगह्वर (कमर का गड्ढा) में हमारे जीवन को चलाने वाले सारे उपकरण लगे हैं। शिरोगह्वर में लघु मस्तिष्क और वृहद मस्तिष्क, सुशुम्ना शिर्ष भाग (मिलाएवलोंगगेटा) तथा मेरुदण्डात्मक मस्तिष्क द्रव है। वक्षोगह्वर में हृदय, फेफड़ा प्रमुख संयंत्र हैं। उदरोगह्वर में पित्तपाशय, पक्वाशय, अमाशय (वड़ी आंत), मूत्राशय (व्लाडर), अग्नाशय (किडनी) आदि तथा कटिगह्वर में शुक्राशय (शुक्र और डिम्वस्राव ग्रन्थियाँ), गुदा आदि अत्यधिक सम्वेदनशील और उपयोगी सयंत्र हैं। अभी तक किसी भी ऐसे व्यायाम का आविष्कार नहीं हुआ है, जो सभी उपर्युक्त संयंत्रों को समान रूप से टोनअप कर सके। शारीरिक-मानसिक थकान के लिए वहुत सारे व्यायाम हैं लेकिन उन्हें स्वस्थ, शान्त और स्थिर करने के लिए तांत्रिकी संयम और उपचार की विधि ही है।

कटिगह्वर पैर के अंगूठे से लेकर कमर तक के सारे शारीरिक संयंत्रों और तंत्रों का संकोच-प्रसारण शवासनारूढ़ वक (बगल) मुद्राएं हैं! वीरासनारूढ़ अश्विनीवंध बाजीकरण (घोड़ा) मुद्राएं उदरोगह्वर के सारे संयंत्रों और तंत्रों का संकोचन-प्रसारण शवासनारूढ़ उड़ियानवंध कुकुट (मुर्गा) मुद्राएं वक्षोगह्वर और मेरुदण्ड के सारे संयंत्रों और तंत्रों का संकोचन-प्रसारण शवासनारूढ़ उड़ियान बंध मर्जार (बिल्ली) मुद्राएं, अर्द्धपद्मासनारूढ़ भुजंग मुद्राएं कच्छप (कछुआ) मुद्राएं हैं। शिरोगह्वर के सारे संयंत्रों और गले से सिर के बालों तक के संकोचन प्रसारण के लिए सिंहासनारूढ़ जालंधरवंध (गिरगिट मुद्राएं, मरकट मुद्राएं श्वान मुद्राएं शूकर मुद्राएं, हस्तिमुद्राएं, जामवंत मुद्राएं और उल्लूक मुद्राएं अंगोपांग शोधनभेदन विधि में करनी हैं। ये मुद्राएं पैर के अंगूठे से लेकर सिर के बालों तक पूरे शरीर का मानसिक निरीक्षण और व्यायाम केवल 20 मिनट में करा देती हैं। यह सब केवल शवासन, वीरासन, अर्द्धपद्मासन और सिंहासन में किया जाता है। अंगोपांग शोधन-भेदन विधि विशेष कर स्नायु केन्द्रों (नर्व सेन्टर) के लिए नियामक का काम

करती है तथा श्वांस-प्रश्वांस और इच्छाशक्ति को नियंत्रित कर मांसपेशियों को नचाती, सहलाती है एंव ग्रन्थियों का स्राव समानुपातिक ढंग से कराकर शरीर को पूर्णस्वस्थ, सुडौल, सुन्दर और आकर्षक वनाती है।

यह विधि हमारे जीवन संवंधी उन व्यावहारिक अभ्यासों को भी प्रस्तुत करती है, जिससे स्वस्थ, सफल, आकर्षक और आह्लादित व्यक्तित्व की हमारी लालसाओं की पूर्ति होती है। अपने को शक्तिसम्पन्न करने तथा रचनात्मक क्रियाशीलता से आविभूर्त होने का एक मात्र स्रोत हैं ये तांत्रिक विधियाँ। ये विधियां पूर्ण व्यावहारिक और उपयोगी हैं क्योंकि साधक पर वर्षों परीक्षण और प्रयोग के वाद इनका निरूपण किया गया है। तंत्र इस बात पर जोर देता है कि व्यक्तित्व आकर्षण, गत्यात्मकता, आत्मविश्वास, आशावादिता और जीवन के प्रति धनात्मक चिन्तन, शरीर को चलने, वोलने और बैठने की स्थिति में ठीक रखने से आती है। और इसके लिए सदा सिर, गर्दन और मेरुदण्ड को एक सरल रेखा में रखें और बैठने, चलने और बोलने के वक्त सदा नितंवों पर बल दें।

यह तंत्र की प्रारम्भिक सीख है और इस समसंतुलित शारीरिक स्थिति से हम शारीरिक क्रिया और उच्च मानसिक दशा में, वैठने-उठने और वोलने की स्थिति में होते हैं। झुक कर बैठना हमारे शारीरिक और मानसिक स्थिति की निम्नता और असंतुलन का द्योतक है। विज्ञान ने भी यह सावित कर दिया है कि समसंतुलित शारीरिक स्थिति के बनिस्वत झुककर बैठने, चलने और बोलने में अधिक शारीरिक शक्ति की आवश्यकता पड़ती है, क्योंकि समसंतुलित और सीधी स्थिति में शरीर को रखने से शक्ति व्यय (क्षय) की कम आवश्यकता पड़ती है। ऐसी स्थिति में हम घंटों आसानी से बैठकर, खड़े होकर, चिन्तन, मनन और भाषण दे सकते हैं तथा शारीरिक और मानसिक स्थिति को नियंत्रित रख सकते हैं इसके लिए भी गर्दन, कंधा और उदर की मांसपेशियों का ठीक-ठीक विकास करने के लिए अंगोपांग शोधन भेदन विधि का अभ्यास आवश्यक है।

अधिकांश लोगों की गर्दन तथा अन्य अंगों की मांसपेशियां सामान्य रूप से विकसित नहीं होती हैं जिसके कारण वे वास्तविक शारीरिक स्थिति को, बातें करने, चलने और बैठने में, अपना नहीं पाते और जीवन में सदा असफल, आनाकर्षक और विभिन्न व्याधियों से ग्रसित होकर अनाकर्षक बने रहते हैं। टिटिन्डा मुद्रा इसके लिए उपयुक्त व्यायाम है, जिसमें गर्दन ऊपर नीचे, दाएँ बाएँ की ओर शरीर को अस्वाभाविक रूप से घुमाए-फिराए बिना सकोचन प्रसारण किया जा सके। इससे गर्दन की मांसपेशियाँ गर्दन को सीधी रेखा में खड़ा रख सकने में सक्षम हो सकती हैं। सर्वांग व्यायाम के रूप में इस विधि को छोड़कर शरीर की विभिन्न मांसपेशियों को सुदृढ़ और सुसंगठित रखने के लिए शरीर को सामान्य रूप से रख कर या मांसपेशियों में असामान्य रूप से तनाव न लाकर व्यायाम करने की अन्य विधि देखने को नहीं मिली है। हमें यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि वही अभ्यास (व्यायाम) हमारी शारीरिक और मानसिक स्थिति को सामान्य वनाने में सक्षम होता है जो शरीर को तनाव विहीन कर दे। इसे ध्यान

में रखते हुए ही अंगोपांग शोधन-भेदन विधि की खोज की गई है। इसका महत्त्व इस दृष्टि से भी अधिक है कि यह हमारे पैर से लेकर सिर तक की मांसपेशियों को सुडौल और सुदृढ़ बनाने के अलावा विभिन्न प्रकार के शारीरिक, मानसिक रोगों को दूर करने में भी उपयोगी सिद्ध हुई है।

चेतना, शरीर और जीवनी शक्ति (यौन शक्ति) तीनों का संयमन हमारे सामान्य स्वास्थ्य के लिए आवश्यक हो ज़ाता है और तीनों में से किसी एक का नियंत्रण भी व्याधि निवारण के लिए पर्याप्त होता है। अंगोपांग शोधन-भेदन विधि शारीरिक, मानसिक संयमन के लिए उपयुक्त अवसर प्रदान करती है। क्योंकि प्राण, मन और शरीर एक सूत्र में ही पीरोया गया है और किसी एक के संयम से तीनों का संयमन हो जाता है। तंत्र की यह मान्यता है कि जिस शारीरिक अंग विशेष पर हम ध्यान केन्द्रित करें और उसकी प्रतिछाया या बिम्ब हमारे ध्यान की पकड़ में आ जाये तो उसमें स्वयंमेव संकोचन प्रसारण होने लगता है और वह अंग स्वस्थ, सुदृढ़ तथा गठित होने लगता है। आधुनिक मनोविज्ञान ने भी अपनी खोजों और आविष्कारों के बल पर इस मान्यता की वैज्ञानिक होने की पुष्टि की है। अंग-प्रत्यंग की शोधन-भेदन विधि तांत्रिकी संयम और उपचार का मेरुदण्ड है इसलिए इसे अच्छी तरह समझ लेना अधिक आवश्यक है।

हमारी ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय सम्बन्धी पूर्वानुभव अध्ययन तथा शिक्षण के आधार पर तत्सम्बन्धी उद्‌दीपक का मस्तिष्क में बिम्ब बनाते हैं। मस्तिष्क की क्रिया रासायनिक और विद्युत सदृश्य होती है, जो स्नायुओं के माध्यम से अंग-प्रत्यंग से अपना सम्बन्ध बनाये रखती है और जो उस बिम्ब का प्रतिबिम्ब उस अंग विशेष पर भावनाओं के घनत्व के अनुपात में डालकर प्रतिशरण कराती है। इस क्रिया से विशिष्ट इन्द्रिय उदीप्त हो जाती है और उसमें स्वयंमेव संकोचन प्रसारण होने लगता है। आधुनिक विज्ञान भी कहता है कि प्रकाश सरल रेखा में चलता है लेकिन माध्यम में घनत्व के अनुपात में बिम्ब वक्र होता रहता है और उसका प्रतिबिम्ब पड़ते ही प्रतिशरण होने लगता है। इसे हम ज्ञानेन्द्रिय के माध्यम से अच्छी तरह समझ सकते हैं, क्योंकि हमारी यह इन्द्रिय अन्य इन्द्रियों की अपेक्षा अत्यधिक सम्वेदनशील होती है। किसी पशु-पक्षी को मैथुन में संलग्न देखकर या कामोत्तेजक विषय को पढ़कर उसका बिम्ब हमारे मस्तिष्क में पूर्वानुभव, ज्ञान और शिक्षण के आधार पर तत्सम्बन्धी बिम्ब बन जाता है और मस्तिष्क की विद्युत और रासायनिक क्रियाएं स्नायु प्रणाली के माध्यम से हमारी जननेन्द्रिय पर उस बिम्ब की प्रतिछाया डाल कर इसे प्रतिशरण कराती है। इससे जननेन्द्रिय उद्दीप्त हो जाता है और उसमें स्वमेव संकोचन-प्रसारण होने लगता है। इसी आधार पर हमारे शरीर के किसी अंग का बिम्ब अगर मस्तिष्क में बनाया जाय तो उस अंग विशेष के स्वचालित संस्थान भी उद्दीप्त हो संकोचन-प्रसारण करने लगते हैं। इस क्रिया से वह सुन्दर, सुडौल और संतुष्ट रहता है या व्याधि ग्रस्त होने से रोग मुक्त हो जाता है। तंत्र ने इस तथ्य को सैकड़ों वर्ष पूर्व ही जान कर चक्रशोधन साधना की मान्यता दी थी। अंगोपांग शोधन-भेदन इसी कारण

से संयम और उपचार के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इस विधि के कुछ दिन के अभ्यास से ही हम अपने अंग-प्रत्यंग तथा स्वचालित क्रियाओं पर नियंत्रण स्थापित कर पाते हैं तथा स्वस्थ आकर्षक और अह्लादित व्यक्तित्व उभरने लगता है।

शवासनरूढ़-वक-मुद्रा शोधन-भेदन विधि

पैर और कमर के वात रोग, हर्निया, मूत्राशय एंव जननेन्द्रिय और गुदा के रक्त संचार मांसपेशियों और त्वचा प्रणाली संवंधी रोग में वकमुद्रा शोधन-भेदन विधि का अभ्यास सुवह-शाम नित्यक्रिया से निवृत होने के पहले या बाद में निम्न प्रकार से करना चाहिए। सम्भव हो तो निर्वस्त्र होकर ही इस मुद्रा को करना ठीक होता है, वैसे सारे वस्त्रों को ढीला करके भी इसे किया जा सकता है। इसकी पांच शाखओं और 19 उपशाखाओं का वर्णन नीचे किया जाता है।

विधि

आरामदेह विस्तर पर पीठ के बल चित लेट जायें और आँखें बन्द कर कल्पना करें कि एक समुद्र के बीच में हम पड़े हुए हैं। चारों ओर नीला जल-ही -जल दिखाई पड़ता है और उसे आकाश और क्षितिज छूता है। दो मीन शिशु दोनों पैर के अगूंठे के पास आते हैं जिसे बगुला सदृश्य पैर उसे अंगुली रूपी चोंच से पकड़ लेता है और उसे गले के भीतर निगलने का प्रयत्न करता है (1) (क) इस प्रकार पैर की अंगुलियों को 8 बार तलवे की ओर संकोचन प्रसारण करें और (ख) 8 बार ऊपर टखने की ओर संकोचन प्रसारण करें। (2) टखने के पास वह मीन शिशु इस बीच पहुंचता है जो बगले का गला है। पैर को मोड़ कर बिस्तर से पैर के दोनों तलवे को थोड़ा ऊपर उठायें। फिर 8 बार टखने को नीचे-ऊपर, (ख) 8 बार दाएँ-बाएँ घुमाएं, (ग) 8 बार बाएं से दाएं घड़ी की विपरीत दिशा में और (घ) 8 बार दाएं से बाएं घड़ी की दिशा में गोल घुमाएं तथा टखने में मीन शिशु को मानसिक दृष्टि से देखते रहें।

(3) पैर के टखने से घुटने तक का स्थान बगुले का उदर है, जहाँ मीन शिशु टखने से बढ़ते हुए घुटने तक आ जाता है। बगुला के उदरस्थ क्रिया के रूप में घुटने को (क) 8 बार उसी स्थिति में ऊपर-नीचे, (ख) 8 बार दाएं-बाएं फिर (ग) बाएं से दाएं घड़ी के प्रतिकूल दिशा में और (घ) दाएं से बाएं घड़ी की दिशा में 8-8 संकोचन प्रसारण करें। मीन शिशु को मानसिक दृष्टि में भी साथ-ही-साथ देखते रहें।

(4) दोनों पैरों को सीधा फैलाएं और मीन शिशु को घुटने से जंघा की ओर लाते हुए बगुले को उड़ने की स्थिति में पहले बाएं पैर को घुटने तक मोड़ कर (क) 8 बार उसे उदर से सटाएं और उठाएं तथा (ख) फिर दाहिने पैर को भी इसी प्रकार 8 बार घुटने तक मोड़ कर उदर से सटाएं और उठाएं फिर (ग)

दोनों घुटनों को आपस में सटाएं और जंघे के मोड़ से उसे घुमाकर वाएं घुटने को बांईं ओर और दाएं घुटने को दायीं ओर एक साथ 8 बार ले आएं तथा (घ) अंत में दोनों घुटनों को सटाते हुए 8 वार उदर से छुआएं। मीन शिशु पर ध्यान, क्रिया करते हुए, केन्द्रित रहे। इस अभ्यास में पूंछास्थि विस्तर से सटा रहेगा।

(5) पीठ के बल चित्त लेटे ही ऐड़ी और पीठ से बिस्तर पर भार दें और (क) कमर को 8 बार ऊपर की ओर उछालें फिर बांए पैर को सीधा किये हुए उसे कमर के साथ दायीं ओर 8 बार ऊपर की ओर उछालें फिर (ख) बाँए पैर को सीधा किए हुए उसे कमर के साथ दायीं ओर 8 बार यथा संभव ले जाएं और ले आएं और (ग) फिर दाहिने पैर को सीधा कर, उसे कमर के साथ यथासंभव बायीं ओर 8 बार ले जायें, ले आवें इसके बाद (घ) पेट के बल उलट कर समर्पणासन में छाती और अंगुलियों से बिस्तर पर बल दें, दोनों नितम्बों को आपस में कस कर सटाएं और 8 बार कमर को ऊपर नीचे उछालें फिर चित्त होकर दोनों पैरों को सीधा कर नचाएं, उछालें, मीन शिशु को कमर में ही देखते रहें। यह स्थिति मीन शिशु को उदरस्त कर वगुले के आकाश में उड़ जाने की है।

उपर्युक्त वकमुद्रा शोधन भेदन प्रणाली को सुबह-शाम एक महीना करने से ही तथाकथित व्याधियां दूर हो जाती हैं लेकिन इसका अभ्यास कम-से-कम एक साल तक रोगी को जारी रखना आवश्यक होता है। संयम के लिये उसे प्रतिदिन की क्रिया में यथावत् जीवन अपना लेने से कमर से नीचे के अंग सुन्दर, सुदृढ़ और सुगठित हो जाते हैं। पैर और कमर हमारा बड़ा ही महत्त्वपूर्ण अंग होता है इसलिए इसके स्वास्थ्य के लिए हमें इस मुद्रा को नित्यक्रिया में सम्मिलित कर लेना अच्छा होगा।

वीरासनरूढ़, अश्विनीबंध, वाजीकरणमुद्रा, शोधन-भेदन विधि

यौन ग्रन्थि, गुदा द्वार और नारी-पुरुष के जननेन्द्रिय संबंधी रोगों में यह विधि अत्यधिक उपयोगी सिद्ध हुई है, चाहे वह धातु क्षीणता, नामर्दी आदि हो या प्रदर, जननेन्द्रिय संबंधी खाज, गर्मी सुजाक, शिश्न शिथिलता, भग का अधिक फैलाव तथा उसकी मांसपेशियों में पीड़ा, स्तन का ढीला होना, गर्भाशय-स्थान-परिवर्तन, मासिकस्राव का अधिक-कम या नहीं होना या कब्ज, बवासीर सूखी टट्टी आना, फिसर फेस्चुला, गुदाद्वार की खाज, आदि व्याधि की, अधिक उग्रता की रासायनिक दवाओं का कम-से-कम मात्रा में प्रयोग कर नियंत्रित कर लेना उचित होता है जिसका उल्लेख हमने इस पुस्तक के द्वितीय भाग, रोगी और उपचार में किया है। वकमुद्रा के ठीक बाद ही वाजीकरण-अश्विनीवंधमुद्रा शोधन-भेदन विधि करना अधिक उपयुक्त होता है। रजोअंत (मिनपोज) के बाद यह अभ्यास ही नारी को नारी बनाये रख सकता है। जिन नारियों का कटिप्रदेश (फ्लेमिक) सशक्त, कठोर तथा कसे हुए मांसपिण्डों का बना होता है इनका कारण है कोई व्यायाम न करना

या कॉलेज-स्कूलों में नाम कमाने के लिए कठोर व्यायामों को करना। इन दोनों कारणों से नारियां आजीवन कष्ट को आमंत्रण दे देती हैं। भय और संकोच दोनों जननेन्द्रिय और पाचनक्रिया पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है। इसके अलावा जननेन्द्रिय पर पूर्ण नियंत्रण प्राप्त करने और सेक्सग्रन्थि के स्राव को व्यवस्थित करने के लिए इस तांत्रिक विद्या के अभ्यास से अधिक उपयुक्त कोई अन्य विधि नहीं है। मस्तिष्क के बाद कटिप्रदेश के स्नायुजाल और स्नायुकेन्द्रों की सर्वाधिक उपयोगिता इसी क्षेत्र में होती है। उसे ही तांत्रिकों ने मूलाधार चक्र और स्वाधिष्ठान चक्र घोषित किया है और उसके नियंत्रण के लिए चक्र शोधन-भेदन विधि की व्यवस्था की है। इसकी दो शाखाएं हैं और प्रत्येक शाखा की तीन-तीन उपशाखाएं हैं, जिसका वर्णन आगे किया गया है।

विधि

वक मुद्रा का अन्तिम पांचवां अभ्यास करने के बाद वीरासन (ठेहुने से पैर को मोड़ कर दोनों नितम्बों को दोनों एड़ी पर देकर बैठना) में नंगे बैठ जाएं। अगर गुदा या जननेन्द्रिय संबंधी बीमारी हो तो गर्म पानी में करीब चार छः इंच चौड़ा और थोड़ा मोटा गमछी या छोटा तौलिया या मुड़ी हुई पट्टी भली-भांति पानी में डूबो कर लंगोटी की तरह लगा लें।

(1) हमारे गुदा द्वार और बड़ी अंतड़ी के बीच करीब चार से छः इंच केवल मांसपेशियां ही होती हैं। प्रायः कब्ज की बीमारी से पीड़ित रहने या इस स्थान का समुचित व्यायाम न होने के कारण ये मांसपेशियां अपने स्वाभाविक लचीलापन को खो देती हैं। इसके कारण बवासीर गुदा की खाज, फिस्चुला आदि बीमारियां हो जाती हैं। वास्तव में हमारा मस्तिष्क विभिन्न अंगों की मांसपेशियों के तनाव को स्वयंमेव बार-बार सुव्यवस्थित और समायोजित करता रहता है, जिससे वे सामान्य भार को वहन करने और संतुलित बने रहने की स्थिति में बने रहें। लेकिन इनका गठन इतना जटिल है कि बिना व्यायाम किये, इनमें अनिश्चितता की स्थिति बराबर बनी रहती है। रोग की स्थिति में भी विशिष्ट मांसपेशियों में असामान्य तनाव आ जाता है और उसे वीरासनारूढ़-अश्विनीबंध-वाजीकरणमुद्रा-शोधन-भेदन विधि से ही ठीक किया जा सकता है एवं बराबर अभ्यास कर, उन्हें सदा के लिए स्वस्थ रखा जा सकता है। वीरासन में बैठकर पहले दोनों एड़ियों पर दोनों नितम्बों का भार, गर्म पानी से कपड़े को निचोड़ कर, गुदाद्वार पर रख दें। ध्यान रखें कि पैर का कुछ भाग दोनों एड़ी से दबा रहे जिससे पैर की गर्मी गुदाक्षेत्र में लगे। इसके बाद ८ बार उसी प्रकार गुदा का संकोचन-प्रसारण करें जिस प्रकार घोड़ा पाखाना करने के बाद अपने गुदा द्वार को किया करता है। इसके बाद पैड की गर्मी अगर ठंडी हो गई हो तो पुनः उसे गर्म पानी में निचोड़ कर पुनः गुदाद्वार पर रख कर बायीं ऐड़ी के बीचोंबीच दबा देना चाहिए और वीरासन में ही ८ बार पूर्ववत् गुदाद्वार का संकोचन-प्रसारण करना चाहिए। इसी प्रकार दाहिनी ऐड़ी से भी गुदाद्वार को दबाकर ८ बार संकोचन प्रसारण करना चाहिए। अधिक

कब्ज की शिकायत में आवश्यकतानुसार एक दो बार नींबू रस के साथ गुनगुने एक लीटर जल का ऐनिमा लेकर उपर्युक्त रीति से बाजीकरण मुद्रा-शोधन-भेदन-विधि कर लेनी चाहिए। यह सदा ध्यान रखना चाहिए कि आँखें बंद या अधखुली रहें और गुदाद्वार से चार सेंटीमीटर ऊपर मूलाधार पर एक पीले चतुर्भुज के मानसिक दृष्टि से देखते रहना चाहिए। गुदा रोगों की विभिन्न बीमारियों में यह विधि रामबाण की तरह कारगर सिद्ध होती है।

(2) इसी वीरासन में दोनों हाथ विस्तर पर रखकर बाएं घुटने को आगे की ओर इतना खींचें कि पुरुष के शिश्न या नारी के भग के चार से. मी. नीचे एड़ी आ पड़े और पिछले पैर को पीछे की ओर इतना फैलाएं कि एड़ी पर स्वाधिष्ठान क्षेत्र का पूरा भार पड़ जाये। नारी के प्रदर भग फैलाव, खाज, गर्भाशय का स्थानान्तरण गर्भाशय के तंतुओं का ढीला होना, गर्भाशय का बाहर आना, गर्मी, सुजाक आदि तथा पुरुष के विभिन्न रोगों की स्थिति में गर्म पानी में निचोड़ा हुआ पैड ऐड़ी और स्वाधिष्ठान क्षेत्र के बीच में रखें। इसके बाद जिस प्रकार घोड़ा-घोड़ी मूत्र त्याग के बाद अपने जननेन्द्रिय का संकोचन-प्रसारण करते हैं उसी प्रकार 8 बार करें और पुनः वीरासन की स्थिति में आ जायें। फिर बाएं ठेहुने को आगे की ओर इतना अधिक खींचें कि एड़ी जननेन्द्रिय के चार से. मी. नीचे आ जाये और बाएं पैर के पीछे की ओर इतना फैलाएं कि स्वाधिष्ठान क्षेत्र का भार अच्छी तहर ऐड़ी पर पड़े। दोनों हाथ विस्तर पर स्थित रहेंगे। पैड को गर्म पानी में निचोड़ कर उपर्युक्त तरीके से एड़ी और स्वाधिष्ठान क्षेत्र में रखें और मानसिक दृष्टि से दूज के चाँद को उस स्थल पर देखते हुए 8 बार शिश्न या भग का संकोचन-प्रसारण करें। इसके बाद पुनः वीरासन में आ जायें। इसी स्थिति में ठेहुना बिस्तर पर रहे और दोनों हाथ इतनी दूरी पर रखें और पैर को पीछे की ओर खीचें कि कमर जमीन से 2/3 इंच ही ऊपर उठे। उठे हुए दोनों नितम्ब आपस में सटे रहें। इसी स्थिति में 8 बार शिश्न या भग का संकोचन-प्रसारण करें। इस मुद्रा के एक सप्ताह के अभ्यास से ही रोगी गुदा और जननेन्द्रिय संबंधी बीमारियों से 50 प्रतिशत मुक्ति पा लेता है। रोगी को सदा पेशाब करते वक्त ठंडा जल मूत्राशय पर डालते रहना चाहिए। जिससे वृक और मुत्राशय में रुके मल पेशाब के साथ निकल जाया करें। उपरोक्त अभ्यासों को सदा के लिए अपनाया जा सकता है।

शवासनारूढ़-उड्यानबंध कुकुटमुद्रा शोधन-भेदन विधि

यह विधि उदर सम्वंधी व्याधियों के लिए आवश्यक उपचार प्रस्तुत करती है, चाहे यकृत का बढ़ना, आमाशय का अच्छी तरह काम न करना, पित्ताशय की गड़बड़ी से मधुमेह आदि बीमारी का होना या पक्वाशय में प्रदाह, नासूर का होना या अंतड़ियों की श्लेष्मा, झिल्ली, प्रदाह, फोड़ा, कब्ज, अतिसार आदि। **विधि**–पीठ के बल चित्त लेट जायें, बदन को ढीला करें और दोनों हाथों को दोनों तरफ लुढ़का दें। हाथों से अपान मुद्रा बनाएं। गर्म पानी में निचोड़ा हुआ पैड उदर

पर बीचों-बीच रखें और श्वांस छोड़ते वक्त झटके से पेट पिचका कर पूरी हवा निकाल डालें। उसके बाद जिस प्रकार मुर्गी खाने के बाद अपने उदर को आगे-पीछे, दाएं-बाएं किया करती है, उसी प्रकार उदर का संकोचन-प्रसारण उदर में एक लाल त्रिभुज को मानसिक दृष्टि से देखते हुए करें। वृक (किडनी) के ऊपर मध्य ग्रन्थि त्रिभुजाकार लाल रंग की ही होती है। इसमें मणि नाम का रस स्राव होता है तथा अधिकांश बीमारियाँ इसी स्राव की कमी के कारण हुआ करती हैं। इस क्रिया से वह ग्रन्थि उत्तेजित होकर पर्याप्त मात्रा में उक्त रस स्राव करती रहती है। पहले उदर को 8-8 बार आगे की ओर फुलाते हुए फेंकें और पिचकाते हुए पीछे की ओर लाएं फिर 8 बार दाएं से बाएं घड़ी की दिशा में घुमाएं। याद रहे पेट के फोड़े की प्रारम्भिक स्थिति में और गर्भाधान के छः महीने की अवस्था तक इस अभ्यास को किया जा सकता है। पेट का फोड़ा अधिक दिन का होने से उसकी शल्यचिकित्सा करा लेना ही अच्छा होता है। पक्वाशय प्रदाह, कब्ज या दस्त की स्थिति में रोगी को एक लीटर गुनगुना पानी पिला कर इस मुद्रा को कराने से तत्काल फायदा होता है। इस विधि को नित्य क्रिया में सम्मिलित कर लेने से उदर सम्बन्धी बीमारियां तो दूर हो ही जाती हैं, साथ-ही-साथ उदर के महत्त्वपूर्ण संस्थानों की मांसपेशियां सुपुष्ट और सुदृढ़ हो जाती हैं। इससे उदर के संस्थानों में रक्त संचार ठीक तरह होता है तथा विभिन्न प्रकार के उदर की ग्रन्थियों का स्राव संतुलित रूप में होने लगता है एवं स्नायु टोनअप हो जाते हैं। उदर की असाध्य बीमारियों में इस विधि से एक सप्ताह के अन्दर ही फायदा पहुंचने लगता है लेकिन इसका अभ्यास छः महीना तक जारी रखने से व्याधि निर्मूल हो जाती है।

शवासनारूढ़ मरजारमुद्रा शोधन-भेदन विधि

यह विधि वक्षोगह्वर संबंधी व्याधि में अत्यधिक उपयुक्त सिद्ध होती है चाहे वह फुफ्फुस प्रदाह, खांसी, दमा, निमोनियां, प्लुरोसी आदि हो या हृदय सम्बन्धी बीमारियां, नारी के स्तन नासूर, स्तन का ढीला होना दूध का पर्याप्त मात्रा में न होना आदि।

विधि

रोगी को पीठ के बल चित्त लेट जाना चाहिए और छाती पर गर्म कपड़े में निचोड़ी हुई पट्टी रख कर इस मुद्रा को करना चाहिए। दोनों हाथ अगल-बगल लुढ़के हुए प्राणमुद्रा की स्थिति में रहेंगे। सर्व प्रथम रोगी को आँखें बन्द कर घुमा कर वृत के मानसिक दृष्टि से वक्ष के भीतर रीढ़ की हड्डी में देखना चाहिए और श्वास लेते हुए 8 बार छाती को पूरा फुलाना और छोड़ते वक्त पिचकाना चाहिए। उदर पर किसी तरह का जोर नहीं पड़ेगा। इसके बाद दोनों हाथों को सिर के ऊपर ले जाकर अंगुलियों को आपस में गुथे हुए तकिया पर लुढ़का दें।

पूर्ववत् 8 बार श्वास के साथ छाती को फुलाएं पिचकाएं, फिर जुड़े हाथ की स्थिति में धीरे-धीरे छाती के साथ दाहिनी ओर मोड़ते हुए दाहिनी करवट मुड़ें और 8 बार उसी क्रिया को करें और इसी प्रकार दाहिनी करवट उसी स्थिति में मुड़कर 8 बार इस क्रिया को दुहरायें। वक्षोगह्वर के महत्त्वपूर्ण संस्थानों को स्वस्थ, सुदृढ़ और सुपुष्ट रखने के लिए शवासनारूढ़ मरजारमुद्रा शोधन विधि अधिक उपयुक्त होती है।

अर्द्धपद्मासनारूढ़ कच्छपमुद्रा शोधन-भेदन विधि

यह विधि हाथ सम्बन्धी समस्त बीमारियों को दूर करने और मांसपेशियों को सुन्दर सुदृढ़ और सुसंगठित बनाने के लिए अधिक उपयुक्त है। हाथों में चाहे सुनहरी की बीमारी हो, वात रोग हो, गांठों का दर्द हो या प्रारम्भिक लकवा की शिकायत। (1) पहले सुखासन या पद्मासन में मेरुदण्ड गर्दन को एक सीधी रेखा में करके बैठ जाएं और हथेलियों को दोनों जंघों पर रखें। आँखें बन्द कर कल्पना करें कि वह मुंह से उसे पकड़ लेता है। जिस प्रकार वह मुंह चलाता है, उसी प्रकार 8 बार दोनों मुट्ठी को बन्द करें और खोलें फिर दोनों हथेली को जंघे पर रखकर अंगुलियों को 8 बार ऊपर की ओर उछालें।

(2) मीन शिशु को धीरे-धीरे कलाई में पहुँचाएं और जिस प्रकार कछुआ अपनी गर्दन निकाल कर आगे-पीछे, दांए-बाएं करता है, उसी प्रकार पहले दोनों हथेली को ताली बजाने की स्थिति में करके 8 बार दांए-बाएं, फिर उसे आइना देखने की स्थिति में करके 8 बार आगे-पीछे फिर पानी उलीचने की स्थिति में हथेली को करके 8 बार ऊपर-नीचे, फिर दोनों कलाई को दाएं से बाएं 8 बार घड़ी की विपरीत दिशा में, फिर उसे दाएं से बाएं घड़ी की अनुकूल दिशा में, फिर कुहनी के आगे के भाग को ऊपर उठाकर 8 बार हिलाएं तथा हथेलियों को दीये के सदृष्य बनाकर 8 बार दाए-बाएं करें। मुद्रा करते वक्त ध्यान कलाई पर रहे।

(3) कुहुनी से आगे के भाग को, हल्की मुट्ठी बांधे हुए, कंधे को छुएं और आगे की ओर 8 बार दाएं-बाएं चलाएं। फिर हाथ को छाती के सीध में फैलाकर केहुनी के ऊपर की ओर 8 बार उछालें। यह क्रिया करते वक्त मीन शिशु केहुनी में स्थित होगा और ध्यान वहीं पर केन्द्रित रहेगा।

(4) केहुनी के आगे के भाग को दोनों हाथों से 90 डिग्री का कोण बनाते हुए मोड़ लें। हल्की मुट्ठी बंधी रहे और इसी स्थिति में केहुनी से ऊपर के भाग को 8 बार आगे-पीछे करें। 8 बार दाएं केहुनी को बाएं और बाएं केहुनी को दाएं करें, 8 बार उसी स्थिति में कंधे को उछालें और फिर उसी स्थिति में दोनों कुहुनी के ऊपरी भाग को ऊपर उठाते हुए कंधे के समानान्तर लाएं एवं छाती को थोड़ा आगे निकालते हुए 8 बार कुहनी को ऊपर नीचे करें। इसके बाद दोनों हाथों को आगे की ओर फैलाकर दाएं बाएं 8 बार नचाएं। मीन शिशु कुहुनी से

धीरे-धीरे चलकर कंधे में स्थित रहेगा और ध्यान कंधे में मीन शिशु पर केन्द्रित रहेगा। कच्छपमुद्रा का अभ्यास दोनों बाहुओं में अत्यधिक शक्ति प्रदान करता है।

सिंहासनारूढ़ जालंधरबंध टीटिण्डामुद्रा

हम प्रायः गलत ढंग से उठने-बैठने चलने-फिरने और बोल-चाल में कंधे और गले की मांसपेशियों को अस्वाभाविक तरीके से विकसित कर लेते हैं या उसका समुचित विकास नहीं होने देते, जिससे विशुद्धग्रन्थि का स्राव समानुपातिक और संतुलित ढंग से नहीं हो पाता। इसके कारण कई असाध्य बीमारियों के शिकार हम हो जाया करते हैं। हाईपर थाईरोडज्म जिसमें रक्त में कोलेस्ट्रोल का स्तर बढ़ जाता है इसमें रोगी अधिक कमजोर तथा गर्म और मिठास के प्रति अधिक संवेदनशील बन जाता है। हृदय की धड़कन का बढ़ना, नाड़ी की गति बढ़ जाना और अच्छा-अच्छा खाना खाने के बाद भी वजन का घटना इस रोग का खास लक्षण है। इस ग्रन्थि के पीछे लगी पैथराइड ग्रन्थि होती है और शरीर के कैलशियम और फासफोरस को नियंत्रित करती है। इसके स्राव की कमी होने के कारण ही मांसपेशियों में मरोड़ और तनाव होता है एवं रक्त में कैलशियम का स्तर बढ़ जाता है। जिससे बार-बार पानी पीने और पेशाब करने की प्रवृत्ति रोगी में होती है। जालंधरबंध टीटिण्डा मुद्रा शोधन-भेदन विधि से गले की बीमारियां उपर्युक्त विशुद्ध ग्रन्थि के स्राव संबंधी व्याधियां आदि दूर हो जाती हैं।

विधि

(क) गर्दन को सर्व प्रथम बाएं-दाएं और दाएं से बाएं 8 बार इस प्रकार से मोड़ें कि कंधे के ऊपर की मांसपेशियां झंकृत हो जाएं (ख) फिर इसी तरह गले को ऊपर-नीचे, नीचे-ऊपर 8 बार दाएं से बाएं घड़ी की विपरीत दिशा में 8 बार और दाएं-बाएं घड़ी की दिशा में 8 बार संकोचन प्रसारण करें। मीन शिशु विशुद्ध ग्रन्थि पर स्थित रहेगा। मानसिक दृष्टि से इस क्रम में रोगी को देखते रहना चाहिए। कंठमाला या गला संबंधी बीमारियों में पांचों अंगुली से विशुद्ध ग्रन्थि को पकड़ कर ही जालंधरबंध टीटिण्डामुद्रा शोधन-भेदन विधि करना अच्छा होता है।

सिंहासनारूढ़ भारकटमुद्रा शोधन-भेदन विधि

मुंह संबंधी सभी बीमारियों में यह विधि उपयोगी सिद्ध होती है चाहे वह मसूड़ों का दर्द हो, दांत का दर्द हो, पैरिया हो या दोनों कानों के नीचे मुंह में इन्जाइम बनाने वाली ग्रन्थियों का प्रदाह या मुंह का फोड़ा फुन्सी आदि। मुंह में गुन-गुना जल, नमक मिलाकर, पूरा एक कुल्ला लेना चाहिए और मुंह बंद कर पहले गाल को पिचकाना फुलाना 8 बार, फिर जानवर जिस प्रकार पागुर करते हैं, उसी प्रकार मुंह को बाएं से दाएं 8 बार और इसी प्रकार दाएं से बाएं 8

वार करना चाहिए इसके बाद मुंह के पानी को फेंक देना चाहिए। 8 वार सिंह की तरह पूरा मुंह खोलने-बन्द करने, 8 वार बन्दर की तरह दांत दिखाने की मुद्रा करनी चाहिए। इस मुद्रा की नित्य क्रिया में सम्मिलत कर लेने से मुंह और ऊपरी तालू संबंधी मांसपेशियां अधिक सुदृढ़ हो जाती हैं और उनमें स्वतः रोग-निवारण क्षमता का विकास बहुत अच्छे ढंग से होता है।

सिंहासनारूढ़ श्वान मुद्रा शोधन-भेदन विधि

जीभ हमारी महत्त्वपूर्ण इन्द्रिय है इसलिए इसे रसना कहा जाता है। इसमें थोड़ी भी गड़बड़ी होने से स्वाद बिगड़ जाता है। जीभ में छोटी-छोटी स्वाद कलियां होती हैं जो जीभ को तीखा, कड़वा, खट्टा, मीठा, तीखा आदि का ज्ञान कराती हैं। साथ-ही-साथ जीभ के नीचे, जहां नीचे मिला हुआ होता है वहां विभिन्न प्रकार के इन्जाइम बनाने वाली ग्रन्थियां होती हैं और पाचक रस बनाकर हमारी पाचन क्रिया को ठीक रखती हैं, उसका भी पूर्ण व्यायाम हो जाता है। सांवेगिक अस्थिरता की स्थिति में ये ग्रन्थियां स्राव करना बंद कर देती हैं। इसी कारण क्रोध भय आदि की स्थिति में मुंह सूख जाता है। जीभ का उद्गम स्थान तो और भी महत्त्वपूर्ण होता है। यह स्वतंत्र व्यवस्थापिका का काम करता है। इसमें खाद्य वस्तु से रस निचोड़ने, उसे उठाने-गिराने तथा निगलने-बोलने के संयंत्र लगे रहते हैं। हमारी जीभ का उद्गम स्थान ही वह स्वचालित संयंत्र है, जिससे अन्य संयंत्र ठीक से चलते हैं दातुन करने के बाद सीहुली करना उसके बाद गार्गल करना चाहिए और उसके बाद दाहिने हाथ की तर्जनी और मध्यमा अंगुली दोनों से कंठ तक के संस्थानों के पास ले जाकर चार-छः बार आगे-पिछे दाएं-बाएं और ऊपर-नीचे, हल्के ढंग से घुमा देने से वहां की मांसपेशियों की मालिश हो जाती है, रक्त संचार ठीक होता है और गले का मल भी खंखार-पोटा के रूप में साफ हो जाता है। गला द्वार ही विभिन्न विषाक्त जीवाणुओं को नाक, गला और कान के गह्वर में घुसने और असाध्य बीमारियों को पैदा करने के प्रमुख मार्ग हैं। इस दृष्टि से भी सिंहासनारूढ़ श्वान मुद्रा शोधन-भेदन विधि अधिक महत्त्वपूर्ण है।

विधि

मुंह पूरा खोल कर जीभ को 8 बार बाहर फेंकें तथा भीतर ले जायें और आंख वंद कर ध्यान जीभ के अग्रभाग पर रखें। फिर ध्यान को जीभ के उद्गम स्थान पर रखें और 8 बार बाएं-दाएं, दाएं-बाएं उसी स्थिति में करें। इसके बाद जीभ को मोड़कर तालू के अंतिम भाग को छूने का प्रयत्न 8 बार मुंह को बंद किये स्थिति में करें। ध्यान तालु के मूल में रहेगा।

सिंहासनारूढ़ व्याघ्र मुद्रा शोधन-भेदन विधि

यह विधि आंखों की जलन, उससे पानी गिरने, मोतिया बिन्द पड़ने, गले की सूजन, घंटी वढ़ना, कंठ प्रदाह आदि में उपयोगी होता है। रोगी को अपने से चार फुट की दूरी पर एक काला बिन्दु दीवार या आइने में लगा लेना चाहिए और आंख खोलकर उस पर ध्यान केन्द्रित करते हुए इस अभ्यास को करना चाहिए। मुंह पूरा खोलकर जीभ को पीछे गले की ओर खींचते हुए 16 बार मुंह खोलना और वंद करना चाहिए। ध्यान रहे कि बिन्दु पर एक टक देखते रहना चाहिए और पलकों को तनावहीन बनाए रखने से ही वे अभ्यास के बीच नीचे नहीं गिर सकेंगी। चेहरे की झुर्रियां भी इस व्यायाम से दूर हो जाती हैं और मांसपेशियों पर पूर्ण नियंत्रण स्थापित हो जाता है।

सिंहासनारूढ़ शूकर मुद्रा-शोधन-भेदन विधि

इस विधि द्वारा नासिका संवंधी समस्त बीमारियों की चिकित्सा की जाती है। नासिका हमारी प्रमुख घ्राणेन्द्रिय है, साथ ही इसकी बनावट भी वड़ी जटिल होती है। अच्छी नाक सुन्दरता का भी चिह्न है। नाक प्रतिष्ठा की वस्तु भी होती है। इस विधि से नासिका का ऊपरी भाग जो बाहर निकला हुआ होता है उसकी मांसपेशियां सुदृढ़ होने से ऊंची और पुष्ट हो जाती हैं। नाक के अन्दर का ऊपरी भाग सुकुमार होने के साथ-साथ उसके दोनों छिद्रों में विशिष्ट स्नायु कोशिकाएं होती हैं, जो बाहर से हवा के माध्यम से गंध का अनुभव कराती हैं और कंठ की ओर से सुरुचिकर स्वाद का। इसके ऊपरी भाग में नासिका गहर या साइनस होता है। इसकी वनावट इतनी जटिल होती है कि इसका समुचित व्यायाम न होने से इसे व्याधिग्रस्त होने की सम्भावना अधिक बनी रहती है और रोगग्रस्त होने से इसे व्याधिग्रस्त होने से दवाओं से नहीं बल्कि सिंहासनारूढ़ शूकर मुद्रा शोधन-भेदन विधि से ही इसका समुचित उपचार हो सकता है। नित्य सुबह मुंह धोने के वाद नासिका-जलपान करें। पुनः गुन-गुने जल में थोड़ा सेंधा नमक मिलाकर नेति पात्र से बायीं नाक में उसे डालें और दाहिने नाक से गिराएं और फिर दूसरी नाक में पानी डाल कर बाएं से गिराएं। थोड़ी गर्दन को नीचे की ओर झुका कर इस क्रिया को आसानी से किया जा सकता है। जिसे संयम और उपचार गृह के कर्मचारी आसानी से एक दिन में सिखा देते हैं इसके बाद आंखों को बंद कर दोनों भौहों के बीच त्रिकुटी में जहां नासिका गहर का उद्गम स्थान होता है, वहां ध्यान केन्द्रित करें और जिस प्रकार सूअर मल खाने के वक्त अपनी नाक की क्रिया करता है उसी प्रकार 8 बार नाक को सिकोड़ें फैलाएं फिर 8 बार उसे दाएं-वाएं बाएं-दाएं करें और 8 बार श्वास लेते हुए नाक को ऊपर नीचे करें। यह विधि सुबह-शाम दोनों वक्त करनी चाहिए।

सिंहासनारूढ़ हस्ति मुद्रा शोधन-भेदन विधि

सिंहासनारूढ़ हस्तिमुद्रा शोधन-भेदन विधि कान की सारी बीमारियों के उपचार के लिए उपयुक्त विधि है। चाहे वह कान से मवाद आना, कान में दर्द, कान में आवाज़ होना, आदि बीमारी हो या बहरापन। कान की बनावट भी अन्य इन्द्रियों की तरह ही अत्यधिक जटिल है। जो कान दिखाई पड़ता है वह वाह्य कान है। इसके पीछे मध्यकान और भीतरी कान है। ध्वनि स्पंदन का भीतरी कान तक न पहुंच पाना ही बहरापन का कारण है। उसका कारण है कान में तरल पदार्थ का बढ़ना, मध्य कान में सूजन या मध्यान्तर कान की हड्डी का बढ़ना आदि। कर्णेन्द्रिय संबंधी स्नायुओं का विकृत होना भी बहरेपन का कारण होता है। इस विधि से इन कारणों को दूर तो किया ही जा सकता है साथ-ही-साथ वाह्य कान की मांसपेशियों को भी सुदृढ़ और सुसंगठित बनाया जा सकता है। जिससे वह सुन्दर दीखने लगता है।

विधि

कान पर ध्यान केन्द्रित कर 8 बार बाह्य कानों को आगे पीछे और 8 बार कानों को ऊपर नीचे करना चाहिए। यह क्रिया दो तीन दिन के शिक्षण से ही होने लगती है।

सिंहासनारूढ़ जामवंत मुद्रा शोधन-भेदन विधि

यह विधि आंखों की समस्त वीमारियों के उपचार में उपयोगी सिद्ध होती है। इसके द्वारा आंखों की मांसपेशियों, पलकों की नसों, आंसू ग्रन्थियों के नियंत्रण के साथ आंख की रोशनी की कमी, ऐंचापन, आंखों का गंदापन, मोतियाबिन्द (प्रारम्भिक स्तर में) ठीक हो जाता है। सर्वप्रथम आंखों से 8 बार अगल-बगल, बाएं-दाएं और दाएं से बाएं देखें, फिर 8 बार ऊपर त्रिकुटि की ओर नीचे नासिका के अग्रभाग को देखो। फिर 8 बार बाएं से दाएं घड़ी की विपरीत दिशा में घुमाएं और 8 बार दाएं से बाएं घड़ी की दिशा में घुमाएं। इस अभ्यास को सुबह शाम को और अन्त में आंखों की अनामिका अंगुली से हल्की मालिश करने में केवल आंख आने की वीमारी को छोड़ कर बाकी सभी बीमारियों में अभ्यास के बाद ठंडे पानी से 8 बार आंखें खोलकर छींटा मार-मार कर धोएं। आंख आने पर, अभ्यास के बाद गुनगुने पानी से खुली आंख में छींटा मारकर धोना ठीक होता है।

वीरासनारूढ़ भुजंग मुद्रा शोधन-भेदन विधि

हमारा मेरुदंड शरीर का एक महत्त्वपूर्ण स्तम्भ होता है। मस्तिष्क द्वारा शारीरिक संचालन, मानसिक चिंतन मनन और आवेगिक, सांवेगिक भाव प्रकाशन,

का यह प्रमुख माध्यम होता है। मेरुदण्ड में सारे स्नायुक केन्द्र स्थित होते हैं और आज्ञा चक्र जो लघु मस्तिष्क में स्थित होता है, मेरुदण्ड का ही विकसित रूप है। अपने ढंग से चलने-फिरने खेलने-कूदने और आमोद-प्रमोद मनाने में मेरुदण्ड का लचीला होना बड़ी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। मेरुदण्ड की कोशिकाओं को जोड़ने वाली झिल्लियां आपातकाल स्थिति में शॉक आबजर्वर का काम करती हैं और शारीरिक अंगों को टूटने-फूटने से बचाती हैं। मेरुदण्ड का आधार स्नायु-केन्द्र मूलाधार चक्र है और शीर्ष स्नायु केन्द्र आज्ञा-चक्र। हमारे जीवन-सूत्र के ये दोनों छोर हैं और दोनों का मिलन स्फुरण ही जीवन-चक्र का सर्वोत्तम स्वास्थ्य, आकर्षण, सफलता और आनन्द है। वीरासनारूढ़ भुजंग मुद्रा शोधन भेदन विधि हमारे मेरुदण्ड को सीधा, लचीला, सुडौल और कोशिकाओं को घिसने से बचाती है तथा नितम्वों पर जोर देकर बोलने, चालने और बैठने की आदत डालने से हम हमेशा अच्छी मनः स्थिति में रहते हैं। मेरुदण्ड के रोगग्रस्त होने से हमारा सारा व्यक्तित्व ही बीमार हो जाता है। इसलिए हर प्रकार की शारीरिक, मानसिक और सांवेगिक बीमारी को दूर करने के लिए मेरुदण्ड को स्वस्थ रखना आवश्यक हो जाता है।

विधि

रोगी पहले वीरासन में बैठ जायें और दोनों हाथों की कुहुनियों को मोड़ कर आगे की ओर कर लें। मेरुदण्ड को सीधा रखें। ऐसी स्थिति में शरीर फन काढ़े सर्प की तरह खड़ा दीखेगा। इसके बाद आठ बार उसी स्थिति में शरीर को बायें और दायें कमर से ऊपर के धड़ को मोड़ें, नचाएं, खेलाएं। इसके बाद 8 बार पूंछास्थि (मूलाधर-चक्र) से पूरे मेरुदण्ड को इस प्रकार उचकाएं जिससे ऐसा लगे कि सांप चल रहा है। इसके बाद अन्त में कमर के ऊपर के अंग को 8 बार आगे-पीछे, दाएं-बाएं मोड़ें।

सिंहासनारूढ़ उलूक मुद्रा शोधन-भेद। विधि

यह विधि सांवेगिक उपद्रवों से ग्रस्त मानसिक बीमारियों के लिए अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। मानसिक रोगियों के इलाज के लिए कम-से-कम पन्द्रह दिन तांत्रिकी संयम उपचार संस्थान में इसका प्रशिक्षण लेना आवश्यक है। इस मुद्रा के कुछ सप्ताह के अभ्यास से ही चेहरे की अनावश्यक झुर्रियां एवं शिकन दूर हो जाती हैं। वास्तव में इस विधि का सुबह शाम नियमित रूप से अभ्यास मानसिक और सांवेगिक नियंत्रण के लिए बहुत जरूरी है। हमारा मस्तिष्क ही सारी शारीरिक, मानसिक एवं सांवेगिक क्रियाओं का नियंत्रण केन्द्र है और सुषुम्ना शीर्षक, लघु मस्तिष्क, नाल और वृहद्मस्तिष्क या सहस्रारकक्षेत्र आदि स्वचालित प्रमुख संस्थानों का संचालक है। इन सभी संस्थानों का समुचित व्यायाम इस विधि द्वारा हो जाता है, जिससे इन संस्थानों के रोग खरगोश की सींग की तरह अपने आप लापता हो जाते हैं।

विधि

आंखें खोलकर वीरासन में बैठ जायें और मानसिक दृष्टि से फन (छत्र) काढ़े नाग का सिर मोर के पंख पर अपना ध्यान केन्द्रित करें। सिर के विभिन्न अवयवों, और मांसपेशियों को पूरा खोलकर तनावमुक्त करें और इसके बाद आगे-पीछे और पीछे-आगे 8 बार करें, 8 बार ऊपर नीचे, नीचे-ऊपर करें, फिर सरोवर में नाल सहित श्वेत विकसित कमल के ऊपर ध्यान केन्द्रित करते हुए सिर के अवयवों को बायें से दायें घड़ी की प्रतिकूल दिशा में 8 बार और दायें से बायें घड़ी की दिशा में संकोचन-प्रसारण करें। इस अभ्यास का भी प्रशिक्षण यांत्रिकी संयम उपचार गृह के नियंत्रित वातावरण में ले लें। वास्तव में शारीरिक, मानसिक नियंत्रण और स्वास्थ्य तथा आध्यात्मिक विकास के लिए उपर्युक्त समस्त मुद्राएं अंगोपांग शोधन-भेदन विधि के अंग हैं इसे प्रतिदिन सुबह शाम करना आवश्यक है जिसके लिए आधा घंटा समय की सिर्फ आवश्यकता पड़ती है। हमने देखा है कि इनमें विभिन्न रोगों को दूर करने की क्षमता है तो इन अभ्यासों को रोज सुबह शाम करते रहने से कोई रोग होने की संभावना नहीं रहती। इस विधि का जितना महत्त्व शारीरिक उपचार के लिए है उससे भी अधिक शारीरिक, मानसिक और प्राणिक संयम के लिए है। हमने इन संयम और उपचार की विधियों का सविस्तार वर्णन इस पुस्तक के दूसरे भाग रोग, रोगों और उपचार में किया है।

तंत्रिका रागानुराग ऊर्जा प्रक्षेपण विधि नं. 1

बौद्ध तांत्रिकों द्वारा 'तंत्रिका प्राणायाम विधि' से साधकों के शारीरिक और मानसिक रोगों का इलाज प्रायः किया जाता था। यह विधि बौद्ध विहारों में अधिक प्रचलित थी लेकिन ब्रिटिश उपचारक श्री एल.ई. ईमैन ने इस विधि को प्रकृति विज्ञान की सीमा में ला खड़ा किया और इस पर उन्होंने कई सफल प्रयोग किये और उसका नाम दिया "सिंग दी बाडी इलेक्ट्रिक करेण्ट।" तंत्रोपैथी में इसी का परिवर्तित और परिष्कृत रूप तंत्रिका रागानुराग विधि है।

हमारे शरीर की प्रत्येक नस (नर्व) ईथर के आवरण से ढकी है। इसी शुभ आवरण का नाम नाड़ी है। इथरिक ऊर्जा इसी से प्रवाहित होती है। प्रकृति में एक ऊर्जा क्षेत्र है जो हमारे चारों ओर घेरा बनाए है तथा हमारे शरीर से होकर प्रवाहित होता है। उसे ही प्राणिक क्षेत्र, जैविक ऊर्जा क्षेत्र, या मूलभूत ऊर्जा क्षेत्र कहते हैं। इसका स्वभाव हू-ब-हू विद्युत चुम्बकीय धारा (इलेक्ट्रो मैगनेटिक करेंट) की तरह है। हमारे शरीर के सिर और दाहिना हाथ धनात्मक विद्युत चुम्बकीय धारा से पूरी तरह भरा हुआ भाग है, जबकि मेरुदण्ड और बायां हाथ ऋणात्मक विद्युत चुंबकीय धारा से भरा है। अगर धनात्मक और ऋणात्मक शारीरिक भाग को हम परस्पर जोड़ देते हैं। (सिर को बाएं हाथ से और मेरुदण्ड को दाहिने हाथ से) तो शक्ति अंग्रेजी आठ की तरह दौड़ने लगती है और इससे सारी शारीरिक

और मानसिक बाधाएं दूर होती जाती हैं। शरीर का हर अवयव शिथिल होने लगता है। स्वतः-रोग-निवारण क्षमता से हम भरने लगते हैं और असाध्य रोगों का भी इलाज आसानी से होने लगता है।

इस शारीरिक ऊर्जा ध्रुवीकरण या प्रवाह को ही अन्तर्मुखी और बहिर्मुखी या वाम मस्तिष्क और दक्षिण मस्तिष्क प्रवृत्ति के नाम से शास्त्रकारों ने बताया है। हम एक समय अपने को अकेला, दुःचिन्तक और निष्क्रिय महसूस करते हैं और दूसरे समय उत्साह, उमंग और सक्रियता से भरे होते हैं। इसका कारण क्रमशः ध्रुवीकरण ऊर्जा के प्रवाह में बाधा पड़ना या अवाधगति से बहना है। इन दो शारीरिक, मानसिक ऊर्जाओं का निर्विरोध ध्रुवीकरण शरीर के हिस्से में कराना तंत्रोपैथिक इलाज में महत्त्वपूर्ण है। जिस प्रकार विद्युत प्रवाह को निर्विघ्न प्रवाहित कराने के लिए अर्थिंग का होना जरूरी है उसी प्रकार शारीरिक ध्रुवीकृत भागों से निर्विरोध शक्ति प्रवाहित कराने के लिए जमीन पर या कम ऊँचाई के तख्त पर लेट कर या आदमकद मिट्टी की बनावट के सामने खड़ा होकर कमर और गले को हरे बांस की फरनाठी से उस मिट्टी की बनावट के साथ संबंधित कर आधे घंटे प्रतिदिन ऊर्जा का प्रवाह कराना चाहिए। आज भी इस विधि से पूर्वी यू. पी. और बिहार के देहातों में शारीरिक व मानसिक रोगों का इलाज किया जाता है। किसी पीपल या बरगद के पेड़ के नीचे बने ब्रह्म चबूतरे से अपने को वांस के फरनाठी से सम्बंधित कर लोग घंटों खड़े रहते हैं और कुछ दिनों बाद रोग मुक्त हो जाते हैं।

तंत्रिका रागानुराग ऊर्जा विधि नं. 2
शारीरिक परिपथ (बाडिली सरकिट) और अर्थिंग

6X3 फीट का एक तख्ता लें और उसमें चौड़ाई में एक-एक फीट की दूरी पर दोनों ओर तथा लम्बाई में ऊपर से एक फीट और नीचे से ढाई फीट की दूरी पर दूसरा छेद करें। फिर चार, दो केजी के ताम्बे के बर्तन में पतले ताम्बे के चार फीट के एक छोर को तारों के प्रत्येक बर्तन में डालें और उसमें पानी, बालू और मिट्टी भर दें और उसे जमीन में तीन फीट की गहराई में गाड़ दें, जो लकड़ी के तख्ते के छेद के अनुसार खुदा होगा। उस तख्त पर लेट जायें। श्वास प्रश्वास पर ध्यान करें। अब सिर के पास के तार को गले और कमर के पास के तार को कमर से, संबंधित कर लें। सिर के और पैर के तार को क्रमशः बाएं हाथ और दाहिने हाथ के तार से संबंधित कर बाएं तरफ के तार को दाएं हाथ से और दाहिने तरफ के तार को बाएं हाथ से पकड़ लें। सारे बदन को पूर्ण रूप से ढीला करें। आंखें बन्द कर श्वास लगाना अधिक उपयुक्त होगा। यह इलाज सुबह-शाम प्रतिदिन चलेगा। रोग की तीव्रता के अनुसार समय घटाया बढ़ाया जा सकता है। इस विधि से अभ्यास करने से पूर्व गुनगुने जल से स्नान कर तांत्रिकी मुद्राएं कर लेना अधिक आवश्यक है। मुद्राएं तांत्रिकी-उपचारक से राय लेकर ही की जानी चाहिएं ताकि विभिन्न शारीरिक रोगों के लिए तदुपयुक्त मुद्राएं की जा सकें।

तंत्रिका रागानुराग ऊर्जा प्रक्षेपण विधि नं. 3

रागानुराग प्रक्षेपण तख्त द्वारा भी रोगी का इलाज किया जाता है। जमीन से एक फुट ऊंची दीवार के ऊपर डेढ़ फुट लम्बा और डेढ़ फुट चौड़ा तांबे का पत्तर सिर के तरफ एक फुट पर कमर के तरफ ढाई फुट पर जड़ दें और सिर के पास के ताम्र-पत्तर में बायीं ओर कमर के पास के पत्तर की दाहिने ओर एक तीन फुट लम्बा तांबे का ही पतला तार जोड़ दें फिर तख्त पर नंगे चित्त लेट कर बांए हाथ से गर्दन की तरफ के तार को और दाहिने हाथ से बायीं तरफ के तार को हैन्डिल से पकड़ लें और श्वास-प्रश्वास के आवागमन पर ध्यान दें। कुछ मिनट में ऊर्जा का निर्वाधित प्रवाह शरीर के हर-अवयव में होने लगेगा और रोगी तरो-ताजा हो स्वास्थ्य लाभ करने लगेगा। इसी प्रकार डबल-बेड पर पति, पत्नी के साथ या उपचारक के साथ रोगी के केविन से ऊर्जा परिपथ से संबंधित कर इलाज किया जा सकता है।

तंत्रिका रागानुराग ऊर्जाप्रक्षेपण विधि नं. 4

इस विधि का सरलतम और सस्ता इलाज निम्न प्रकार है। रोगी को बाएं करवट लेटकर बांए हाथ की हथेली पर अपनी कनपटी रख देनी चाहिए और बाएं पैर पर, जो सीधा खिंचा रहेगा, दाहिने पैर को लुढ़का देना चाहिए और दाहिने हाथ की हथेली को कमर के पास रीढ़ की हड्डी पर डाल देना चाहिए। रोगी को इसके बाद अधः उर्ध्व-क्रमानुक्रमविधि करनी चाहिए और श्वांस-प्रश्वांस पर ध्यान को केन्द्रित करना चाहिए। इससे ऊर्जापथ से शारीरिक ऊर्जा अवाध गति से प्रवाहित होने लगती है। 20 मिनट के अभ्यास के बाद ही रोगी अपने को तरोताजा महसूस करने लगता है और उससे रोग की तीव्रता में धीरे-धीरे कमी आने लगती है। सर्दी बुखार, अनिद्रा दर्द, साईटिका का दर्द, आंतशोथ आदि में यह विधि अधिक लाभदायक होती है।

कुछ क्षण के अभ्यास से ही पूरे शरीर में स्वाभाविक आराम और शान्ति महसूस होने लगती है। इससे अनियंत्रित हंसी आने या गहरी निद्रा में चले जाने की भी प्रक्रिया हो सकती है, जो रोग निवारण के लिए बहुत जरूरी है। इस अभ्यास में खतरे की कोई बात नहीं। इस विधि में हम केवल अपनी ऊर्जा को गति प्रदान कर शारीरिक अवयव को स्पंदित करते हैं। इस विधि में शारीरिक ऊर्जा का विकेन्द्रीकरण द्रुत गति से होता है। रोगी कभी उपचार के वक्त उद्विग्नता तथा दूसरे प्रकार के Psycho-Physical Response को महसूस करता है। लेकिन यह अनुभव ऊर्जापथ को शक्ति सम्पन्न तथा पुनः सक्रिय होकर शरीर के शक्ति सम्पन्न होने की प्रक्रिया से होता है।

हमें अपने सहायोगी साथी की तरह ही अपने को तेजस्वी, कांतिमय, प्रफुल्ल, उल्लसित अनुभव करना चाहिए। वास्तव में स्वाभाविक रूप से अपने

साथी, सहयोगी की तरह हम अपने को अनुभव करते हैं, देखते हैं, यह सत्य है लेकिन जब ऐसा हमें महसूस नहीं होता तो हम अवश्य ही किसी न किसी रूप में रोगी होते हैं। इस विधि का अभ्यास करके देखिए और पाएंगे कि आपका पूरा शरीर ऊर्जा से ओत-प्रोत है, तो हाथों, पीठ और सिर से प्रवाहित होती है। आप इस विधि का अभ्यास कर, अप्रिय सम्वेदनाओं और बुरी आदतों आदि से छुटकारा पा सकते हैं और अपनी स्वाभाविक स्थिति में आ सकते हैं। आप अध्यात्मिक दृष्टि से आगे बढ़ सकते हैं।

नियम

(1) अभ्यास के पूर्व व्यापक शौच करें या गुनगुने पानी से स्नान कर लें। इसके बाद व्यायाम कर इस विधि का अभ्यास करें।

(2) कुछ लोगों में स्वाभाविक रूप से ऊर्जा धुरीत्व या आकर्षण का उल्टा होता है। इसका कारण अधिक मानसिक तनाव-दबाव, मांसाहार, अधिक भोजन, अप्राकृतिक रहन-सहन आदि है। ऐसे व्यक्ति का बायां हाथ और मेरुदण्ड धनात्मक तथा दाहिना हाथ और सिर ऋणात्मक हो जाते हैं। ऐसे लोगों में इस विधि से अभ्यास करने से रोग बढ़ने की सम्भावना रहती है और शरीर तनाव मुक्त नहीं हो पाता और न आराम ही मिलता है। ऐसे व्यक्ति को अपने उपचारक से राय लेकर विधि में परिवर्तन करा लेना चाहिए।

(3) अगर दो व्यक्तियों को एक साथ इस विधि का अभ्यास कराया जाता है तो दोनों की ऊर्जा धुरीत्व या आकर्षण का निरीक्षण कर उसी अनुसार उपक्रम करना चाहिए।

(4) अविश्राम, निष्क्रियता या शिथिलता-परिपथ और ऊर्जा-परिपथ को प्रारम्भ में आधे घंटे से अधिक अभ्यास करना चाहिए। विश्राम परिपथ दो व्यक्तियों के साथ और ऊर्जा परिपथ एक व्यक्ति के साथ किया जाता है।

(5) किसी ऊर्जा पथ को विशेष संचालित करने के लिए यंत्र से सम्बंधित तांबे के तार के अंत के कार्बन रॉड लगाकर एक हाथ में और दूसरे हाथ में घोड़े के नाल के आकार का मैगनेट ले, उससे संबंधित पकड़ना चाहिए।

(6) यथा संभव अपने यंत्र को किसी और को प्रयोग के लिए न दें।

तंत्रिका रानानुराग ऊर्जा प्रक्षेपण विधि-5

भस्मासुर थेइयानृत्य

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि हमारे शरीर की प्रत्येक नस ईथर के आवरण से ढकी है। इसी आवरण को नाड़ी कहते हैं। ऊर्जा इसी से प्रवाहित होती है। उसे ही हम प्राणिक क्षेत्र, जैविक ऊर्जा क्षेत्र या मूलभूत ऊर्जा क्षेत्र कहते हैं। इसका स्वभाव ठीक विद्युत चुम्बकीय धारा [Electro Magnetic Current] की

तरह है। हमारे शरीर का सिर और दाहिना हाथ धनात्मक तथा मेरुदण्ड और बायां हाथ ऋणात्मक विद्युत चुम्बकीय धारा से भरा पड़ा है। अगर हम ऋणात्मक और धनात्मक धारा प्रवाह को अर्थात् सिर को बाएं हाथ से और मेरुदण्ड को दाहिने हाथ से जोड़ देते हैं तो शक्ति अंग्रेजी के आठ की तरह दौड़ने लगती है। इस शारीरिक ऊर्जा के ध्रुवीकरण या प्रवाह को ही अन्तमुर्खी और बहिर्मुखी प्रवृत्ति का व्यक्तित्व कहकर शास्त्रकारों ने पुकारा है। हम किसी समय मायूस दुःचिन्तित, अकेला व निष्क्रिय महसूस करते हैं और किसी समय सक्रिय उत्फुल्ल और उमंग से भरा हुआ। इसका कारण क्रमशः ध्रुवीकरण ऊर्जा के प्रवाह में बाधा पड़ना या अबाध और निर्विघ्न प्रवाहित होना है।

ऐसे ही एक उत्तेजना के क्षण में सदाशिव का शिष्य भस्मासुर उत्तेजित होकर पावर्ती जी को पाने के लिए शिवजी पर ही आक्रमण कर देता है। शिवजी को भागने के सिवा और कोई रास्ता नहीं दीखता, क्योंकि पागल से निबटने के बजाय वहां से हट जाना ही अधिक उत्तम होता है। कहानी है कि विष्णु जी एक मानसिक चिकित्सक की भूमिका निभाने के लिए, शिव जी को परेशानी से बचाने के लिए स्वयं पावर्ती जी का रूप धारण कर भस्मासुर के सामने उपस्थित हो जाते हैं और प्यार भरे शब्दों में भस्मासुर को सम्बोधित करते हैं "हे महाबली, मैं स्वयं तुम्हारे ऊपर आसक्त हूँ और सामने आ गई हूँ, लेकिन हमें थेइया का नाच बहुत पंसद है और मुझे रिझाने के लिए हमारे देव स्वयं इस नाच को किया करते थे। आप भी मुझे थेन्इया नाच दिखाएं। इस नाच में प्रभु का बायां हाथ सिर पर और दाहिना हाथ कमर पर होता था और तब तक वे इस नाच को लयात्मक ढंग से करते जाते थे जब तक मैं मना नहीं कर देती थी।"

भस्मासुर ने भी बायां हाथ सिर पर और दाहिना हाथ कमर पर रखकर थेइया का लयबद्ध ढंग से नाच करना तथा पैर और अंग संचालन करना शुरू कर दिया। कुछ ही क्षणों में भस्मासुर के ध्रुवीकरण ऊर्जा प्रवाह की बाधा दूर हो गई और निर्विघ्न प्रवाहित होकर इसने उसकी उत्तेजना को ही शान्त नहीं किया, बल्कि उसे एक सामान्य व्यक्ति बनाकर अपनी पूर्व गरिमा पर ला दिया, उसने अपने किए पर अंत में पश्चाताप किया जिससे उसका पूरा कलेवर ही भस्मीभूत हो गया।

हम भी भस्मासुर थेन्इया नृत्य द्वारा अपने वर्तमान अवांछित कलेवर को भस्म कर स्वस्थ, आकर्षक, सफल व्यक्तित्व के व्यक्ति बन सकते हैं। हर शारीरिक और मानसिक रोगों के लिए यह विधि रामबाण है।

तंत्रोपैथी की दृष्टि में भाव, मुद्रा और शारीरिक प्रतिक्रियाएं

तंत्र ने मुद्रा और भाव को सःधर्मी, सःकर्मी और एक दूसरे का पूरक बताया है। मन में जैसा भाव होगा, मुख मुद्रा वैसी हो जाएगी और जैसी मुद्रा होगी वैसे ही भाव उत्पन्न होंगे। जैसा कि हम लोग जानते हैं हमारे विभिन्न मनोभावों का प्रभाव हमारी ग्रन्थियों और उपग्रन्थियों के स्राव और मस्तिष्क के कोष्ठकों पर तत्काल और तीव्र गति से होता है। क्रोध एक भाव है जिसके आते ही आँखें वक्र, चेहरा तमतमाया हुआ हो जाता है और आवाज में अस्वाभाविक रूप से कर्कशता आ जाती है। क्रोध आने पर सर्व प्रथम 'सलाइवा' नाम की 'लसिका' बनाने वाली ग्रन्थि पर तीव्र प्रभाव पड़ता है। वे अपना स्राव बहाना बन्द कर देती हैं जिससे क्रोधित व्यक्ति का मुंह और गला सूखने लगता है। सारे शरीर में रक्तसंचार की प्रक्रिया भी इतनी तेजी से बढ़ जाती है कि एक क्रोधित व्यक्ति क्रोध समाप्त होने के बाद थका-थका-सा महसूस करने लगता है।

प्रेम और खुशी के भाव आते ही हमारा चेहरा गुलाब की पंखुड़ियों की तरह खिल जाता है। होंठ रस से लबालब भरे होते हैं और आवाज में अस्वाभाविक कोमलता और मिठास भर जाती है। जिसे सुनते ही सुनने वाला सम्मोहित हो, वैसी ही मुद्रा बना लेता है और कुछ क्षण के लिए प्रेम और खुशी से उसका हृदय छलकता हुआ दिखाई पड़ता है। जैसा हमारा भाव होगा, वैसी मुख मुद्रा होगी और हमारा शरीर उसी प्रकार अनुकूल और प्रतिकूल प्रतिक्रिया दिखाएगा। तंत्रोपैथी इसी भाव, मुद्रा और शारीरिक प्रतिक्रिया को स्थापित कर रोग निवारण करता है।

हमारी स्नायुशक्ति का अर्थ शारीरिकशक्ति से नहीं है। स्नायुशक्ति शारीरिक शक्ति को नियंत्रित करता है। एक स्नायुशक्ति से कमजोर व्यक्ति को नर्वस स्वभाव का व्यक्ति कहा जाता है। ऐसे नर्वस प्रकृति के व्यक्ति शरीर से हट्टे-कट्टे हो सकते हैं लेकिन अचानक किसी चीज से शरीर का र्स्पश होते ही वे उछल जाते हैं। सारा शरीर डर से पत्ते की तरह कांपने लगता है और उसके हृदय की धड़कन बढ़ जाती है। ऐसी स्थिति सुखद या दुखद समाचार सुनने के बाद भी हो सकती है, अगर वह नर्वस प्रकृति का व्यक्ति है। वास्तविक स्नायु शक्ति शारीरिक शक्ति के विद्युत का एकत्रीकरण है। स्नायुशक्ति शारीरिक और मानसिक शक्ति से पूर्णतः भिन्न है। मुद्रा और भाव इसी स्नायु शक्ति से संबंधित होता है।

वास्तव में हमारे शरीर के तीन विभाग हैं—मांसपेशियाँ (मसल्स), मन (माइन्ड) और भाव (फीलिंग)। जब मांसपेशियां मन और भाव पर हावी रहती हैं, तब आदमी जानवर बन जाता है और विभिन्न तरह के शारीरिक और मानसिक रोगों से पीड़ित रहता है। जानवर खाने, भय से ग्रसित रहने, आलस्य और मैथुन के

प्रति समर्पित होने की प्रवृत्ति से ग्रसित होता है। उपर्युक्त क्रियाओं को जानवरों में प्रकृति स्वयं नियंत्रित करती है लेकिन मनुष्य के जानवर बनने का अर्थ है उपर्युक्त पशु वृत्ति जिसे मनुष्य में प्रकृति नियंत्रित नहीं करती है, बल्कि मनुष्य स्वयं या तो विभिन्न तांत्रिक विधियों द्वारा नियंत्रित करता है या पूर्ण रूप से वृत्तियां अनियंत्रित होकर मनुष्य के जीवन भर धमाचौकड़ी मचाती रहती हैं और तरह-तरह की बीमारियों का शिकार बनाती हैं। जब भाव मांसपेशियों और मन पर हावी रहता है तब आदमी शैतान बन जाता है। यह स्थिति भी मनुष्य के लिए दुखदायी होती है। मांसपेशियों और विभिन्न भावों पर मन का साम्राज्य ही मनुष्य को निरोग, सफल, आकर्षक और अह्लादिल व्यक्तित्व वाला व्यक्ति बनाता है। मुद्रा, मन को सही दिशा में ले जाने और मन, मुद्रा द्वारा मांसपेशियों और भावों पर नियंत्रण करने का माध्यम है। तंत्रोपैथी स्नायु शक्ति को विकसित कर रोगमुक्त कराने की एक पद्धति है। मुद्रा उत्पादित स्नायुशक्ति की लाल अग्नि (रेडफायर) मांसपेशियों और भावों को शान्त तो करता ही है साथ-ही-साथ विभिन्न रोगों से भी मुक्ति दिलाता है।

उत्कंठा भाव से मजबूत है क्योंकि उत्कण्ठा से भाव में अधिक उत्तेजना होती है और प्रोत्साहित उत्कंठा (एकसाईटेड पैशन) ही अहंकार का रूप ले लेता है जो अपने भावों को बार-बार अपनी परिकल्पना में मूर्तरूप देकर हास्यास्पद नाटक करता रहता है। उसका भाव उत्कण्ठा, फिर प्रोत्साहित उत्कंठा और अंत में अहंकार का रूप लेकर, उसे हास्यास्पद और रोगी बना देता है। ऐसे रोगी का एक मात्र इलाज हास्यमुद्रा, प्रसन्न मुद्रा और अह्लाद मुद्रा का प्रतिदिन अभ्यास है। अमृत और रामबाण जैसी दवाएं, रोगी को असाध्य बनने से नहीं बचा सकतीं हैं, जब तक उपर्युक्त मुद्राओं का नियमित रूप से अभ्यास न कराया जाय। जिस प्रकार एक सफल अभिनेता बनने के लिए उस चरित्र को आत्मसात् कर उसका अभिनय करना होता है उसी प्रकार रोगमुक्त होने के लिए हास्यमुद्रा का अभ्यास करना ही होगा।

आप जितना अधिक मुद्राओं के अभ्यास में दिलचस्पी लेंगे उतनी ही तीव्र गति से रोगों को अपने से दूर भगायेंगे। इधर जो ब्रह्मांड की सारी खाली जगहों को भरता है, वह स्वयं लाखों अणुजीवन् या माइक्रोबाइटा से बना होता है। अणु जीवत् (माइक्रोबाइटा) को चैतन्य विद्युताणु भी कह सकते हैं। किसी भी वस्तु की बनावट में अणु की अहम भूमिका होती है और तभी वह वस्तु अस्तित्व में आती है। एक अणु मुख्यतः तीन गुणों से पूर्ण होता है। उसका एक छोर आकर्षण (एट्रेक्शन), दूसरा छोर विकर्षण (रिपल्सन) और मध्य आन्दोलित (रिवोल्यूशन)। इसीलिए प्रत्येक वस्तु और रासायनिक शक्ति में भी यह गुण होता है।

हमारे सभी शारीरिक क्रियाकलाप (एक्टिविटी) में मानसिक शक्ति और स्नायुशक्ति लिप्त या ओत-प्रोत रहती है। इसीलिए शारीरिक कार्य करने से हममें शक्तिसम्पात होता है। वृहद् मस्तिष्क को शारीरिक क्रियाओं की जानकारी स्वयमेव हो जाती है, जबकि आदतन क्रियाओं और यांत्रिक क्रियाओं के लिए प्रकृति ने

अलग से लघु मस्तिष्क दिया है। यही कारण है कि अगर कोई व्यक्ति अपनी हर शारीरिक और यांत्रिक क्रियाओं पर सोचने या गौर करने लगे तो अधिक दिनों तक नहीं वच सकता। इसीलिए लघु मस्तिष्क को इस काम को करने के लिए प्रकृति ने सौंपा है। यह द्वितीय मस्तिष्क जब तक इस काम को अपने हाथ में नहीं ले लेता, तब तक हम न टाइप कर सकते हैं और न किसी तरह की साधना। इसीलिए स्वास्थ्य लाभ के लिए भी तंत्रोपैथिक मुद्राओं, इष्टप्रणाम और गहर संकोचन प्रसारण प्राणायाम की आवश्यकता पड़ती है। तंत्रोपैथी के अनुसार दृढ़ इच्छा शक्ति (हार्डेस्ट विल पावर) मांसपेशियों से ही आती है और रोगी में रोगमुक्त होने और अधिक दिन तक जीने के लिए यह आवश्यक है कि वह सर्वांग व्यायाम करे और सक्रिय रहे।

तंत्रोपैथी में रोगी के शरीर के इथेरियम क्षेत्र को स्पंदित कराया जाता है और इसके लिए सक्रिय इच्छाशक्ति की आवश्यकता है। इच्छाशक्ति दो प्रकार की होती है–सक्रिय इच्छाशक्ति और गुप्त इच्छाशक्ति। गुप्त इच्छाशक्ति सांवेगिक स्वभाव की होती है और उसमें रोगी के शरीर के इथेरियम क्षेत्र को स्पंदित करने की क्षमता नहीं होती। विभिन्न तंत्रोपैथिक विधियों, मुद्राओं और गहर संकोचन प्रसारण प्राणायाम से सक्रिय इच्छाशक्ति को ही जागृत किया जाता है। एक तंत्रोपैथिक डॉक्टर जितना अधिक रोगी में और रोगी के साथ की गई बातों में दिलचस्पी लेगा, उतना ही अधिक तेजी से रोगी को रोग मुक्त कराएगा।

तंत्रोपैथी के अनुसार हमारा मन, शरीर के जरिए घूमता रहता है। मन के भ्रमण का माध्यम हैं हमारे शरीर के प्रमुख अंग–आँखें, चेहरा, त्वचा और वाणी। विभिन्न मुद्राएं, पद्धतियां और गहर प्राणायाम पद्धति। उपर्युक्त मन के भ्रमण पथ को रोगी के रोगमुक्ति के अनुकूल बनाना और रोगग्रस्त अंग में स्नायुशक्ति का सम्पात करा देना है। मन में कोई भाव आते ही कुछ ही क्षण में आँखों द्वारा प्रकट हो जाता है। इसके बाद वही भाव चेहरे पर अंकित हो जाता है। इसके बाद वाणी से प्रकट होता है और अंत में शारीरिक मांसपेशियाँ उस भाव के मुताबिक क्रिया करती हैं। एक क्रोधित व्यक्ति की आंखों से सर्वप्रथम क्रोध प्रकट होता है इसके बाद चेहरा तमतमाता है, फिर कर्कश आवाज निकलती है और अंत में हाथाबाही पर वह उतरता है। डॉक्टर को रोगी की आंखों का सबसे पहले निरीक्षण करना इसी बात की पुष्टि करता है। इसीलिए तंत्रोपैथी में आंखें, चेहरा, त्वचा और वाणी का बहुत बड़ा उपचारात्मक महत्त्व है। तंत्रोपैथिक पद्धति द्वारा इलाज में शारीरिक शक्ति को मानसिक शक्ति में और मानसिक शक्ति को अध्यात्मिक या आत्मिकशक्ति में परिवर्तित-परिवर्धित कर रोगी को निरोग, आकर्षक और अह्लादित व्यक्तित्व वाला व्यक्ति बनाया जाता है।

तंत्रोपैथी रोगी के मानसिक चुम्बकत्व का विस्तार कर रोगों को दूर करता है। चुम्बकत्व (मैगनेटिज्म) का विस्तार मानसिकशक्ति का विस्तार है। मानसिक चुम्बकत्व के आवागमन का माध्यम माइक्रोबाइटा या अणुजीवत् है जिससे यूनिवर्सल इथर का निर्माण होता है। हमें याद रखना है कि ध्वनि के लिए हवा

एक आवश्यक माध्यम है लेकिन मीठी या कर्कश आवाज के लिए जहां हवा संग्रहित होती है, श्वास लेकर, वहां से कलात्मक ढंग से बोलने की नली से उसी मात्रा में फेंका जाता है, जितनी मात्रा में आवाज करनी होती है। इसी प्रकार रोग निवारण के लिए रोग की गंभीरता के अनुसार ही चुम्बकत्व शक्ति का विस्तार रोगी में कराना होता है। चुम्बकीय शक्ति के आते ही आंखों में फासफोरिक चमक आ जाती है। आंखों की यह चमक भीतर के प्रकाश, मानसिक विद्युत या विचारों की दीप्ति है। आंख और मस्तिष्क एक साथ काम करते हैं। एक आदमी जो आपको मारने के लिए तैयार बैठा है उसकी आंखों से उसके उद्देश्य का पता चल जाएगा क्योंकि मन की यात्रा पहले आंखों से ही शुरू होती है। इसलिए उपचारक रोगी की आंखों को तेजी से दांए-बांए घुमवाकर मस्तिष्क को उत्तेजित कर देता है। यह मस्तिष्क के चलने के सदृश्य होता है। याद रहे उत्तेजित आंखें ही मस्तिष्क के चुम्बकत्व को उत्तेजित कर विस्तृत कर देती हैं। पागल की तरह आंखें करना, निर्भीक को भी पागल कर देती हैं। इसके लिए तंत्रोपैथी संयम उपचार गृह में रोगी की आंखों को तीन दिशा में मजबूत करने का अभ्यास कराना पड़ता है।

(1) आंखों की पलकों और उससे घिरे चेहरे की मांस पेशियों को।
(2) अन्दर की मांसपेशियों को जो आंख के गोलक को नियंत्रण करती हैं।
(3) और स्वयं आंख के गोले को।

तंत्रोपैथी के अनुसार मंत्रजाप एक आवश्यक रोगोपचार विधि है। माइक्रोवाइटा अधिक शक्ति संचार करता है और कम वस्तु निर्माण। इसलिए वह तनमात्र के माध्यम से भ्रमण करता है। इधर 'एलेक्ट्रो मैगनेटिक फील्ड' है और ध्वनि 'एलेक्ट्रो मैगनेटिक तरंग' या लहर। मंत्रोचारण से या सकारात्मक चिन्तन से इधर स्पंदित हो जाता है और मित्रवत् माइक्रोवाइटा' का मार्ग रोगनिवारण के लिए प्रशस्त हो जाता है महामृत्युंज जाप को इसी लिए तंत्रोपैथी में विशेष स्थान दिया गया है और संयम उपचार संस्थानों में इसकी पूर्ण व्यवस्था करने की व्यवस्था दी गई है। 'माइक्रोवाइटा' प्रोटोप्लाज्म में अत्यन्त सूक्ष्मातिसूक्ष्म चैतन्य है जिसे तंत्रोपैथी में विभिन्न उपचारात्मक माध्यमों से रोग निवारण के लिए स्पंदित कराया जाता है। आज के डॉक्टर प्रत्येक रोगी को प्रयोगात्मक वस्तु बना देते हैं और रोगी उसी तरह मर रहे हैं जिस प्रकार अत्यधिक मात्रा में खाद देने से कुछ दिनों के बाद जमीन अपनी स्वाभाविक शक्ति खोकर बंजर बन जाती है।

नटराज मुद्रा

नटराज मुद्रा का अभ्यास मानसिक चुम्बकत्व को बढ़ाने के लिए जरूरी है। वह आंखों में फासफोरिक चमक ला देता है। मस्तिष्क और आंखें एक साथ काम करती हैं। मानसिक क्रियाओं की शारीरिक यात्रा पहले आंखों से ही शुरू होती है और अन्त में चेहरा, वाणी से यात्रा कर मांसपेशियों द्वारा प्रकट होती है। रोगी की आंखों अनुभवी डॉक्टर इसीलिए सर्वप्रथम परीक्षण करता है। विचार पहले

आंखों की पुतलियों में दीखता है। यह वहां ऐसा ही चमकता है जैसा हू-ब-हू मस्तिष्क में बना है। इसके पूरे एक सेकण्ड बाद वह चेहरे को प्रकाशयुक्त करता है। दमकता लाल चेहरा इस बात का सबूत नहीं है कि वह क्या सोच रहा है बल्कि इस बात का सबूत है कि उसने क्या सोच लिया है। आंखों की फासफोरिक चमक अच्छे स्वास्थ्य की निशानी है और आंखों का प्रकाश मानसिक विद्युत है, विचारों की दीप्ति है, निरोग होने की आभा है। हमारे वचन और स्वास्थ्य का प्रतिनिधित्व हमारी वाणी नहीं आंखें करती हैं। मस्तिष्क के चुम्बकत्व को उत्तेजित केवल उत्तेजित आंखें ही कर सकती हैं जिससे रोगनिवारण आसानी से हो सकता है।

संयम और रोग दूर करने के लिए आंखों को तीन दिशा में मजबूत करना होगा।

(1) आंखों के पलक और उससे घिरी चेहरे की मांसपेशियों को।
(2) अंदर की मांसपेशियां, जो आंख के गोले को नियंत्रण करती हैं।
(3) स्वयं आंखों के गोले को।

हमारी आंखों में दो पलकें होती हैं ऊपर की पलक और नीचे की पलक। ऊपर की पलक का थोड़ा चलना पूरे चेहरे के भाव के अर्थ को बदल देता है। पलक का धीरे-धीरे चलना मन के भाव को पूर्ण रूप से व्यक्त कर देता है। ऊपर की पलकों की चाल (मूवमेंट) से शान्ति, उदासीन और प्रेमाधिक्य भावों का निर्धारण होता है। इसके अभ्यास के लिए एक आइना के सामने कम रोशनी में बैठें। दोनों आंखों की ऊपरी पलकों को आइने में देखें और पलकों को गोलाकार उपतारा (आईरीश) और पुतली (पुपील) के स्थान पर स्थापित करें। उपतारा बड़ा गोलार्द्ध होता है जिसमें पुतली दिखती है। आंख का उजला भाग उपतारा के चारों ओर होता है। आइने में अपनी आंख के उपर्युक्त भागों को अच्छी तरह देख लें और पहचान लें। क्योंकि विभिन्न नटराज मुद्राओं में भाव अभिव्यक्ति इन स्थानों का बड़ा महत्त्व होता है।

(1) शान्ति नटराज मुद्रा– शान्ति-मुद्रा एक ऐसी आंख की मुद्रा है जिसके अभ्यास से मस्तिष्क के तनावग्रस्त भाव शान्त हो जाते हैं। उग्र उत्तेजनाओं के चलते मन तनावग्रस्त होता है। और आंखों की शान्त उत्तेजना जिसे शान्ति नटराज मुद्रा द्वारा किया जाता है, कुछ क्षणों में मस्तिष्क की उग्र उत्तेजनाओं को शान्त कर देती है। एक छोटे आइने को अपने से दो फीट की दूरी पर रखें जिसमें आपका चेहरा साफ दिखाई देता हो। आइने में अपनी आंख को देखते हुए बड़ी सावधानी से ऊपरी पलक के कोर को पुतली और केन्द्र के बीच में स्थापित करें। इसी स्थिति में एक मिनट रहें, मन धीरे-धीरे शान्त होने लगेगा। रोगी को कोई भी इलाज देने के पहले शान्तिमुद्रा का एक मिनट का अभ्यास कराना आवश्यक है।

उपचारक को नित्यप्रति शान्ति मुद्रा का अभ्यास करना चाहिए और अभ्यस्त हो जाने पर इसी मुद्रा में रोगी की आंखों में देखते हुए उसकी बातों को सुनना

और राय देना चाहिए। उपचारक की शान्तमुद्रायुक्त आंखों को देखते रहने से ही रोगी का रोग तत्काल 25% कम हो जाता है। शान्तिमुद्रा का अभ्यास रोगी और उपचारक दोनों के लिए उपयोगी है। इस मुद्रा से आंख की ऊपरी पलक और उससे संबंधित मांसपेशियों में लचीलापन आता है और उस पर नियंत्रण होता है।

(2) **उदासीन या उपेक्षित नटराज मुद्रा**–तंत्रोपैथी के अनुसार यह सत्य है कि आंख और मस्तिष्क दोनों एक साथ काम करते हैं। एक व्यक्ति जो आप पर आक्रमण करना चाहता है, यह विचार उसकी आंखों में उतर आता है। इसीलिए अतिथि चाहे जिसे पहचानते हों या नहीं एक ग्लास ठंडा पानी शान्त मुद्रा में देने की भारतीय संस्कृति (तांत्रिक संस्कृति) है। इससे कड़ी धूप और मानसिक आघात से बना तनावग्रस्त मस्तिष्क शान्त हो जाता है। उदासीन और उपेक्षित मुद्रा किसी बातूनी, समय बरबाद करने वाले, काहिल को उसके प्रति उपेक्षा और उदासीनता का भाव आंखों में लाकर उससे पीछा छुड़ाना होता है। रोगी कभी-कभी अनावश्यक रूप से उपचारक को तंग करता है और व्यर्थ का समय बरबाद करता है। बजाय ऐसे रोगी को डांटने या जाने के लिए कहने के, इस मुद्रा से देखने पर ही वह अपने आप उठकर चला जाता है।

आइने में देखते हुए ऊपरी पलक को आंख की पुतली के ऊपर स्थापित करें। सिद्धासन या वीरासन में इस मुद्रा का अभ्यास आवश्यक होता है। इस मुद्रा के एक मिनट के अभ्यास से ही मन, वस्तु, कान्ति और विचार के प्रति उदासीनता और उपेक्षा का भाव आने लगता है।

(3) **प्रेमाधिक्य नटराज मुद्रा :-** अधिकांश मामलों में हमारी आंखें हमारे मस्तिष्क में विचारों के बदलाव की अग्रिम सूचना दे देती हैं। वास्तव में हमारे मस्तिष्क का प्रतिनिधित्व हमारी वाणी नहीं, बल्कि आंखें करती हैं। सच पूछिए तो आंखों का आकर्षण (मैगनेटिज्म) हमारे मस्तिष्क को आविर्भूत किए रहते हैं और मस्तिष्क और आंखें एक दूसरे को उत्तेजित करते रहते हैं। ऐसा देखा गया है कि अधिक मानसिक शक्ति से युक्त व्यक्ति कभी-कभी विचार को समझ नहीं पाता लेकिन वह उस विचार को आसानी से ग्रहण कर लेता है, समझ लेता है, जब वह आंख के गोलक को बाएं और फिर दाएं तेजी से 7 बार घुमा लेता है। यह क्रिया वास्तव में मस्तिष्क को चहलकदमी कराती है।

आंख के ऊपरी पलक के कोर को इस प्रकार स्थित करें कि वह आंख के पलक का कोर उपतारा के ठीक ऊपर, किनारे पर हो। यह मुद्रा किसी चीज में गहरी दिलचस्पी पैदा करने के लिए है। इस मुद्रा में ही उपचारक को रोगी से तंत्रोपैथिक मुद्रा और विधियों का वर्णन करना चाहिए।

(4) **चिन्तन नटराज मुद्रा**–यह मुद्रा वीरासन या सिद्धासन में करें। आँखों के ऊपरी पलक को पुतली के ऊपर इस प्रकार स्थित करें जिससे आधी पुतली ही दिखाई पड़े। यह मुद्रा गहरे चिन्तन का द्योतक है। गहरे चिन्तन में ऐसी मुद्रा अपने आप बन जाती है या ऐसी मुद्रा करने से किसी विषय या वस्तु के गहरे

चिन्तन में मस्तिष्क स्वयं डूब जाता है।

(5) **उत्तेजक मुद्रा**–यह मुद्रा भी वीरासन में की जानी चाहिए। आँख के ऊपरी पलक के कोर उपतारा के ऊपर इस प्रकार स्थित करें कि उपतारा के ऊपर आँख के गोलक का उजला भाग एक पतली उजली रेखा की तरह दिखाई पड़े। यह मुद्रा हल्की डांट बताने तथा अनर्गल प्रलाप को चुप कराने के लिए पर्याप्त होता है। यह मुद्रा उपचारक के लिए अधिक उपयोगी है।

(6) **अनियंत्रित उत्तेजक नटराज मुद्रा**–इस मुद्रा को वीरासन या सुखासन में कर सकते हैं। आँख के ऊपरी पलक के कोर को उपतारा के ऊपर इस प्रकार स्थित करें कि आँख के गोलक का उजला भाग अधिक-से-अधिक दिखाई पड़े। यह मुद्रा, अत्यधिक उत्तेजना, मस्तिष्क में पैदा करता है या मस्तिष्क जब अधिक उत्तेजित हो जाता है तब ऐसी मुद्राएं स्वमेव बन जाती हैं।

उपर्युक्त सारी मुद्राएं अभ्यास के बाद ही ठीक-ठीक की जा सकती हैं और अभ्यस्त होकर उपचारक और रोगी अपने मस्तिष्क को आसानी से नियंत्रित कर सकता है।

निर्देश

विभिन्न मुद्राओं में दक्षता पाने के लिए, हाथ में आइना लेकर ऊपरी पलक को उठाने गिराने के अभ्यास के पहले, आँखों की पलकों को पूरा खोलें और फैलाएं तथा तीखी नजर से आइने में इसे देखें। इससे आँख की सारी मांसपेशियां मजबूत होंगी। शुरू-शुरू में आंखों में दर्द महसूस होगा लेकिन आँखों की हल्की मालिश से वह ठीक हो जाएगा। ऐसा करने से कमजोर आँखें स्वस्थ हो जाती हैं। आँखें तरेर कर देखने के इस अभ्यास को एक मिनट से प्रारम्भ करें और अधिक-से-अधिक पांच मिनट तक करें।

(7) **अनुसंधान नटराज मुद्रा**–वीरासन में ही आँख की ऊपरी पलक के छोर को उपतारा के ठीक ऊपर स्थित करें जैसा कि प्रेमाधिक्य मुद्रा में करते हैं और निचली पलक को आँखों की पुतलियों के निचले किनारे पर ले जायें।

(8) **खुला मुख मण्डल नटराज मुद्रा**–खुला मुख मण्डल मस्तिष्क के लिए अधिक रोशनी चूसता है। यह मनोवृत्तियों पर शान्त नियंत्रण की मुद्रा है। इससे चेहरे की झुर्रियां दूर हो जाती हैं। इससे मुखमण्डल सुन्दर और आकर्षक दीखने लगता है। बन्द मुखमण्डल उदासी और श्रीहीनता का प्रतीक है जबकि खुला मुखमण्डल स्वस्थ आकर्षक और आह्लादित व्यक्तित्व का द्योतक है। कमजोर आँख वाले व्यक्ति का चेहरा बन्द रहता है। या चेहरे को बन्द रखने का उसे अभ्यास हो जाता है। दुखित, चिन्तित और दरिद्र व्यक्ति का चेहरा बन्द रहता है। जबकि खुश, सफल और आह्लादित व्यक्ति का चेहरा खुला होता है।

अभ्यास–आँख की दोनों भौंहों का प्रसारण जितना आप कर सकते हैं करें और उसी उल्टी दिशा में उसका संकोचन अधिक-से-अधिक भौंहो को ढीला करके

करें। हमेशा चेहरे को खुला रखें और ध्यान उसी पर लगाए रखें। प्रतिदिन 5 मिनट का अभ्यास इसके लिए प्रर्याप्त होता है। खुला चेहरा सांवेगिक स्थिरता और आर्कषण का प्रतीक है जबकि बन्द चेहरा सांवेगिक अस्थिरता, अनियंत्रण तथा अनाकर्षण का द्योतक।

9. संतुलित चक्षुगाति नटराज मुद्रा—आँख की रोशनी ठीक रखने के लिए संतुलित आंखों की गति आवश्यक है। वे स्नायु जो आँखों की मांसपेशियों को संचालित करते हैं, वे मस्तिष्क के विद्युतीय बैट्री से सीधे जुड़े होते हैं। इसलिए मनुष्य के प्रत्येक विचार और भाव से आँखें प्रभावित होती हैं और आँखों की विशिष्ट गति और मुद्रा से मस्तिष्क उत्तेजित होता है। उपर्युक्त मुद्राओं का सम्मिलित अभ्यास नीचे दिया जाता है जिसे करने से आँख की रोशनी कभी भी कम नहीं होगी और अगर कम हो गई है तो दूर होकर पुनः लौट आएगी।

अभ्यास—आँख की पलकों को जितना खोल सकते हैं पूरा खोलें और उसे तनावहीन अवस्था में उसी स्थिति में रखें। आँख की भौहों का आँख को खोलने के साथ प्रसारण न करें। सिर को समानान्तर में रखें। आइने में गहरी दृष्टि से आँखें तरेर कर देखते रहें और आँखों को और अधिक खोलने का प्रयत्न करें। बिना सिर को हिलाए आँख के गोलक को दाएं-बाएं उसी स्थिति में 8 बार घुमाएं। फिर ऊपर नीचे तेजी से 8 बार घुमाएं। इससे मस्तिष्क का चुम्बकत्व बढ़ेगा, आंखों की रोशनी ठीक रहेगी, आंखों में फासफोरिक चमक आएगी और मुखमंडल सुन्दर बनेगा। शुरू में इस अभ्यास को पांच सेकण्ड से प्रारम्भ करना चाहिए और इसकी अवधि एक सप्ताह के भीतर 5 मिनट तक बढ़ाना चाहिए।

10. मुखावृत्ति मर्दन नटराजमुद्रा—चेहरे के दोनों ओर दोनों हाथों को आंख के करीब में इस प्रकार रखें कि हाथ पूरे चेहरे को ढक लें और उंगलियां ललाट को। फिर हाथों को ऊपर नीचे, नीचे ऊपर 16 बार घुमाएं। चेहरे पर हाथों का दबाव इतना ही रहे कि चेहरे की चमड़ी रगड़ न खाए, सिर्फ वह ऊपर नीचे होती रहे। फिर इसी स्थिति में चेहरे की चमड़ी को आगे-पीछे 16 बार घुमाएं। फिर एक साथ ही दाहिनी हथेली ऊपर की ओर बायीं हाथेली नीचे की ओर उसी स्थिति में 16 बार घुमाएं। फिर इसी प्रकार एक साथ ही दाहिना हाथ आगे और बायां हाथ पीछे की ओर चेहरे की चमड़ी को 16 बार घुमाएं, फिर दाहिने हाथ से दाहिनी आंख के ऊपर चमड़ी को और बाएं हाथ से बायीं आंख की चमड़ी को नीचे और फिर ऊपर की तरह ही—दाएं-बाएं 16-16 बार घुमाएं। फिर ललाट से गाल तक की चमड़ी गोल-गोल, दाएं-बाएं, ऊपर नीचे घुमाएं, फिर दाएं-बाएं हाथ की मध्यमा अंगुली से आँख के गोलक की हल्के हाथ से गोल-गोल मालिश 16 बार करें। यह अभ्यास नित्यक्रिया में सम्मिलित कर लें। चेहरे और आँखों की सुन्दरता और स्वास्थ्य के लिए इससे अच्छी और कोई दवा नहीं है।

11. पुतली विस्तार नटराज मुद्रा—आँख की पुतलियों का विस्तार व्यक्तिगत आकर्षण को बढ़ाता है। हमारे शरीर में कई प्रकार की शक्तियां हैं

जिससे कई तरह का आकर्षण हममें आता है। हमारी आंखें अंडाकार की आकृति की हैं जो गोलाकार ऊपर से दिखती हैं। काले भाग को उपतारा कहते हैं और आँख के केन्द्र में पुतली होती है। पुतली से होकर ही मस्तिष्क की मैगनेटिक चमक पास करती है। यह हमारे मुद्रा सम्वेग तथा विभिन्न भावों को भी प्रकट करती है। हमारी आँख की ऊपरी पलक द्वारा उपर्युक्त तथ्य विभिन्न मुद्राओं के माध्यम से जाहिर होते हैं जबकि नीचे की पलक की मुद्रा से 'अनुसंधान' जाहिर होता है। नटराज मुद्राओं में इसका सविस्तार वर्णन किया गया है। आंख के गोलक का उजला भाग स्वास्थ्य और पुतली मानसिक मैगनेटिक हालत को बतलाती है। जब मस्तिष्क की चुम्बकीय शक्ति कम रहती है तब पुतलियां सिकुड़ी हुई और अनाकर्षक दीखती हैं। रोग और अत्यधिक तनाव की स्थिति में पुतलियां फैलती हैं लेकिन मानसिक चुम्बकीय शक्ति से युक्त आंखों की पुतलियां हमेशा फैली रहती हैं।

आंखों की पुतलियों के संकोचन प्रसारण के लिए आंखों को तब तक निम्न अभ्यासों द्वारा प्रशिक्षित करते रहना होगा, जब तक इच्छा होते ही पुतलियां अपने आप संकोचन प्रसारण न करने लगें। अंधेरे में पुतलियां फैलती हैं और प्रकाश में वे सिकुड जाती हैं। चुम्बकीय शक्ति, शारीरिक, मानसिक या अध्यात्मिक हो सकती है और ऐसे शक्तिसम्पन्न व्यक्ति की तीनों हालतों में पुतलियों का फैलाव होगा ही। व्यक्ति जब चुम्बकीयशक्ति से पूर्ण नहीं होता तब वह चिल्ला-चिल्ला कर अभिनय करते हुए बोलता है और लोगों को आकृष्ट करने की कोशिश करता है। लेकिन चुम्बकीय शक्ति से युक्त वक्ता की आवाज धीरे-धीरे समृद्ध होते हुए बढ़ेगी और उसी मात्रा में उसकी आंखों की पुतलियां भी फैलती जाएंगी। व्यक्तिगत शक्ति से युक्त आंखें चाहे वे भूरी, नीली ही क्यों न हों काली दिखती हैं। इस अभ्यास से आंखें तो स्वस्थ होती ही हैं, अन्य प्रकार के असाध्य शारीरिक-मानसिक रोग भी दूर हो जाते हैं, बशर्ते रोगी इस मुद्रा का बराबर अभ्यास करे। कैंसर रोगी के लिए तो यह अभ्यास रामबाण का काम करता है।

अभ्यास की तैयारी–एक कोठरी में अकेले वीरासन में बैठिए जिसमें हल्की रोशनी हो या धीमी रोशनी की व्यवस्था कीजिए। अपने चार फीट की दूरी पर एक आदम कद आइना रखिए और आँखों के समानान्तर में उस पर एक बिन्दु लगा दीजिए और उस पर अपनी आँखें स्थिर करें, साथ-ही-साथ मस्तिष्क की मांसपेशियों को भी खूब तनाव युक्त करें। ऐसा 1 मिनट करने के बाद बिन्दु से नजर हटा लीजिए और 1 मिनट आराम कीजिए। असावधानी से, जल्दी में तथा बिना मन का किया हुआ अभ्यास बेकार चला जाएगा।

अभ्यास–पुनः उस बिन्दु पर आंखें स्थिर करें और मस्तिष्क की मांसपेशियों को पूर्ण तनावमुक्त कर दें। इसके साथ-ही-साथ बिन्दु और मस्तिष्क के केन्द्र से एक काल्पनिक लकीर खींचिए और अपनी इच्छाशक्ति से उस काल्पनिक लकीर को 1 मिनट तक देखते रहिए, घुमाते रहिए। मस्तिष्क की मासपेशियों को पूर्ण शक्ति से तनावमुक्त रखिए और उस शक्ति को दाहिनी ओर 1 मिनट घुमाते

रहिए, उतना ही जितना बिना सिर हिलाये दाहिनी ओर जा सकें। जैसे ही आप मस्तिष्क के तनाव को इच्छाशक्ति में परिवर्तित करने में सफलता पा लेंगे और लकीर को कल्पना में साकार कर लेंगे वैसे ही एक नई शक्ति से भर जाएंगे। 1 मिनट के लिए आराम कर लीजिए। फिर उसी तरह मस्तिष्क से केन्द्र तक काल्पनिक लकीर को खींचकर 1 मिनट तक बायीं ओर उतना ही ले जाएं जितना बिना सिर घुमाए आप देख सकते हैं और घुमाते रहिए। फिर एक मिनट के लिए बिन्दु से नजर हटाकर मस्तिष्क को तनाव रहित करें फिर काल्पनिक लकीर को दाईं ओर एक मिनट के लिए घुमाइए, घुमाते रहिए जब तक धीमी न हो जाय। फिर लकीर को बांए से दाएं और दाएं से वाएं तब तक घुमाते रहिए जब तक बिन्दु अपने आप दूर न हो जाये और मात्र फासफोरस की एक लकीर मस्तिष्क के बिन्दु तक न दिखाई पड़ने लगे।

12. **जीवनीशक्ति उत्तेजक नटराजमुद्रा**–तंत्रोपैथी में मस्तिष्क और मांसपेशियों को स्वास्थ्य लाभ के लिए यह अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। मस्तिष्क विभिन्न शक्तियों का स्रोत है और मांसपेशियां उन शक्तियों को संयम करने और सारे शरीर में समानुपातिक ढंग से शक्ति सम्पात कराकर स्वस्थ रखने का माध्यम है। हमारी आंखें मुखमण्डल और वाणी, मस्तिष्क और मांसपशियों को उत्तेजित करने, उन्हें सक्रिय बनाने के संयंत्र हैं। उपर्युक्त शारीरिक संयत्रों के अभ्यास के लिए विभिन्न मुद्राओं की खोज की गई है और उनका पूर्ण परीक्षण कर ही विभिन्न रोगों के उपचार के लिए उनका अभ्यास करना आवश्यक बताया गया है। उपयुक्त मुद्राओं का अभ्यास कुछ दिन करते रहने के बाद निश्चय ही शारीरिक शक्ति, और मानसिक ऊर्जा का संचय होगा जिससे विभिन्न रोगों के लिए संयम और उपचार स्वतः-रोग-निवारण-क्षमता के रूप में होगी। हमारी आंखें मानसिक चुम्बकीय शक्ति संचालन के लिए पूर्ण सक्षम (योग्य) हैं। निम्न अभ्यास रोग निवारण के लिए यथा आवश्यक ओप्टिकनर्व में स्थित जीवनी शक्ति को उत्तेजित करता है। आंखें, मस्तिष्क में चुम्बकत्व-शक्ति-सम्पात और उसकी गति के लिए, पूर्ण सक्षम हैं। पुरुषत्व और जीवनी शक्ति को जिसका स्थान ओप्टिक नर्व ही है, यह अभ्यास उकसाता और उतेजित करता है। इस मुद्रा के कुछ दिनों के अभ्यास के बाद ही आपको भी यह अनुभव होगा।

13. समानान्तर चक्षु गति मुद्रा

अभ्यासः–आप सिद्धासन में बैठ जाइए और अपनी आँखों को पहले निम्नलिखित किसी भी स्थिति में रखिए। रीढ़ की हड्डी और ठुडी समानान्तर रहें। रोशनी न बहुत तेज हो और न एक दम कम। अभ्यास एक ही स्थान पर करें।

(क) सामने देखें और उसी समानान्तर रेखा में बिना सिर मोड़े बायीं ओर देखने का प्रयास करें और फिर दाहिनी ओर उसी स्थिति में, बिना सिर मोड़े जितना आंख की पुतली को मोड़ सकते हैं, मोड़कर देखने का प्रयास करें। इसे 8 बार तक तेजी से दाएं से बाएं और बाएं से दाएं दुहराएं।

(ख) उसी स्थिति में आंख से ऊपर की भौंहों को देखें और उसी समानान्तर में बायीं ओर जितना दूरी तक देख सकते हैं देखें और फिर दाहिनी ओर देखें। इसे भी 8 बार तक दाएं से बाएं और बाएं से दाएं तेजी से दुहराएं।

(ग) उसी स्थिति में बिना सिर मोड़े हथेली को देखें और समानान्तर में बाएं जितनी दूर देख सकते हैं देखें और फिर दाहिनी ओर भी उसी तरह देखें। इसे भी 8 बार तक दाएं से बाएं तेजी से समानान्तर रेखा में घुमाएं।

(घ) आंख को पहले (क) की स्थिति में लाएं और तेजी से (ख) और (ग) स्थिति में ले जायें और फिर (ख) और (क) की स्थिति में लाएं। इसे 8 बार घुमाएं।

(च) आंख को (ख) की स्थिति में लाएं और तेजी से कभी (क) और कभी (ग) की स्थिति में ले जायें और इसे 8 बार घुमाएं।

(छ) कल्पना करें कि (क) (ख) और (ग) की स्थिति में एक रोशनी बारी-बारी से लेकिन तेजी से आ जा रही है इसे 8 बार करें।

(ज) टेबल पर दो किताबों को एक दायीं ओर एक बायीं ओर रखें और बायीं ओर की किताब के एक शब्द को देखें। जैसे ही बायीं ओर की किताब के अक्षर अच्छी तरह दीखें दाहिनी ओर की किताब के शब्द को देखने लगें और जब अच्छी तरह दीखने लगें तो तेजी से दूसरी किताब के अक्षर को देखें अगर जल्दी से अच्छी तरह अक्षर न दिखें तो, जोर लगाकर उसे देखें। इस मुद्रा के अभ्यास का उद्देश्य आंख की रोशनी की गति को बढ़ाना है। इसे 8 बार करें।

14. चुभती नजरमुद्रा

अभ्यास–दो व्यक्ति पति-पत्नी, या दो अंतरंग मित्र या उपचारक और रोगी इस अभ्यास में साथ-साथ भाग लें। अभ्यास के लिए ऐसा कमरा हो, जहाँ धीमी रोशनी हो और जहाँ हवा की गति न हो। रोशनी दोनों में से किसी के चेहरे पर न पड़े। ऐसा न होने से अभ्यास करने में कुछ कठिनाई होगी। सिद्धासन में दोनों आमने-सामने बैठें। मेरुदण्ड सीधा रहे, भौंहें सामान्य रहें। न वे उठी हों और न ही गिरी हों। एक दूसरे की आंख की पुतलियों को दिलचस्पी के साथ देखें। चेहरा खुला रहे। पलकें न गिरें। बस एक दूसरे की आंखों में देखते जायें। आंख को आराम न दें। दोनों की आंखें स्थिर रहें। तंत्रोपैथी का सिद्धान्त है कि तब तक हम कोई कार्य न करें जब तक उसके पीछे कोई विचार या भाव न हो या निर्देश न हो। मानसिक दृष्टि से उपचारक इन शब्दों को कहे, 'मैं तुम्हारी बीमारी को दूर कर सकता हूं और करूंगा।' रोगी भी मानसिक दृष्टि से कहे 'आपके इलाज से मेरा रोग अवश्य दूर होगा।' मानसिक दृष्टि से एक दूसरे से बात करें। अगर आंखों में तनाव अनुभव करें तो मुट्ठी जोर से बन्द कर लें। 8 बार इन लाइन की पुनरावृत्ति करें। देखने में बातें करना, बात करने से सोचना है, गति में सोचना है।

15. चहलकदमी चक्षु गतिमुद्रा–सामने एक रेखा की सीध में चलें। नितम्बों पर बल, सिर और चेहरा में कोई गति न हो। बिना सिर मोड़े आंखों को बायीं ओर उतना अधिक देखने का प्रयास करें जितना देख सकते हों और तीन कदम आगे चलें। इसके बाद दायीं ओर भी उसी प्रकार बिना सिर मोड़े देखें, और तीन कदम आगे चलें। चलते रहें और इसी प्रकार बायीं ओर देखें और तीन कदम चलें। देखते और चलते रहें। रुकें कहीं नहीं। आंखें पूर्ण दिलचस्पी से देखने में लगी रहें, चेहरा खुला रहे और भौंहें समान रहें। आंखों की मासपेशियां बहुत तनावयुक्त रहें। इस अभ्यास को 10 मिनट करें। इससे आंख के हर रोग का इलाज किया जा सकता है।

उपचारात्मक प्राणायाम विधियां

मानव मस्तिष्क अलौकिक शक्तियों का एक खजाना है। यह हमारे बौद्धिक, नैतिक और शारीरिक शक्तियों का नियंत्रण करता है। यह रोग को बुलाता है और उसका इलाज भी करता है। यह भय रूपी भूत बुलाता भी है और उसे भगाता भी है। इच्छाशक्ति मस्तिष्क की सबसे बड़ी शक्ति है। यह शक्ति स्नायुशक्ति के रूप में शरीर में प्रकट होती है। स्नायुशक्ति का उद्दीपन आंखें हैं। विभिन्न मुद्राओं द्वारा स्नायुशक्ति को उदीप्त कर इच्छाशक्ति को जगाया जा सकता है। प्राणशक्ति का उद्दीपन श्वांस-प्रश्वांस है। श्वांस-प्रश्वांस में प्रभाव नहीं होने से या व्यतिक्रम हो जाने से प्राणशक्ति क्षीण होती है जिससे स्नायु शक्ति का ह्रास होता है। प्राणशक्ति और स्नायु शक्ति सहचरी है और इनका रोगी बनने और रोगी को निरोग करने में बड़ा हाथ होता है। आंख की विभिन्न मुद्राएं स्नायुशक्ति के उद्दीपन के लिए आवश्यक हैं।

आंतरिक परिवर्तन जीवन के चमत्कारों में एक बहुत बड़ी उपलब्धि है। लेकिन मनुष्य उसका सबसे अधिक विरोध करता है। वह असफलता और बीमारी को जीवन की व्यक्तिगत हार के रूप में लेता है और इसके बाद वह नैराश्य, असहाय और आत्मग्लानि से भरकर भयभीत रहता है तथा इससे परिवर्तन के फायदे को भरपूर इस्तेमाल नहीं कर पाता। हमें यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि परिवर्तन मानव जाति के विकास के लिए सबसे बड़ा अस्त्र है। उसके लिए प्रकृति की यह सबसे बड़ी देन है। इसी परिवर्तन के नियम के कारण ही वह आदिम युग से इस आधुनिक युग में पहुंचा है। इसी नियम के चलते मनुष्य अपने जानवर, परिवार, जहां कार्य मूल प्रवृत्ति के आधार पर किया जाता था, को धीरे-धीरे छोड़ता गया। 33 कोटि देवताओं को मानने की कहानी के पीछे यह रहस्य छिपा है। वैसे हमारे शरीर का ही पूर्ण परिवर्तन एक माह बाद हो जाता है और नए सेल सम्पूर्ण रूप से पुनः स्थापित हो जाते हैं। विभिन्न बीमारी भी इस परिवर्तन में अपनी भूमिका निभाती है। सर्दी, बुखार, पेट दर्द, सिर दर्द, आदि बीमारियां किसी परिवर्तन या वैषम्य की सूचना देती हैं। ये साधाराण परिवर्तन के लक्षण हैं लेकिन हम घबराकर या भयभीत होकर इस परिवर्तन को नहीं स्वीकारते

और इन्हें भयंकर बीमारियों में परिवर्तित कर देते हैं।

तंत्रोपैथी परिवर्तन के नियम को पूर्ण रूप से स्वीकार करते हुए विभिन्न मुद्राओं और प्राणायाम विधियों द्वारा परिवर्तन की गति और बढ़ाती है। संयम और उपचार द्वारा शरीर के अणु में प्राणशक्ति और स्नायुशक्ति को समाप्त कराकर रोगी के तन, मन में उत्साह, उत्फुल्लता और आह्लाद में भर देना ही तंत्रोपैथी का उद्देश्य है। हर्बोमिनरल का इस्तेमाल तंत्रोपैथी में किया जाता है लेकिन उपचार के रूप में नहीं, बल्कि रोग की प्रवलता को कम कर रोगी की किंकर्तव्यविमुढ़ावस्था को तोड़ने के लिए। यथास्थान मुद्राओं और विधियों की चर्चा तो काफी की गई है यहां प्राणायाम के उपचारात्मक पहलू पर हम चर्चा करेंगे। इस पद्धति में चार प्रकार के प्राणायामों का विशेष महत्व है।

1. सिरोगह्वर संकोचन-प्रसारण प्राणायाम
2. वक्षोगह्वर संकोचन-प्रसारण प्राणायाम
3. उदरोगह्वर संकोचन-प्रसारण प्राणायाम
4. कटिगह्वर संकोचन-प्रसारण प्राणायाम

वे क्रियाएं जिनसे हमारे शरीर के अवयवों का नियंत्रण होता है उसें प्राणायाम कहते हैं। प्राण, अपान, समान, उदान, नाग, कुर्म करकर, देव और धनंजय नाम के दस शारीरिक जीवनीशक्ति का सम्मिलित नाम प्राण है। प्राणायाम करने से प्राण तो नियंत्रित होता ही है साथ-ही-साथ जीवनीशक्ति भी पर्याप्त मात्रा में बढ़ती है। जिससे स्वयं रोगों को दूर करने की क्षमता हममें आ जाती है। इसका बार-बार अभ्यास करने से मन भी केन्द्रित और शान्त हो जाता है। शारीरिक और मानसिक रोगों के इलाज के लिए तो प्राणायाम औषधि का काम करता है। विशिष्ट प्राणायाम करना रोग को दूर करने के लिए महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। जैसा कि वतायाा गया है कि हमारे शरीर में चार गह्वर (गड्ढ़े) हैं-सिरोगह्वर, वक्षोगह्वर, उदरोगह्वर और कटिगह्वर। इन गह्वरों में हमारे जीवन संचालन करने वाले प्रमुख संयंत्र लगे हैं। इन संयंत्रों में आई गड़वड़ी ही विभिन्न शारीरिक, मानसिक रोगों को पैदा करती है। ये संयंत्र मुख्यतः स्वचालित होते हैं और इनके पूर्ण संकोचन-प्रसारण की क्रिया से अनभिज्ञ होने के कारण अकसर हम असाध्य बीमारियों के शिकार हो जाया करते हैं।

वक्षोगह्वर संकोचन प्रसारण प्राणायाम

यह प्राणायाम वक्षोगह्वर में स्थित श्वांस संयंत्र और रक्तसंयंत्र के सभी रोगों के लिए उपचारात्मक महत्त्व रखता है। हृदय रोगी और दमा के रोगी को ध्यान में रखकर चार तरह के प्राणायाम की खोज की गई है जिनका उपचारात्मक महत्त्व ही अधिक है। उन चारों तरह के प्राणायामों को वीरासन ही अधिक लाभदायक होता है। इन्हें संयम की दृष्टि से सुवह और शाम तथा रोग निवारण की दृष्टि से दोपहर को भी करना आवश्यक है। खाली पेट या खाना खाने के दो घंटे बाद व्यापक शौच करके ही उपर्युक्त प्राणायाम करना चाहिए और अभ्यास के बाद प्रतिदिन एक ग्लास दूध लेना जरूरी है। इस प्राणायाम को करते वक्त

सीने पर बांए हाथ को रखना चाहिए। यह रक्त चाप की अक्सीर दवा है।

विधि–प्राणायाम वीरासन में करना अति लाभकारी होता है। इन्हें उपचारक की राय लेकर ही करना चाहिए वर्ना लाभ की बजाय हानि की अधिक सम्भावना होती है। प्राणायाम को उपर्युक्त विधि से ही वीरासन में बैठकर, दाहिने अंगूठे से दाहिनी और मध्यमा अंगुली से बाएं नाक के छिद्र पर रखना चाहिए और बांए नाक से श्वास लेते वक्त दाहिनी नाक बंद कर लेनी चाहिए तथा साथ ही साथ श्वांस लेने की गति के साथ सीने को फुलाते जाना चाहिए। फिर दाहिने नाक के छिद्र को थोड़ा खोलकर मध्यमा से बाएं नाक को बंद कर देना चाहिए और श्वांस को धीरे-धीरे छोड़ते वक्त सीना को पिचकाते (संकुचन) करते जाना चाहिए। बाएं नाक से ही फिर श्वांस लेना चाहिए और उसी तरह सीना को धीरे-धीरे श्वांस के लेने की गति के साथ फुलाते और दाएं नाक से श्वांस को छोड़ते वक्त सीना को पिचकाते जाना चाहिए। इस प्राणायाम को भी रोग की स्थिति में मात्र तीन बार सुबह शाम करना चाहिए और अभ्यास के दौरान सीना से समानान्तर रीढ़ की हड्डी के भीतर की ओर घुमाकर वृत्त पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए। वक्षोगह्वर के संयंत्रों को संचालन करने वाले यह स्नायु केन्द्र हैं जहां स्नायुयों का जाल वृत्ताकार है और देखने में धुएं के समान वह दीखता है। प्राणायाम करते वक्त सिर दर्द में आज्ञाचक्र पर और स्मृति भंग या विस्मृति आदि रोगों को दूर करने के लिए त्रिकुटी और आज्ञाचक्र तक एक काल्पनिक लकीर खींचिए और आज्ञाचक्र पर एक समकोण त्रिभुज बनाइए। त्रिभुज के ऊपर का कोण सहस्रार चक्र पर पड़ता है। उसी पर अपना ध्यान केन्द्रित कीजिए। एक सप्ताह के अभ्यास से ही बहुत फर्क दीखने लगता है। 50 वर्ष से ऊपर के व्यक्ति और 20 वर्ष के नीचे के बच्चों में तो यह आश्चर्यजनक प्रभाव डालता है। स्मृति को बढ़ाने के लिए इसका अभ्यास आवश्यक है। इसे उपचारक की राय से ही करना चाहिए। इस प्राणायाम को करते वक्त सिर के ऊपर बाएं हाथ का रहना जरूरी है।

सिरोगह्वर संकोचन-प्रसारण प्राणायाम

इस प्राणायाम के अभ्यास से सुषुम्ना शीर्ष (मिडुलालौगैटा) और खोपड़ी में स्थित सभी स्वचालित संयंत्रों को स्वस्थ रखने और इनके विशिष्ट रोगों को दूर करने के लिए किया जाता है। सिर दर्द तथा लघु मस्तिष्क, वृहद् मस्तिष्क एवं मस्तिष्क के मेम्बरेन की बीमारियों जैसे अनिद्रा, दुःस्वप्न, स्मृति भंग, विस्मृति आदि रोगों में इसका अभ्यास चमत्कारिक प्रभाव डालता है। वीरासन में बैठिए और दाहिने हाथ के अंगूठे और मध्यमा अंगुली से क्रमशः दाहिने और बाएं नाक पर ले जाइए। बाएं नाक से श्वास लेते हुए दाहिने नाक को बन्द रखिए और बांए भौंह को पूरी शक्ति से प्रसारण कीजिए। फिर दाहिने नाक को खोल दीजिए, और श्वास छोड़िए। बाएं नाक को मध्यमा उंगली से बंद रखिए और श्वास छोड़ते वक्त भौंहों के तनाव को पूर्ण रूप से ढीला कर दीजिए। इसी प्रकार दाहिने नाक से करें।

उदरोगह्वर संकोचन-प्रसारण प्राणायाम

यह प्राणायाम उदर सम्बन्धी समस्त विकारों और रोगों को दूर करने के लिए किया जाता है। इसे भी उपर्युक्त विधि से रेचक-पूरक करना चाहिए लेकिन प्रारम्भ में बाईं नाक से पूरक करते वक्त उदर को धीरे-धीरे श्वांस के लेने के साथ-साथ ही फुलाना चाहिए। लेकिन प्रारम्भ में बांई नाक से कुम्भक करते वक्त पेट को धीरे-धीरे संकोचन करना चाहिए। फिर दाहिने नाक से पूरक करते वक्त उदर का प्रसारण जितना हो सकता है उतना करना चाहिए और बांयी नाक से रेचक करते वक्त उदर का संकोचन इतना करना चाहिए कि पेट रीढ़ की हड्डियों में सटा महसूस हो। इसे भी तीन-तीन चक्र ही सुबह-शाम करना चाहिए। अतिसार, बदहजमी, पाण्डुरोग, यकृत, लीवर, किडनी सम्बन्धी रोगों तथा अलसर में यह प्राणायाम अधिक उपयोगी सिद्ध हुआ है। नाभी को समानान्तर रीढ़ की हड्डियों में भीतर की ओर एक लाल रंग के त्रिभुज पर ध्यान केन्द्रित करते हुए यह अभ्यास करना चाहिए। उदर को स्वचालित संयंत्रों को चलाने वाले स्नायुओं का जाल त्रिभुजाकार यहां विंधा होता है और वे लाल रंग की तरह दीखते हैं। इसे भी उपचारक क़ी राय से ही करना चाहिए और अभ्यास करते वक्त बायां हाथ नाभी पर रहना चाहिए। रोग की स्थिति में सुवह और दोपहर को प्राणायाम करना चाहिए। शाम को अभ्यास करना मना है।

कटिगह्वर संकोचन-प्रसारण प्राणायाम

यह प्राणायाम कटि सम्बन्धी सारे रोगों के लिए अचूक दवा सिद्ध हुआ है। उपर्युक्त विधि से ही पूरक रेचक क्रमशः बाएं और दाएं नाक से करना चाहिए। बाएं नाक से धीरे-धीरे श्वांस लेते वक्त कटि भाग का पूरा प्रसारण करना चाहिए। मेरुदण्ड सीधा रहने से जननेन्द्रिय और गुदा भाग का पूर्ण प्रसारण होता (फूलता हुआ) महसूस होगा जिसे संकोचन की स्थिति में धीरे-धीरे पूर्ण रूप से बन्द कर देना चाहिए। फिर, प्रसारण के वक्त धीरे-धीरे खोल देना चाहिए। इसे भी सुबह शाम तीन-तीन चक्र करना चाहिए। बवासीर, फीसर, फेसचुला, जननेन्द्रिय की कमजोरी, मूत्ररोग आदि में यह अत्यधिक फायदा पहुंचाता है। अभ्यास के वक्त ध्यान गुदा के ठीक समानान्तर में रीढ़ की अंतिम पूंछास्थि में कटिगह्वर को संचालित करने वाले स्नायु चतुर्मुख रूप में फैले हैं उसी पर ध्यान केन्द्रित करें।

विशेषताएं

उपर्युक्त प्राणायाम में जहां दर्द हो उस भाग पर ध्यान को केन्दित करना चाहिए और तब उस गह्वर सम्बन्धी प्राणायाम को करना चाहिए। इसकी पहचान के लिए यह ध्यान रखना होगा कि गर्दन से सिर के विशिष्ट दर्द के लिए शिरो गह्वर प्राणायाम, गर्दन से नीचे और सीने के निचले छोर तक वक्षोगह्वर प्राणायाम,

सीना से नीचे और नाभी के थोड़े ऊपर उदरोगहर प्राणायाम और कमर से नीचे के पूरे भाग के लिए कटिगहर प्राणायाम करना चाहिए। गुदा सम्बन्धी या जननेन्द्रिय सम्बन्धी बीमारियों में वस्तिकुम्भक भी करना चाहिए। जब गुदा सम्बन्धी उपचार करना हो वस्तिकुम्भक केवल वीरासन में एड़ी से गुदा द्वार को बंद कर करना चाहिए। अगर जननेन्द्रिय सम्बन्धी रोगों के उपचार के लिए उदर की हड्डी के दोनों ओर की नाड़ियों को दोनों हाथों के अंगूठे से दबाते हुए इस प्राणायाम को करें। यह सेक्स पर नियंत्रण की भी विधि है। संयम के लिए कुम्भक की आवश्यकता नहीं होती लेकिन उपचार के लिए कुम्भक आवश्यक है। आठ सेकण्ड तक ही कुम्भक करना चाहिए।

शीतली कुम्भक के लिए वीरासन में ही सुबह शाम और आधी रात को खुले मैदान में बैठकर करना चाहिए। दोनों नाक को बंद कर जीभ बाहर निकाल लें और उसी स्थिति में मुंह से धीरे-धीरे पूरी हवा लें और फिर दोनों नाक से बारी-बारी से छोड़िए। यह कुम्भक दर्द वाले स्थान की मालिश करने के बाद करना चाहिए। ध्यान दर्द वाले स्थान पर रहना चाहिए।

सर्दी और जुकाम होने या साइनस की बीमारी में शीतकारी कुम्भक का करना उपकारी होता है। वीरासन में ही उपर्युक्त विधि से नाक से श्वास लें और स-स-स करते हुए मुंह से जीभ के रास्ते छोड़ें।

कपाल भांति क्रिया साइनस के लिए अचूक दवा है। कपालभांति क्रिया सुबह सूर्य की ओर मुंह करके करना चाहिए। इसमें जोर-जोर से श्वास लिया और छोड़ा जाता है। इससे नाक से, साइनस में एकत्रित सारे म्यूकस बाहर निकल आते हैं। इसे करते वक्त एक तौलिया को गर्दन में बांध लेना चाहिए तथा कपाल क्रिया करने के बाद गाय का गुनगुना घी कपूर के साथ नाक में टपकाना चाहिए।

हास्य मुद्रा

स्वस्थ रहने के लिए हंसिए और हंसाइए। मैं जब पहली बार लखनऊ स्टेशन पर उतरा, तब सामने लगी तख्ती पर नजर पड़ी। "मुस्कराइए कि आप लखनऊ स्टेशन पर हैं।" अपने आप चेहरे पर मुस्कान और हृदय में अह्लाद थिरकने लगा। हास्य मुद्रा बनाए न जाने कितनी देर मैं उस वाक्य को पढ़ता रहा और आनन्द बटोरता रहा। हास्य मुद्रा के दो भाग होते हैं–प्रसन्नाकृति और हास्याकृति। खाने के वक्त, गम्भीर बातचीत करते वक्त, कठिन काम करते वक्त प्रसन्नाकृति और खाने के पहले या बाद में, बातचीत के पहले या बाद में या काम करने के पहले या बाद में हास्याकृति अवश्य बनाएं। फिर आप देखेंगे कि खाना, बातचीत और काम तीनों रस से भर जाएगा और स्वयं आप रसीले बन जाएंगे। हर समय रसीला बनना एक कला है। एक आदत है। अभ्यास द्वारा इसकी आदत डालिए और पुरस्कार रूप में कैंसर, दमा, राज्यक्षमा, हृदय रोग जैसी भयानक बीमारियों से छुटकारा पाइए और उदर रोग, कटि की बीमारी और मधुमेह को दूर भगाइए। हास्य मुद्रा शारीरिक और मानसिक रोगों की असली दवा

है। हास्य मुद्रा में कुशल व्यक्ति एक बहुत अच्छा डॉक्टर बन सकता है। रोग की तीव्रता और भय से मन गिरा होने पर भी रोगी हंसना नहीं रोक सकेगा और हंसने से 50% अपने रोग का स्वयं इलाज कर लेगा।

हंसना एक मानवी प्रकृति है, दैवी अनुभूति है, महज दवा नहीं। मनुष्य हंसने वाला प्राणी है। क्योंकि मनुष्य के अलावा दूसरे प्राणी हंसते नहीं। जीवन में हमेशा मुस्कराते रहिए और स्वस्थ बने रहिए। मुस्कराइए और मुस्कराइए !!! खूब मुस्कराइए !!! और आप देखेंगे कि उस दिन का खाना और दिनों की अपेक्षा अधिक स्वादिष्ट लग रहा है। वह दिन हर दिन की अपेक्षा अधिक सुन्दर लग रहा है, उस दिन पत्नी, बच्चे और दिन की अपेक्षा अधिक सुन्दर और प्यारे लगेंगे। मुस्कुराना वह मुकुट है, जिसे धनी, गरीब, नर-नारी, बाल वृद्ध सभी पहन कर स्वस्थ, आकर्षक और अह्लादित व्यक्तित्व को पा सकते हैं। यह वह पोशाक है जिसे हर मौसम, हर जगह और हर अवस्था में पहनकर युवा बना जा सकता है। वास्तव में हंसना वह थरमामीटर है जिससे बुद्धि की स्थिति, मन की संतुष्टि, शारीरिक स्वास्थ्य और आध्यात्मिक तेज को मापा जा सकता है।

वैज्ञानिक रौबर्टन के शब्दों में हंसना रक्तशोधक और रक्तवर्धक दोनों होता है। हंसने से शरीर युवा, आकर्षक और सुन्दर बनता है। शेक्सपियर ने तो यहां तक कह दिया कि प्रसन्नचित्त व्यक्ति दीर्घायु होते हैं। उदास और मुरझाया व्यक्ति अल्पायु तो होता ही है साथ-ही-साथ समाज और परिवार में उपेक्षित भी होता है। दुर्भाग्य उसके पीछे-पीछे दौड़ता है और बीमारियां आसानी से उसका शिकार करती हैं। मुर्दनी शक्ल, व्यक्ति को नकारात्मक चिन्तक, आलसी, शक्की मिजाज का, दुःचिन्तक और डरपोक बना देती है। इसे ही तंत्रोपैथी में मन का गिरना कहा जाता है। मन गिरने से उमंग आवेग में बदल जाता है और शरीर की रक्त-वाही नाड़ियां, पक्वाशय और स्नायुओं को तनावयुक्त बनाकर, क्षतिग्रस्त और रोगी बना देता है। मुस्कुराना और हंसना जबकि आवेग-सम्वेग को उमंग और अह्लाद में बदल देता है तथा रक्त संचार पक्वाशय और स्नायुओं को तनावमुक्त कर उसको रोग मुक्त कर देता है।

प्रयोग कर देखा गया है कि हंसने, प्रसन्नचित्त रहने से, गुण विवेचन की आदत डालने से तथा सकारात्मक चिन्तन करने से रक्त के लाल कणों में अप्रत्याशित रूप से वृद्धि होती है। जबकि उदास चेहरा हमें नकारात्मक चिन्तक और आलोचक बना देता है। इससे व्यक्ति में स्वतः रोग निवारण क्षमता नहीं के बराबर रह जाती है। सदा मुस्कराने, ठहाके लगाकर हंसने तथा गुण विवेचन की आदत डालने के लिए अभ्यास कीजिए। परिवार, बच्चे-बूढ़े और जवानों के अच्छे कामों की प्रेमपूर्ण शब्दों में तारीफ कीजिए। पशु पक्षियों को पालिए, गंध वृक्ष लगाइए एवं उनके लगने, बढ़ने, फलने-फूलने के साथ हंसना, मुस्कुराना सीखिए, और निरोग बने रहिए। हास्य मुद्रा हममें शरीर के प्राकृतिक सुरक्षात्मक आवरण को केवल विकसित ही नहीं करता, बल्कि हममें हर तरह की भयंकर बीमारियों से लड़ने की शक्ति भी देता है। प्रयोग से पता चला है कि अधिक

सीरियस और मुर्दनी शक्ल वाले को सामान्य सर्दी की बीमारी होती रहती है।

मुर्दनी शक्ल वाले प्रायः हीनभावना से पीड़ित और संदेह के भूत से भयभीत होते हैं। अहंकार हीन-भावना का उत्पादन है। हममें जितना अधिक अहंकार बढ़ेगा उतना ही अधिक हम वास्तविकता से दूर होते जाएंगे। विभिन्न प्रकार के भय के चलते ही हम प्रायः असामान्य और अस्वस्थ हो जाया करते हैं। भय से मस्तिष्क की हाईपोथैलमस नामक ग्रन्थि उत्तेजित होती है जिसके केन्द्र में भूख जागरण का केन्द्र होता है। इसी कारण भयभीत व्यक्ति असामान्य और अस्वस्थकर खाना खाने के आदी हो जाते हैं। एक लालची व्यक्ति हीन भावना से ही ग्रसित होता है। बन्द चेहरा ही मुर्दनी शक्ल कहलाता है और ऐसे व्यक्ति तनाव, दबाव और दुःचिन्ता से पीड़ित होते हैं। इससे क्षतिपूर्ति की शारीरिक क्षमता नष्ट हो जाती है। शरीर रोगों का स्वागत कक्ष बन जाता है। हम अपने रोग की ओर खिंचते चले जाते हैं। हमारे पास रोग को आना भी नहीं पड़ता। कैन्सर के रोग का कारण बन्द चेहरा और मुर्दनी शक्ल ही है। चेहरा खोलिए, मुस्कराइए और कैंसर जैसी भयंकरतम बीमारी को दूर भगाइए।

मस्तिष्क को भोज्य पदार्थ की सूचना देने में मुंह का बड़ा हाथ होता है। बिना चखे पदार्थ को देखते ही हास्य मुद्रा बनाना भोज्य पदार्थ को आवश्यकता से अधिक स्वादिष्ट बनाना है। स्वाद की एक अपनी प्रकृति होती है लेकिन उसे द्विगुनित करना हास्यमुद्रा का ही काम है। धीरे-धीरे खाना, खाने के वक्त हास्यमुद्रा बनाना, खाते वक्त सकारात्मक हल्की-फुल्की बातें करना, विभिन्न पाचकरस स्राव ग्रन्थियों को उत्तेजित कर गरिष्ट आहार को भी सुपाच्य बना देता है। एक बन्द चेहरा, मुर्दनी शक्ल वाला व्यक्ति गुस्सैल होता है और अपना गुस्सा अपने नजदीकी प्रियपात्र पर उतारता है। भय दया को मार डालता है और इस स्थिति में वह पागल की तरह व्यवहार करता है। शाह-खर्च या खर्चीला व्यक्ति इसी का उत्पादन है।

द्वितीय महायुद्ध की विभीषिका के कारण तनाव और दबाव से ग्रसित माताओं के गर्भ में पले बच्चे जीवन से भयभीत और सांवेगिक दृष्टि से अस्थिर पाए गए। एक गर्भवती माँ का नकारात्मक चिन्तन और बन्द चेहरा, उसके गर्भ में पलते बच्चे को सांवेगिक दृष्टि से अस्थिर-मनोभंग (साइकोलाजिकल डिजार्डर) तथा खण्ड-व्यक्तित्व वाला व्यक्ति बना देता है। हास्य मुद्रा पति-पत्नी के संबंध को प्रगाढ़ करता है। शराब पीने वाले के लिए शराब दवा है। एक दूसरे के प्रति आत्मीयता प्रदान करने में हास्य मुद्रा की अहम भूमिका होती है। पूर्ण अभियोजन, शरीर और मानसिक समस्याओं को हल करने तथा सकारात्मक चिन्तन की आदत डालकर भविष्य को स्वर्णिम बनाने के लिए हंसिए और हंसाइए और खेल-खेल में आलोचनात्मक हास्य, बच्चों के साथ बचकाना हास्य और स्व-आलोचना की प्रवृत्ति को हास्य मुद्रा का अभ्यास बढ़ाइए। बुढ़ापे में स्वाभाविक रूप से थाइमस और स्पीलन की क्षमता में कमी आ जाती है। हास्य मुद्रा अपनाइए और बुढ़ापे को दूर भगाइए। हास्य संबंधी लटके-झटके भी सुनिए, सुनाइए।

दो मेढ़क एक दूध के मटके में अचानक गिर गए। उनमें से एक हास्य मुद्रा से युक्त खुले चेहरे वाला आशावादी, उत्फुल और खुश मिजाज था और दूसरा मुर्दनी शक्ल वाला। बन्द चेहरे वाला निराशावादी मेढक मन-ही-मन सोचता था। इस दूध के घड़े में गिरना कितनी भयानक दुर्घटना है। बस अब डूब कर मरने ही वाले हैं। ऐसी दर्दनाक मौत को हम कैसे बर्दाश्त करेंगे और आवेग की प्रबलता में वह घड़े से सिर टकराकर मर गया। आशावादी मेढ़क ने घड़े में गिरते ही कहा परमात्मा ने भी कितना बड़ा मजाक किया है दूध पिलाने के बजाय दूध से ही नहला दिया। क्यों न इस खुशी में खूब नाचा गाया जाये और वह टर्र पों-2 की आवाज के साथ उछल कूद और धमाचौकड़ी मचाने लगा। थोड़ी देर में दूध पूरी तरह मथ गया और मक्खन की एक मोटी परत दूध के ऊपर जम गयी। मेढ़क ने उस मक्खन पर बैठकर घड़े से बाहर की ओर छलांग लगा दी।

चेहरे की त्वचा, प्रकाश ग्रहण करने का माध्यम हास्य मुद्रा–

हमारे मुख मण्डल या चेहरे की त्वचा की बनावट मछलियों के चोइटे की तरह एक दूसरे पर चढ़ा हुआ है। इसीलिए हंसने पर चेहरे की त्वचा फैल जाती है और रोने या दुखित होने पर वह बन्द हो जाती है। जैसे जल में मछली का चोइटा फ़ैला हुआ तथा जल से बाहर सिकुड़ा हुआ होता है। मछली अपनी त्वचा की इस संकोचन-प्रसारण क्रिया से जल से ऑक्सीजन लेकर स्वस्थ रहा करती है। पानी में घंटों डूबे रहने पर भी श्वास-प्रश्वास क्रिया वह त्वचा से ही किया करती है। त्वचा के संकोचन प्रसारण के बिना वह बच ही नहीं सकती है। ठीक इसी प्रकार हमारे लिए प्रकाश भरपूर जीवन जीने, स्वस्थ रहने और बुढ़ापे जैसी प्राकृतिक आपदाओं को भी झेलने के लिए आवश्यक है। हमारा मुखमंडल और आंखें प्रकाश को पर्याप्त मात्रा में ग्रहण कर मस्तिष्क और शरीर को शक्तिसम्पन्न करने की पूर्ण क्षमता रखती हैं। हास्य मुद्रा, चेहरे और आंखों की त्वचा को प्रसारित कर प्रर्याप्त मात्रा में प्रकाश ग्रहण कर लेता है और वैसा ही मनोभाव मस्तिष्क में पैदा कर उसे उसी मात्रा में जीवनीशक्ति के रूप में सारे शरीर में वितरित कर देता है। शरीर के विभिन्न अवयवों, मांसपेशियों, नाड़ियों, स्राव ग्रन्थियों आदि में प्रमा (सम सामंज्य) स्थापित करने में हास्य मुद्रा का बहुत बड़ा हाथ होता है। हास्य मुद्रा ही महामृत्युंजय मुद्रा है। यही संजीवनी बूटी है।

मन की ऊर्जा का स्रोत हास्य मुद्रा

प्राण शक्ति के दो रूप हैं–अन्तर्निहित शक्ति और व्यक्त शक्ति। सूर्य दोनों शक्तियों का केन्द्र है। गर्मी और प्रकाश सूर्य से हमें मिलती है। अतः गर्मी और प्रकाश ही शक्ति का व्यक्त रूप हुआ। हमारा मस्तिष्क प्रकाश के रूप ऊर्जा को ग्रहण करता है। मन आन्तरिक जगत के ऊर्जा का उद्‌गम स्थल है और प्रकाश उसका उद्दीपन। अतः प्रकाश बाह्य (शारीरिक) और आन्तरिक (मन) दोनों का

स्रोत है। यही कारण है कि प्रकाश में मन उठ जाता है। जबकि अन्धकार में मन गिर जाता है। प्रकाश में चेहरे की त्वचा स्वाभाविक रूप से फैलती है जिससे ऊर्जा पाकर मन सक्रिय हो जाता है जबकि अंधकार में चेहरे की त्वचा संपुटित या संकोचित, स्वाभाविक रूप में होती है इसीलिए अंधेरे में आलस्य और नींद आने लगती है। अंधेरे में ही अधिकांश विभिन्न तरह के अपराध होते हैं। सड़कों पर प्रकाश की व्यवस्था अपराध को पूर्ण रूप से रोकने में निश्चय ही कामयाव नहीं हुई है लेकिन पर्याप्त मात्रा में कमी ला देती है। प्रकाश हमारे स्वास्थ्य एंव आकर्षण के लिए बहुत जरूरी है।

हास्य मुद्रा के अभ्यास से प्रकाश की पर्याप्त मात्रा में आपूर्ति शरीर और मन दोनों को हो जाती है। हास्य मुद्रा का अभ्यास निम्न प्रकार से करना चाहिए और जब तक वह हमारी आदत न बन जाये करते रहना चाहिए। आदत की पहचान है–बिना प्रयत्न किए हास्य मुद्रा, वातचीत करते वक्त या सोचते वक्त, हमारे चेहरे पर अंकित हो जाये।

हास्याकृति–हास्य मुद्रा के लिए आवश्यक सामानों में एक आदमकद आइना, एक कम्बंल और धीमे प्रकाशयुक्त हवादार कमरा तथा शरीर पर एक मात्र लंगोटा। मुस्कुराना, मनुष्य को ही, प्राकृतिक विरासत के रूप में मिला है लेकिन हँसने में कौन-सी शारीरिक क्रिया हम करते हैं, मुश्किल से हम बतला पाएंगे। सम्भवतः यह एक आवेगिक स्वचालित मानसिक क्रिया होने के कारण इस शारीरिक क्रिया की ओर हमारा ध्यान जाता ही नहीं। भाव से स्वमेव हास्य मुद्रा वन जाती है। यह एक स्वाभाविक क्रिया है लेकिन हास्य मुद्रा से भाव को उत्पन्न करना एक तांत्रिक क्रिया है जिसे जान लेने पर हम स्वयमेव दूसरे हानिकारक भावों का नियंत्रण कर स्वस्थ और आकर्षक बने रह सकेंगे।

कम्बल विछाकर, वीरासन में आइने के सामने बैठ जाइए और दोनों भौहों को पूरा फैलाने और सिकोड़ने (संकोचन प्रसारण) करने का प्रयत्न कीजिए। ध्यान भौहों पर केन्द्रित रहता है और उसे (चेहरे को) तनावयुक्त कर इतना अधिक फैलाने का प्रयत्न करने की कोशिश कीजिए जितना अधिक फैला सकते हैं और तेजी से उतना अधिक सिकोड़ने का प्रयत्न कीजिए जितना अधिक सिकोड़ सकते हैं। भौहों को फैलाने से ललाट से लेकर आंख, कान, नाक, होंठ और गाल की सारी त्वचा फैली नजर आएगी और सिकोड़ने से बन्द होती नजर आएगी। भौहों को फैलाते हुए श्वास धीरे-धीरे लीजिए। थोड़ी देर तक श्वास रोक कर उसी आकृति में चेहरे को बनाए रखिए और फिर श्वास छोड़ते वक्त धीरे-धीरे त्वचा को सिकोड़िये। कुछ देर तक श्वास रोककर वैसी आकृति बनाए रखिए और 'बाबा नाम केवल' मंत्र के साथ 16 बार कीजिए। इस अभ्यास के प्रारम्भिक दिनों में दो वार, सुबह-शाम व्यापक शौच करने के बाद, कीजिए और फिर एक सप्ताह के बाद जब मौका मिले इसे तब तक करते जाइए जब-तक ऐसा करने की

आपकी आदत न बन जाये। अब आइने में हास्य मुद्रा की प्रसन्नाकृति बनाने की कला में सिद्धस्त होइए। इसके बाद प्रसन्नाकृति बनाइए।

प्रसन्नाकृति–आइने के समक्ष बैठ जाइए और अपने होंठ और गालों को देखिए और धीरे-धीरे ऊपरी होंठ को निचले होंठ से हल्का सा सटाइए। इसके बाद होंठ और गाल की त्वचा को धीरे-धीरे कान की ओर की नसों को तनाव मुक्त कीजिए। याद रखिए भौंहें और आंखों को सामान्य बनाए रखते हुए उनकी त्वचा को धीरे-धीरे फैलाते जाइए। पूरा फैल जाने पर इस अवस्था में 2 से पांच मिनट रखने की कोशिश कीजिए। दाँत सटे रहें।

हास्याकृति–इस आकृति में उपर्युक्त सारी क्रियाएं होंगी। केवल होंठ एक दूसरे से दो सेन्टीमीटर खुले रहेंगे और दांत सटे हुए रहेंगे। ठठाकर हंसने में ही दांत खुलेंगे।

इष्ट प्रणाम

तंत्रोपैथी में ध्यान का अत्यधिक उपचारात्मक महत्त्व है। विभिन्न मुद्राएं शरीर के विभिन्न अंगों और चक्रों पर ध्यान केन्द्रित करके ही की जाती हैं। तांत्रिक चिकित्सा पद्धति मन और शरीर के भेद को स्वीकार नहीं करती। मन जैसा, शरीर वैसा तथा शरीरिक मुद्रांए जैसी मन की हालत वैसी। मन जड़-चेतन का अभूतपूर्व मिश्रण है। प्रेयस संसारिक लौकिकता और सच्चिदानन्द की अलौकिकता को कहते हैं। मन शरीर के माध्यम से ही दोनों तरह के आनन्द को लेता है और दोनों हाथ से बटोरता है। वह गिरगिट की तरह वस्तु के साथ अपना रंग बदलता है। जैसा चाल-ढाल, खान-पान, रहन-सहन और शारीरिक-मुद्राएं वैसा ही उसका रंग-ढंग। संस्कार (पशुवतवृत्तियां) जो हमें पशुओं से खानदानी विरासत में मिली हैं, अपनी ओर उसे खींचती हैं तो कभी मानवीय गुणों से पूरित बुद्धि अपनी ओर खींचती है। मन एक चापलूस की तरह, कभी सस्कारों की हां में हाँ मिलाता है और कभी बुद्धि की हां में हां। इस प्रकार अगर वह उचित ढंग से प्रशिक्षित नहीं हुआ तो संकल्प-विकल्प की स्थिति में पड़ा रहता है। यह वह स्थिति है जब व्यक्ति विभिन्न बीमारियों और सामाजिक दृष्टि से अनाकर्षण का शिकार बनता है।

शारीरिक मांसपेशियों के संकोचन-प्रसारण की तरह मन का भी संकोचन-प्रसारण होता है। मन का संकोचन तब होता है जब वह स्वार्थ की एक चाहरदीवारी खड़ी कर उसमें झांकने की इजाजत किसी को नहीं देता और न स्वयं उससे बाहर निकलता है। ऐसी स्थिति में उसमें विश्व चेतना का संचार होता ही नहीं या बहुत कम होता है और वह शारीरिक और मानसिक दृष्टि से बीमार हो जाता है। इसीलिए तंत्रोपैथी में भूत-यज्ञ, नृयज्ञ, पितृयज्ञ और आत्मयज्ञ का विधान है। स्वस्थ रहने के लिए मन को आनन्द की क्रीड़ास्थली बनाना होगा और उसे समाज में समरसता की मिठास बिखेरना होगा। मन ही हमारे शरीर का अमृत कलश है

उससे आनन्द की क्रीड़ास्थली बनाकर छलकाना होगा। अमृत कलश रूपी मन ही आनन्द से छलक-छलक कर जीवन को रसमय और शरीर को निरोग बनाएगा तथा समाज की समरसता को मिठास से भर देगा।

मन ऊर्जा का भंडार है। ऊर्जा एक रचनात्मक वृत्ति है। ऊर्जायुक्त शरीर सक्रिय और उत्फुल रहेगा ही। जो ऊर्जा से भरा होगा उसमें रचनात्मक वृत्ति होगी ही। ऊर्जा ही शक्ति है और कर्म शक्ति का स्वरूप। कर्मरूपी शरीर(क्रियाशील शरीर) पाकर ही विचार और व्यवहार बनता है। जितना अधिक और कठिन काम उतना ही अधिक शारीरिक और मानसिक ऊर्जा का उत्पादन। कर्म और ऊर्जा सहचरी हैं और मनं उसका पिछलग्गू। मनोभावों की अभिव्यक्ति आँखों से होती है, हमारा श्वास-प्रश्वास हमारे स्वचालित क्रियाओं को नियंत्रित करता है। स्पर्श द्वारा सम्पर्क का काम होता है। वाणी से उत्तेजना और स्वाद से रासायनिक क्रियाएं सम्पादित होती हैं। रूप, रस, स्वाद स्पर्श, श्वास-क्रियाओं का मन पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। और तंत्रोपैथी में रोगोपचार के लिए इसका इस्तेमाल किया जाता है। ध्यान की विधियों द्वारा उपर्युक्त माध्यम से रोगी के शरीर में शक्तिसंचार या शक्ति सम्पात कराया जाता है। इसमें मन की अहम भूमिका होती है।

इष्ट प्रणाम एक ध्यानात्मक मुद्राओं का समूह है जिसमें विभिन्न पारम्परिक आसनों का भी इस प्रकार समावेश किया गया है कि शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक स्वास्थ्य उपलब्ध हो सके। इष्ट प्रणाम में इष्ट और प्रणाम दो शब्द जुड़े हैं। इष्ट का अर्थ होता है संकल्पित आदर्श। आदर्श तो मूर्तरूप गुरु होता है। आदर्श को मूर्तरूप देखना ही इष्ट है। इष्ट अनुभूति मूलक है, आनन्दमूर्ति है। इष्ट के प्रति प्रणति है। गुरु कृपा के लिए निवेदन है। कृपा का अर्थ होता है करो तो पावो। अतः इष्ट प्रणाम गुरु से स्वास्थ्य, आकर्षण और अहलाद पाने का निवेदनं है। यह ध्यानात्मक और क्रियात्मक प्रणति है। तुलसी दास ने अपने इष्ट को प्रणतपाल कहा है–प्रणतपाल रघुवंशमणि त्राहि-त्राहि अब मोहि।

इष्ट प्रणाम, अभिनन्दनात्मक प्रणाम, अर्द्ध प्रणाम और साष्टांग प्रणाम का मिश्रित रूप है। उत्तम शारीरिक मानसिक और आध्यात्मिक स्वास्थ्य के लिए इष्ट प्रणाम का तंत्रोपैथी में विशिष्ट स्थान है।

तैयारी

1. ताड़ासन में पहले खड़े हो जाइए। रीढ़ की हड्डी सीधी रहे और ठोढ़ी सीने से लगी हो। मन ही मन इष्ट मंत्र का जाप होता रहे। इष्टमंत्र का जाप करते वक्त, जो आठ बार जाप के साथ मंत्र के पहले अक्षर के साथ श्वास लेते हुए अंगूठा दबा कर दोनों हथेलियों की मुठ्ठी बन्द कीजिए और मंत्र के द्वितीय अक्षर के साथ श्वांस छोड़ते वक्त अंगूठे से मुठ्ठी खोलते रहिए। यह एक वैज्ञानिक क्रिया है और इससे हम इष्ट प्रणाम करने के पूर्ण आध्यात्मिक स्पंदनों से भर जाते हैं।

2. चेहरे पर प्रसन्नवृत्ति बनाइए। हास्य मुद्रा का यह प्रथम चरण है। और रोगयुक्त स्थान पर ध्यान केन्द्रित कर इष्ट प्रणाम प्रारम्भ कीजिए।
3. 7 फीट लम्बा और ढाई फीट चौड़ा कम्बल अथवा न अधिक कड़ा और न अधिक गुलगुला आसन विधि है जिसके बीचों-बीच में जहां खड़े होंगे एक चिह्न बना है। सावधानी की स्थिति में ताड़ासन में खड़े हों।
4. 16 मुद्राओं और उसके आसनों की लड़ी इष्ट प्रणाम है। आसनात्मक मुद्रा के साथ "वावा नाम केवलम" का प्रत्येक मुद्रा के साथ एक-एक शब्द का ध्वन्यात्मक उच्चारण करते जाइए।
5. श्वास लीजिए और छोड़ते वक्त आसनात्मक मुद्राओं को कीजिए और पांच सेकण्ड श्वांस छोड़ते हुए उसी स्थिति में रहिए फिर दूसरी आसनात्मक मुद्रा कीजिए।
6. 16 आसनात्मक मुद्राओं की लड़ी को पिरोते हुए पुनः ताड़ासन में आ जाइए। इस प्रकार तीन चक्र इष्ट प्रणाम करना चाहिए।
7. सुबह सूर्योदय की वाल किरणों में, केवल लंगोट पहन कर नित्य कर्म से निवृत हो, स्नान करने के वाद पितृयज्ञ मुद्रा सहित करके ही इष्ट प्रणाम पूर्ण फलदायक होता है।
8. इष्ट प्रणाम शारीरिक रोगों के निवारण के लिए पूरे शरीर की मांसपेशियों को तनाव मुक्त करके और आध्यात्मिक लाभ के लिए उन्हें ढीला करके करना चाहिए। इसीलिए इष्ट प्रणामों के प्रथम दो चक्र शरीर को तनाव मुक्त करके और अंतिम एक चक्र शरीर को ढीला करके करना चाहिए। यह क्रिया अभीष्ट लाभदायक होती है। आंखें अविष्कारात्मक मुद्रा में होती हैं।
9. 16 आसनात्मक मुद्राओं की लड़ी क्रमशः (1) संकल्पात्मक मुद्रा (2) समर्पणात्मक मुद्रा (3) इष्टअभिनन्दनात्मक मुद्रा (4) वामपग तुलनात्मक मुद्रा (5) दक्षिणपग तुलात्भकमुद्रा (6) द्विपग तुलात्मक मुद्रा (7) अर्ध प्रणाम मुद्रा (8) साष्टांग प्रणामात्मक मुद्रा (9) वामपग ऊर्ध्वेक्षणम् मुद्रा (10) दक्षिणपग ऊर्ध्वेक्षणम् मुद्रा (11) कसेरू संकोचन मुद्रा (12) आशीष ग्रहणात्मक मुद्रा (13) वाम आभार प्रकटात्मक मुद्रा (14) दक्षिण आभार प्रकटात्मक मुद्रा (15) अभारप्रकटात्मक मुद्रा (16) कृपाकटाक्ष प्राप्तात्मक मुद्रा

रोग, रोगी और तांत्रिक उपचार पुस्तक में इष्ट प्रणाम का विस्तार से वर्णन करूंगा।

फायदे—इष्ट प्रणाम के प्रतिदिन अभ्यास से रक्त, स्वास, उदर और कटि संबंधी सभी बीमारियों का उपचार हो जाता है। यह रीढ़ की हड्डियों, गर्दन की हड्डियों, विभिन्न जोड़ों के दर्द के साथ-साथ बवासीर, नामर्दी आदि को भी दूर करता है। इसका प्रभाव रसस्राव ग्रन्थियों, पैक्रियाज, एड्रीनल, आवेरी और टेस्टीज आदि पर भी विशेष रूप से पड़ता है।

तंत्रोपैथी के उपचारक और रोगी के लिए इष्ट मंत्र का जाप आवश्यक है।

इष्ट मंत्र या गुरु मंत्र का जाप करते वक्त अपने अंगूठे से मुट्ठी बन्द करते रहना चाहिए।

"मैं ब्रह्म हूं। ब्रह्म मेरे अन्दर बाहर है। मैं अनन्त शक्तिशाली बाबा की गोद में बैठा हूं। बाबा ही मेरे भीतर बोल रहे हैं। मैं पूर्ण निरोग, सुखी और प्रसन्न हूं। मैं निर्भय, निर्लिप्त और सभी काम कर सकता हूं। मेरी इच्छाशक्ति प्रबल है। मैं रोगी के अवचेतन मन को संचालित कर उसे रोग मुक्त कर सकता हूं।"

शक्ति सम्पात करने और कराने के नियम–

1. एकान्त मनन (प्राइवेट-इमैजिनेशन)

उपचाराक को कम बोलना, रोगी की बातों का अच्छी तरह समझना, एक अच्छा श्रोता बनना तथा रोगी का गुण विवेचन करना, इस नियम में आता है।

2. गुप्तभेद विश्लेषण (सिक्रेट एनालिसस)

किसी भी चिन्तंन के वक्त मन को दो भागों में बांट दें। कर्त्ता और द्रष्टा।

3. तरंगित शक्ति (वाइब्रेशन)

मुस्कुराकर दूसरों को तरंगित करना उपचारक के लिए आवश्यक है।

4. एकाग्रचित्त (कन्सनट्रेशन)

मनोभावों की तरंगों को रोकना भी एकाग्रचित्त होना है।

5. संसूचनशक्ति (सजेस्टिव पावर)

उत्तमवाणी का प्रयोग करना जिसमें मधुमिश्रित शब्दों के साथ रोगी से रोग संबंधी बातें करना और उसके रोग को दूर करने की दृढ़ इच्छा जाहिर करना आदि आता है।

6. ध्यान (मेडिटेशन)

तंत्रोपैथिक क्रियाओं द्वारा शक्ति जुटाना प्रणायाम और ध्यान के माध्यम से तरंगित व्यवस्था उत्पन्न करना है।

7. नटराज मुद्रा

नटराज मुद्रा का प्रतिदिन मात्र 5 मिनट का अभ्यास।

विश्राममुद्रा

मानव स्वास्थ्य की समस्याएं पूरे विश्व में एक जैसी ही हैं, चाहे वह वाइरस आक्रमण, रक्तचाप, मधुमेह, हृदय रोग और रक्त चाप हो या दुर्घटना में शारीरिक टूट-फूट, आपसी सम्बन्धों का तनाव और असमान्य व्यवहार हो। जहां बिना अधिकार की समृद्धि हो, जहां विभिन्न रूपों में अनैतिक ऐशो-आराम के साधन उपलब्ध हों, जहां थोड़ा करके बहुत कुछ पाने या बिना कुछ किये सब कुछ पाने की लालसा हो, जहां के लोगों के गुणविवेचन की क्षमता का स्रोत सूख गया हो और वे अवगुण विवेचन और पर-निन्दा में रस लेने लगे हैं, जहां फाकेबाजी, चापलूसी, रिश्वतखोरी, कालाबाजारी, मिलावट आदि बड़प्पन और उच्चस्तर की पहचान हो गई हो, वहां लोगों का आक्रामकपन, अनावश्यक प्रतियोगिता, असुरक्षा, अपर्याप्तता तथा विभिन्न शारीरिक, मानसिक रोगों का शिकार होना कोई आश्चर्य की बात नहीं। आज की सारी चिकित्सा-विधि लाक्षणिक, सतही, क्षणिक पुनः रोग उत्पादन तथा रोग से बचने के क्रम में आजीवन रोगी बनाकर जिलाने की है।

हमारा विचार, स्मृति, ज्ञान और अनुभव ठीक वैसा ही होता है जैसा हमारा विचार होता है। हमारे सारे व्यवहार विचारों की प्रतिक्रिया स्वरूप ही हैं। हमारी स्मृति, ज्ञान और अनुभव में वह सब कुछ संकलित और रक्षित है जिसे हमने इस ज़न्म के ही नहीं, जन्म जन्मान्तर से पैत्रिक विरासत के रूप में पाया है। हमने अपने क्रमिक विकास में एक दूसरे पर आक्रमण की प्रवृत्ति, तथा आलस्य भोजन, भय और मैथुन के प्रति स्वाभाविक रुचि को पाया है। इसीलिए हमने इसे अपनी जीवन शैली के रूप में अपना लिया है। हमारा एक दूसरे के साथ संबंध प्रेम का हो या घृणा का, हमारे अनुभव करने के तरीके, चाहे वह सुख हों या दुःख, सभी हमारी स्मृति, ज्ञान और अनुभव पर ही आधारित होता है। यही कारण है कि एक जैसी बीमारी में अलग-अलग रोगी के दुख प्रकट करने के तरीकों में काफी फर्क पड़ता जाता है। एक तरह के चोट लगने पर चार व्यक्ति चार तरह की प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं। कोई उसकी बिल्कुल परवाह ही नहीं करता, कोई आह-उह कर शान्त हो जाता है। कोई चिल्लाकर घर आसमान सिर पर उठा लेता है तो कोई आक्रामक होकर बदला लेने के लिए दौड़ पड़ता है। इसके पीछे हमारी स्मृति और ज्ञान में संकलित और संचित अनुभव ही कार्य करते हैं। यही कारण है कि हमारे 75% विचार और कार्य शक्ति क्षीण करने वाले होते हैं। सच पूछा जाय तो हमारे वे संबंध जिसे आत्मिक या हार्दिक कहते हैं, वह पूर्ण विचारात्मक और अपनी सुविधा के अनुसार हैं।

मन, जड़ और चेतन का अद्‌भुत मिश्रण है। इसे संचालित करने के लिए, इसे स्वाभाविक दिशा में ले चलने के लिए और इसकी गति को सामान्य बनाने के लिए आराम और विश्राम की आवश्यकता होती है। इसकी अस्वाभाविक गति का कारण हमारा ज्ञान, स्मृति और अनुभव है। मन का गिरना, उसका संकुचित

होना, मन और शरीर की ऊर्जा का अनावश्यक क्षय होना है तथा शारीरिक मांसपेशियों का तनावयुक्त और मानसिक स्नायुओं का अड़ियल होना है। स्वयं को विभिन्न बीमारियों का शिकार बनाना है। स्मृति, ज्ञान और अनुभव के असीमित दायरे में इसका घूमना स्वभाव है। लेकिन इस चाल को तंत्र में अधोगति कहा गया है। इस दायरे को पूर्णतः सीमित करना और उसे आराम और विश्राम देना है। इस गति को ही उर्ध्वगति कहा गया है। मन को जितनी देर तक आराम और विश्राम की स्थिति में रखें उतना ही अधिक मन का विस्तार होगा, उतना ही अधिक शारीरिक, मानसिक ऊर्जा का उत्पादन होगा। डॉक्टरों ने जिसे स्वतः रोग निवारण क्षमता कहा है और जिसके चलते रक्त में लाल कणों की वृद्धि हो जाती है, जिस शक्ति को प्राप्त करने के लिए विभिन्न तरह की ऐन्टीबायोटिक दवाइयों की खोज हुई है, उसे मात्र मन का विस्तार कर, उसे पूरा विश्राम देकर प्राप्त किया जा सकता है। मन का विश्राम, हमारे श्वास प्रश्वास की लयात्मकता, ध्यान और अभ्यास और गहरी नींद पर निर्भर करता है।

सावधानी (एवेयरनेस) चपलता (एलर्टनेस) और सक्रियता (ऐक्टिवनेस) ही शारीरिक, मानसिक ऊर्जा के उत्पादन का साधन है। ध्यान, श्वास-प्रश्वास की लयात्मकता और गहरी नींद, मन के आराम और विश्राम का माध्यम है। हम जो कुछ करते हैं और बोलते हैं उस पर ध्यान देते ही श्वास-प्रश्वास की लयात्मकता, और गहरी नींद आ जाती है जिससे मन को आराम और विश्राम मिलता है। हम जो कुछ करते हैं और बोलते हैं उस पर ध्यान देना, श्वास प्रश्वास के आवागमन में बाधा न डालना, सिर्फ उस पर ध्यान देना, मन को अत्यधिक आराम सिर्फ इतना करने से ही मिलेगा और आधे शारीरिक, मानसिक रोग अपने आप दूर हो जाएंगे। बाकी कमी को गहरी नींद पूरी कर देगी। विश्राम मुद्रा का अभ्यास गहरी नींद लाने के लिए बड़ा आसान तरीका है। विश्राम पर बौद्ध तांत्रिकों ने सैया नाम से काफी खोज किया था और हमने भी उसी परम्परा का निर्वाह कर पूर्ण विश्राम के लिए बाबा शैया की खोज की है। बाबा शैया का ही दूसरा नाम विश्राम मुद्रा है जिसमें श्वास-प्रश्वास की लयात्मकता और ध्यान अपने आप हो जाता है और मन पूर्ण विश्राम की स्थिति में आ जाता है।

तंत्रोपैथिक मुद्राएं मन को शान्त (स्टिलनेस), मात्र श्वास-प्रश्वास के आवागमन को देखकर और मन को निश्चल (मोशनलेस), मात्र श्वास-प्रश्वास के आवागमन को देखकर और मन को पूर्ण शान्त (क्वाईटनेस) संकोचित प्रसारित अंग पर ध्यान केन्द्रित करके कर देता है। इसीलिए नटखट और बंदर की तरह उछल-कूद मचाने वाले मन को, जिसके कारण दिन भर की भाग दौड़ के कारण मांसपेशियां तनाव ग्रस्त और स्नायु अड़ियल बने रहते हैं, उपर्युक्त क्रियायें विश्राम में ला देने वाली हैं। विश्राम मुद्रा ऐसी ही एक मुद्रा है। बौद्ध तांन्त्रिकों ने चित्त सोने का नाम प्रेत शैय्या दिया है। क्योंकि इस शैय्या में सोने से बुरे-बुरे स्वप्न आते हैं और नाक से घरर-घरर की आवाज आती रहती है। इस शैय्या में पूर्ण विश्राम नहीं होता। इसलिए चित्त सोना सर्वथा मना है। बाएं करवट सोने से कामोत्तेजक ग्रन्थि

और अवयवों पर अधिक दवाव पड़ता है तथा सोते वक्त दक्षिण नाक से स्वास चलती रहती है, जिसे सूर्य नाड़ी भी कहते हैं और उससे शारीरिक उत्तेजना भी बढ़ जाती है। इसीलिए इसे कामोत्तेजक शैय्या उन्होंने कहा और इस शैय्या में जब तक जगे हैं लेट सकते हैं लेकिन सोना सर्वथा मना है। गहरी नींद के लिए भी यह शैय्या उपयुक्त नहीं है।

सिंह शैय्या को सोने के लिए वौद्ध तांत्रिकों ने सर्वथा उपयुक्त बताया है। दाहिने करवट लेटकर, पहले दोनों पैरों को उतना लम्बा करें जितना आसानी से कर सकते हैं। इसके बाद बाएं पैर को घुटने के पास से मोड़कर दाहिने पैर के घुटने पर लुढ़का दें और दाहिने घुटने को बिस्तर से सटा दें। बाएं हाथ को भी ढीला कर कमर के ऊपर इस तरह लुढ़का दें कि हाथ मेरुदण्ड की पूंछास्ति पर पड़े, जिसे तांत्रिकों ने मूलाधार चक्र कहा है। दाहिने हाथ की तलहठी को सिर के नीचे रखें। इस शैय्या में भगवान् बुद्ध सदा सोया करते थे। वास्तव में इस शैय्या में बायां स्वर स्वयमेव चलने लगता है जिसे चन्द्र नाड़ी भी कहते हैं जो शरीर और मन को कुछ देर में ही शान्त कर देता है। विपसना करते हुए इस शैया में महात्मा बुद्ध सोया करते थे इसलिए इसे तथागत शैया भी कहा जाता है।

बाबा मुद्रा के साथ सिंह शैय्या में उपर्युक्त तरीके से सोने तथा दाहिने हाथ को सिर के नीचे नहीं रख कर बगल में इस प्रकार रखा जाता है और सिर को समायोजित किया जाता है कि अंगूठे का हथेली की ओर से पहला पोर त्रिकुटी पर पड़े। अब हम पहले विचारों के आवागमन, फिर श्वास प्रश्वास और इसके बाद त्रिकुटी पर ध्यान केन्द्रित करने का प्रयास करते हैं। बस कुछ क्षणों के प्रयास में नींद आ जाती है। देखते-देखते हम गहरी नींद में चले जाते हैं। हमने दर्जनों अनिद्रा के रोगियों और स्वयं अपने आप पर प्रयोग कर इसे पूर्ण रूप से गहरी निद्रा लाने और पूर्ण विश्राम दिलाने के लिए उपयुक्त मुद्रा पाया है। इस मुद्रा से शारीरिक मैगनेटिक सरकिट भी पूरा होता है जिससे शारीरिक और मानसिक शक्ति की भी वृद्धि होती है और हममें रोगों से लड़ने की प्रतिरोधक क्षमता बढ़ जाती है।

त्वचा रोग, हृदय रोग, फेफड़े के रोग और उदर विकार के लिए इस मुद्रा में खुले आकाश में सोना या घर की बालकोनी आदि ऐसी जगह पर सोना जिसमें पूरी तरह स्वच्छ हवा लगती हो, अधिक लाभदायक होता है। इससे अधिक ऑक्सीजन को आत्मसात करने की शारीरिक क्षमता बढ़ जाती है और केन्द्रीय स्नायुमण्डल इससे मजबूत होते हैं। हर मौसम में खुली हवा में सोया जा सकता है। एक चौकी (तख्त) पर कम्बल और चादर डाल कर सोना, सोते वक्त हल्का कपड़ा पहनना, पतली चादर से गर्दन से नीचे ढके रहना, अगर जरूरी हो तो पतले तकिया का इस्तेमाल करना, (मोटा तकिया से सिर ऊंचा हो जाता है और मस्तिष्क में रक्त का आवागमन बहुत कम होता है) खाने के बाद वीरासन में बैठना, सिरो गहर संकोचन-प्रसारण प्राणायाम करना, सोने से पहले एक ग्लास

ठंडा पानी पी लेना एवं बाबा शैय्या में सोकर विश्राम मुद्रा करना गहरी नींद के लिए आवश्यक और विभिन्न रोगों के संयम उपचार के लिए जरूरी है।

खुली हवा में विश्राम मुद्रा करते हुए सोना इसलिए आवश्यक है, क्योंकि बन्द कमरे की हवा अत्यंत प्रदूषित होती है। बन्द कमरे में केवल कार्बन डाइऑक्साइड की मात्रा ही अधिक नहीं पाई जाती, बल्कि विभिन्न प्रकार की जहरीली गैस भी पाई जाती है। कमरों में बहुत कम आमने-सामने हवा आने जाने की व्यवस्था होती है तथा कमरे में वार्निश, पेंट, अधेसिव, तथा बनावटी लकड़ी से बने किवाड़, चौखट, फरनीचर तथा अन्य सजावटी कारपेट आदि गर्मी के दिनों में अधिक तापमान बढ़ने से इनमें प्रयुक्त 'फरमेल्डी हाइड' जो एक टाक्सिक ऑरगेनिक कम्पाउन्ड होता है, गैस पैदा करता है जिससे एलर्जी की कई तरह की बीमारियां हमें लग सकती हैं। कम्प्यूटर मशीन में प्रयुक्त होने वाले अल्युम्युनियम आक्साईड पाउडर और मेटालिक डस्ट स्वास्थ्य की दृष्टि से बहुत हानिकारक होता है। वे जो एअरकन्डिशन्ड कमरे में सारा दिन काम करते हैं उन्हें खुली हवा में सोना तो सामान्य स्वास्थ्य के लिए बहुत जरूरी होता है।

पारम्परिक देव मुद्राएं और उपचार

तंत्र में पारम्परिक देव मुद्राओं का वैज्ञानिक और व्यवस्थित विवरण सर्वत्र मिलता है। इन मुद्राओं का प्रयोग अधिकांश देव-पूजन के समय हाथ की अंगुलियों द्वारा विशिष्ट आकृतियों का सार्थक प्रदर्शन किया जाता है। रोगोपचार में यहां हम इन्हीं मुद्राओं का मूल्यांकन करेंगे। कूर्लाणव तंत्र (17/57), योगिनी हृदय (1/57), शारदा तिलक तन्त्र (23/106), मेरु तंत्र, ज्ञानार्णव तंत्र (4/39), फेत्कारिणी तंत्र (3/188) यामल तंत्र, कंकाल-मालिनी तन्त्र (द्वितीय पटल) कालिका पुराण (70/33), विष्णु-संहिता (7/43), घेरण्ड-संहिता (पृष्ठ 36) कादम्बरी, राघव भट्ट आदि में मुद्राओं के महत्त्व पर विशेष प्रकाश डाला गया है।

"मुद्रा प्रदर्शन से देवता (अणुजीवत्) प्रसन्न होते हैं और मुद्रा दिखाने वाले भक्त (साधक) पर मित्रवत् अणुजीवत् प्रसन्न होकर कृपा करते हैं। मुद्रा के प्रभाव से शत्रुवत् अणुजीवत् (देवता) अनुकूल होकर दया करते हैं। मुद्रा दिखाकर भक्त अणुजीवत् (माइक्रोबाइटा) के समीप पहुंच जाता है। उसे देखकर वे पूर्ण प्रसन्न हो जाते हैं और पूजा मुद्रा प्रदर्शन से 'महापूजा' का रूप ले लेती है। मुद्राओं के बिना आसन, प्राणायाम, धारणा, ध्यान आदि रोगोपचार में या तो अनुकूल फलदायक नहीं होते या निष्फल हो जाते हैं। हमारी पांचों अंगुलियां क्रमशः आकाश (अंगुष्ठा), वायु (तर्जनी), अग्नि (मध्यमा), जल (अनामिका) और भू (कनिष्ठा) तत्त्व का प्रतिनिधित्व करती हैं। उनके सहयोग से बनी विभन्न मुद्राएं, उन तत्त्वों के मिश्रित प्रभाव शरीर और मन पर डालती हैं और मित्रवत् अणुजीवत् (देवता) को आकर्षित कर तथा शत्रुवत् अणुजीवत को अपने अनुकूल

बना कर रोगों से छुटकारा दिला देती हैं। शास्त्रों ने तो मुद्रा प्रदर्शन से मृत्यु पर भी विजय प्राप्त करने की बातें बतायी हैं। श्रेयस मार्ग पर आगे बढ़ने के लिए तो मुद्राएं अति आवश्यक हैं। बीसवीं सदी के महान तांत्रिक, महामहिम श्री आनन्द मूर्ति जी ने पितृयज्ञ विभिन्न मुद्राओं के साथ ही सम्पन्न करने की व्यवस्था दी है।

पारम्परिक देव मुद्राओं में मत्स्य मुद्रा, धेनु मुद्रा और अंकुश मुद्रा जलसोधन के काम आती हैं। तंत्र में बाएं हाथ को शक्ति और दाहिने हाथ को शिव और अंगुलियों के बीच के छिद्र को योनि तथा अंगुलियों को पंचतत्त्व का रूप माना गया है। विभिन्न मुद्राओं के साथ विशिष्ट बीज मंत्रों (हं, यं, रं, वं, जं,) का दस बार उच्चारण रोग दूर करने के लिए कराया जाता है। विभिन्न रोगी पर वर्षों के प्रयोग के बाद हमने उपर्युक्त तीनों मुद्राओं की सहायता से विभिन्न असाध्य रोगों को दूर किया है। मुद्राओं के करते वक्त हाथों में तथा रोग ग्रस्त स्थानों पर रोगी स्वयं विद्युत प्रभा का अनुभव करता है।

मत्स्य मुद्रा—यह मुद्रा जलोदर, एवं रक्त संबंधी दोषों के लिए अधिक उपयोगी सिद्ध हुई है। बाएं हाथ की चार अंगुलियों को पीठ पर दाहिने हाथ की चार अंगुलियों को इस प्रकार रखते हैं कि योनि रूप एक दूसरे हाथ के छिद्र बन्द हो जायें और दोनों बगल में दो अंगूठा सीधा रहे। इसके बाद 20 बार बीज मंत्र और 20 बार रंग बीज मंत्र का उच्चारण करते हुए दोनों अंगूठा को हिलाते रहते हैं। मत्स्य मुद्रा के इस प्रदर्शन से शरीर के तरल द्रव 20 दिन के अभ्यास के बाद ही दूर हो जाते हैं।

धेनु मुद्रा—दोनों हाथों के कनिष्ठाओं (भू तत्त्वात्मक), अनामिकाओं (जल तत्त्वात्मक), मध्यमाओं (अग्नि तत्त्वात्मक), और तर्जनियों (वायु तत्त्वात्मक) को परस्पर मिलाकर दोनों अंगूठों (आकाश तत्त्वात्मक) को अलग रखते हैं। इस प्रकार पृथ्वी तत्व और जल तत्त्व से उत्पन्न शक्ति, अग्नि तत्त्व और वायु तत्त्व के संयोग से उत्पन्न पाचन शक्ति और दोनों तत्त्वों के मिलन से सुधांशु शक्ति उत्पन्न होती है, जो उदर और श्वास सम्बन्धी बीमारियों में पांच मिनट में अपना आश्चर्यजनक प्रभाव डालती है।

अंकुश मुद्रा—कनिष्ठा (पृथ्वी तत्त्व), अनामिका (जल तत्त्व) मध्यमा (अग्नि तत्त्व), अंगूठा (आकाश तत्त्व), से मिलाकर तर्जनी (वायु तत्त्व) को अलग-अलग खड़ी करने से अंकुश मुद्रा बनती है। इससे शारीरिक और मानसिक शक्ति उत्पन्न होती है। इस मुद्रा से रोगी को झटके के साथ ऊपर नीचे और नीचे से ऊपर देखना चाहिए। इससे रोग मुक्ति में बड़ी सहायता मिलती है। उपर्युक्त तीनों मुद्राएं तीन-तीन मिनट कम-से-कम प्रतिदिन, कटि, रक्त और उदरदोष के रोगी को एक सप्ताह करने के बाद ही अभीष्ट फल प्राप्त होने लगते हैं। प्राण-तोषिणी तंत्र के अर्धकाण्ड के प्रथम परिच्छेद में नीलतंत्र के वचन के रूप में हाथ की अंगुलियों में पांचों महा भूतों को प्रतिष्ठित होना कहा गया है। सन्निधापनी मुद्रा, सन्निरोधिनी

मुद्रा और अपान मुद्राओं का महत्त्व रोगी उपचार तथा व्यक्ति को स्वस्थ करने में महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। अभय और वीर मुद्रा डरपोक व्यक्ति को भी निर्भीक आर साहसी बना देता है। इन मुद्राओं को किसी आदमकद आइने के सामने करते हुए उस पर स्वयं दो मिनट के लिए एकाग्रचित्त होना चाहिए।

तंत्र मल-विसर्जन से सोने तक की क्रिया को पूजा मानता है और शारीरिक शौच, मानसिक संतुलन और आध्यात्मिक उत्थान संबंधी सारे उपक्रम को उपचार। अणुकाजीवत (माइक्रोबाइटा) ही तंत्र के देवता हैं, और उन्हें आकृष्ट कर शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक रोगों को दूर करने के लिए स्थूल और सूक्ष्म उपचारों की व्यवस्था तंत्र ने दी है। स्थूल उपचारों में जड़ी-बूटी, फल-फूल, खनिज द्रव्य आसन और पशु मुद्राएं हैं तथा सूक्ष्म उपचारों में विभिन्न तांत्रिक विधियां, देव मुद्राएं ध्यान और मंत्रजाप हैं।

आज विश्व में स्वास्थ्य और इलाज संबंधी विचारों में अचानक परिवर्तन आ गया है। चिकित्सक इस बात को अब महसूस करने लगे हैं कि कैंसर रोग, जीवन से पूर्ण निराश व्यक्ति को होता है और रोगी जब आंखें बंद कर अपने रक्त के स्वेद सेलों के वेग को शरीर के अन्दर देखनां शुरू कर देता है, तब कैंसर के सेल अपने आप खत्म होने लगते हैं और कुछ दिनों के बाद कैंसर के सारे लक्षण दूर हो जाते हैं। चिकित्सकों ने दवा की जगह चीनी की गोलियां देकर और रोगी के औरो के चित्र को लेकर जो विभिन्न सांवेगिक स्थिति में विभिन्न रंग का हो जाता है रोगों का इलाज करना प्रारम्भ कर दिया है। आज रोगी और चिकित्सक दोनों यह महसूस करने लगे हैं कि अधिकांश रोग शरीरो-मनो-अध्यात्मिक स्वभाव के होते हैं और बीमारी मन के साथ किसी-न-किसी रूप में जुड़ी हुई होती है।

हमारे शरीर में और बाहर वाइरस रहते ही हैं लेकिन वे तब तक हमें कोई नुकसान नहीं पहुंचाते, जब तक गहरा दुःख, दुःचिन्ता, निराशा आदि हममें स्वतः रोग निवारण क्षमता को कमजोर नहीं कर देते। ऐसी स्थिति में ही बाहर और भीतर के बैक्टिरिया हमें रोगी बनाते हैं। हृदय रोग के विशेषज्ञों ने यह कबूल किया है कि प्रतियोगिता, भयभीत, जल्दबाज, अधर्म और गुस्सा होने वाले व्यक्ति को हृदय रोग हुआ करते हैं। दुःख, घृणा और ईर्ष्या आदि नाकारात्मक सम्वेग वे स्पंदनात्मक लहरें पैदा करती हैं जिससे शरीर का सारा स्नायुमण्डल स्वास्थ्य के विपरीत दिशा में प्रभावित हो जाता है।

आज से हजारों साल पहले तंत्र ने रोग के शरीरो-मनो-आध्यात्मिक होने की बात का पता लगा लिया था और देवपूजा और शरीरो-मनो-अध्यात्मिक चिकित्सा का नाम उपचार दिया था। उपचार शारीरिक, मानसिक चिकित्सा ही नहीं, बल्कि मनुष्य के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को समग्ररूप में आह्लादित बनाने की क्रिया है। स्थूल और सूक्ष्म उपचारों के माध्यम से तंत्रोपैथी में रोगी को स्वास्थ्य लाभ कराया जाता है। पूजा तीन प्रकार की होती है–पर पूजा, परापरा पूजा और अपरा पूजा। पूजा के तीन प्रकार होते हैं–रूप (ध्यान, शोधन-भेदन, प्राणायाम, देव और पशु मुद्राएं तथा विविध विधियां) मंत्र (वीज मंत्र लं, वं, रं, यं, हं) और क्रिया (स्थूल उपचार,

शौच आदि)। फल, फूल, पत्र और छाल उपचार की व्यवस्था तंत्र में बड़े विस्तार में मिलती है।

फूलों को धारण करने से कान्ति, काम और ओज की वृद्धि होती है तथा अनेक रसों से सर्दी, गर्मी परिश्रम, शरीर की जलन, वमन प्यास, पित्त जनित रोग की व्याधियाँ नष्ट होती हैं। देव पूजा में आने वाले पुष्प, चमेली के फूल, कुष्ट विष, रक्त विकार शिररोग, नेत्रमुखरोग और छालों को दूर करता है। वेला का फूल त्रिदोष नाशक तथा कान, आँख और मुख के रोग को दूर करता है। जूही का फूल स्वादिष्ट शीतल तथा मधु रोग, पीत दाह, तृषा आदि को दूर करता है। मालती का फूल कफ, पित्त, घराले, कुष्टनाशक और वमन कारक है। कानों के रोग को भी यह शान्त करता है। श्वेत गुलाब कुष्ट नाशक, मुँह के रोगों और पित्त और दाह को शान्त करता है। लाल गुलाब रक्त-विकार और त्रिदोष को शान्त करता है। तुलसी के फूल कुष्ट, मूत्र-कृच्छ, रक्त विकार एंव कफ वात नाशक हैं। कमल का फूल कफ, पित, दाह और रक्त दोष को दूर करता है। केले का फूल वीर्य वर्द्धक, रक्त पित्तनाशक और रुचिकारक है।

तंत्रोपैथी में पशु मुद्राएं देव मुद्राओं के साथ ही पशुपति नाथ बनती हैं और स्थूल उपचारों के साथ वैद्यनाथ। श्री श्री आनन्द मुर्ति जी ने दिव्यगुण और यौगिक चिकित्सा में स्थूल उपचारों की चर्चा बड़े विस्तार से की है। और तंत्रोपैथी के दूसरे भाग में इसकी विस्तार से चर्चा की जाएगी। प्रमुख देवमुद्राएं तो अनेकों हैं लेकिन जिन मुद्राओं को तंत्रोपैथी में अपनाया गया है और जिसकी चर्चा यहां की गई है उनका मात्र कर्मकाण्ड सम्बन्धी अर्चना में ही प्रयोग करने का प्रचलन हो गया है लेकिन वास्तव में शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक उत्थान के लिए तंत्रोपैथी में इन मुद्राओं का व्यवहार किया गया है। पशु मुद्राओं के साथ देव मुद्राओं ने शारीरिक-मानसिक रोगों पर राम बाण की तरह असर किया है।

* * *

प्राणिक-शक्ति चिकित्सा की एक नवीन विधि

तंत्रोपैथी

भाग-2

(आत्मसम्मोहन, विचार प्रत्यारोपण, व्यक्तिगत आकर्षण)
(Self Hypnotise, Auto Suggestion, Personal Magnetism)

विषय सूची

समर्पण 145

प्रथम परिच्छेद

1. सम्मोहन और चुम्बकीयता पर प्रारंभिक प्रयोग 147
2. मानसिक सिद्धान्त 149
विमूढ़ावस्था लाने की विधि
3. संसूचित मिर्गी की मूर्छा (अपस्मार) स्तर की नींद 150
4. संसूचितकेन्द्र स्तर की नींद 150
5. सम्मोहन का महत्त्वपूर्ण निद्रा चरण स्तर 156
6. सम्मोहन के सिद्धान्त 158
7. सम्मोहन में कल्पनाशीलता, विश्वास और सम्भावना का महत्त्व 160
8. कल्पनाशीलता, विश्वसनीयता और सम्भावना का सम्मोहन में महत्त्व 162
9. चुम्बकीय मुद्राशक्ति प्रहार की प्रायोगिक विधि 165
10. सम्मोहन में विचार प्रत्यारोपण विधि 171

द्वितीय परिच्छेद

1. जीवन में तंत्र की भूमिका 175
2. इच्छा लक्ष्य और इष्ट 177
3. शक्ति और उसका जीवन में महत्त्व 182
4. इच्छा शक्ति 187
5. मनः शक्ति 193
6. आत्मविश्वास 195
7. बौद्धिक शक्ति 201
8. भावना शक्ति 208
9. क्रिया शक्ति
217

10. संस्कार और क्रियाशीलता 224
11. क्रियाशीलता और तंत्रोपैथी 227

तृतीय परिच्छेद

1. आत्मसम्मोहन और व्यक्तिगत चुम्बकीयता 230
2. मन शरीर और मनुष्य का विज्ञान 238
3. विचार प्रेक्षण, मानसिक पठन 242
4. भावातीत ध्यान या अपनी शक्तियों की काल्पनिक दृष्टिपात विधि 246
5. प्राणिक या दैवीशक्ति चिकित्सा 250

समर्पण

1. सम्मोहन, स्वविचार प्रत्यारोपण, व्यक्तिगत चुम्बकीय आर्कषण और प्राणिक शक्ति चिकित्सा चमत्कार को सभी नमस्कार करते हैं और दिव्यशक्ति की भारतीय पूजा और अर्चना करते हैं। हमारे ऋषि-महर्षि, और योगी-मुनि अच्छे आत्मसम्मोहक थे। विचार प्रत्यारोपण या स्वयं संसूचन औषधि विज्ञान से वे पूर्ण परिचित थे और उस कला का प्रदर्शन दीन-दुखियों के रोग-दुःख दूर करने के लिए ही किया करते थे। व्यक्तिगत आकर्षण तो उनमें इतना अधिक होता था कि अपने-आप उनकी ओर लोग खिंचे चले आते थे और स्वविचार प्रत्यारोपण से वे स्वयं दिव्यमूर्ति बन गए थे। वे अपने विचार प्रत्यारोपण में इतने सिद्धहस्त थे कि वाल्मीकि, अंगुलिमाल, सुल्ताना जैसे डॉकू और असामाजिक कामों में उस्ताद व्यक्तियों को भी सामाजिक और आध्यात्मिक बना दिया करते थे। वे परम पुरुषार्थी थे। ऋद्धि, सिद्धी और समृद्धि उनके कदम चूमती थी। ऐसे ही महापुरुषों की देन है हमारी भारतीय संस्कृति और सम्पदा। ऐसे आत्म सम्मोहन, स्व विचार प्रत्यारोपण व्यक्तिगत आकर्षण और प्राणिशक्ति विशेषज्ञों द्वारा आगम और निगम शास्त्रों की रचना की गई है।

तांत्रिक को वीराचारी भी कहते हैं। अर्थात् तांत्रिक विधियों द्वारा आचरण करने वाला व्यक्ति ही वीर, बहादुर, स्वस्थ और सुखी होता है या सुखी स्वस्थ आकर्षक, और अह्लादित व्यक्तित्व पाने के लिए तांत्रिक विधियों का पालन करना आवश्यक होता है। हमारे ऋषि-महर्षि और दार्शनिकों के ग्रन्थों में अविश्वसनीय, अप्राकृतिक और अनहोनी घटनाएं भरी पड़ी हैं। आज के तथाकथित कुछ व्यक्ति इसे 'कूप मंडूक' ज्ञान कहकर आँखें बंद कर लेते हैं, तो कुछ अपनी वैज्ञानिक खोजों द्वारा उस पर से पर्दा हटाकर पौराणिक तांत्रिक विचारों की वैज्ञानिकता पर मुहर लगाते जा रहे हैं। आज अधिकांश व्यक्तियों में इस सम्बंध में और अधिक प्रमाणिक बातों को जानने और सुनने की ललक दिनों दिन बढ़ती जा रही है।

हमें यह मानकर चलना ही होगा कि आज वे घटनाएं जो अविश्वसनीय, अप्राकृतिक अनहोनी और चमत्कारिक लगती हैं उन्हें कल वैज्ञानिक खोजों के जरिए व्यावहारिक और प्रमाणित होना ही है जैसा कि सम्मोहन (Hypnosis) संसूचन (Suggestion), व्यक्तिगत आकर्षण (Personal Magnetism) थे। प्राणिक ऊर्जा के प्रभाव सम्वन्धी आधुनिक खोजों द्वारा तथ्य सामने आया है। सम्मोहन और चुम्चकीयता, विचार प्रत्यारोपण और प्राणिक ऊर्जा ये चार शब्द आज हमारे लिए अधिक महत्त्वपूर्ण और सार्थक हो गए हैं। मन, शरीर, आत्मा पर प्रभाव डालने

वाले इन चार सिद्धान्त सम्बन्धी पाए जाने वाले तथ्यों, कथोपकथनों आदि पर आज की वैज्ञानिक खोजों के संदर्भ में निरीक्षण, परीक्षण और विश्लेषण में तेजी लाने के लिए ही हमने कलम उठाया है। ऐसी उत्सुकता नहीं जागने से इसका अस्तित्व ही खतरे में पड़ सकता है। इस पुस्तक में प्रमुख रूप से इन चार विलक्षण दैहिक मनो आत्मिक सिद्धान्तों से सम्बन्धित आधुनिक प्रगति और इसके विस्तार के तांत्रिक सिद्धान्तों का मूल्यांकन करने का प्रयत्न किया गया है। हमने यह अवश्य ध्यान में रखा कि हमारा व्यक्तिगत विचार पाठक के भीतर-घुसकर उन्हें गुदगुदाए और उस पर चुम्बकीयता, सम्मोहन, विचार प्रत्यारोपण (suggestion) और प्राणिक ऊर्जा जैसे विषय पर कुछ शब्दों में अपने पूर्ण उद्देश्य के साथ प्रकाश डालने का प्रयत्न कर रहा हूं। अगर पाठकगण ने इसे पसंद किया तो वही हमारे लिए बहुत बड़ा उपहार होगा।

इस पुस्तक के इस भाग के प्रथम परिच्छेद में उपर्युक्त चार सिद्धान्तों से सम्बन्धित सैद्धान्तिक और व्यावहारिक मार्ग दर्शन और वैज्ञानिक मूल्यांकन करने का प्रयत्न किया गया है। विचार प्रत्यारोपण को आज के मनोविज्ञान ने चिकित्सा के लिए उपयोगी माना है। और सम्मोहन, चुम्बकीयता और प्राणिक ऊर्जा का व्यवहार भी आज के चिकित्सा जगत् ने कबूल किया है। पाश्चात्य जगत तो रासायनिक दवाओं को बनवा कर ऊब चुका है और वह आज बड़ी तेजी से पारम्पारिक चिकित्सा को अपनाता जा रहा है। उस दृष्टि से भी भारतीय पारम्परिक तांत्रिक चिकित्सा को तंत्रोपैथी के रूप में प्रस्तुत करने के लिए प्रोत्साहित किया। इस प्रेरणा ने बौद्ध जैन, हिन्दू तंत्रों में गोते लगाने के लिए हमें प्रेरित किया और स्वास्थ्य, सफलता और अह्लाद पाने के लिए हमने तांत्रिकी तकनीक को खोज निकाला। इस पुस्तक के इस भाग के द्वितीय परिच्छेद में शक्ति स्फूरणा की पारम्परिक विधि और महत्त्व को दर्शाया है और तीसरे परिच्छेद में तांत्रिक तकनीक का वर्णन किया गया है।

प्रथम परिच्छेद

1. सम्मोहन और चुम्बकीयता पर प्रारंभिक प्रयोग

पाश्चात्य दार्शनिक हिपेक्रेटस चिकित्सा जगत् में औषधि के पिता के नाम से विख्यात हैं। उनका कार्यकाल तीसरी शताब्दी तक रहा है। उन्हें भी स्वप्नाचारी शक्ति पर विश्वास था। सम्मोहन और चुम्बकीयता का विज्ञान विभिन्न साम्प्रदायिकता के दलदल में इस प्रकार फंसा था और अंधविश्वासों के साथ इतना घुलमिल गया था कि उस पर वैज्ञानिक प्रयोग करना मुश्किल था। यह कभी साम्प्रदायिक प्रचार करने वाले पण्डे पुजारियों के चंगुल में फंसकर रह गया तो कभी साधु संन्यासियों की झोली में छिप गया और कभी मेस्मर आदि लोगों के हाथों में पड़कर मेस्मरिज्म और जादू टोना बन कर रह गया।

वास्तव में भारतीय तांत्रिक चिन्तन संश्लेषणात्मक चिन्तन था जिसमें आत्म चिन्तन और बाह्य अभियोजन का सिद्धान्त प्रचलित था और उसी का उप-उत्पादन हमारी आध्यात्मिक सम्पदा और भारतीय संस्कृति है जबकि उसी जमाने में विकसित हुए इजित्सियनों, ग्रीकों और रोमनों की चिन्तन शैली बाह्य चिन्तन और आत्म अभियोजन की रही है जिसे विश्लेषणात्मक चिन्तन शैली कहा जा सकता है और उसी चिन्तन शैली पर आधारित आज का सम्मोहन, चुम्बकीयता और विचार प्रत्यारोपण विज्ञान है। भारतीय तंत्र का जन्म और विकास की देन है आत्म संसूचन, व्यक्तिगत चुम्बकीयता और स्वविचार आरोपण विधि। आधुनिक विज्ञान भारतीय चिन्तन पर लगे रहस्यमय पर्दे को धीरे-धीरे उसे वैज्ञानिक सीमा में लेता जा रहा है और आज इसकी उपयोगिता को आधुनिक चिकित्सा जगत् भी कबूल करने लगा है।

एक साधारण बुद्धि के व्यक्ति को भी सम्मोहन, चुम्बकीयता, विचार प्रत्यारोपण और प्राणिक ऊर्जा प्रेक्षण विधि को सिखाना और स्वयं अभ्यास करना अपनी इन शक्तियों को विकसित करना तो प्रयोगकर्ता के अभ्यास पर ही 'निर्भर करता है जो इस क्षेत्र में एक सफल चिकित्सक बना सके। 1735 ई में ऐन्टन मेस्मर का जन्म 'वेदेन' में हुआ था और वे वियना विश्वविद्यालय से डॉक्टर की डिग्री के लिए लिखे गए थीसिस में व्यक्तिगत चुम्बकीयता और पशु चुम्बकीयता की खोज से अधिक प्रसिद्ध हुए जिसे उन्होंने 1775 में विश्वविद्यालय में जमा किया था। **उनके थीसिस का नाम था**–"ग्रहों और सितारों का उपचारात्मक शक्ति के

रूप में प्रभाव" उसमें उन्होंने ने अपने अकाट्य और सशक्त तर्कों से सावित कर दिया था कि सूर्य चन्द्र और तारे अपने से मानव शरीर और मन पर प्रभाव डालते हैं। वास्तव में उन्होंने इसे ही पशु चुम्बकीय द्रव्यतत्व कहा था। वास्तव में उन्होंने फादर हेल से मिलने के बाद व्यक्तिगत चुम्बकीयता के महत्त्व को समझा और उससे रोगियों की चिकित्सा वे करने लगे। इस शक्ति को वे मुद्राशक्ति प्रसार के माध्यम से रोगियों पर डालते थे। इसका श्रेय भी आस्ट्रीया में उन्हें खूब मिला। उनकी विधि से आकर्षित उमड़ती भीड़ की खबरें वहां के अखबारों में मुख पृष्ठ पर छपने लगीं और वे सुर्खियों में रहने लगे। इससे वे आत्मसम्मोहित हो अपनी सफलता पर गर्व किया करते थे और शायद यही कारण रहा है कि वे अपनी मानवीय चुम्बकीय चिकित्सा से हटकर एक नीम हकीम और बाजीगर बन कर रह गए।

कुछ वर्षों बाद मेस्मर के ही शिष्य मारक्विस पेशेगर ने अपने प्रयोगों के अद्भुत परिणामों से दुनिया को चौंका दिया। उन्होंने 1784 के करीब वनावटी निद्राचरण की खोज की थी जो विचार विनिमय और अंर्तयामिन से पूरी तरह भिन्न था क्योंकि इस वनावटी नींद में चुम्वकीय नींद लाने वाले के निर्देशित विचारों और कामों का परिपालन रोगी बड़ी तत्परता से करता था। उसी समय प्रोफेसर 'पोटेल' ने अपनी चुम्बकीय शक्ति से रोगी में 'मिर्गी मूर्छा' ला दिया और उसे उन्होंने pSuk ifjorZ (Sense transferance) कहा। इस स्थिति को उदर से सुनना भी कहा गया।' सम्मोहन और चुम्बकीयता पर 1815 तक परीक्षण और प्रयोग, फ्रांसक्रान्ति और नेपोलियन युग के चलते बन्द रहा। 19वीं सदी पूर्वार्ध में इस पर प्रयोग हुए। इसी काल में वैरन डी.यू पोटेट ने जादू आइना को खोज निकाला जिससे रोगी को सम्मोहित मिर्गीमूर्छा की हालत में ला देता था।

"वे कोयले से जमीन पर एक वृत्त खींच दिया करते थे और वृत्त के करीब रोगी को बुलाकर पहले देखने को कहते थे और बाद में उसे देखते पीछे की ओर चलने के लिये कहते थे। उसके बाद रोगी की हालत देखने के लायक होती थी। उसका पूर्ण व्यक्तित्व बिखर जाता, सिर झुक जाता और बिना नजर हटाए वह वृत्त के चारों ओर घूमता रहता। थोड़ा झुककर पीछे हटता और आगे बढ़ता, फिर गुरगुर्राता और पीला पड़कर गहरी सांसें लेने लगता। इसके बाद जब वह अपनी प्रतिछाया को वहां लगे आइने में देखता तो वह रोने-धोने, सिसकने और सुबकी लेने आदि की सांवेगिक स्थिति में आ जाता और काले वृत्त पर पागलों की तरह पैर पटकने लगता। इसके बाद चुम्बकीय शक्ति प्रदर्शक अपना काम बंद कर देता। वास्तव में पोटेल की कल्पनाशीलता के प्रभाव का यह सब खेल था।

सम्मोहन जिसे ग्रीक भाषा में हिप्नोटिज्म कहते हैं उसकी विभिन्न शाखाओं की खोज स्काटलैण्ड के डॉक्टर जेम्स ब्रैण्ड ने 19वीं सदी में की जो मैनचेस्टर में शल्य चिकित्सक थे। उन्हें ही सम्मोहकों का अगुआ कहा जा सकता है। 1841 ई. के नवम्बर में उन्होंने "लैफोनटेन" नामक चुम्वकीय शक्ति प्रदर्शक का सार्वजनिक प्रदर्शन देखा। शुरू में इसे उन्होंने वकवास समझा लेकिन दूसरी बार जब वे ऐसे

प्रदर्शन में शामिल हुए तब उन्होंने देखा कि वह व्यक्ति जो प्रयोगकर्ता के प्रभाव से आविभूत था, वास्तव में अपनी आँख खोल नहीं पाया था और इससे वे इस नतीजा पर पहुँचे कि प्रयोगकर्ता का व्यक्ति की आंखों में एकटक स्थिर देखते रहने से उसकी आंखों के चारों ओर की नसों में लकवा मार देता है। घर आने पर स्वयं एक बोतल की गर्दन पर एकटक देखते और उनकी पत्नी ने भी इसी तरह का एक प्रयोग किया और दोनों प्रयोगों में पति-पत्नि को नींद आ गई। इस साधारण प्रयोग ने ही आधुनिक सम्मोहन को जन्म दिया। इससे यह भी साबित हुआ कि शारीरिक साधन से कृत्रिम नींद लाई जा सकती है। इससे यह पता चला कि स्वसम्मोहन के लिए दूसरे व्यक्ति की चुम्बकीयता की सहायता की जरूरत नहीं पड़ती। व्यक्ति स्वयं सम्मोहित, किसी वस्तु पर एकटक देखने से ही, हो जाता है। भारतीय शक्ति स्पंदन चन्द्रों के पीछे यही रहस्य है जिसका पता भारतीय ऋषियों को था। डॉ. ब्रेडन ने अपने-अपने अनुसंधान के परिणामों के आधार पर बताया कि किसी व्यक्ति विषय या वस्तु पर एकटक देखने अचानक घंटाघड़ियाल की तरह बेसुरा जोर की आवाज सुनते रहने या पांचों ज्ञानेन्द्रियों में से किसी एक इन्द्री को प्रिय या अप्रिय वाले एक विषय पर बार-बार सोचने विचारने से नींद आ जाती है। भारतीय मंत्रों के जाप से व्यक्ति इसीलिए स्वसम्मोहित हो जाता है। डॉ. ब्रूक ने पता लगाया कि किसी चमकीली वस्तु पर ध्यान केन्द्रित करने से भी व्यक्ति सम्मोहित हो जाता है। इसे 'मेटालो थेराप्यूटिक थियोरी' के नाम से आज जाना जाता है। डॉ. ब्रूक ने कोचीन अस्पताल में जो उस वक्त फ्रांसीसी कालोनी था, देखा कि चमकते पीतल ने रोगियों पर अधिक प्रभाव डाला था और इसके सहारे रोगी सम्वेदनशीलता लाने में कामयाब हुए थे जिससे रोगी महीनों से वंचित था। भारतीय तंत्र में मूलाधार चक्र का रंग चमकते सोने के रंग का माना गया है उसका आकार-चतुर्मूल माना गया है और उस पर ध्यान करने से व्यक्ति निरोग होता है ऐसा कहा गया है।

सम्मोहकों के नैनसी स्कूल के समूह ने ही मानासिक शक्ति सिद्धान्त (Mental power theory) और शारीरिक शक्ति सिद्धान्त (Physical Power doctri) के प्रयोग से पता लगाया था जिसके संस्थापक डॉ. लियोब्यूल्ट थे।

2. सम्मोहन का मानसिक सिद्धान्त

विमूढ़ावस्था लाने की विधि–

1866 में डॉ. लियोब्यूल्ट ने अपनी कार्यक्षमता और नए प्रयोगों के प्रति उनके समर्पण भाव ने 1866 में "नींद और सम्मोहन की हालत में मन और शरीर पर क्या प्रभाव पड़ता है" नाम से एक किताब लिखकर इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। नैनसी सम्प्रदाय की विधि का सामान्य रूप से आज के सभी सम्मोहक प्रयोग में है, जिसकी झांकी नीचे प्रस्तुत है।

एक आराम कुर्सी पर आराम से रोगी को बैठाएं पर रोशनी या बल्ब की

ओर उसकी पीट रहनी चाहिए। सम्मोहक को अपने दाहिने हाथ की दो अंगुलियां रोगी की आंखों से एक फुट की दूरी पर तनी हुई रखनी चाहिएं। रोगी को उन अंगुलियों की ओर एकटक देखने के लिए निर्देश देना चाहिए। और उसे अपने दिमाग को पूरी तरह विचारों से खाली कर देने की हिदायत भी देनी चाहिए। जैसे ही रोगी की आंखें भारी हो झपकने लगें सम्मोहक को अपनी धीमी आवाज़ में संसूचन (Suggestion) देना चाहिए। इसमें अपने व्यक्तिगत चुम्बकीयता का प्रयोग सम्मोहक को बहुत अधिक करना चाहिए।

उसे कहना चाहिए "आप को झपकी आ रही है। आपकी आंखों की पलकें झपकने वाली हैं। आंखें बुरी तरह थक चुकी हैं। अब तुम्हें नींद आ रही है।" इस संसूचन को तब तक सम्मोहक को दुहराते रहना चाहिए जब तक रोगी की आंखें वन्द न हो जायें। सम्मोहित नींद अचानक आती है, तेजी से आँखें बन्द हो जाती हैं और गहरी सांस उसकी चलने लगती है और रोगी गहरी नींद में चला जाता है। इसके बाद सम्मोहक सम्मोहित, संसूचन (Suggestion) देना प्रारम्भ कर देता है जिससे वह "मिर्गी मूर्छा" और निद्राचरण नींद स्तर पर रोगी आ जाता है। निद्राचरण समाधि की तरह की स्थिति होती है।

संसूचित मिर्गी मूर्छा अपस्मार स्तर सम्मोहित नींद का स्तर–

रोगी की बांह को शरीर से ऊंचा करके उसपर "मुद्रा शक्ति प्रहार" कीजिए। मुद्राशक्ति प्रहार कंधे से नीचे अंगुलियों तक यह कहते हुए करना चाहिए "आपकी बाँह अकड़ रही, अकड़ रही है, अब पूरी तरह अकड़ चुकी है। अब आपके हाथों में कोई सम्वेदना नहीं होती, वह बेजान हो चुकी है। मैं जिस दशा में उसे खड़ा कर दूंगा उसी दशा में वह खड़ा रहेगा। और उसकी बांह को हवा में खड़ा कर दीजिए और उससे कहिए "आप कोशिश करके देखिए, अपनी बांह को नीचे नहीं गिरा सकते।" इस प्रकार रोगी की दोनों बांहों को खड़ा समकोण कर दीजिए। वह उसी तरह खड़ा रहेगा उसके बाद संसूचन दीजिए और साथ ही साथ अंगुली से गर्दन तक मुद्राशक्ति प्रहार कीजिए "आप अपने हाथ को गिरा सकते हैं। आपको अब मैं जो कहूंगा वही करेंगे। आप को मेरे सिवा और कोई नींद से नहीं जगा सकता।"

संसूचित निद्रा चरण स्तर की नींद–

इस स्तर की नींद में रोगी की हालत समाधि में व्यक्ति की तरह होती है और रोगी का पूरा व्यक्तित्व ही बदल जाता है। उससे आप कहें "बिना नींद से जगे ही आप अपनी आंखें अब खोलेंगे और जब वह आंखें खोले तो उसे एक सुन्दर फूलों से खिली फुलवारी दिखाई पड़ेगी और उसमें से कुछ फूल जो तुम्हें

पसंद हैं उसे तोड़ोगे या फूलों पर बैठी मधुमक्खियां उसे काटेंगी।" आंखें खोलने पर ठीक वैसा ही रोगी देखेगा फूल तोड़ने का और काटती हुई मधुमक्खियों को भगाने का भी वह प्रयत्न करेगा तो काफी दिलचस्प होगा। इस प्रकार सम्मोहक किसी प्रकार का मायाभ्रम रोगी में अपने संसूचन से भर सकता है और उसके अनुसार उससे काम करा सकता है। निद्राचरण ही सम्मोहित नींद का वह स्तर होता है जिसमें रोग को दूर करने के विचार का प्रत्यारोपण उसके मंस्तिष्क में सम्मोहक करता है और उसे निरोग करता है।

सम्मोहक रोगी की आंखों में एकटक देखकर और साथ-ही-साथ संसूचित करके भी उसे सम्मोहित कर सकता है। इस विधि से भी पांच-सात मिनट के अन्दर सम्मोहित किया जा सकता है। सम्मोहन के इस स्तर पर दिया गया कोई भी संसूचन सम्मोहित नींद से जगने के बाद रोगी को उसका परिपालन कराया जा सकता है। सम्मोहित नींद में दिए गए संसूचन और परिपालन का रोगी को नहीं पता रहता है और वह जो भी करता है वह उसे स्वाभाविक मानता है। बुरी आदतों को छुड़ाने के लिए इस नींद चरण स्तर में सम्मोहक संसूचन देता है और आदत को छुड़ाता है।

रोगी को नींद से जागने के पहले संसूचन दीजिए। "आप अब नींद से जग जाएं और ताली बजाएं। नींद से जागने के बाद तुम तरो-ताजा महसूस करोगे और तुम किसी दूसरे व्यक्ति द्वारा सम्मोहित नहीं हो सकोगे।"

डॉ. लियोब्यूल्ट द्वारा अपनायी गई विधि की एक झांकी भी प्रस्तुत करना मैं उचित समझता हूं। "वे पहले रोगी से उसके हाल-चाल और रोगी के विवरण को पूछते और इसके बाद बिना कोई परीक्षण किए वे रोगी के ललाट पर अपना हाथ रख देते और एकटक उसे देखते हुए बोलते "तुम सो गए" इसके बाद तुरंत रोगी के हाथ को उठा कर गोल-गोल घुमाते हुए बोलते "अब तुम अपने हाथ को नीचे नहीं गिरा सकते। अगर तुम ऐसा कर सकते हो तो करो" इसे देखने के लिए रुकते नहीं थे। रोगी की बांह को गोल-गोल घुमाते हुए वे बोलते जाते थे। अब तुम्हारी बांह का घूमना बंद नहीं होगा। इसी बीच रोगी की आँखें बन्द हो जातीं। यहीं से संसूचन की प्रक्रिया शुरू हो जाती। वे जोर से आदेश देते आप जल्द ही स्वस्थ हो जावोगे। आपकी पाचन क्रिया ठीक हो जाएगी। आपको अब अच्छी नींद आएगी। आपकी खांसी ठीक हो जाएगी और बलगम भी आना बंद हो जाएगा आदि आदि। इस प्रकार वे रोगी के रोगों पर एक साथ बमबारी करना शुरू कर देते और वह रोगी पर ही छोड़ देते कि वह किस रोग से पीड़ित है। वैसे बाद में वे रोगी के रोगों के मुताबिक ही निर्देश दिया करते थे।

नैनसी मानसिक सिद्धान्त ने यह माना है कि सम्मोहन की कृत्रिम नींद में विभिन्न स्तर नहीं होता बल्कि तीव्रता की माप में रोगी की दशा या स्थिति का फर्क होता है। गहरा और छिछला सम्मोहित नींद केवल शाब्दिक जाल है। नींद की पहली स्थिति में रोगी, गति शून्यता, आंखों की पलकों में भारीपन, तन्द्रा आदि अनुभव करता है और कभी-कभी अपनी आंखें नहीं खोल पाता। दूसरी स्थिति

में रोगी की आंखें बंद रहती हैं और शरीर अकड़ जाता है जैसा मिर्गी मूर्छा में होता है। तीसरी स्थिति में सम्मोहक के निर्देशन के अनुसार रोगी की अचेतन अवस्था में चाहे वह कम हो या बेशी, अपने आप चेष्टाएं और अंग संचालन होने लगता है। डॉ. लियोब्यूल्ट रोगों को दूर करने के लिए 'चुम्बकीय शक्ति जल' जो भारतीय अंवधारणा के अभिमंत्रित जल से भिन्न होता था, दिया करते थे। वे अपनी अंगुलियों को जल में डॉलकर उसे चुम्बकीय बनाते थे। जवकि भारतीय ऋषि अभिमंत्रित जल बनाने के लिए जल को हाथ से स्पर्श करते या उपयुक्त शुभभावनायुक्त मंत्र पढ़ते और इसके बाद जल में फूंक मारकर उसे अभिमंत्रित किया करते थे और उससे उपचार किया करते थे। शारीरिक चुम्बकीय शक्ति और मंत्र (शुभ भावनात्मक शव्द) शक्ति का मिश्रित प्रभाव शरीर और मन पर अचूक पड़ता है अगर सच्चे और निःस्वार्थ मन से उसे अभिमंत्रित किया जायें। सम्मोहन और चुम्बकीय शक्ति चिकित्सा पात्र भारत में स्व सम्मोहित, आत्म विचार प्रत्यारोपित, चुम्बकीय व्यक्तित्व वाले प्राणशक्ति से परिपूर्ण वीत्तरागी, सर्वत्यागी साधु संन्यासी ही माने जाते थे।

नैनसी स्कूल के सम्मोहकों ने यही पता लगाया कि चुम्बक लोहे का छड़ चमकते धातु आदि का सम्मोहन के लिए विशेष उपयोगी नहीं होता जवकि पेरिस स्कूल के सम्मोहक चुम्बक को सम्मोहित करने में एक उपयोगी वस्तु मानते हैं। लकड़ी और बांस की चुम्बकीयता का अभी तक कोई प्रमाण नहीं मिला है। जवकि नीम की डॉल पत्ती सहित और हरे बांस की पत्ती का प्रयोग चुम्बकीय चिकित्सा के लिए भारत में प्रयोग होता है। शरीर के स्नायु को "तत्त्वधारणा" द्वारा उत्तेजित कर, मांसपेशियों और पुट्ठों को सहलाकर (मारीत हाथ-पांव में घेरा देकर), शारीरिक संकोचन प्रसारण कराकर (तंत्रोपैथी में वर्णित इष्ट प्रणाम या अंगोपांग महा मृत्युंजय कराकर) उसे स्पंदित और उतेजित कर व्यक्ति स्वयं सम्मोहित हो सकता है या दूसरे को सम्मोहित कर सकता है। विचार प्रत्यारोपण विधि (Suggestive Method) सम्मोहित अवस्था में रोग निवारण के लिए ही उपयुक्त है सम्मोहित करने के लिए। विचार प्रत्यारोपण के साथ सम्मोहक व्यक्तिगत चुम्बकीय द्रव दोनों से रोगी जल्द ही सम्मोहित हो जाता है।

जैसे कि तंत्रोपैथी में कहा गया है, मन शरीर के माध्यम से पहले आँखों से झांकता फिर वाणी से बोलता और उसके बाद मांस पेशियों द्वारा नाचता है। ठीक इसी माध्यम में मन को सम्मोहक द्वारा आँखों से एकटक देखकर, विचार प्रत्यारोपित के लिए उपयुक्त शव्द बोलकर (Suggestion) तथा मुद्रा शक्ति प्रहार या रोगी के शरीर को स्पर्श कर रोगी आसानी से निश्चित ही सम्मोहित किया जा सकता है या स्वसम्मोहित हुआ जा सकता है।

डॉ. लूयस के प्रयोग :—पेरिस के ला चैरिटे अस्पताल में सम्मोहन सम्बन्धी बहुत प्रयोग हुए थे जिसके संगठन कर्ता डॉ. लूयस थे। उनकी खोजों ने वैज्ञानिक जगत में क्रान्ति ला दी थी। उन्होंने वताया कि अगर भौतिक तत्त्वों का चाहे उससे स्पर्श कराया जाय या दूर रखा जाय और साथ ही साथ विचार प्रत्यारोपण (Suggestion) किया जाय तो सम्मोहित नींद जल्द आ जाती है। उनके अनुसार

चमकीली वस्तु चाहे वह काल्पनिक हो या वास्तविक या मोमवत्ती पर ध्यान केन्द्रित कराकर या एक-दूसरे की आंखों में देखकर, किसी भी व्यक्ति को सम्मोहित किया जा सकता है। तेजगति से घूमती हुई वस्तु भी ध्यान केन्द्रित कराकर उसे सम्मोहित किया जा सकता है। एकटक उन वस्तुओं पर देखते रहने से हमारी आँखों की मांस पेशियां जल्द ही थक जाती हैं और स्वाभाविक रूप से मानसिक शान्ति मन में आने लगती है। इस संवंध में तंत्र का कहना है कि व्यक्ति के आज्ञाचक्र का रंग है विना आकार का चमकीला (नाराकारन वहु प्रभम्) इसलिए चमकीली वस्तु चाहे वह सूर्य की लाल किरण हो या चन्द्रमा का प्रकाश या कोई भी भौतिक वस्तु, उस पर ध्यान केन्द्रित करने से व्यक्ति सम्मोहित हो जाता है और उसके तीसरे नेत्र में स्पंदन पैदा कर व्यक्ति अतिन्द्रिय वौद्धिक क्षमता को वढ़ाता है। इसमें मंत्रों और मुद्राशक्ति प्रहार की आवश्यकता नहीं पड़ती है। डॉ. लूयस ने यह भी पता लगाया कि रोगी को किसी विशेष स्थिति में रखना, इसके चेहरे की मांस पेशियों का स्पर्श करना विशेष रूप से ललाट के त्रिकुटी के ऊपर के भाग या उस पर या गर्दन पर वह विशेष आयुर्वेदिक द्रव्य (मेडिसनल तत्त्व) को थैली में भरकर रखना आदि से भी सम्मोहित नींद आ जाती है। तंत्र में चन्दन का कुमकुम, सिन्दूर या भस्म रोगी के ललाट, गर्दन और कंठ पर लगाना या लेप करना आदि सदियों पुरानी परम्परा है। भारतीय विभिन्न सम्प्रदायों में विभिन्न प्रकार का टीका लगाना आज भी स्व सम्मोहन के लिए प्रचलित है और किसी भारतीय धार्मिक कर्मकांड, देवता को टीका लगाना, आरती करना, रंगीन, पीला रक्षाबंधन बांधना शिर पर वांया हाथ रखकर दाहिने हाथ से अभय मुद्रा प्रहार करना और अभिमंत्रित 'चरणामृत जल या पंचामृत बांटना आदि कर्मकाण्ड आज जन साधारण सम्मोहन से रोग-दुःख निवारण की परिपाटी प्रचलित है। पाठक इसे कभी न भूलें कि भारतीय कर्मकाण्डों की वैज्ञानिकता अब धीरे-धीरे सावित होती जा रही है और उससे हमें स्वस्थ, सफल और आकर्षक व्यक्तित्व पाने के लिए चिपका रहना ही श्रेयस्कर होगा।

अलबर्ट डी. रोचास ने 1887 में पाया अगर एक व्यक्ति अपनी इच्छा से या दूसरे व्यक्ति के प्रभाव के कारण अपनी अंगुलियों को अकड़ा सकता है तो दूसरी भौतिक वस्तुओं के स्पर्श से भी ये चमत्कारिक घटनाएं घट सकती हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं विभिन्न तावीजों और यंत्रों के पीछे यह वैज्ञानिक महत्त्व है। माला चाहे वह स्फटिक का हो या रुद्राक्ष का शरीर पर सम्मोहक प्रभाव डालता है लेकिन शुभभावना विचार प्रत्यारण कर अपनी बुरी आदतों को छोड़ने या अच्छी आदतें डालने के लिए जरूरी है।

डॉ. लूयस विभिन्न रंगीन गेंदों के सहारे रोगी में संवेग पैदा कराया करते थे। रोगी की आँखों को छिछली या गहरी सम्मोहित नींद में किसी रंग के गेंद से ओट या आड़ कर दिया जाता था। इन रंगीन गेंदों से रोगी की आंखें अचानक खुल जाया करती थीं और विभिन्न रंगों के प्रति विभिन्न प्रकार के संवेग वे दिखाया करते थे। अगर नीला गेंद रोगी के सामने होता तो रोगी की नजर और चेहरे

पर अद्भुत और भयानक रस की अभिव्यक्ति होती और पीला गेंद होता तो प्रसन्नता और खुशी उसकी नजरों और चेहरे में झलकती। तांत्रिक तत्त्व धारण या चक्रशोधन-भेदन विधि इस दृष्टि से भी व्यक्ति के स्वास्थ्य और सफलता के लिए आवश्यक है।

इसी प्रकार उन्होंने चुम्बकीय धातु के उत्तरी पोल को हाथ में देने से रोगी के खुशी और आनन्द तथा दक्षिणी पोल देने से वितृष्णा, पराजय और अस्वीकार के भाव आँखों में आ जाते थे तथा दोनों चुम्बकीय पोलों को दोनों हाथों में अलग-अलग लेने से उदासीनता और उपेक्षा के भाव दूर हो जाया करते थे। इसी आधार पर उन्होंने व्यक्तिगत शक्ति अदला बदली (Transfer of personal magnetism) का सिद्धान्त दिया।

3. सम्मोहित नींद को अपस्मार (मिर्गी मूर्छा) के स्तर पर लाने की विधि

यह सम्मोहित नींद के प्रथम स्तर (मंदबुद्धि स्तर) के तुरन्त वाद की स्थिति ही इस स्तर की नींद में शीघ्र पहुंचाने के लिए रोगी की आंखों की ऊपर की पपनी को ऊपर उठाकर लाया जा सकता है। चमकीली वस्तु पर एकटक देखने का निर्देश देकर या अचानक घंटा, घड़ियाल, नगाड़ा बजाकर भी इस स्तर की नींद लाई जा सकती है। किसी जलती मोमबत्ती पर ध्यान केन्द्रित कराकर या चन्द्रमा पर ध्यान कराकर भी इस प्रकार की नींद लाई जा सकती है। इससे स्व सम्मोहित नींद भी लायी जा सकती है।

इन विधियों से स्व-सम्मोहित करने की विधि को क्रिया तंत्र में त्राटक कहा गया है। यह क्रिया योगी और तांत्रिक लोग आंखों में दिव्य शक्ति लाने, अतिन्द्रिय वनने तथा विभिन्न चमत्कारिक शक्ति अपने में लाने के लिए किया करते थे या अपने शिष्यों को इस योग्य बनाने के लिए मठों में इसकी साधना कराया करते थे। पौराणिक युग में वाराणसी, गया और बौद्धयुग में नालन्दा इसका प्रमुख केन्द्र था। इस क्रिया के चलते ही वे सदा स्वस्थ, प्रसन्न और दिव्य शक्तियों से सम्पन्न रहा करते थे।

त्राटक क्रिया के तीन प्रकार हैं अन्र्त्राटक, करीब त्राटक और दूरत्राटक। अन्र्त्राटक में अपनी नाक के अग्रभाग को कुछ क्षण देखकर आंख के गोलक को उलट कर त्रिकुटी में एक चमकीली बिन्दु को एक ही ध्यानासन (सुखासन या शवासन आदि) में बैठकर करना चाहिए। नजदीक त्राटक में किसी चमकीली वस्तु को या मोमबत्ती की लौ को देखकर सुखासन में बैठे हुए या शवासन में लेटे हुए अभ्यास करना चाहिए। दूरत्राटक में चन्द्रमा पर एकटक देखकर या किसी ऊँचे पेड़ की अंतिम फुनगी पर ध्यान केन्द्रित कर या किसी ऊँची बिल्डिंग, मंदिर, मस्जिद, गिरिजाघर के सबसे ऊँचे कंगूरे पर ध्यान केन्द्रित कर अभ्यास करना चाहिए। हमें यह याद रखना चाहिए कि इन अभ्यासों को करते वक्त जैसी भावना होगी या जैसी मुखमुद्रा

होगी, सम्मोहित नींद में वह वैसा ही बनेगा या वैसी ही उसकी स्थिति होगी और वैसा ही विचार प्रत्यारोपण उसके मस्तिष्क में होगा। साधक या अभ्यास कर्ता को इसके लिए एक स्थिर आसन में बिना हिले-डुले बैठना चाहिए। इस अभ्यास को वीरासन में टेहुनियां कर या शवासन में सो कर या ताड़ासन में खड़े होकर किया जा सकता है। एक व्यक्ति अगर प्रसन्न मुद्रा में हास्याकृति या प्रसन्नाकृति बना कर इन अभ्यासों को नियमित रूप से एक माह करे तो वह अवश्य ही असाध्य बीमारी से भी छुटकरा पा सकता है। यही है तांत्रिक स्व-सम्मोहित नींद का करिश्मा। इस तरह की स्व-सम्मोहित नींद में मुश्किल से 15-20 मिनट से अधिक नहीं रहा जा सकता। डॉ. बुक का भी मानना है कि व्यक्ति की जैसी मुद्रा इस स्तर की नींद में होती है व्यक्ति में वैसा ही संवेग उत्पन्न होता है। प्रसन्नता की प्रसन्नाकृति बनाते ही रोगी के शरीर में प्रसन्नता और स्वास्थ्य की लहर दौड़ जाती है और बीमारी दूर करती है।

हजारों वर्ष पहले तंत्र ने कहा है कि जैसी मुद्रा होगी वैसे ही मन में भाव जागेंगे और जैसे मन में भाव होंगे शारीरिक मुद्राएं भी वैसी होंगी। शारीरिक मुद्रा और मानसिक भाव में इस प्रकार चोली दामन का सम्बन्ध है।

ऋषियों और मुनियों ने इसीलिए विभिन्न आसन मुद्राओं और आँख की भाव-भंगिमाओं का सृजन किया और उसे दैनिक जीवन में कर्मकाण्ड के रूप में करने का निर्देश दिया है। ये मुद्राएं, आसन और भंगिमाएं (Poses, Postures and gastures) दो प्रकार की होती हैं। वे मुद्राएं और आसन जो अंगुलियों और आंख की भंगिमाओं के आधार पर बनाई गई हैं वे मुद्राएं और आसन देव मुद्राएं और भजनासन कहलाती हैं तथा वे मुद्राएं और आसन जो पशुओं की विभिन्न स्थिति और क्रियाओं को देखकर बनाई गई हैं वे पशु मुद्राएं और आसन कहलाती हैं। पंच मकर साधना में मुद्रा प्रर्दशन की साधना को अधिक उत्तम और उपयुक्त माना गया है।

प्रयोग से पता चला भी है कि अगर सम्मोहन के अपसम्भार स्तर पर रोगी का हाथ खुला हो और वह मुँह के करीब होता तो सम्मोहित व्यक्ति के मुँह पर बैठती हुई मुस्कुराहट होगी जैसे उसके मुँह को कोई चूम रहा है। अगर उसका हाथ कोहुनी से मुड़ा हो तो व्यक्ति के चेहरे पर आश्चर्य की अभिव्यक्ति होती है। छोटे से छोटा शारीरिक परिवर्तन भी व्यक्ति में उसके चेहरे पर विभिन्न भाव पैदा करता है। इस प्रकार यह साबित हो चुका है कि अचेतन पर भी मुद्रा का प्रभाव बहुत अधिक पड़ता है। मुद्रा का प्रभाव एक विश्वसनीय आइने की तरह उसे चेहरे पर दिखाई पड़ता है। स्व-सम्मोहन से रोग दूर किया जा सकता है, यह निर्विवाद और सत्य है। प्रयोग से यह भी देखा गया है जैसे-जैसे सम्मोहित व्यक्ति के चेहरे के पास से हाथ हटाया जाता है वैसे-वैसे मुस्कुराहट कम होने लगती है और फिर जैसे-जैसे उसे करीब लाया जाता वैसे-वैसे मुस्कुराहट लौटने लगती है। शरीर की विभिन्न स्थिति से सम्बंधित विद्युतीय शक्ति या प्राणिक शक्ति चेहरे पर प्रतिबिम्बित होती है।

आत्म संसूचन का प्रभाव व्यक्ति पर काफी समय तक बना रहता है। इसी प्रभाव में व्यक्ति आत्महत्या या दूसरों की हत्या कर बैठता है या फिर इसकी तीव्रता और उग्रता के चलते पागल हो जाता है। यह सभी बदले की भावना या आत्म संसूचन का प्रभाव कहा जा सकता है। तंत्र में कहा गया है कि इष्ट के कीर्तन सान्निध्य और मनन द्वारा उनके गुणों, भाव-भंगिमाओं और गुणों को अपनाया जा सकता है। कीर्तन को हम सामूहिक सूचन या विचार प्रत्यारोपण (Mass Suggestion) सान्निध्य को आदर संसूचन (Prestige Suggession) और मनन को स्व-संसूचन (Auto Suggession) कह सकते हैं। भारत में कीर्तन, सान्निध्य और मनन को ईष्ट या आध्यात्मिक गुरु के गुणों को अपनाने, उसे आगे बढ़ाने और आम लोगों की सेवा करने के लिए अपनाया जाता था। बीमारियों को केवल दूर करने के सन्दर्भ में उसे कभी नहीं देखा गया।

4. सम्मोहन का महत्वपूर्ण निद्रा चरण स्तर

जैसा कि हमने देखा कि सम्मोहन में प्रारम्भिक नींद के स्तर को विमूढ़ा स्तर कहते हैं। इसके वाद का स्तर शारीरिक और मानसिक क्रियाओं द्वारा अपस्मार स्तर या (मिर्गी-मुर्छा स्तर) कहा जाता है। इसके वाद का महत्त्वपूर्ण स्तर निद्राचरण स्तर। चिकित्सा की दृष्टि से यह स्तर अति संवेदनशील और उपयोगी स्तर है। सम्मोहन के इस उच्चतम स्तर को लाने के लिए सम्मोहित व्यक्ति के सिर पर हाथ को रखना पड़ता है या चुम्बक घुमाना पड़ता है। इस स्तर में रोगी विभ्रम (Hellueination) या मायाभ्रम, त्रिशंकुभ्रम (Dellusion) का शिकार होता है। इसके बाद भ्रमाचरण स्तर की नींद होती है। इन दोनों स्तर की नींद में व्यक्ति की आँखें खुली रहती हैं लेकिन किसी हालत में आंखें अधखुली या बन्द भी रहती हैं। इनमें केवल आवाज की ध्वनि का फर्क होता है।

निद्राचरण स्तर ही विचार प्रत्यारोपण (Suggestion) के लिए उपयुक्त सम्मोहित स्तर होता है। इस स्तर पर ही व्यक्ति का मस्तिष्क सम्मोहक के निर्देश को मानने, सुनने और करने के लिए तैयार रहता है। इस स्तर पर व्यक्ति के स्नायु केन्द्रों में बहुत अधिक गतिशीलता होती है। यह भरोसे के साथ कहा जा सकता है कि सम्मोहित व्यक्ति की निद्राचरण की स्मृति भ्रमणाचरण स्थिति से अधिक होती है और इस स्तर पर स्मृति का बढ़ना बड़ा ही चमत्कारिक ढंग से होता है।

हर व्यक्ति की स्मृति अधिक विश्वसनीय होती है। उससे भी अधिक जितना हम जानते और मानते हैं। मस्तिष्क को उत्तेजित करने के लिए केवल उपयुक्त उत्तेजक होना चाहिए। चाहे वह शराब की हल्की डोंज हो या दवा, हमें यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि अपने शारीरिक अंगों को संतुलित बनाए रखने के लिए शरीर मस्तिष्क के किसी भाग को अधिक उत्तेजित करना अच्छा नहीं होता।

हमें स्वप्न प्रायः इसी स्तर की स्वाभाविक नींद में आते हैं और हमें अभिभूत किए रहते हैं। लेकिन जागने पर वे अस्पष्ट हो जाते हैं। सम्मोहित नींद से जगने

के बाद की स्थिति भ्रमणाचरण की स्थिति होती है और उस अवस्था में निद्राचरण की घटनाएं हमें याद नहीं रहतीं। लेकिन सम्मोहक द्वारा निद्राचरण स्तर पर आदेश दिए जाने से रोगी की स्मृति रहती है। स्वसम्मोहन में विमूढ़ास्तर पर किसी बात का स्पष्ट निर्देश दिए जाने पर विचार प्रत्यारोपण हो जाता है। जैसे नींद आने के पहले अगर हम अपने को निर्देशित करें कि सुबह 5 बजे उठ जाना और सारा दिन प्रोग्राम भी अगर बनाकर स्व निर्देशित करें तो दूसरे दिन ठीक पांच बजे हम उठ जाते हैं और अपने आप बिना सोचे-विचारे या भूले उन कामों में स्वाभाविक रूप से लग जाते हैं। त्रिपीटक में लिखा है कि महात्मा बुद्ध चार समाधि में रहा करते थे नींद के आने के पहले की समाधि जिसमें उन्होंने उस दिन क्या किया है और कल क्या करना है, दूसरी सामधि में विपसना करते हुए चले जाते थे, तीसरी समाधि में उन्होंने क्या किया और कल क्या करना है, उसकी स्पष्ट छवि सामने आ जाया करती थी और चौथी समाधि में वे निश्चित दिशा की ओर अपने आप सारे दिन का काम निवटा लेते थे। यह वर्णन ठीक सम्मोहित नींद की विमूढ़ा स्तर, अतिसम्भार स्तर, निद्राचरण स्तर और गमनागमनी स्तर (भ्रमण स्तर) की तरह है। भगवान् बुद्ध अपने अनुयायियों के लिए एक खुली किताब थे जिसे आम भिक्षुक भी जानते थे। अपने जीवन में अनुसरण करते थे। उन्हें तंत्रेश्वर की उपाधि से सम्वोधित किया जाये तो अत्युक्ति नहीं होगी।

यह बतलाना उपयुक्त होगा कि भ्रम तीन प्रकार का होता है। भ्रम, विभ्रम और मायावी भ्रम। भ्रम का आधार होता है, जैसे रस्सी को सांप का भ्रम होना। विभ्रम आधार रहित भ्रम होता है, जैसे प्रियतमा की प्रतीक्षा में बैठा प्रिय को कभी उसके पद चाप, कभी पल्लू की सरसराहट और कभी पदचाप सुनाई पड़ने का भ्रम हो जाता है। मायावी भ्रम या त्रिशंकु भ्रम एक पागल को होता है जो सड़क पर व्यर्थ की लकड़ी बटोरता चलता है और अपने को किसी देश का बादशाह समझ बैठता है या अपने काल्पनिक दुश्मनों के साथ ढिशुम-ढिशुम करते हुए हवा में हाथ-पांव मारता या स्वयं कभी पटखनिया खाता है। निद्राचरण के सम्मोहित या स्व-सम्मोहित नींद में विभ्रम और मायावी भ्रम की स्थिति में मस्तिष्क रहता है और उस स्थिति में सम्मोहक द्वारा दिए गए निर्देश को वह ईमानदारी से पालन करता है या उन आदेशों का गमनागमन स्तर पालन करने के लिए सम्मोहक निर्देश देता है तो उसे मायाभ्रम की अवस्था में पालन करता है। यह प्रमाणित हो चुका है कि सम्मोहन चाहे वह स्वसम्मोहन हो या पर-सम्मोहन वह एक स्मृति मूर्छा की स्थिति है और उसमें दिए गए निर्देश मस्तिष्क में प्रत्यारोपित हो जाता है और स्मृति उसे बड़ी ईमानादारी याद कर हमसे काम कराकर हमें स्वस्थ आकर्षक और आह्लादित व्यक्तित्व प्रदान करती है। सम्मोहन्न में इसी प्रकार सम्मोहित व्यक्ति के ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय को प्रभावित किया जा सकता है।

स्वाभाविक नींद में भी सम्मोहित नींद की तरह तीन गति होती हैं। 1. नींद का वह स्तर जिसमें सोया हुआ व्यक्ति बोलता है। 2. वह स्तर जिसमें व्यक्ति में सभी प्रकार की गति होती है, लेकिन वह बिस्तर नहीं छोड़ता और 3. नींद

का वह स्तर जिसमें वह बिस्तर छोड़कर उठ खड़ा होता है और हर प्रकार की जटिल क्रियाओं को करता है। पहले दो प्रकार की नींद आशावादी, विश्वसनीय और शान्त मिजाज के व्यक्तियों को आती है और उनका स्वास्थ्य सामान्य होता है लेकिन तीसरे स्तर की नींद के सम्बन्ध में यह फैसला नहीं हो पाया है कि स्वस्थ व्यक्ति को इस तरह नींद नहीं आती। छोटे बच्चों में तीसरे प्रकार की नींद प्रायः देखी जाती है। वास्तव में तीसरे स्तर की नींद प्रायः उन व्यक्तियों को आती है जिनके कथनी और करनी में कोई एकरूपता या सामंजस्य नहीं होता। वे कहते कुछ और करते कुछ हैं।

5. सम्मोहन के सिद्धान्त

अगर किसी बीमारी का मानसिक दृष्टि से अनुकरण किया जाये तो वह अंग विशेष पहले शक्तिहीन होता है और इसके बाद उस अंग में उसी बीमारी के लक्षण आ जाते हैं। यह दशा हमारी चिन्तन-प्रक्रिया और इच्छा शक्ति की होती है। हिस्टीरिया के रोगी जिसे पागल समझा जाता था, उसके मस्तिष्क के किसी विशेष भाग में केन्द्रित बीमारी थी। हमारा क्या काम है किसी विषय पर चिन्तन करना, उस पर तर्क विर्तक करना और उस पर निर्णय लेना। लेकिन कभी-कभी हमारी बुद्धि और निर्णय अपने-अपने रास्ते से भटक जाते हैं और उस स्थिति में विभ्रम भी नहीं होता और हम सामान्य हो जाते हैं।

एक विशिष्ट प्रकार का विचार जब बार-बार मन में आने लगता है तब वह विचार हर बार उसे मानने के लिए बाध्य भी करता रहता है और दबाव भी बनाए रखता है इस प्रकार उस विचार की मृगमरीचिका के जाल में फँस कर माया के भ्रम या प्रेतबाधा का शिकार बन जाता है। ऐसे पागलपन भरे विचारों और प्रेरणाओं को अपनी सामान्य बुद्धि से कबूल नहीं कर पाता, मन-ही-मन विरोध करता रहता है और अपना संतुलन बनाए रखता है। एक व्यक्ति को यह भ्रम हो गया कि सारा समाज अनैतिक हो गया है और इसको सुधारने के लिए इसे परमात्मा ने भेजा है और वह इसी प्रयत्न में अपनी सारी सम्पत्ति को स्वाहा कर बैठा और अन्त में भिखारी बन गया। उसे अभी तक लोग सामान्य व्यक्ति ही समझते थे जब एक दिन उसे पुलिस ने पकड़कर पागलखाने भेजा तभी लोगों को विश्वास हुआ कि वह एक मानसिक रोगी था। ऐसे व्यक्तियों से हमारा समाज भरा-पड़ा है, जिन्हें सम्मोहन चिकित्सा की आवश्यकता है। ऐसे रोगियों को प्रमुख पांच भागों में हम बांट सकते हैं—अधिनस्त रोगी, प्रेरित रोगी, विभ्रमित रोगी, उन्मत्त रोगी और भ्रमित चित्त या बेसुध रोगी। हिस्टीरिया और मिर्गी का रोग स्नायु विकृति के कारण होता है जो रोगी की बौद्धिक क्षमता को प्रभावित करता है। दोनों रोगों की चिकित्सा भी सम्मोहन पद्धति से की जा सकती है।

दोनों रोगों में प्रायः एक ही जैसे लक्षण पाए जाते हैं। दोनों में स्वाभाविक निद्राचरण की घटना होती है। दोनों रोगों में प्रायः पहले चित्त प्रभावित होता है

और दोनों मूर्छित होकर कटे वृक्ष की तरह जमीन पर धड़ाम से गिर जाते हैं। दोनों रोगों में मूर्छा का दौरा खत्म होने पर रोगी को उसकी धूमिल याद भी नहीं रहती। यह रोग अपूर्व बुद्धि के व्यक्तियों में भी पाया जाता है। सम्भवतः वृहद् मस्तिष्क में अत्यधिक क्रियाशीलता से इन रोगों के लक्षण दीखने लगते हैं। एरिसटोटल ने कहा था कि कोई भी ऐसा अपूर्व बुद्धिमान व्यक्ति नहीं जिसमें मूर्खता न हो। जूलियस सीजर, नेपोलियन आदि मिर्गी रोग से पीड़ित थे। सुकरात विभ्रम थे शिकार के, रूसो को मेलेनकोलिया रोग था। द्वितीय विश्व महायुद्ध के नायक हिटलर मिर्गी के रोगी थे और मुसोलनी तथा स्टालिन मानसिक बाध्यता के रोगी थे।

चुम्बकीयशक्तिः– वास्तव में मानव शरीर या विशिष्ट प्रकार के जीव के शरीर या पेड़-पौधे और किसी निर्जीव वस्तु की चुम्बकीय शक्ति की समानता इस बात में होती है कि वे अपने छोरों को पृथ्वी की ओर ही रखते हैं। व्यक्ति की चुम्बकीयशक्ति प्रकृति द्वारा उत्ताराधिकार के रूप में मिली है और उसकी वृद्धि अनुकरण से अधिक होती है। उसे विचार के स्तर पर अनुकूल वातावरण में हम अनुकरण करते हैं और इसके बाद हममें क्रिया रूप में स्वाभाविक रूप से अनुकरण हो जाता है और वह दीखने लगता है। ठीक उसी प्रकार जब क्रिया रूप से हम किसी आदत का अनुकरण करने लगते हैं तो उसे विचार रूप में मन स्वाभाविक रूप से अनुकरण कर लेता है। यही तंत्र की मान्यता है। तंत्र कहता है कि किसी भी परिस्थिति में प्रवेश करें उसके भय से मुक्ति मिलेगी ही। मुक्ति पाने में किसी की कृपा की जरूरत नहीं पड़ती। हम जैसा करते हैं वैसा ही हमारा विचार और भावना होती है और जैसा हम सोचते-विचारते हैं वैसी ही हमारी क्रियाएं होती हैं। इसलिए व्यक्ति को अपने व्यक्तित्व में चुम्बकीयता लाने के लिए हमें विचार के स्तर पर और क्रिया के स्तर पर प्रयत्न करना होता है। शुभभावना विचार स्तर पर तथा आसन मुद्रा और आंख की भंगिमाओं का अभ्यास क्रिया स्तर पर प्राणिक ऊर्जा के सम्पात, व्यक्तिगत चुम्बकीयता और आकर्षण, सम्मोहन शक्ति को प्राप्त करने के लिए तंत्र ने व्यवस्था दी है। यही व्यक्ति को पुरुषार्थी बनाने का रास्ता, उसे ऋद्धि सिद्धि और समृद्धि दिलाने का मार्ग तथा स्वस्थ आर्कषक, सुन्दर और आह्लादित व्यक्तित्व पाने का सरल सुगम और सुलभ मार्ग। यही है अपनी कल्पना शक्ति, भावना शक्ति, बौद्धिक शक्ति, मन शक्ति और क्रिया शक्ति को विकसित कर अपनी इच्छाशक्ति या प्राणिक शक्ति द्वारा दूसरों के रोग-दुःख दूर करने का एकमात्र उपाय। उसकी विस्तार से चर्चा हमने इस पुस्तक के द्वितय परिच्छेद में की है। इसके लिए विचार और क्रिया अनुकरण की अहम भूमिका होती है।

6. सम्मोहन में कल्पनाशीलता, विश्वसनीयता और सम्भावना का महत्त्व

मनुष्य में अनुकरण करने की मूल प्रवृत्ति जन्मजात होती है और उसकी कल्पना शक्ति को स्वसम्मोहन या पर-सम्मोहन में उसे मोड़ा जाय तो व्यक्ति पर चमत्कारिक प्रभाव होगा। मनुष्य और जानवर में एक ही प्रकार की भयवृत्ति होती है और वे भयभीत होकर एक जैसा ही व्यवहार करते हैं। शल्य चिकित्सकों को हमेशा इस बात का भय वना रहता है कि ऑपरेशन के डर से रोगी अधिक भयभीत हो जाता है और ऐसा व्यक्ति शल्य चिकित्सा से पहले दम तोड़ देता है। कुछ ऐसे भी डरपोक व्यक्ति होते हैं जिन्हें जिन्दगी भर भय से छुटकारा नहीं मिलता।

आपबीती एक घटना हमें याद आ रही है। मैं उस वक्त काशी विद्यालय में षष्ठम्वर्ष का छात्र था। हमें एक सप्ताह देर से एक टेलिग्राम मिला कि आपकी पत्नी गम्भीर रूप से बीमार है। जल्द आ जावें। हमें करीब शाम को 6 बजे तार मिला और उसी वक्त घर को चल पड़ा। करीब 11 बजे मैं गांव के पास स्टेशन पर उतरा, जहां से करीब 4 मील हमें पैदल जाना पड़ता था। 11 बजे रात में कोई भी सवारी नहीं मिली इसलिए पैदल ही चल पड़ा। करीब रात का 1 बज रहा था। सितम्बर की रात थी। बूंदा-बांदी हो रही थी। रास्ते में हमारे गांव के करीब एक पीपल का बहुत पुराना पेड़ था और उस पर एक भूत रहता है यह मैं पहले सुन चुका था। भूत से हमें भय नहीं लगता है इसलिए चलता रहा था, लेकिन कुछ लोगों के मुंह से वार-वार सुनने की वजह से पीपल के पेड़ के पास जैसे-जैसे मैं पहुंचता जाता था, भूत के सम्वन्ध में वैसे-वैसे विचार में भी भूत अचेतन रूप से आता जाता था। जैसे ही मैं पीपल के पेड़ के पास पहुँचा एकाएक चहचहा कर बहुत सी चिड़ियां उड़ पड़ीं और बिना सोचेसमझे मैं भाग खड़ा हुआ और भय से रोंगटे खड़े हो गये, श्वास जोर से चलने लगी। करीब बीस मीटर पीछे भागने के बाद मैं रुका और उस पेड़ की ओर देखा लेकिन अंधेरी रात होने से कुछ साफ दिखाई नहीं पड़ रहा था। कुछ क्षण खड़े होकर मैंने मन को समझाया पर भूत की कल्पनाशीलता से मैं अभिभूत हो चुका था। बहुत हिम्मत करके मैं फिर आगे की ओर बढ़ने लगा लेकिन मन भयभीत था। जैसे-जैसे मैं पेड़ के पास पहुंचता जाता था वैसे-वैसे ऐसा लगता था कि एक आदमी कम्वल ओढ़े बैठा है। हृदय जोर-जोर से धड़क रहा था। पसीना बुरी तरह आ रहा था और श्वास बुरी तरह बेसुरा हो रहा था। इस हाल में भी मैं पीपल के जड़ के पास पहुंच गया क्योंकि मन में यह किसी तरह जम चुका था कि भूत होता ही नहीं है। लेकिन इस स्थिति में अगर कोई चिड़िया उड़ने की तरह दूसरी कोई घटना घट जाती तो अवश्य मैं बेहोश होकर गिर पड़ता। पेड़ के जड़ के पास पहुंचकर मैंने गौर से देखा, जोर-जोर से पूछा–कौन है? कौन है? पर

कोई जवाव नहीं आया। मुझमें थोड़ी हिम्मत आई। एकाएक मैं चौंक पड़ा। वह एक पेड़ की कटी हुई डाली थी जो दूर से अंधेरे में ऐसा लगता था कि कोई कम्वल ओढ़े बैठा है।

बार-बार कई लोगों के मुंह से सुनते रहने से भूत की कल्पना ने हमें घबड़ा दिया था। लेकिन भूत नहीं होता है यह विश्वास हमें आगे वढ़ने की हिम्मत देता रहा। चिड़ियों के उड़ने से भय-लहर हमारे अंग-अंग में दौड़ गई और भाग खड़ा हुआ। जिससे मैं पूरी तरह से भयभीत हो चुका था। फिर भूत नहीं होता है इस विश्वास ने पेड़ तक पहुंचने का हमें मौका दिया लेकिन भूत के भय ने मुझे पूरी तरह सतर्कता की स्थिति में ला दिया था और उस वक्त अगर छोटी-सी भी कोई घटना घट जाती तो मैं अवश्य ही वेहोश होकर गिर पड़ता लेकिन ऐसे कुछ हुआ नहीं, हमारे विश्वास ने उसे स्पर्श कर देखने की हिम्मत दी।

इस प्रकार इस घटना में कल्पना-शक्ति की दो विपरीत धाराएं काम कर रही थीं दोनों का पलड़ा समान। न भारी था न हल्का। एक छोटी-सी अचानक घटना और अंधेरे ने भय की कल्पना से हमें अभिभूत कर दिया तो किसी तरह की ऐसी घटना नहीं घटने की कल्पना ने इस भूत जैसी लगने वाली डाल को स्पर्श कर दिया और भय पर विजय दिला दी।

प्रायः अंधेरी रात में किसी वस्तु को अच्छी तरह पहचानना सम्भव नहीं होता और ऐसी हालत में जब किसी वस्तु का रूप-रंग और आकार-प्रकार का निर्णय करना मुश्किल हो जाता है। जब अप्रत्याशित आवाज आशा से अधिक जोर से या धीमी सांय-सांय सुनाई पड़ती है तव व्यक्ति की कल्पना-शक्ति पूरी तरह नकारात्मक दिशा की ओर सक्रिय हो जाती है और वह वैसी कही-सुनी सैंकड़ों घटनाओं का शिकार हो जाता है, जिसे जाने-अनजाने अधिक महत्त्व देता रहा है। ऐसी स्थिति में सम्भावित खतरे का डर अनुमान से अधिक वढ़ जाता है और उससे पूरा वातावरण प्रतिध्वनित होने लगता है और उसकी आवाज कानों में सुनाई पड़ने लगती है। पूरे शरीर में फुरहरी और झुरझुरी आने लगती है। उसी मात्रा में भय की मात्रा भी अधिक बढ़ जाती है। फिर वह अपनी कल्पना के अनुसार अपनी विभ्रम का शिकार हो जाता है और अपने भय को ही भूत के रूप में या मौत के रूप में अपने सामने खड़ा कर लेता है।

सम्मोहन में ठीक इसी प्रकार की घटना होती है और इसकी उत्पत्ति और समाप्ति भी विभ्रम के रूप में होती है जो अपनी कल्पना-शक्ति के कारण नहीं होती है। एक लेखक अपनी कल्पना की उड़ान अपने लेखों में भरता है, एक चित्रकार अपनी कल्पना को कैनवास पर उतारता है और एक मूर्तिकार अपनी कल्पना को मूर्ति में उकेरता है। हमारे कामों में हमारी कल्पनाशीलता की ही बाह्य अभिव्यक्ति होती है। ये घटनाएं आत्म-सम्मोहन की घटनाएं हैं। आज का सम्मोहन पर-सम्मोहन और समूह-सम्मोहन बनकर व्यवसाय बन गया है। सम्मोहन के प्रभाव में जो सफल चिकित्सा होती है वह निश्चित रूप से कल्पना शक्ति का ही प्रभाव होता है। जिस प्रकार अपनी कल्पना से रोग वुलाया जाता है उसी प्रकार कल्पनाशक्ति

से उसे दूर भी भगाया जा सकता है। सम्मोहक का प्यार, सहानुभूति स्नेह, मित्रवत् व्यवहार आदि हमारी कल्पना-शक्ति को साकार रूप देता है।

कल्पनाशीलता या कल्पनाशक्ति विश्वसनीयता या भावनाशक्ति और सम्भावना बौद्धकशक्ति का सम्मोहन में महत्त्व–

हम जिसे अपना अनुभव कहते हैं वह हमारे विचार और क्रिया अनुकरण का ही उत्पादन होता है। हमारी बैद्धिकशक्ति, कल्पनाशक्ति, भावनाशक्ति, मनशक्ति और क्रियाशक्ति ही हमारी सहानुभूति या दुराव, प्रेम या घृणा, खुशी या आंसू, दोस्ती या दुश्मनी, निर्भीकता या घबराहट आदि को नियंत्रित करता है और प्रेरक का काम करता है। एक व्यक्ति भूखा-प्यासा है या दुखी है यह बात हमारे मन में पहले आती है और कल्पनाशक्ति सक्रिय हो जाती है, बौधिक शक्ति उसकी गहराई और वास्तविकता की जांच करती है। यही भावनाशक्ति सक्रिय हो हमें अभिभूत करती रहती है और क्रियाशक्ति को सक्रिय कर हमें उसे गले लगाने या दूर भगाने तथा आंसू बहाने या खिलखिलानें के लिए मजबूर कर देती है।

पांचों शक्तियों का ही सामूहिक रूप हमारी इच्छा शक्ति है। आत्म-सम्मोहन ही हमारे स्वभाव को स्वाभाविक या बनावटी बनाता है। जो विचार और क्रिया स्तर पर हम जाने अनजाने अनुकरण करते रहते हैं। यही हमारी जीवन शैली है जो मरते दम तक हमारे साथ जुड़ी रहती है। सहानुभूतिक बीमारी से ही हम प्रायः बीमार होते हैं।

डॉ. मैले ब्रांचे ने सहानुभूतिक बीमारी का एक रोचक उदाहरण निम्न प्रकार से दिया है। सहानुभूतिक बीमारी एक आम बात है। एक दाई ने देखा कि किसी दुर्घटना के कारण एक व्यक्ति के पैर से बहुत अधिक खून निकल रहा है। उसने अपने पैर में भी ठीक उसी प्रकार असत्य का दर्द उसी स्थान पर महसूस किया और उससे वह कई दिनों तक परेशान रही। डॉ. वीरे ने भी ठीक ऐसा ही उदाहरण दिया है जिसमें उसके घर की एक महिला कर्मचारी ने अपने मालिक की बाँह के फोड़े का ऑपरेशन करते हुए देखा था। अपनी बांह में भी ठीक उसी तरह और उसी स्थान पर बुरी तरह दर्द का अनुभव काफी दिनों तक किया करती थी। एक व्यक्ति ने फांसी चढ़ते हुए एक व्यक्ति को देखा और उसी तरह उसके बदन में ऐंठन होने लगी और अंत में वह मिर्गी का मरीज बन गया। रणक्षेत्र में अपूर्व बहादुरी दिखाने वाले वीरों के करिश्मे अनुकरण मात्र ही हैं। इसलिए यह कहावत सत्य है कि खून-खून को पुकारता है।

प्रोत्साहन एक सामूहिक अनुकरण है, संक्रामक बीमारी है। हंसी खुशी, रोग दुःख आदि भी इसी प्रकार की संक्रामक बीमारी है। सम्मोहन में भी सम्मोहक के सोच, विचार और भाव-भंगिमा सम्मोहित व्यक्ति के अपने सोच-विचार और भाव-भंगिमा बन जाते हैं। सम्मोहन हमारी पांचों शक्तियों का अत्यधिक महत्त्व होता

है। इसलिए उन्हें विकसित करने के लिए तांत्रिक विधियों का अभ्यास एक सम्मोहक के लिए आवश्यक हो जाता है। विचार प्रत्यारोपण (**Suggestion**) एक अनुकरण करने की ही क्रिया है। नैनसी सम्प्रदाय के डॉ. चारकोट और लूयस का कहना था कि सम्मोहित व्यक्ति की मानसिक विकृति प्रथम स्तर पर की जाती है या उसकी मानसिक विकृति हो जाती है। दूसरे स्तर पर विचार और व्यक्तिगत चुम्बकीयता एक हो जाया करती है और व्यक्ति पर प्रभाव डालते हैं। अंत में उसमें सम्मोहक कल्पनाशीलता और सम्मोहित व्यक्ति की वास्तविकता एक जैसी हो जाती है और सम्मोहन में प्रभाव डालती है।

सम्मोहन द्वारा चिकित्सा के लिए पहले रोगी में उत्कंठा, लालसा और उत्सुकता पैदा करना जरूरी होता है। इसके द्वारा उसकी कल्पनाशीलता को उकसाया जाता है और उसकी शारीरिक आवश्यकता महसूस कराई जाती है। यह उत्सुकता और कल्पनाशीलता ही किसी खास पेटेण्ट दवा जैसे-एनासीन, एनालजीन आदि को खाने को व्यक्ति दर्द से कराहते हुए मांगता है जबकि उसे पता होता है कि ये दवाएं क्षणिक फायदा ही पहुंचाती हैं।

तंत्र ने स्पष्ट घोषणा की है कि मनुष्य का झुकाव दूसरों के विचारों, तार्किक परिणामों और बातों पर विश्वास करने का होता है और बिना सोचे समझे उस पर विश्वास कर लेता है और उसे मान लेता है। किसी व्यक्ति पर किसी वस्तु को पाने की सम्भावना का निश्चित प्रभाव उसके मन और शरीर पर पड़ता है। हर व्यक्ति के जीवन में विश्वसनीयता और सम्भावना का प्रभाव अधिक होता है। मनुष्य का एक सामाजिक प्राणी होने के पीछे आपस में बातचीत करने की चाह तथा एक-दूसरे को प्रभावित करने या होने की लालसा और स्वाभाविक आवश्यकता ही है। हर सामान्य और बुद्धिमान व्यक्ति के मन में कुछ खाली जगह होती है जिसमें उस पर प्रभाव डालने की बात स्वाभाविक रूप से घुस जाती है। ऐसे ख्याति प्राप्त धार्मिक नेता, कूटनीतिज्ञ और राजनेता हर देश और समाज में मौजूद हुए हैं और आज भी हैं, जो मस्तिष्क के इस खालीपन का पता लगाकर आम लोगों पर हावी हो गए हैं।

इसी प्रकार हर मनुष्य में बिना पूरी तरह छान-बीन किए ही दूसरों की बातों पर विश्वास और भरोसा करने का स्वाभाविक गुण होता है। हमारी इन्द्रियां इस बात का सबूत हैं कि प्रायः हम देखी-सुनी बातों पर ही विश्वास कर अधिक फंसते हैं।

इसी प्रकार हर व्यक्ति इस बात की कल्पना से अधिक प्रभावित होता है कि कुछ समय में ही उसके मन की मुराद पूरी हो जाएगी, उसे मनचाही चीज मिल जाएगी। इस तरह घटनाएं रोज-रोज हमारे जीवन में घटती रहती हैं। अनिद्रा के रोगी किसी विश्वसनीय चिकित्सक द्वारा नमक का कैपसूल दिए जाने पर भी अच्छी नींद में सो जाते हैं। जो वास्तव में वह नींद की दवा नहीं होती। क्योंकि वे ऐसी सम्भावना करते हैं। किसी चीज की सम्भावना और उसे चाहने में बहुत फर्क होता है। अनिद्रा के रोगी में नींद की चाहत होती है लेकिन उसकी सम्भावना नहीं

होती। इसलिए वह सो नहीं पाता। सम्भावनाएं व्यक्ति को उस चीज को प्रत्यक्ष प्रतिविम्बित कराती हैं और व्यक्ति में आशा और विश्वास को जगाती हैं इसलिए वह नकली दवा खाकर भी सो जाता है। ऑपरेशन के वक्त चाकू लगने से पहले ही ऑपरेशन टेबुल पर ऑपरेशन के वक्त होने वाले दर्द की सम्भावना से ही दम तोड़ देता है। इस प्रकार हमारी कल्पनाशक्ति भावनाशक्ति के कारण उत्तेजित होकर बौद्धिकशक्ति हमारे विचार की स्वाभाविक अभिव्यक्ति के लिए, ऐसी मानसिक संवेदना को उत्पन्न कर देती है जो वास्तविक नहीं होती और व्यक्ति की मृत्यु का कारण या निरोग होने का कारण बन जाती है। सम्मोहन चाहे स्वसम्मोहन हो या आत्मसम्मोहन, उसके व्यवहार में आने वाली विधियां एक जैसी ही हैं।

व्यक्तिगत चुम्बकीयता, भौतिक चुम्बकीयता और उसकी प्रयोग विधि–

चुम्बकीय विशेषज्ञ इस वात को मानते हैं कि व्यक्तिगत चुम्बकीयता चिकित्सा अवश्य विकसित होनी चाहिए जो जन्मजात प्रकृति द्वारा विरासत में उसे मिली है। यह कभी-कभी दो व्यक्ति के आपस में उपजी सहानुभूति के रूप में प्रकट होता है जो क्षणिक होता है कभी-कभी इसका प्रभाव कुछ दिनों तक रहता है जिसे व्यक्तिगत आकर्षण कहा जाता है और कभी-कभी इसका प्रभाव जीवन भर बना रहता है, जिसे प्रेम कहते हैं। चुम्बकीयशक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति के हमदर्दी को आकर्षण में और आकर्षण को प्यार में बदला जा सकता है।

चुम्वक पत्थर के साथ अगर इसकी तुलना करें तो बहुत अधिक आपस में समानता हम पाएंगे। चुम्बक पत्थर का एक छोर दक्षिणी ध्रुव होता है और दूसरा छोर उत्तरी ध्रुव। चुम्बक का उत्तरी और दक्षिणी ध्रुवीय किनारा एक-दूसरे को आकृष्ट करता है और दो दक्षिण ध्रुवीय किनारा एक-दूसरे को दूर हटाता है। यह उनके आपसी गुणों के आकर्षण विकर्षण की व्याख्या है। विकर्षण की स्थिति में दो-एक ही ध्रुवीय किनारे उल्टी दिशा में काम करते हैं। इस प्रकार व्यक्तिगत चुम्बकीयता रोगी के आवेग-संवेग को निकाल बाहर करता है या स्थानान्तरण कर देता है। इसलिए व्यक्तिगत चुम्बकीयता व्यक्ति की योग्यता के अनुसार रोगी के आवेग-संवेग की संवेदनशीलता को बढ़ाता-घटाता और सामान्य करता है।

वास्तव में चुम्बक भौतिक और विद्युत दोनों एक जैसा ही है, लेकिन गुण अलग-अलग होते हैं। डॉ. किनेट का कहना है कि व्यक्ति विद्युतीय संवेदनशीलता (Elective Sensitivity) किसी विशेष व्यक्ति से ही प्रभावित है। रोगी पर दवाव देने से उसकी विद्युतीयशक्ति संवेदनशीलता को प्रभावित करती है। इसी प्रकार फूंक मारने, हुंकार भरने से यह शक्ति सम्वेदनशील होती है। बंगाल में फूँक मार-कर बच्चों के विद्युतीय संवेदनशीलता को विकसित करने को विधि हर मां को मालूम है। छूकर सम्मोहित करना रोगी के विद्युतीय संवेदनशीलता को जगाना होता है जिससे रोगी केवल उसी सम्मोहक से प्रभावित होता है। पति-पत्नी का सम्बंध, मां-बेटे का सम्बन्ध विद्युतीय संवेदनशीलता पर आधारित होता है। इसलिए टिकाऊ

भी होता है। हल्का स्पर्श कर या कुछ दूर से मुद्राशक्ति का प्रहार चुम्बकीय शक्ति प्रहार है और रोगी के विशेष संवेदनशील अंगों को दबाकर या घेर देकर मुद्राशक्ति प्रहार विद्युतीयशक्ति प्रहार है। व्यक्ति में संवेदनशीलता लाने, संवेदन-हीनता लाने, रोगों को दूर करने, बच्चों को और पशु-पक्षियों को प्रभावित करने में चुम्बकीयशक्ति के प्रयोग और महत्त्व को आज सारा विश्व कबूल करता है। चुम्बकीयशक्ति के समर्पित अनुयायी और विशेषज्ञ का कहना है कि–

1. व्यक्तिगत चुम्बकीयशक्ति से जानवर, बच्चों और पेड़-पौधों को भी प्रभावित किया जा सकता है।

2. गहरी नींद में सोने के लिए व्यक्तिगत चुम्बकीयता का प्रयोग किया जाना आवश्यक है। तंत्रोपेथी में 'बाबा शैया' नामक एक विशेष तकनीक को विकसित किया गया है।

3. व्यक्तिगत चुम्बकीयशक्ति से, गला से गला मिलाकर, हाथ मिलाकर, या चूम-चाट कर एक-दूसरे को प्रभावित किया जा सकता है।

4. पेड़-पौधों के बढ़ने-फलने और फूलने की गति में भी व्यक्तिगत चुम्बकीयता द्वारा तेजी लाई जा सकती है।

5. व्यक्तिगत चुम्बकीयशक्ति को जल, तेल आदि तरल भौतिक पदार्थों में उसे छूकर और मुद्राशक्ति प्रहार कर प्रवेश कराया जा सकता है।

6. चुम्बकीयशक्ति द्वारा विचारों का आदान-प्रदान किया जा सकता है।

चुम्बकीय मुद्राशक्ति प्रहार की प्रायोगिक विधिः–

चुम्बकीय मुद्राशक्ति का प्रहार करिश्माई जा जादुई तरीके से किया जाता है। तांत्रिक तरीकों और मेस्मर साहब के तरीकों में कोई विशेष फर्क नहीं दिखता लेकिन यहां हम भारतीय तांत्रिक तरीकों का ही वर्णन करेंगे। व्यक्ति को सुखासन में बैठाकर या शवासन में लेटाकर उसे ध्यान से अपनी आंख में देखने के लिए कहना चाहिए। चुम्बकीय विशेषज्ञ की आंखें पत्थर की तरह सख्त, चेहरे पर मुस्कान और दृढ़ इच्छाशक्ति द्वारा सबसे पहले बिना पलक झपकाए आंखों-आंखों में ही स्वागत, सहानुभूति और प्रेम का भाव दिखाना चाहिए। आंखों की भंगिमा अभ्यास से ही आती है।

1. इसके तुरंत बाद अपने बांये हाथ की पांचों अंगुलियां उसके सिर के तालु पर दाहिने हाथ से अभयमुद्रा में प्रहार पहले करना चाहिए। अभयमुद्रा में दाहिने हाथ की अंगुलियां और तलहठी पूरी खुली हुई लेकिन अंगुलियां प्रायः एक-दूसरे से सटी हुई होनी चाहिएं।

इसके बाद हाथ की तलहठी की ओर से पूरे बांह को गोल-गोल घड़ी की उल्टी दिशा में कंपकपाना चाहिए और उसे सिर से पैर की ओर ही एक ही दिशा में चुम्बकीय मुद्राशक्ति प्रहार देना चाहिए।

ऐसा प्रायः एक से 3 मिनट तक करना चाहिए और रोगी को बता देना

चाहिए कि वह उसकी आंखों में केवल देखता है और देखता रहे, कुछ सोचे नहीं। रोगी संमोहन की विमूढ़ावस्था में इसी बीच आ जाएगा। इसके बाद दाहिने हाथ की हथेली से ही उसकी आंखें बन्द कर दें। फिर उसकी आंखें चाहने पर भी नहीं खुलेंगी। रोगी को जगाने के लिए दाहिने हाथ की क़ोहनी को ऊपर कर ठीक उसी प्रकार पूरी बांह को घड़ी की सूई की दिशा में कंपकंपाते हुए पैर से सिर तक एक ही दिशा में चुम्बकीयशक्ति प्रहार करना चाहिए।

व्यक्ति के ऊपर शुभभावना करते हुए इच्छित परिणाम पर ध्यान देकर फूंक मारनी चाहिए और उसके सिर पर बायां हाथ फेरते हुए दाहिने हाथ से उसके ललाट के त्रिकुटी के हिस्से को दबाना या उसके नाक और कान के आगे और पीछे के भागों में भी हल्का दबाव देना चाहिए। इससे भी व्यक्ति 5 मिनट के अन्दर सम्मोहित निद्रा में चला जाता है।

स्वसम्मोहित निद्रा में जाने के लिए व्यक्ति को 5 बार इष्ट प्रणाम कर लेना चाहिए। वह है–अभिनन्दनात्मक प्रणाम, गुरु प्रणाम और षाष्टांग प्रणाम का मिश्रित रूप।

मुद्राशक्ति प्रहार में हथेली को सीधा और खुली अंगुली करके ऊपर से नीचे घुमाने से बाह्य चुम्बकीयशक्ति को देना और नीचे से ऊपर घुमाने से शक्ति स्वयं लेना होता है। उसी प्रकार हथेली को उलटकर पैर से सिर तक घुमाने से बाहरी चुम्बकीयशक्ति देना और सिर से पैर तक घुमाने से उसकी शक्ति को निकालना होता है। उसी प्रकार हाथ को कंपकंपाते हुए हथेली को उलटकर घुमाने से अपनी चुम्बकीयशक्ति देना और सीधा घुमाने से उसकी चुम्बकीयशक्ति के प्रभाव को निकालना होता है। सारा विश्व-ब्रह्माण्ड एक सूक्ष्म तरल पदार्थ से भरा पड़ा है जो ईथर से भी सूक्ष्म है। यह ईथर हवा और पानी की तरह स्पंदन पैदा करता है ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार रोशनी और वायु ईथर में स्पंदन पैदा करती है। यही तरल पदार्थ विश्व में चमत्कारिक घटनाओं का कारण बनता है। इसी स्पंदन के सिद्धान्त पर हेरजियन ने विद्युतीय लहरों की खोज की थी, उसी पर ही बेतार का तार टेलिग्राफी आधारित है। ये तरल द्रव आणुजीवत्, जिसे दैवी अशरीरी मेस्मर ने कहा है क़ि बीच में होता है। हैलर ने अपने सिद्धान्त में माना है कि मनुष्य के स्नायुशक्ति से यह द्रव उत्पादित और रूपान्तरित होता है और इसकी गति उल्टी होती है। नीम की हरी डाल बांस की हरी छड़ी आदि में अपनी चुम्बकीयशक्ति प्रवेश कराकर चिकित्सा करने की परिपाटी आज भी हिन्दुस्तान में है। 1890 में फ्रांस के एक पुजारी ने मैगनेटाजर का अविष्कार करके गणितीय ढंग से यह साबित कर दिया है कि चुम्बकीय प्रभाव एक-दूसरे को बिना सम्पर्क किए ही प्रभावित कर सकते हैं। लोग हजारों वर्ष पहले ही चुम्बकीय प्रभावों से परिचित थे। व्यक्तिगत चुम्बकीयता से भारतीय साधु-संत बहुत पहले से रोग-दुःख दूर किया करते थे। इसके लिए प्रेत-बाधा सिद्धान्त ही प्रचलित था, जिसके आविष्कारक भी गृह-त्यागी तपस्वी-ऋषि-महर्षि ही थे। इसके प्रयोग-स्थलों पर आज भी अनेकों तालाब और मंदिर बने हुए हैं जिसमें आज प्रेतेश्वर, संकटमोचन, पिशाच मोचन, बटुक भैरव,

काल भैरव, आसभैरव आदि स्थल मौजूद हैं।

पौराणिक युग में सम्मोहन और व्यक्तिगत चुम्बकीयता द्वारा प्रेत-बाधा दूर करने और इसके लिए प्रयोग प्रमुख केन्द्र था आज भी यह मान्यता है। अघोर पंथ के प्रवर्तक श्री कीना राम जी ने लोलिक कुण्ड के तालाब को अपनी चुम्बकीयशक्ति से पुरित कर दिया था। और उसमें स्नान करने से सारी मनोकामनाएं पूरी होती हैं। इसी प्रकार की मान्यता दुर्गा कुण्ड, लक्ष्मीकुण्ड आदि तालाबों की भी है और इन तालावों के सम्बन्ध में भी इसी प्रकार की मान्यता है। आज भी लाखों नर-नारी किसी विशेष तिथि या पर्व-त्योहार पर इन स्थानों पर अपनी श्रद्धा और विश्वास के साथ दूर-दूर से आते हैं तथा तालावों में डुवकी लगाकर अपनी मनोकामना को पूरी करते हैं।

चुम्बकीयशक्ति से पूरित व्यक्ति को किसी प्रमुख देवी-देवता के सदृश्य मान लिया जाना, ऐसे व्यक्ति का स्वयं अपरिग्रही होकर अपने नाम और ख्याति की लालसा न रखना तथा "सवै भूमि गोपाल की" के सिद्धान्त पर पलने वाले प्रेत-बाधा के सिद्धान्त को देकर अन्तर्धान हो गए। इसलिए प्रेत-सिद्धान्त के कौन प्रवर्तक थे और मूल में इसका क्या सिद्धान्त था, इस सम्बंध में अधिकारिक रूप से कुछ कह पाना मुश्किल है। 20वीं सदी में श्री पी. आर. सरकार ने अपनी पुस्तक अणुजीवत् (माइक्रोबाइटा) में इस पर कुछ प्रकाश डाला है, जो निम्न प्रकार है।

परम चेतना और परम प्रकृति की तीन धाराएं हैं चेतन, जड़ और अणुजीवत्। इन तीनों धाराओं का अपना-अपना स्वतंत्र अस्तित्व है। अणुजीवत् की प्राकृतिक धारा को ही ऋषियों द्वारा प्रचारित-प्रसारित प्रेत-सिद्धांत की व्याख्या करना उपयुक्त लगता है। इस सिद्धान्त के अनुसार अणुजीवत् सारे कृमी जगत् चाहे वह सूक्ष्म हों या अतिसूक्ष्म या सूक्ष्मातिसूक्ष्म, सभी अणुजीवत् हैं। सूक्ष्म अणुजीवत् पंचभूत, हवा, पानी, वातावरण आदि से फैलते हैं इसलिए हैजा, प्लेग आदि बीमारियों के कृमी को मारने की दवाओं का छिड़काव और सफाई आवश्यक हो जाती है। अतिसूक्ष्म अणुजीवत् में वे कृमी आते हैं जिन्हें सूक्ष्मयंत्रों से ही देखा जा सकता है, जैसे मियादी बुखार, पीलिया रोग आदि के कृमी। ये पांच इन्द्रियों स्पर्श, देखने, सूंघने, चखने आदि से फैलते हैं। ये संक्रामक प्रकार के होते हैं। सूक्ष्मातिसूक्ष्म श्रेणी के अणुजीवत् को हम न देख सकते हैं और न उनके प्रभाव को महसूस ही कर सकते हैं। उसे अतिन्द्रिय व्यक्ति अपनी शक्ति से ही जान सकते हैं ऐसे ही अणुजीवत् को ऋषियों ने प्रेतयोनि कहा था। जिसे यक्ष, किन्नर, गंधर्व, विदेहलीन विद्याधर सिद्ध आदि सात श्रेणी का बताया था। ये व्यक्ति के विचार के माध्यम से फैलते हैं पत्थर जैसे कठोर वस्तु को पारकर आ-जा सकते हैं। ये लाखों अणुजीवत् मिलकर कार्वन का सृजन करते हैं जिसे जीवन का स्रोत माना जाता है। और ईथर का निर्माण करते हैं। जो अतिन्द्रिय ज्ञान और ध्यान का माध्यम बन ब्रह्माण्ड में छाया रहता है। ये अणुजीवत् मित्रवत् और शत्रुवत् दोनों होते हैं।

शत्रुवत्, कष्टकारक और भयोत्पादक अणुजीवत् को दूर भगाने के लिए पूजा-पाठ, शुभभावनात्मक स्तुति, सुगंधात्मक हवन, सुप्रकाशात्मक धूप-दीप और सुपरिवेशात्मक

आत्मीय और स्वजनों का संगम प्रत्येक व्यक्ति और प्रत्येक परिवार में आवश्यक माना गया है। आज इस युग में भी प्रत्येक भारतीय अपने जीवन में थोड़ा-बहुत पालन तो करता ही है। लेकिन भारतीय नारियां अवश्य ही इस परम्परा का झंडा बरदार बनी हुई हैं। शायद इसलिए कि एक दिन अवश्य ही हमारे ऋषियों की अमरवाणी भविष्य के वैज्ञानिक उपकरणों के सामने पूरी तरह सत्य निकले।

ये मित्रवत् अणुजीवत् ही आध्यात्मिकता के उपासकों को स्वस्थ, सफल, आकर्षक और आह्लादित व्यक्तित्वत् प्रदान करते हैं। ऋषि, महर्षि महाकौल और योगेश्वर के पद पर बैठाते हैं और शत्रुवत् अणुजीवत् हमें दीन, हीन-मलीन और रोगी बनाकर हमें प्रेत-बाधा के शिकार बनाते हैं। इस प्रकार सभी रोगी प्रेत-बाधा के ही शिकार होते हैं। आस्था (विश्वास), भक्ति समर्पण और प्रेत-बाधा से मुक्त होने की अटूट प्रेरणा (शुभभावना सकारात्मक विचार हमें प्रेत बाधा रूपी शारीरिक और मानसिक बीमारी से छुटकारा मिल सकता है। हमारे सकारात्मक विचारों का ही प्रभाव घुमा-फिराकर हमारे ऊपर प्रभाव डालता है। इस सकारात्मक विचार को सम्मोहन, आत्म सम्मोहन, व्यक्तिगत चुम्बकीयता और प्राणिकशक्ति के द्वारा रोगी में डालकर उसके रोग को दूर किया जाता है।)

भारत की तरह ही चीन, जापान आदि दक्षिणी-पूर्वी एशिया में चुम्वकीयशक्ति पर विश्वास था और रोग दूर करने के लिए इसका प्रयोग किया जाता था। 13वीं सदी में अल्वार्ट और पारसेलस वान हेलमूट तथा फादर क्रिस भी इस विधि को प्रयोग में लाते थे। वियाना के एक्स जेजूट हेल 18वीं सदी में एक भविष्यवक्ता के रूप में अपनी चुम्वकीयशक्ति का प्रयोग किया करते थे। इन्हीं से मेस्मर ने चुम्बकीयशक्ति के सम्बन्ध में सुना और जाना था और उसका प्रथम प्रयोग किया था।

चुम्बकीयता के सम्वंध में वैज्ञानिक खोज करने का श्रेय निश्चय ही आस्ट्रेलियन डॉक्टर श्री वैरॉन रिचेनवैच को दिया जा सकता है, जिसने अपने जीवन के 30 वर्ष कीमती समय को लगाया था। इसने अपनी सम्पत्ति को भी स्वाहा कर दिया था। 845 ई० के बाद यह सिद्धान्त प्रकाश में आया जिसे 'ओ डी' सिद्धान्त कहते हैं।

व्यक्ति में अपने ध्रुवीय छोरों को ध्रुवीय दिशा में रखने की चुम्बकीयशक्ति होती है। पशु-पक्षी, फल-फूल और सब्जियां, स्फटिक जैसी कड़ी वस्तु और चुम्बक के अणु निश्चित दिशा में यथावत् बने रहते हैं और ये वातावरण पर विद्युतीय द्रव की तरह प्रभाव डालते हैं इसके विपरीत गुण मनुष्य के शरीर में होता है। उसमें चुम्वकीय और विद्युतीय द्रव जितना होता है उसी मात्रा में उससे बाहर भी निकलता है। व्यक्ति की हर शारीरिक क्रिया को उन्होंने रासायनिक यांत्रिकी विद्युतीय और चुम्बकीय बताया है। व्यक्ति का हर व्यवहार विभिन्न तत्त्वों के स्पंदन का रूपान्तरित रूप है। इसीलिए उन्होंने ओ. डी नाम दिया। इसकी व्याख्या में उन्होंने कहा कि हर व्यक्ति को स्नायु तंत्र में संवेदना को देखने, अनुभव करने और अनुभव कराने का एक विशिष्ट गुण और सामर्थ्य होता है, उसे ही ओ. डी कहते हैं। इसकी

अदला-बदली एक शरीर से दूसरे शरीर में होती रहती है। इसी की वजह से शक्तिशाली कमजोर को, बुद्धिमान कम बुद्धि वालों को, डॉक्टर रोगी को साधु-असाधु को और नेता अपने अनुयायी को प्रभावित करते हैं।

उन्होंने कहा कि मनुष्य के दाहिने भाग की चुम्बकीय शक्ति बाएं भाग की चुम्बकीयशक्ति से भिन्न होती है। ठीक उसी प्रकार मनुष्य के शरीर के आगे के भाग की चुम्बकीयशक्ति पीछे के भाग से भिन्न होती है। इसे उन्होंने विशिष्ट ओ. डी. नाम दिया। ये दो प्रकार की मानवीय चुम्बकीयता एक-दूसरे को प्रभावित किए विना आपस में एक-दूसरे को पार कर जाती हैं या लिपटी-चिपटी रहती हैं। इसे ही इडॉ और पिंगला नाड़ी या चन्द्रमा सूर्य नाड़ी के नाम से तंत्र में जाना जाता है। जव दोनों प्रकार के ओ. डी. द्रव में संतुलन बना रहता है तव ये शक्तियां शारीरिक बनावट, वृद्धि और विकास करके ढांचे को मजवूत करती हैं और आन्तरिक शक्ति को सकारात्मक दिशा में प्रभावित करती हैं और व्यक्ति में हर तरह की संवेदनशीलता के लक्षण दिखाई पड़ने लगते हैं। उनका अंसतुलन ही हमारे रोग और दुःख का कारण है। ऐसी स्थिति में व्यक्ति खिंचाव, लकवा, अनिद्रा, निद्राचरण, मिर्गी और पागलपन का शिकार बन जाता है।

इन शक्तियों को संतुलित रखने के लिए प्राणायाम का अभ्यास आवश्यक है। जैनियों का प्रेक्षा प्राणायाम बुद्धिस्टों का विपसना और हिन्दु तांत्रिकों का ध्यानानन्द प्राणयाम है। तीनों पद्धतियों की एकरूपता यह है कि विना श्वास-प्रश्वास को व्यतिक्रम किए उसे स्वाभाविक रूप में देखते रहना अपने आप इस क्रिया से श्वांस की गति प्राकृतिक दशा में संतुलित हो जाती है और चुम्बकीय और विद्युत शक्तियां शरीर में भर आती हैं इसे बाबा शैया में लेट-कर करना अधिक उपयुक्त होता है जिसे मैंने स्वयं विकसित किया है।

शरीर को ढीला कर दाहिनी करवट लेट जाएं। दाहिने पैर को सीधा प्रसारित कर बाएं पैर के टखने को दाहिने पैर के ठेहुने पर लुढ़का दें और बाएं पैर के ठेहुने को जमीन पर सटा दें उसी प्रकार बाएं हाथ को कमर पर लुढ़का दें और दाहिने हाथ के अंगूठे से अपने ललाट को स्पर्श करने दें। इसके लिए सिर के नीचे एक तकिया लगा सकते हैं। इसके बाद अपने श्वांस-प्रश्वास को देखते रहें त्रिकुटी में एक उजली–चमकीली वस्तु को मानसिक दृष्टि से देखने का प्रयत्न करें। इससे जल्द नींद भी आ जाएगी, आप स्वसम्मोहित भी हो जाएंगे और चुम्बकीय और विद्युतीय शक्तियां भरकर सुबह तक तरो-ताजा और उत्साह और उमंग भरा हुआ आप अपने को पाएंगे। रोगी व्यक्ति पर, ऐसी ही हालत में झाड़-फूंक अभिमंत्रित जल, मृत्युंजय मुद्रा शक्ति प्रहार आदि से अपनी विद्युतीय और चुम्बकीयशक्ति का प्रभाव डालकर, रोगों को दूर किया जा सकता है।

'ओ. डी.' का मनुष्य शरीर में बनना कुछ रासायनिक और कुछ यांत्रिक क्रियाएं हैं। आसन, मुद्रा, आंखों की भाव-भंगिमा यांत्रिक क्रियाएं हैं और ध्यानानन्द प्राणायाम रासायनिक क्रिया। इसलिए इसका अभ्यास दिनचर्या में चिकित्सक को सम्मिलित कर लेना चाहिए। इस सन्दर्भ में अपनी शारीरिक क्रिया को भी ले सकते हैं।

रक्तसंचार क्रिया समान ओ. डी. के घर्षण से होती है और चुम्वक दक्षिण छोर की तरह इसका प्रभाव हमारे स्नायुतंत्र पर पड़ता है। ओ. डी. सिद्धान्त के अनुसार सिर और नाभि से ऊपर दक्षिणी ध्रुवीय छोर और नाभि और कमर से नीचे दक्षिण छोर है। हमारी श्वांस-प्रश्वांस क्रिया, पाचन क्रिया ग्रन्थिस्राव क्रिया शारीरिक रासायनिक क्रिया है जो नकरात्मक ओ. डी. पैदा करता है। हमारा मेरुदण्ड और मस्तिष्क इसके उत्पादन का केन्द्र है। ओ. डी. की गति, जिसे चुम्वकीय लहर कहते हैं मुख्य रूप से मस्तिष्क से प्रभावित होता है स्नायुतन्त्रों के माध्यम से पूरे शरीर में फैल जाता है और अंग-प्रत्यंग में फैल जाता है और अपना प्रभाव दिखा कर वायु मण्डल में मिल जाता है। केवल अपनी छाया व्यक्ति पर छोड़ जाता है। चुम्बकीय मुद्राशक्ति प्रहार में यही क्रिया होती है और रोगी को प्रभावित कर उसके रोग को दूर करती है। यह ओ. डी ही अन्तर्त्राटक या कुछ देर अंधेरे में रहने के वाद चमकीले बिम्ब के रूप में अधिक संवेदनशील व्यक्ति को दिखता है। इस विधि के चिकित्सक का सामान्य शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य, स्थान, समय और दिन, और रोग के नजदीक खड़े या बैठे लोगों के उपस्थिति और प्रयोगकर्ता के व्यक्तित्व के कारण भी परिणाम विरोधाभास आ सकता है। प्रयोग से यह भी पता चला है कि दो व्यक्तियों को पीठ की तरफ से सटाकर अगर बैठा दिया जाए और दोनों की पीठ में एक चुम्ब्रक डाल दिया जाए तो एक-दूसरे के रोग और गुण आपस में अदला-बदली हो जाया करते हैं।

सम्मोहन में विचार प्रत्यारोपण विधि

सम्मोहन में अस्थायी रूप से एक ही इच्छा को दूसरे व्यक्ति के मस्तिष्क में पूर्ण रूप से मानसिक प्रक्रिया द्वारा आरोपित करने की विधि को विचार प्रत्यारोपण या संसूचन (Suggestion) विधि कहते हैं। एक नौकर से आदेश पालन कराना या एक प्रेमी अपनी प्रेमिका या प्रेमिका अपने प्रेमी की इच्छा को विचार प्रत्यारोपण या संसूचन विधि से एक-दूसरे के मस्तिष्क में अपना विचार प्रत्यारोपित करते हैं। और फिर एक की इच्छा दूसरे की इच्छा बन जाती है या एक की पसंद-नापसंद दूसरे की पसंद-नापसंद बन जाती है। एक पिता-माता अपने बेटे-बेटियों को विचार प्रत्यारोपण विधि से ही सुधार लेता है और उसे इच्छा के अनुसार ढाल पाता है। हम आज जो हैं विचार प्रत्यारोपित हैं। यह संसार सब कुछ विचार· प्रत्यारोपित है। इसी प्रकार कोई पुस्तक, दुर्घटना का भयानक दृश्य, कोई प्रहसन या ड्रामा किसी विशेष प्रकार का खाद्य प्रदार्थ, संगीत आदि भौतिक प्रदार्थ भी प्रचार के माध्यम से हमारे मस्तिष्क में भौतिक वस्तुओं के प्रभाव डॉलने का कारण बनते हैं।

वही अधिकारी, राजनेता या धार्मिक नेता, जिसकी इच्छाशक्ति विकसित होती है, वही अपनी इच्छाओं को दूसरे के मस्तिष्क में प्रत्यारोपित कर दिया करते हैं और हम अंधविश्वासी बनकर लकीर का फकीर बन जाते हैं। डॉ. लूयस का कहना है कि विभिन्न धार्मिक समप्रदायों और राजनीतिक पार्टियों का जन्म उनके नेता द्वारा अपने विचारों का लोगों के मस्तिष्क में आरोपण से हुआ। एक महान व्यक्ति को महान सम्मोहक, चुम्बकीय व्यक्तित्व, विचार शक्ति आरोपक और प्राणशक्ति से लबालब हस्ती ही कहा जा सकता है। ऐसे लोग ही अपने पीछे भीड़ इकट्ठी कर सकते हैं। सांसद और विधायक बन सकते हैं। क्योंकि अपने आदेश का पालन करा सकते हैं। ऐसे व्यक्ति अपने विचारों को जाने-अनजाने दूसरों के मस्तिष्क में आरोपित कर देता है, उसे अपना आदेश मानने के लिए मजबूर कर देता है। ऐसे व्यक्ति की इच्छाशक्ति या प्राणशक्ति बहुत अधिक और मजबूत होती है। ऐसे व्यक्ति के व्याख्यान को सुनकर लोग उत्साह और उमंग से भर जाते हैं।

वास्तव में हम सभी स्वाभाविक आज्ञापालक हैं। प्रतिशोध का गुण तो कुछ विशिष्ट व्यक्तियों में ही पाया जाता है। इसे ही वैज्ञानिक व्यक्ति की सकारात्मक सीमा (POSITIVE LIMITATION) कहते हैं। स्वसम्मोहन में इसे शुभभावना और मंत्र कहते हैं। तंत्र के मंत्रों की शक्ति व्यक्ति के इस स्वाभाविक गुण के कारण ही फलीभूत होती है। वैसे मंत्रों के बारबार पुनरावृति करने से वे विचार हमारे मस्तिष्क में आरोपित हो जाते हैं और हमारी भावना शक्ति बन जाती है

और हमारी क्रियाएं भी उसी के अनुरूप होने लगती हैं। सम्मोहित विचार प्रत्यारोपण या संसूचन के तीन स्तर होते हैं।

1. सम्मोहित नींद लाने के लिए विचार प्रत्यारोपण। इसे हम अनुराग विचार प्रत्यारोपण भी कह सकते हैं।

2. सम्मोहनोपरान्त विचार प्रत्यारोपण। इसे हम रागानुराग संसूचन भी कह सकते हैं, जो सम्मोहित व्यक्ति नींद से जगने के बाद बड़ी ईमानदारी से पालन करता है।

3. स्व-विचार प्रत्यारोपण, जिसमें सम्मोहक द्वारा दिया गया संसूचन (Suggestion) को व्यक्ति स्वयं अपने मस्तिष्क में अचेतन तथा प्रत्यारोपित कर लेता है। उसे दुहराता रहता है। डॉ. वेरनहम तो विचार प्रत्यारोपण को ही सम्मोहन समझते थे और इसे ही सम्मोहन का प्रमुख साधन मानते थे। सम्मोहित अवस्था में संवेदनशीलता बहुत अधिक होती है और विचार प्रत्यारोपण के लिए यह उपयुक्त होता है। विचार प्रत्यारोपण में रोग निवारण की क्षमता सम्मोहन नींद से उठने के बाद भी वनी रहती है।

सच पूछा जाए तो विचार प्रत्यारोपण (Suggestion) में रोगी की कल्पना शक्ति (कल्पनाशीलता), भावनाशक्ति (विश्वसनीयता), बौद्धिकशक्ति (सम्भावना) क्रियाशक्ति (मानसिकसक्रियता) और मनशक्ति (रोग से मुक्ति की इच्छा) का बहुत बड़ा हाथ होता है। स्वसम्मोहन और पर-सम्मोहन दोनों में व्यक्ति की यही शक्तियां काम करती हैं। पौराणिक युग से ही भारत में विचार प्रत्यारोपण या रचनात्मक मानसिक प्रभाव की क्रिया से साधु, संन्यासी, योगी मुनि परिचित थे, इसे अपने प्रयोग में लाते थे। यह बात दूसरी है कि आधुनिक एलोपैथिक चिकित्सालयों के चकचौंध और डॉक्टरों के नाज-नखरों से हम प्रभावित होकर इस अद्वितीय चिकित्सीय कला को भूलते जा रहे थे। भला हो पाश्चात्य मुल्कों का पारम्परिक विधियों के प्रति जागरूक होने और उसमें दिलचस्पी लेने की मानसिकता का।

आज भी भारतीय गांवों में 80% लोगों की आस्था इस 'मानसिक प्रभाव' या 'विचार प्रत्यारोपण' विधि के प्रति बनी हुई है और ऐसे साधु, संन्यासी, योगी, और तांत्रिक को श्रद्धा की नजर से देखा जाता है। आज भी शक्तिस्थल मंदिरशक्ति सम्पादित स्थल विशिष्ट तालाब-कुण्ड, और पोखरा तथा देव-स्थल और समाधि और मजार पर असंख्य नर-नारी और पढ़े-लिखे और अनपढ़ की भीड़ इसी श्रद्धा और विश्वास की देन है।

इसी श्रद्धा और विश्वास के साथ भारतीय मंदिरों में विभिन्न पर्व-त्योहारों पर रात्रि-जागरण की परम्परा आज भी बरकरार है। पुराने जमाने में इजिप्ट, ग्रीक और रोम के मन्दिरों में भी यह परम्परा प्रचलित थी। रोगी मंदिरों में रात को सोया करते थे और रोगी स्वप्न में ही अपने विश्वास, सम्भावना और कल्पना के अनुसार अपने देवता द्वारा विचार प्रत्यारोपण या रोग मुक्ति मानसिक प्रभाव को पा लिया करते थे। भारत में श्रद्धा और विश्वास को भवानी और शंकर का रूप दिया गया है–'भवानी शंकरौ वन्दे श्रद्धा विश्वास रूपिणौ।' यह हमें हजारों साधु संन्यासियों और पीर-फकीरों के पैर छूने और आशीर्वाद लेने के लिए बाध्य करता है। इसी के चलते विश्व में अनेकों सम्प्रदाय, मत-मतान्तर पैदा हुए, फले-फूले

और आज भी फल-फूल रहे हैं। यह है श्रद्धा और विश्वास का सकारात्मक पक्ष।

इसका नकारात्मक पक्ष भी कम खतरनाक नहीं है। इसी श्रद्धा और विश्वास की देन है धार्मिक उन्माद और साम्प्रदायिक झगड़े। इसलिए अधिक अंध श्रद्धा और विश्वास भी अधिक घातक और आत्मघाती हो सकता है। इस श्रद्धा और विश्वास को चाहे आप आध्यात्मिक प्रभाव कह लें, जीने की शक्ति कह लें, अदृश्यशक्ति या प्राणिक शक्ति कह लें, यह वैज्ञानिक दृष्टि से पूर्ण प्रमाणित हमारी इच्छाशक्ति है जिसकी अभिव्यक्ति हमारी मनशक्ति, कल्पना शक्ति, बौद्धिकशक्ति, भावना शक्ति और क्रिया शक्ति में प्रकाशित होती और यही हमें रोगी बनाती है और यही हमें निरोग भी करती है। स्वसम्मोहन, व्यक्तिगत चुम्बकीयता, विचार प्रत्यारोपण और प्राणि शक्ति की चिकित्सीय विधियां इस शक्ति को ही जगाने के लिए हैं।

वे चिकित्सक जो केवल विचार प्रत्यारोपण विधि से रोगियों का इलाज करते हैं, वे निश्चय ही आधुनिक मान्यता प्राप्त रोगियों से कहीं अधिक रोगियों को स्वस्थ करते हैं। मेस्मर और पेशेकार ने पाश्चात्य मुल्कों में ऐसा ही करके दिखाया था और आज भी सम्मोहन व्यक्तिगत चुम्बकीयता, विचार प्रत्यारोपण (Suggestion) तथा प्राणिक चिकित्सा से इलाज करने वाले अपने पेशा में मानव समाज के लिए अधिक उपयोगी साबित हो रहे हैं। विचार प्रत्यारोपण की वैज्ञानिक खोज का श्रेय डॉ. लिब्यूल्ट को जाता है तथा व्यक्तिगत चुम्बकीयता को रोशनी में वैज्ञानिक दृष्टि से लाने का अग्रणी मेस्मरिटो को माना जाना चाहिए। इसी प्रकार प्राणिक चिकित्सा के अग्रणि के रूप में इंग्लैण्ड के साइकिकरिसर्च सोसाइटी को हमें मान्यता देनी चाहिए।

सच पूछा जाए तो सम्मोहन, व्यक्तिगत चुम्बकीयता, विचार प्रत्यारोपण और प्राणिक चिकित्सा पद्धतियों में कोई सीमा रेखा नहीं खींची जा सकती। ये चारों पद्धतियां अपने आप में पूर्ण स्वतंत्र नहीं बल्कि एक-दूसरे से सम्बंन्धित आश्रित और एक दूसरे में समन्वित हैं। एक चिकित्सक को अपने पेशा में सफल होने के लिए इन चारों विधियों को अच्छी तरह जान और समझ लेना चाहिए। ऐसा करके वह अपने पेशा के प्रति ईमानदार तो होगा ही, आम लोगों का भी बहुत भला कर सकेगा। इस पुस्तक के लिखने के पीछे मेरा यही उदेश्य रहा है।

उपर्युक्त चारों विधियों के प्रयोग के लिए डॉक्टर या चिकित्सक को औषधि विज्ञान, शरीर विज्ञान और मनोविज्ञान का ज्ञान होना आवश्यक है। क्योंकि ऐसे ही चिकित्सक, रोगी के रोगों का सही निदान कर सकेगा और उचित विधि अपना कर उसे रोग से छुटकारा दिला सकेगा। ऐसी स्थिति में इस दिशा में, जिम्मेदार प्रयोग कर्ताओं का और सरकार का कर्तव्य बनता है कि अधिक-से-अधिक प्रयोग और इसके लिए अधिक-से-अधिक सुविधा मुहैया करायी जाय, जिससे वे इन चारों विधियों से सम्बंधित अधिक-से-अधिक वैज्ञानिक तथ्यों को ढूंढ़ निकाल सकें और आम लोग इस पेशा में घुसे ठगों से सावधान रह सकें। इन विधियों से मानसिक उलझनों को सुलझाया जा सकता है, जिससे उसके शारीरिक लक्षण दूर हो सकें।

मानसिक उलझनें या स्नायुविक व्यक्तिक्रम की ही देन है, कान के पास का एग्जिमा, गाल का ऐग्जिमा, हाथ और पैर का ऐग्जिमा जिसे आसानी से इन विधियों

द्वारा दूर किया जा सकता है। इसी प्रकार विभिन्न प्रकार के शारीरिक दर्द, खांसी बुखार और रक्तचाप आदि बीमारियों को भी दूर किया जा सकता हैं। दमा, प्रदरोग, मधुमेह में भी ये विधियां अधिक सफल हुई हैं। हमें यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि अधिक देर होने से साधारण रोग भी असाध्य रोग बन जाते हैं। इसलिए, बिना देर किये इन विधियों से व्यक्ति को अपनी चिकित्सा करा लेनी चाहिए। इन विधियों से व्यक्ति के स्नायु में परिवर्तन लाया जा सकता है। यह मानसिक प्रभाव और विचार प्रत्यारोपण की बहुत बड़ी उपलब्धि है।

हमारे सिर के दर्द प्रायः विभ्रमात्मक और काल्पनिक होते हैं लेकिन रोगी द्वारा उनका अनुभव काल्पनिक नहीं बल्कि वास्तविक होता है। साधन भले ही काल्पनिक हो लेकिन अनुभव वास्तविक होता है। कभी-कभी तो दर्द का अनुभव कांटा चुभने और सिर में हथौड़ा मारने के दर्द के समान होता है और उसे आसानी से सम्मोहन, व्यक्तिगत चुम्बकीयता, विचार प्रत्यारोपण और प्राणिक चिकित्सा से किया जा सकता है। शारीरिक रोग मानसिक प्रभाव से ही होते हैं और उसका इलाज भी मानसिक और सइकिकल या अध्यात्मिक होना चाहिए। हर रोग का उत्पादन स्थान हमारा मन है यह मानकर ही हमें इन विधियों की चिकित्सा करनी होगी। आज के एलोपैथिक डॉक्टर भी जो विचार प्रत्यारोपण और व्यक्तिगत चुम्बकीयता तथा प्राणिक चिकित्सा विधि को साथ-साथ लेकर चलते हैं। वे ही अधिक सफल होते हैं।

"डॉक्टर लूथस ने अपने प्रयोगों के आधार पर यह घोषणा कर डाली है कि व्यक्ति में अपनी सभी इन्द्रियों और बुद्धि का विकास सम्मोहित अचेतावस्था (ट्रान्स) में उस बिन्दु तक अच्छी तरह विकसित हो जाता है और उसके चेहरे पर जो भाव आते-जाते हैं, वह उतनी सूक्ष्मता से उस संवेग की अनुभूति चेतन अवस्था में न कर पाता और न उसकी अनुभूति ही हो पाती है।"

उन्होंने आगे कहा है कि "मैं इस नतीजे पर पहुंचा हूं कि कुछ विशिष्ट औषधि और विषय किसी नली में बंद करके व्यक्ति की त्वचा पर रखने या उससे कुछ इंच की दूरी पर या सटाकर रखने पर भी उसका प्रभाव ठीक उसी प्रकार होता है जैसा कि उसे खाने के बाद होता है।"

शल्य चिकित्सा में पीढ़ी हस्तान्तरण (एनेशथिशिया) के रूप में सम्मोहन और व्यक्तिगत चुम्बकीयता और विचार प्रत्यारोपण का प्रयोग अब आम बात हो गया है। 1846 में ही डॉ. इसडेले ने चुम्बकीय प्रभावित दर्द निवारक अवस्था में शल्य चिकित्सा कलकत्ता के अस्पताल में किया था। इसी प्रकार शिक्षण प्रशिक्षण के क्षेत्र में भी सम्मोहन व्यक्तिगत चुम्बकीयता, विचार प्रत्यारोण और प्राणिक ऊर्जा प्रक्षेपण विधि का प्रयोग किया जा सकता है। भारतीय आश्रम व्यवस्था में ये विधियां प्रचलित थीं और आश्रम व्यवस्था के गुण दोषों से हम भारतीय अच्छी तरह से परिचित हैं। भारतीय आश्रम व्यवस्था एक आदर्श व्यवस्था थी जो इन्हीं शिक्षण प्रशिक्षण विधियों पर आधारित थी। वे पूर्णरूप से राज पोषित थी इसलिए भारतीय संस्कृति जैसी स्थायी संस्कृति दे सकी और भारतीयता को बचाए रख सकी।

अगले परिच्छेद में हम भारतीय शक्ति स्कूल की विधियों, उसके प्रभावों और उपयोगिताओं पर प्रकाश डालेंगे।

द्वितीय परिच्छेद

जीवन में तंत्र की भूमिका

तंत्र एक जीवन पद्धति है, जिसका अनुसरण कर भारतीय जीवन के हर क्षेत्र में विश्व के लिए अनुकरणीय बन गये थे और मध्य युग में उसे भुलाकर तथा बचे खुचे रहस्यों को पिटारी में भरकर वर्षों गुलामी, दासता, और अपमान का जीवन बिताते रहे। आज के विज्ञान के हम दिल से अहसानमंद हैं कि उसने अपनी नयी से नयी खोजों और आविष्कारों से तंत्र के प्रमुख अंगों पर प्रकाश डालकर हमें पुनः उस ओर देखने के लिए प्रेरित ही नहीं किया है बल्कि आज के अत्यधिक बहिर्मुखी समाज में व्याप्त मानसिक संघर्ष, तनाव और दबाव से मानव को राहत दिलाने के लिए विभिन्न तांत्रिक विधियों के पुनर्मूल्यांकन और प्रचार-प्रसार के लिए बाध्य किया है। तंत्र, शक्तिसम्पन्न बनाकर हमें स्वस्थ सफल, आकर्षक और आनंदपूर्ण व्यक्तित्व प्रदान करने की सरल, सुगम और सुलभ विधियों को प्रस्तुत करता है।

तंत्र व्यक्ति को, बिन्दु के रूप में पहचान कराता है, जिसके अन्दर सोई हुई शक्ति का भंडार होता है। जैसे-जैसे हम बचपन से भौतिक संसार के सम्पर्क में आते-जाते हैं वैसे-वैसे हममें देखने परखने की सीमा बढ़ती जाती है और साथ-ही-साथ हमारी इच्छाएं भी अनंत होती जाती हैं। इच्छाएं, हमारी असीमित सोई हुई शक्ति में हलचल पैदा करती हैं और इससे हमारे प्रयत्न भी उन असीमित इच्छाओं की पूर्ति के लिए भिन्न दिशाओं में प्रवाहित होने लगते हैं। प्रयत्नों से कुछ छोटी-छोटी इच्छाओं की पूर्ति भी हो जाती है। लेकिन असीमित इच्छाओं के विभिन्न दिशाओं में बंट जाने के कारण वे सीमित विकासहीन और कमजोर पड़ जाती हैं तथा कभी-कभी दिशाहीन हो हमारी अस्वस्थता, असफलता, दीनता, असामाजिकता और दुःख का कारण बन जाती हैं। इसी सोई हुई शक्ति को तंत्र ने चिद्शक्ति कहा है। इसे सबसे पहले अन्तर्मुखी करके ही उपयोगी और कल्याणकारी कर्म का रूप दिया जा सकता है। इसी को तंत्र ने 'शिव' कहा है। भाई-चारे की भावना, सहयोग, प्रेम आदि सात्विक और धनात्मक गुणों को अपने अन्दर विभिन्न तांत्रिक साधना द्वारा विकसित करना शिवत्व को पाना है। क्योंकि बिना इसके, हमारा असीमित बल या सोई हुई शक्ति, जागृत का रूप नहीं ले सकती। यही शिव जब शक्ति रूप में प्रकट होता है तब शक्ति के पांच स्तर सामने आते हैं—इच्छाशक्ति, मनःशक्ति,

बौद्धिकशक्ति, भावनाशक्ति और क्रियाशक्ति। इच्छाशक्ति का विकास तव होता है जब हमारी कोई एक इच्छा संकल्पित हो लक्ष्य का रूप ले लेती है और भाई चारे की भावना, सहयोग, प्रेम आदि सात्विक गुण के चलते इष्ट के रूप में विकसित हो जाती है। सहनशीलता और गुण विवेचन का विकास हममें होने (अहिंसा और सत्य में प्रतिष्ठित होने) से मनःशक्ति, आत्मनियंत्रण, पाने से अधिक करने तथा सादा जीवन और कुछ-न-कुछ बचाने की क्षमता विकसित करने (ब्रह्मचर्य, चोरी न करने और संग्रह न करने की भावना) से बौद्धिकशक्ति, निडरता और कर्मठता, यथार्थ चिन्तन तथा कल्पनाशीलता को विकसित करने (पवित्रता की भावना, संतोष और पढ़ने-लिखने में प्रवीण होने) से भावनाशक्ति और एकाग्रता एवं रचनात्मक क्रियाशीलता (तप और ईश्वर प्रणिधान में प्रतिष्ठित होने) से क्रियाशक्ति का पूर्ण विकास होता है।

जीवन में सफलता प्राप्त करने के लिए इन शक्तियों का समुचित विकास होना बहुत जरूरी है। इसके लिए तंत्र ने विभिन्न विधियां बतायी हैं और आज भी वे विधियां विशिष्ट रूपों में प्रत्येक भारतीय परिवार के धार्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक कार्यों में देखने को मिल जायेंगी। हम तंत्र-मंत्र-यंत्र की वैज्ञानिकता को भुलाकर केवल पूजा, रटने, और बनाने (विशिष्ट अवसर पर किसी अभीष्ट उद्देश्य की प्राप्ति और निवृत्ति के यंत्र बनाने) को क्रिया मात्र समझ बैठे हैं जब कि यह हममें शक्ति-सम्पात्कर जीवन के हर क्षेत्र में सफलता प्राप्त कराने की सरल सुगम और सुलभ विधि प्रस्तुत करता है। स्वास्थ्य, सफल, आकर्षक (रूप) का तालमेल। यह हमारे व्यक्तिगत विभिन्नता के कारण भी बनता है। हमारे चेहरे की मुद्रायें, रेखाएं, बोलने के ढंग, आवाज की मिठास, सोचने-विचारने के ढंग आदि, हमारे चारित्रिक और ओढ़ने पहनने, रंग-रस आदि बाह्य रूप को अभिव्यक्त करता है तथा हमसे मिलने वालों पर स्थायी प्रभाव छोड़ देता है। हमारी चमकीली और साफ-सुथरी आंखें हमारे व्यक्तित्व में चार चांद लगा देती हैं। दूसरों के कामों से हार्दिक दिलचस्पी का लेना, मीठी मुस्कुराहट के साथ नम्र-मीठे शब्दों से मिलने वाले का स्वागत करना, आंखों में आंखें डालकर बातें करना, आसन, मुद्राओं और ध्यान-धारणा का अभ्यास कर रोग मुक्त होना आदि विशिष्ट गुणों को अपने अन्दर विकसित कर अपने व्यक्तित्व में अद्वितीय आकर्षण की विधि, तंत्र के सिवा अन्यत्र पाना सम्भव नहीं।

तंत्र हमारी मानसिक शारीरिक और प्राणिक (सांवेगिक) संयम और नियन्त्रण की सुगम विधियां प्रस्तुत करता है जिसके व्यक्तिगत अभ्यास के बिना आध्यात्मिक विकास और बड़ी सफलता की आश नहीं कर सकते हैं। इससे हम सस्ती प्रशंसा या गुणों का बखान कर किसी के ध्यान को खींचने के स्थान पर किसी के प्रति घृणा का भाव रखने या किसी का कुछ बिगाड़ने से बच जाते हैं और स्वस्थ, सफल, आकर्षक और अह्लादित व्यक्तित्त्व का गुण है क्रिया में रचनात्मकता, हृदय में विशालता का रूप और चरित्र में दृढ़ता का आना। और वह तांत्रिक विधियों से अपनी शक्ति का स्फुरण कराने से होता है। आत्म नियंत्रण विचार नियंत्रण

ही है जिसकी भूमिका जीवन को सफल बनाने में अत्यधिक है जो दृढ़ और प्रभावपूर्ण भाषा में अपनी बातों को व्यक्त करने, दूसरों में दिलचस्पी लेने, समयानुकूल वस्त्र पहनने, अपने में प्रेम, सहयोग, करुणा आदि गुणों को भरने तथा अपनी शक्ति को अन्तर्मुखी बनाने से सम्भव है।

इच्छा, लक्ष्य और इष्ट

किसी काम को प्रारम्भ कोई भी कर सकता है लेकिन केवल दृढ़ इच्छा वाला व्यक्ति ही उसे अंत तक कर पाता है। आज विज्ञान ने यह साबित कर दिया है कि हमारी इच्छाएं अनन्त होती हैं जिनमें अधिकांश अनावश्यक, और भटकाने वाली और कुछ अत्यधिक महत्त्वपूर्ण होती हैं। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक मरे ने इच्छा और उससे दिमाग में उत्पन्न मनोरासायनिक स्वभाव की शक्ति एवं उसकी पूर्ति के लिए सम्बन्धित वातावरण में क्रियात्मक दबाव पर काफी प्रयोग कर, 'इच्छा और दबाव' का सिद्धान्त दिया है। इसके अनुसार भी हमारी इच्छाएं ही हमारे व्यवहार को निर्देशित करती हैं जो शारीरिक और मानसिक संतुष्टि सम्बन्धी होती हैं। ये इच्छाएं देश, काल और पात्र के अनुसार भिन्न-भिन्न होती हैं और बदलती रहती हैं। कभी-कभी इच्छा में भी आपस में द्वंद्व हो जाता है जो हमारे लिए दुःखदायी होता है। हम अपनी बहुत-सी इच्छाओं को जानते भी नहीं हैं जो अनजाने में ही हमारे व्यवहार को प्रभावित करती रहती हैं। ये इच्छाए हमारे मस्तिष्क में मनोरासायनिक स्वभाव की शक्ति पैदा करती हैं जो हमारी इच्छाशक्ति, मनःशक्ति, बौद्धिकशक्ति, भावनाशक्ति और क्रियाशक्ति को क्रियाशील कर संतुष्ट होने का प्रयत्न करती हैं। मनोविश्लेषणवादियों ने इच्छाओं को खुशी और वास्तविकता के सिद्धान्त से संचालित माना है और उसे मूल प्रवृत्तियों से सम्बन्धित किया है। इच्छाएं मानसिक तनाव पैदा करती हैं जिससे छुटकारा पाने के लिए या उसकी पूर्ति के लिए हम कार्य करते हैं और ऐसा करने से हमें आनन्द मिलता है।

कर्टलेविन ने अपने प्रयोगों के आधार पर यह सिद्ध कर दिया है कि इच्छा से जो मानसिक रासायनिक क्रिया होती है उसमें शक्ति, दिशा-निर्देशन और क्रियाशीलता पैदा कर हममें मानसिक शक्ति का संचार करती हैं एवं तत्सम्बन्धी कार्यसम्पन्नता की प्रेरणा देती हैं। तंत्र के अनुसार हमारी चित्तशक्ति, सुशुप्त शक्ति या शारीरिक मानसिक बल में इच्छाओं के उत्पन्न होते ही स्पन्दन होने लगता है। हमारे व्यक्तिगत शक्ति-सागर में लहरें उठने लगती हैं। अंग-अंग फड़कने लगता है। हम प्रायः अपना लक्ष्य निर्धारित न रहने की स्थिति में बेकार की इच्छाओं की पूर्ति के चक्कर में पड़ जाते हैं तथा अस्वस्थ और असफल होते हैं।

विभिन्न इच्छाओं में से किसी एक इच्छा को लक्ष्य बनाना और उसी को अपना निश्चित उद्देश्य मान लेना जीवन में सफल होने के लिए अतिआवश्यक है। बिना लक्ष्य निर्धारित किये हम सफलता की खोज में भटकते रहते हैं। जीवन में लक्ष्य निर्धारित करना मनोवैज्ञानिक अनिवार्यता है। हम जैसा सोचते हैं उसी के अनुकूल

कार्य करते हैं। हमारी सोच हमारी इच्छा के अनुकूल होती है जो अनजाने ही परगत (आउटरसजेशन) और स्वगत (आटोसजेशन) भावनाओं द्वारा हम उसे ग्रहण करते रहते हैं। बचपन से अपने परिवार, पास-पड़ोस, हित मित्र आदि से सीख-जान कर उसे इच्छा का रूप देते रहते हैं। अगर हम बचपन से अब तक की इच्छाओं की एक सूची बनायें तो उसे देखकर स्वयं हम कह उठेंगे–'क्या बचकानी इच्छाएं थीं।' लेकिन ऐसी ही इच्छाओं की पूर्ति के पीछे दुनिया की आधे से अधिक आबादी पागल है और जीवन में अस्वस्थ और असफल होकर शिकायत करती है–हमें मौका नहीं मिला वर्ना हम भी कुछ किये होते। अच्छा खाना-पहनना, रास-रंग में मस्त रहना, दुनिया की सारी सम्पत्ति को अपनी तिजोरी में बन्द करना, किसी को गिराना और किसी को बर्बाद कर देना आदि लक्ष्य नहीं हो सकता।

हमें यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि आकर्षण के नियम के अनुसार जैसे को तैसा प्राप्त होता है। ऋृणात्मक लक्ष्य वाले इस नियम के अनुसार व्यक्ति अपने जैसे लोगों को ही आकृष्ट करता है। दूसरे को गिराने वाले और बर्बाद करने वाले लोग मिल जाते हैं। किसी हत्यारे की स्वाभाविक मृत्यु नहीं, उसकी हत्या ही होती है। इसी सिद्धान्त के अनुसार शराबी के साथ शराबी, जुआरी के साथ जुआरी और भले लोगों के साथ भले लोग आ मिलते हैं। अगर इनके साथ कोई विजातीय आ मिले तो वह भी उसी रंग में रंग जाता है। संसर्ग से दोष और गुण आ जाते हैं। पानी अपने स्तर पर आना चाहता है, उसी प्रकार हम भी अपने स्तर की संगति करना चाहते हैं।

अपने लक्ष्य के चयन में हमें उपर्युक्त कारणों से सावधानी रखने की आवश्यकता पड़ती है। लक्ष्य सदा बड़ा और दूसरों के लिए कल्याणकारी होना चाहिए। इसे ही तंत्र में शिव शक्ति के रूप में व्यक्त किया गया है। हमारी इच्छाएं प्रायः व्यवसाय, स्वास्थ्य, प्रियवस्तु या व्यक्ति की प्राप्ति और उच्च जीवन स्तर से संबंधित होती हैं। जिसमें अर्थ, ज्ञान और शक्ति प्राप्ति किसी-न-किसी रूप में सन्निहित रहती है। तंत्र में इसे ही क्रमशः लक्ष्मी सरस्वती और दुर्गा कहा गया है। हम इनमें से किसी एक को अपना लक्ष्य बना सकते हैं। लेकिन समाज को दरिद्र बनाकर स्वयं ऐश्वर्यशाली बनना, मूर्ख बनाकर स्वयं ज्ञानी बनना या दूसरों को मारकर स्वयं शक्तिशाली बनना, कोई पागल ही ऐसा लक्ष्य बना सकता है। ऐसे लोग ही इस प्रकार के ऋृणात्मक लक्ष्य बनाकर, घूसखोरी, चोरबाजारी, मिलावट आदि का धन्धा करते हुए समाज के शत्रु के रूप में जीवन में रोगी और असफल होकर अंत में सिर धुन-धुन कर मर जाते हैं।

हमारा लक्ष्य होना चाहिए धनात्मक या समाज की सेवा करते हुए उसे समृद्धशाली और विद्वान बनाते हुए स्वयं हम शक्तिशाली, श्रीमान् और ज्ञानी बनें। कोई भी इच्छा लक्ष्य उसी स्थिति में बन सकती है जब आप उसकी प्राप्ति का दृढ़ निश्चय कर लें। इसे तन्त्र में संकल्प या दीक्षा कहा गया है। संकल्प माता-पिता, बड़े भाई, बहन, गुरु एवं समाज के गणमान्य व्यक्ति के सामने या स्वयं भावना द्वारा लेना ठीक होता है। स्वगत भावनाओं द्वारा दृढ़ इच्छा बनाकर उसे लक्ष्य बनाना शुभभावना

कहा गया है। अपने लक्ष्य को छन्दबद्ध कर कागज पर लिख लेना चाहिए और उसे शाम को सोने के पूर्व और सुबह उठने के बाद दस बार दुहराना चाहिए। इसका तुरंत मनोवैज्ञानिक प्रभाव यह होता है कि हमारी सोई हुई शक्तियों का भण्डार अवचेतन मन इससे पूरी तरह प्रभावित हो जाता है। इसमें हमारा लक्ष्य एक साँचे का रूप ले लेता है और हमारे जीवन के सारे अगले कार्यक्रम उसी लक्ष्य के साँचे में ढलकर उद्देश्य प्राप्ति के लिए स्वयमेव संचालित होते रहते हैं। इस रीति से अगर हमें लक्ष्य सम्बन्धी कोई बड़ा कार्य करने का शुभावसर नहीं मिल पाता तो छोटे काम को ही अच्छी तरह करके उसे बड़ा कर सकते हैं।

शुभभावना का हमारे अवचेतन मन पर ऐसा आश्चर्यजनक प्रभाव पड़ता है कि हम आत्मसम्मोहित हो जाते हैं और हमारा सारा कार्यकलाप लक्ष्य की ओर मुड़ जाता है। व्यक्तित्व निर्माण की यह अनूठी तांत्रिक पद्धति है, जिसका प्रयोग विश्व के सारे सफल व्यक्तियों ने जाने-अनजाने रूप में किया है। हमारा उद्देश्य निर्माणात्मक, धनात्मक, सात्त्विक और आशावादी होना चाहिए। किसी को शारीरिक, मानसिक और आर्थिक क्षति नहीं हो, यह हमें सदा ध्यान रखना चाहिए। यही समृद्धि, ऐश्वर्य, शान्ति, आनन्द और मुक्ति का मार्ग है।

जो हम बनना चाहते हैं उसे नित्य सुबह शाम ध्यान में सहस्र दल कमल पर बिठाना होगा। संवंधित पुस्तकों का स्वाध्याय और वैसे व्यक्तियों का सत्संग भी करना होगा।

एक हजार वोल्ट की बैट्री को एक तार द्वारा सम्बन्धित कर एक बड़ी मशीन को कई घंटों तक चलाया जा सकता है। उसी प्रकार लक्ष्य रूपी तार द्वारा अपनी इच्छाशक्ति, मनःशक्ति, बौद्धिकशक्ति, भावनाशक्ति और क्रियाशक्ति को सम्बन्धित कर चाहे जितना बड़ा उद्देश्य हो, उसे सफल बनाया जा सकता है। ये पांचों शक्तियाँ लक्ष्य के अभाव में विभिन्न इच्छाओं के चक्कर में आकर बिखरी पड़ी रहती हैं और शक्तिमान होते हुए भी हम अस्वस्थ, असफल, तेजहीन और दरिद्र हो उपेक्षा के पात्र बने रहते हैं। हमारा निश्चित उद्देश्य या संकल्पित लक्ष्य ही पंचमुखी महादेव है जिसको स्मरण करते ही पांचों शक्तियां क्रियाशील हो जाती हैं और संगठित हो हमारे लिए प्रतिष्ठा, सुख और शान्ति का भण्डार खोल देती हैं।

हमें यह कभी न भूलना चाहिए कि हमारे विचार क्रियाओं को नियंत्रित करते हैं और जैसा हमारा लक्ष्य होता है वैसे ही हमारे विचार होते हैं। इसके साथ-साथ हमारे मन में कोई विचार आते ही वह साहचर्य भाव को पैदा करता है जिसके अनुसार हमारी मांसपेशियां कार्य करना प्रारम्भ कर देती हैं। शुभभावना हमारे मन को विभिन्न इच्छाओं से खींच कर लक्ष्य पर केन्द्रित कर देती है और हमारे व्यक्तित्व को चुम्बक के रूप में परिवर्तित कर लक्ष्य सम्बन्धी वस्तु, व्यक्ति और वातावरण को अपनी ओर आकृष्ट कर हमारे आगे बढ़ने की राह बनाती है। हमें यह कभी न भूलना चाहिए कि मनुष्य में निर्माण करने की अद्भूत क्षमता है। अगर उसे इसका भरोसा हो जाये तो वह भावी सफलता के लिए योजनाबद्ध कार्य कर पाता

है। अपने उद्देय के लिए हम स्वयं संकल्प लेते हैं। इसमें हमारी मदद कोई नहीं कर सकता। हमारा प्रत्येक शब्द जिसे हम बोलते हैं, प्रत्येक कार्य जिसे हम करते हैं और प्रत्येक वाक्य जिसे हम लिखते हैं, सभी हमारे हृदय की अलिखित और अव्यक्त भावनाओं को व्यक्त कर दूसरों के समक्ष हमें प्रस्तुत करते हैं। ये हमारी प्रकृति के सबूत और आत्मस्वीकृति के मूर्त रूप हैं। हमें अपना लक्ष्य निश्चित करते वक्त अपने आप से प्रश्न करना चाहिए, हमें कब, क्या और क्यों करना चाहिए?

रचनात्मक (धनात्मक) लक्ष्य होते ही हम आशावादी बन जाते हैं और सहयोग और प्रेम का आविर्भाव हममें होने लगता है। यह स्थिति आती है तब, जब लक्ष्य रूपी कंकड़ को अपनी अव्यक्तशक्ति या चित्ताशक्ति रूपी सरोवर में फेंक देते हैं और उसमें गोलाकार लहरें उठने लगती हैं। इससे सारा शरीर तरंगित होकर अंग-अंग फड़कने लगता है और वह हमारे हाव-भाव, बोल-चाल और चाल-ढाल में दिखने लगता है। यह उमंग की स्थिति होती है। जो अत्यधिक संक्रामक होती है और सम्पर्क में आने वाले सभी को उमंगित करने लगती है। सभी से सहयोग और प्रेम हम लक्ष्य सम्बन्धी क्रियाओं में पाने लगते हैं और प्रतिक्रिया रूप में हम भी सहयोग और प्रेम बांटने लगते हैं। इस अवस्था में लक्ष्य इष्ट का रूप ले लेता है और उसे पाने में विशेष देर नहीं लगती। अकेला आदमी कुछ नहीं कर सकता। लक्ष्य को पाने में सहयोगियों का सहारा लेना ही पड़ता है। इसके लिए संघबद्ध होना, एक समान सोचना और चलना आवश्यक है। लक्ष्य के इष्ट बनने पर ही यह स्थिति आती है।

लक्ष्य को इष्ट बनाने के लिए तत्सम्बन्धी हमारा हर संभावित प्रयत्न संसार की सेवा करते हुए, स्वयं ऐश्वर्यवान, ज्ञानी और शक्तिशाली बनना या होना चाहिए न कि सारे संसार की पूंजी, ज्ञान और सत्ता को हथिया लेना। लक्ष्य का इष्ट बनना ही प्रत्युत्पन्नमति और इससे शीघ्र निर्णय लेने की क्षमता हममें आने लगती है। हमारा ध्यान उसी ओर केन्द्रित हो जाता है जब तक हम उसके विशेषज्ञ नहीं बन जाते। आधुनिक विज्ञान ने यह सिद्ध कर दिया है कि हमारा मस्तिष्क भी उसी तात्विक शक्ति का बना है जिसको विश्व ब्रह्मांड वैज्ञानिकों ने ईथर कहा है और तांत्रिकों ने चित्तशक्ति या प्राण। इसी कारण दो व्यक्तियों के मनोभाव कभी-कभी टकरा जाते हैं या व्यक्ति एक-दूसरे के प्रति स्वाभावकि लगाव महसूस करने लगते हैं। मानसिक स्तर पर विचारों और भावों का आदान-प्रदान इसी वजह से होता है। एक-दूसरे से मिलते ही हृदय में प्यार का उमड़ पड़ना या घृणा से भर जाना इसी कारण से होता है और दोनों हालतों में बिना बोले ही हमारी मानसिक प्रतिक्रिया होती है। बिना कारण कोई क्रिया नहीं होती। अतः मानसिक लगाव और विलगाव का भी कारण है और वह है हमारा इष्ट। दो या अधिक मन को पूर्ण समन्वित कर एक साथ लाना इष्ट का ही कार्य होता है। इष्ट, इच्छाशक्ति, मनःशक्ति, बौद्धिकशक्ति और भावनाशक्ति के स्तर पर अपना पूर्ण रूप ले लेता है और जिसका जितना व्यापक लक्ष्य होता है उसका इष्ट भी उतना ही व्यापक हो जाता

है। इष्टयुक्त व्यक्ति अपने स्तर के लोगों को अपने इर्द गिर्द एकत्रित कर उन्हें क्रियाशील बना देता है और लक्ष्य की प्राप्ति करा देता है।

लक्ष्य का इष्ट बनने के पूर्व एक और स्थिति होती है जिसे अभियोजन कहते हैं। यह स्तर बड़ा नाजुक होता है। इसी स्तर पर अनुशासन का पालन करना और उसे उल्लंघन करने वालों को समझा बुझाकर मनाना या डांट-डपट कर ठीक करना आवश्यक हो जाता है। इष्ट की स्थिति में हमारा मन उच्चस्तर पर स्पंदित होता है इसलिए इसे अपने नियंत्रण में रखने के लिए आसन, प्राणायाम और ध्यान की साधना आवश्यक हो जाती है। आत्मिक नियंत्रण नहीं होने से इष्ट जो स्वस्थ, सफल, आकर्षक और अह्लादित व्यक्तित्व प्रदान करता है, उसका नुकसान भी हो सकता है। इसके लिए बर्दाशत करने, गुण विवेचन, पाने से अधिक करने, सादा जीवन बिताने आदि की क्षमता को बढ़ाकर यम-नियम में प्रतिष्ठित होना आवश्यक हो जाता है।

शक्ति और जीवन में उसका महत्त्व

तंत्र में बिन्दु का शक्ति और शिव के रूप में विश्लेषण किया गया है। बिन्दु हमारा 'स्व' है तथा शक्ति जब अन्तर्मुखी होती है तब सहयोग, प्रेम, करुणा, दया आदि 'शिव' बन जाती है और वह शिव जब बहिर्मुखी हो स्वस्थ, सफल, आकर्षक और अह्लादित व्यक्तित्व प्राप्त करता है तब शक्ति कहलाता है। बिना शिव की शक्ति बंध्या और बिना शक्ति का शिव वनकुसुम है। इस प्रकार 'स्व' रूपी धागे की एक छोर शक्ति और दूसरा छोर शिव है। 'स्व' को स्वस्थ, सफल, आकर्षक और अह्लादित व्यक्तित्व रूपी गांठ देने के लिए शक्ति और शिव रूपी दो छोरों को मिलाना आवश्यक हो जाता है।

यहां हम आधुनिक मनोवैज्ञानिक खोजों के संदर्भ में इसी का मूल्यांकन करेंगे जिससे उपर्युक्त तांत्रिक कथन और अधिक स्पष्ट और ग्राह्य हो जाये। मूलाधार या आधारभूत हमारी शक्ति है चित्तशक्ति जो अव्यक्त रूप में सभी मानवों में पाई जाती है। उसी का व्यक्त रूप है इच्छाशक्ति, मनःशक्ति, बौद्धिकशक्ति, भावनाशक्ति और क्रियाशक्ति। वस्तुतः ये शक्तियां व्यावहारिक (शक्ति स्फुरण की) दृष्टि से पांच प्रकारों की दिखती हैं लेकिन उच्चस्तर पर चित्तशक्ति ही मूल रूप में है। चित्तशक्ति जब तक बहिर्मुखी बन क्रिया रूप में परिणत नहीं हो जाती है तब तक वह स्थूलबल के रूप में पड़ी रहती है। क्योंकि एक बलवान या पहलवान तब तक शक्तिमान नहीं कहला सकता जब तक अखाड़े में उतरकर दो चार दंगल न मारा हो। अतः अखाड़े में उतरने की इच्छा ने ही चित्तशक्ति में स्फूरण पैदा कर दिया और उसके द्वारा दंगल जीतने का संकल्प लेते ही वह इच्छा लक्ष्य का रूप ले लेती है। यहीं इच्छा शक्ति का सृजन हो जाता है। अन्य पहलवानों से सम्पर्क कर नियमित रूप से दांव-पेंच सीखना, मेहनत करना आदि उसमें धीरे-धीरे अपनी शक्ति के प्रति आत्मविश्वास पैदा करता है और इससे वह अपने से कम शक्तिशाली को जोर कराने लगता है। यहां उसके मनःशक्ति का सृजन हो जाता है। यही साधन शक्ति है जिससे आत्मविश्वास आता है तथा उसमें उद्‌यमशीलता आ जाती है। इसके बाद वह अपने क्षेत्र के अखाड़ों से सम्पर्क कर अपने को और अधिक साधन सम्पन्न और दंगल में निपुणता पाने का यत्न करता है। यह उसकी बौद्धिकशक्ति या सम्पर्क शक्ति के रूप में व्यक्त होता है। जब वह दंगल की पूरी तैयारी कर लेता है और अपनी कल्पना में भी विभिन्न अखाड़ों में लड़ता हुआ या विभिन्न दांवों को काट कर प्रतिद्वन्द्वी को पछाड़ता हुआ देखने लगता है तथा उसे नये-नये दांव भी सूझने लगते हैं तब उसकी भावना शक्ति क्रियाशील

हो जाती है। हमारी कल्पनाशक्ति ही भावना शक्ति कहलाती है। इसके बाद विभिन्न दंगलों में वह शामिल होने लगता है और दंगल पर दंगल जीतने लगता है। यह है क्रियाशक्ति। इसके बाद सर्वोत्तम स्वास्थ्य, सफलता, आकर्षण और अह्लाद उसके पैर चूमने लगते हैं।

दूसरे शब्दों में हमारी चित्तशक्ति अह्लाद शक्ति का स्रोत है। अतुल जलराशि का भण्डार है। इच्छाशक्ति इसे चारों ओर से घेर कर एक झील का रूप देती है। मनःशक्ति संचार साधन का काम कर इससे नदियों को निकालती है, बौद्धिक शक्ति झील के जल को नदी के मुहाने तक सम्पर्क स्थापित कर देती है। भावनाशक्ति नदी के जल को योजना-बद्ध रूप में सिंचाई और उसके समुचित उपयोग के लिए नहरें आदि बनाने का काम करती है और क्रियाशक्ति उस झील के जल को जो नदी के माध्यम से समुद्र में व्यर्थ वह जाया करता था, मरुस्थल को हरा-भरा कर सरसब्ज बाग में परिणत कर हमें स्वस्थ, सफल, आकर्षक और अह्लादित व्यक्तित्व प्रदान करती है। हमारी क्रियाशक्ति ही वास्तविक रूप में चित्तशक्ति की बाह्य अभिव्यक्ति है। क्रियाशक्ति ही हमारी सहयोग शक्ति (Power of Cooperation) संगठन शक्ति (Power of Organization) या समन्वयात्मक शक्ति (Power of co-ordination) है।

इस प्रकार हमारी चित्तशक्ति में इच्छा के होने से ही स्पंदन और स्फुरण होने लगता है तथा उस इच्छा की पूर्ति का संकल्प लेते ही इच्छा लक्ष्य बन जाती है तथा इच्छाशक्ति, मनःशक्ति, बौद्धिकशक्ति और भावनाशक्ति अपने स्तर पर काम करना शुरू कर देती हैं। हमारा लक्ष्य तब इष्ट का रूप ले लेता है। इष्ट के अन्दर चुम्बकीय शक्ति होती है और जो भी हमारे संपर्क में आता है वह हमारे इष्ट (लक्ष्य) से प्रभावति हो सहयोग करने लगता है और बड़े से बड़ा काम चुटकी बजाते ही पूरा हो जाता है। लेकिन दुर्भाग्य से 'इष्ट' को पढ़े-लिखे लोग भी भूत-प्रेत की श्रेणी में ला खड़ा कर देते हैं। हर व्यक्ति अपनी किसी इच्छा का संकल्प लेकर लक्ष्य बना सकता है और चित्तशक्ति में स्फुरण पैदा कर इच्छाशक्ति, मनःशक्ति, बौद्धिकशक्ति और भावनाशक्ति को विकसित कर उसे इष्ट बना कर आश्चर्यजनक रूप से उत्तम स्वास्थ्य, सफलता, आकर्षण और आनन्द को पा सकता है।

उपर्युक्त कथन से यह बात स्पष्ट हो गयी कि शक्ति का आधार 'बल' है तथा मानसिक और शारीरिक श्रमों का आधार कार्य। बल जब कार्य में लगता है तब शक्ति कहलाता है। बल जब तक क्रियाशील नहीं होता तब तक उससे कोई कार्य नहीं होता। यही कारण है कि एक आलसी, अकर्मण्य और कामचोर में इच्छाबल, मनोबल, बौद्धिकबल, भावनाबल और क्रियाबल होते हुए भी वह शक्तिशाली नहीं हो पाता और अस्वस्थ, असफल, अनाकर्षक और दरिद्र बना रहता है। लक्ष्य निर्धारित होते ही बल में स्फुरण आने लगता है। हम क्रियाशील बनने लगते हैं। हमें उसी हालत में क्रियाशील कहा जा सकता है जब हममें संगठनात्मक, सहयोगात्मक और समन्वयात्मक क्षमता आने लगे। शक्ति सम्पन्नता का यही मार्ग

है। क्रियाशील होने से हमारा बल शक्ति का रूप लेने लगता है। और जितना अधिक हम कार्यशील बन जीवन-यापन करते हैं हममें उतनी ही अधिक शक्ति प्राप्त होती है। शक्ति कार्य से आगे-आगे दौड़ने लगती है। 2:3 के अनुपात में कार्य से शक्ति का सृजन होता है। यह है भारतीय अर्थशास्त्रियों का मत। कार्य की तीव्रता के साथ-साथ शक्ति का सृजन इसी अनुपात में होता रहता है। इसलिए शक्ति का 2:3 भाग सदा व्यक्तिगत कार्य से अधिक रहता है, जिसको सामाजिक उत्थान के कार्य में लगाना चाहिए।

खर्च न करने से शक्ति का हमें अपच होने का डर रहता है और वह अहंकार के रूप में प्रकट हो सारा किए कराए का सत्यानाश कर देता है। अहंकार के मद में चूर व्यक्ति ही शराबी की तरह सब कुछ फूंक-फाक कर फकीर बन जाता है और अन्त में अपने भाग्य को कोसता हुआ बावला बन घूमता है। इस स्थिति से बचने के लिए ही शक्तिशाली व्यक्ति या पुरुषार्थी के लिए नृयज्ञ, भूतयज्ञ, पितृयज्ञ और आत्मयज्ञ का विधान किया गया था। यही जीवन-यंत्र प्रक्रिया है जिसकी समालोचना तांत्रिकी संयम और उपचार संस्थान की पुस्तकों में की गयी है। यही शक्ति अन्तर्मुखी हो 'शिव' के रूप में व्यक्त होती है। यही प्रेम, सहयोग, करुणा आदि सात्विक गुणों का व्यक्तित्व में प्रकटीकरण है। बिना इसके शक्ति का संतुलन नहीं हो सकता।

तांत्रिकी दृष्टि से शक्ति के दो रूप होते हैं अंतरंग और बहिरंग। अंतरंग शक्ति धनात्मक और बहिरंग शक्ति ऋृणात्मक शक्ति है। शक्ति का धनात्मक रूप आशावादी, कल्याणकारी एवं सफलता को दिलाने वाला होता है जबकि ऋृणात्मक रूप निराशावादी, आर्थिक संकट, आलोचना एवं अपमान के भय से भयभीत करने वाला तथा रोग और असफलता को लाने वाला होता है। हममें केवल ऋृणात्मक शक्ति की बहुलता के कारण जीवन में रोग और असफलता ही हाथ लगती है जबकि प्रारम्भ में सफलता के लक्षण भी थोड़ा बहुत दिखते हैं। किसी को बर्बाद करने, नीचा दिखाने, दूसरों की लाश पर अपना महल खड़ा करने या किसी का पेट काट कर, लूटकर अपना घर भरने की क्रिया में पहले थोड़ी सफलता मिलती है। हम महल खड़ा कर लेते हैं, दुश्मनों को बर्बाद कर देते हैं, स्वयं लखपति, करोड़पति बन जाते हैं लेकिन इसके परिणाम स्वरूप हम स्वयं इस ऐश्वर्य को संचित, संरक्षित और बढ़ाने के चक्कर में शारीरिक, मानसिक और सांवेगिक रोगों के शिकार बन उदर, रक्त और हृदय की बीमारियों से ग्रसित हो किसी काम के नहीं रह जाते। साथ ही साथ संचित सम्पत्ति के चलते बाल-बच्चे भी संघर्षमय जीवन से दूर हो जाते हैं। संघर्ष में ही बच्चों का स्वाभाविक विकास होता है। संसार के सभी सफल व्यक्तियों की जीवनी को अगर हम उठाकर पढ़ें तो 99 प्रतिशत गुदड़ी के लाल अर्थात् सामान्य घरों के थे। उन्हें संर्घषमय जीवन ने ही पैदा किया था। अमेरिका के एक खरबपति परिवार के तीन बच्चे थे जिनमें एक पागल, दूसरा दुर्व्यसनी, तीसरा पूर्ण अयोग्य निकला और बूढ़ा जिसने इस सम्पत्ति को जोड़ा था 50 वर्ष की उम्र में ही हृदय रोग से पीड़ित होकर चल बसा।

उसकी आशाओं का महल और ख्वावों की दुनिया यों ही धरी रह- गयी। इसे देखते हुए ही कहा गया है कि तीसरी पुश्त पर खानदान में आमूल परिवर्तन होता है। धनी गरीब और गरीब धनी बन जाते हैं। यही है ऋृणात्मक विचार जो लोभ-मोह-घृणा-भय आदि से शक्ति के बहिरंग रूप को प्रकट कर हमें नचा-नचा कर मार डालता है।

अंतरंग धनात्मक शक्ति का सृजन सहयोग, सहकारिता, संगठनात्मकता, प्रेम, करुणा आदि की भावना से होता है। अन्तर्मुखी हुए बिना इस शक्ति का विकास होना सम्भव नहीं। क्योंकि बाह्य शक्तियों का आकर्षण बड़ा तीव्र होता है और हम जाने अनजाने उसके प्रवाह में बहते चले जाते हैं। अंतर्मुखी शक्ति होने से ही हम उत्तम स्वास्थ्य और सफल, आकर्षक और अह्लादित व्यक्तित्व को प्राप्त करते हैं। क्योंकि दोनों शक्तियों के अति की स्थिति हमारी असमान्यता का द्योतक है। अन्तर्मुखी हो अंतरंग शक्ति को विकसित कर मुक्ति पाने की स्थिति कैवल्यावस्था को प्राप्त करना है। इस स्थिति में मानवीय विकास करने या सांसारिक कार्य करने का ध्यान आता ही नहीं। वह केवल शान्ति, आनन्द और प्रेम से युक्त रहता है। भावलोक में ही वह विचरण करता रहता है। उसी अंतरंग शक्ति की अतिस्थिति के चलते मध्य युग में हमारी दुर्दशा हुई और सैकड़ों वर्षों तक हम गुलाम रहे। हमारे जैसे मुक्त लोगों को गजनी की सड़कों पर गुलामों की कतार में खड़ा कर क्रय, विक्रय किया जाता रहा। हमारी आंखों के सामने मां-बहनों की इज्जत लुटती रही, बच्चे यातना और भूख से तड़प-तड़प कर जान देते रहे। देश की जनता गुलामी की चक्की में पिसती रही और हम मुक्त हो या कैवल्य को प्राप्त कर अपने में ही मस्त मौला बने रहे। यह कैसी विडम्बना है? जिस तांत्रिक वैज्ञानिक सिद्धान्तों ने एक रोज हमें चरम उत्कर्ष पर पहुंचाकर जगद्गुरु की उपाधि से गौरान्वित कराया उन्हीं सिद्धान्तों को रहस्यों की पिटारी में बन्द कर हम हर दुर्गति को प्राप्त हुए। प्रश्न उठता है क्या जीवन का वास्तविक उद्देश्य प्रकृति के स्पर्श से मुक्त होकर चिदात्मकशक्ति या आत्मा में प्रतिष्ठित होना है? क्या देहबीज को दग्ध कर अपने शारीरिक ज्ञान को भी भुला देना, निष्क्रिय आत्मरूप में प्रतिष्ठित हो केवल विश्व स्वरूप होकर रह जाना है ? यह स्थिति मंदिरों में स्थापित प्रतिभाओं या पूजा में काम आने वाले गोबर-गणेश की स्थिति है। यह स्थितिं पूजा की स्थिति हो सकती है। प्रेरणा की नहीं। शक्ति का बहिरंग रूप (ऋृणात्मक) हमें अपराधी, कमजोर, बातूनी, और बेकार बना देता है।

तंत्र दोनों अंतरंग और बहिंरग की अति की स्थिति को असामान्य स्थिति मानता है और दोनों का संतुलित विकास कर व्यक्ति को स्वस्थ, सफल, आकर्षक और अह्लादित व्यक्तित्व प्रदान कराता है। पुरुषार्थी जब तक विश्व ब्रह्मांड, सात्विक या धनात्मक विचारों से पूर्ण स्पंदित न हो जाये तब तक वह इस पृथ्वी पर आकर उसे धनात्मक विचार से स्पंदित और शक्ति सम्पन्न करने के लिए आना चाहता है। विभिन्न अवतारों के पीछे भी धनात्मक विचारों की स्थापना और ऋणात्मक

विचारों का भूतल से उन्मूलन करने का उद्देश्य छिपा रहता है। धनात्मक विचारों में प्रतिष्ठित होना धर्म और ऋणात्मक विचारों से भरना अधर्म है। इसी अधर्म के विनाश और धर्म की संस्थापना के लिए परमपुरुषार्थी सदाशिव एवं योगेश्वर श्री कृष्ण जैसी विभूति को बार-बार अवतरित होना पड़ता है। बहिरंग और अंतरंग दोनों शक्तियों के अति के बीच मानवता त्रिशंकु की तरह बीच में लटक रही है और एक-दूसरे के अतिक्रमण के कारण विश्व की अधिकांश आबादी निष्क्रिय, निरुद्देश्य और निरावलम्ब हो रोगी, दीन-हीन-मलीन बन जीवन काट रही है। प्रत्येक मानव पुरुषार्थी बन एक-एक कर अपनी सुषुप्त शक्तियों का विकास कर क्रियाशील बन सकता है और संसार को स्वर्णमय बनाते हुए स्वस्थ, सफल, आकर्षक और अह्लादित व्यक्तित्व को प्राप्त कर सकता है। पुरुषार्थ पथ का पथिक बनने के लिए हमें 'स्व' का बलिदान नहीं देना होगा बल्कि उसका विस्तार कर 'पर' और 'परम' को भी उसके घेरे में ले लेना होगा। यही योगिक साधना या क्रिया है। इससे अपनी पांचों शक्तियों को विकसित कर विश्वकर्मा बनना होगा, विश्व को स्वर्णिम बनाना होगा। प्रकृति पर नियंत्रण स्थापित कर उसकी उपलब्धियों से संसार को धन, धान्य और ऐश्वर्य से पूर्ण करना होगा। संसार को अधिक से अधिक सुख सुविधा की वस्तु को प्राप्त कराकर स्वयं उसके साथ रहते हुए भी निर्लिप्त रहना होगा और इस प्रकार बहिरंग या ऋणात्मक और अंतरंग या धनात्मक शक्तियों को सुसंतुलित करना होगा। इसके लिये हमें अपने उत्तरदायित्वों का सदा ध्यान रखते हुए अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष की साधना यावत् जीवन करते रहना होगा। इस प्रक्रिया से स्वस्थ, सफल, आकर्षक और अह्लादित व्यक्तित्व की प्राप्ति हमें होगी ही।

आज विज्ञान ने अपनी खोजों और आविष्कारों से यह सिद्ध कर दिया है कि विश्व ब्रह्माण्ड तत्त्व और शक्ति से बना है। तत्त्व का विश्लेषण करने पर विद्युत (प्रोटिन) पाया गया है जो शक्ति ही है। इस प्रकार संसार की हर वस्तु का प्रारम्भ और अंत शक्ति ही है। सब कुछ शक्ति के आदेश और निर्देश पर संचालित होता है। शक्ति का सर्वोच्च्व प्रतिरूप हमारा मन या चेतना है। यही सृजनकर्ता और जीवन को स्वस्थ, सफल और सुन्दर बनाने वाला है। वैज्ञानिक खोजों से यह भी पता चला है कि ब्रह्माण्ड की सारी शक्तियां और तत्त्व आकर्षण के नियम के अनुसार नियंत्रित होते और प्रतिक्रिया करते हैं तथा अपने स्वभाव के तत्व और शक्ति को अपने विशिषट केन्द्र के इर्द-गिर्द इकट्ठा करते हैं। इस दृष्टि से भी 'लक्ष्य' बना लेने पर शक्तियां उसके इर्द-गिर्द एकत्रित हो व्यक्ति को कार्यशील बना देती हैं। शक्तियां हमारी प्रवृतियां हैं। ये स्वाभाविक प्रवृत्तियां ही अनियंत्रित हो हमारे शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य का दुश्मन तो बनती ही हैं, साथ ही साथ हमें असफल दरिद्र और दुखी भी बना देती हैं। इसलिए विभिन्न शारीरिक, प्राणिक और मानसिक अभ्यासों द्वारा अपनी शक्ति को नियंत्रित कर उसे अन्तर्मुखी बनाने और इसके बाद कर्म में प्रवृत होने की राय यन्त्र ने दी है।

इच्छा शक्ति

हम सभी मानव मात्र में शक्ति सुषुप्तावस्था में होती है जिसे 'बल' कहते हैं। शक्तिबल में बिना संकोचन-प्रसारण के नहीं आती क्योंकि शक्ति के ये ही दो गुण हैं। हमारे बल का संकोचन प्रसारण ही क्रियाशीलता है इसलिए बिना क्रियाशील बने हम शक्तिशाली नहीं बन सकते। हमारी सुषुप्त शक्ति ही चिद्शक्ति है जो असीम और अथाह समुद्र के सदृश है पर शान्त, बिना हलचल के। जिस प्रकार किसी तालाब के शान्त जल में एक कंकड़ फेंक देने पर उस स्थान के विशिष्ट बिन्दु के चारों ओर एक गोल मण्डलाकार लहरों का घेरा तैयार हो जाता है और तेजी से फैल कर एक सीमा तक उसका विस्तार हो जाता और अन्त में अपने आप वह विलीन हो जाता है और जल पूर्ववत् , शान्त और स्थिर हो जाता है। ठीक उसी प्रकार हमारे चिद्शक्ति रूपी प्रशान्त महासागर में किसी इच्छा रूपी कंकड़ के पड़ते ही उसमें मंडलाकार लहरें उस बिन्दु के चारों ओर फैल जाती हैं और अंत में अपने आप एक सीमा तक फैलकर निरुद्ध हो जाती हैं क्योंकि अनन्त विस्तार नहीं हो सकता। किसी विशिष्ट इच्छा से प्रशान्त चिद्शक्ति के अन्दर स्पंदन के मंडलाकार घेरे के विस्तार की सीमा को ही इच्छाशक्ति कहते हैं जैसा कि इसके नाम से ही यह बात स्पष्ट होती है।

रेखागणित का सिद्धान्त है कि बिना बिन्दु के प्रकट हुए रेखा की सृष्टि हो ही नहीं सकती क्योंकि बिन्दु के स्पंदन या कम्पन से ही रेखा का निर्माण होता है। स्लेट पर या कागज पर जैसे ही हम पेन्सिल से लकीर खींचने के लिए रखते हैं सर्वप्रथम एक बिन्दु बनता है और धीरे-धीरे उसी बिन्दु का विस्तार हमारी पेन्सिल से एक लकीर का रूप ले लेता है। इस प्रकार हमारी इच्छाएं अनन्त होती हैं और चिद्शक्ति में क्षणिक मण्डलाकार उर्मियां पैदा कर पुनः शान्त हो जाती हैं। लेकिन जैसे ही किसी विशिष्ट इच्छा को पूरी करने के लिए हम संकल्प ले लेते हैं तब वह इच्छा निश्चित लक्ष्य (उद्देश्य) का रूप ले लेती है और इससे चित्तशक्ति में मण्डलाकार लहरों के स्थान पर लहरें उठने लगती हैं। पूर्ण संकोचन-प्रसारण से वह सुषुप्त शक्ति जागृत शक्ति का रूप ले लेती है और हम क्रियाशील बन जाते हैं। इच्छा से जो बिन्दु के चारों ओर मण्डलाकार घेरा बनता है वह अखण्ड मण्डलाकार रेखा का रूप ले लेता है। इसी बिन्दु को तन्त्र में बिन्दु कहा जाता है। हमारी इच्छाएं सृजनात्मक और निराशावादी हो सकती हैं। इसी प्रकार इन्हीं इच्छाओं पर आधारित हमारा लक्ष्य या उद्देश्य भी विनाशकारी या कल्याणकारी या आशावादी और निराशावादी हो सकता है। शक्ति का प्रवाह इन्हीं दो दिशाओं में हुआ करता है। अगर विनाशकारी, निराशावादी और तमोगुणी दिशा में शक्ति का प्रसार हुआ तो निश्चय ही हमें प्रारम्भं में थोड़ी-बहुत उपलब्धि दिखने पर भी अंत में असफलता मिलती है। क्योंकि लोभ, मोह, अहंकार के चलते हम ईर्ष्या द्वेष कलह और दुश्मनी को अनजाने ही आमंत्रित कर देते हैं जो सफलता को भी असफलता में बदल देने के लिए पर्याप्त होती है। कल्याणकारी, आशावादी,

धनात्मक या सत्त्वगुणी दिशा में शक्ति का प्रवाह हमें सहकारिता, प्रेम, करुणा आदि से भर देता है और हम ऐसी स्थिति में असफलता को भी सफलता में बदल देते हैं। इसीलिए तन्त्र में शक्ति के इस दिशा प्रवाह को शिव कहा गया है। शिव का अर्थ कल्याण होता है। इसीलिए कल्याणकारी इच्छा का संकल्प ही "शिवसंकल्पमास्तु" कहा गया है और वही स्वस्थ सफल आकर्षक और अह्लादकारी व्यक्त्वि प्रदान करने वाला होता है।

अगर हमारा 'लक्ष्य' कल्याणकारी नहीं है या विध्वंसकारी, ऋणात्मक, निराशावादी और तमोगुणी है तो निश्चय ही हमारी शक्ति विखर जाती है क्योंकि ऐसी स्थिति में हमारी इच्छा पूर्ण संकल्प के साथ लक्ष्य नहीं बनी है, उसके साथ विकल्प की लम्बी पूंछ भी लगी हुई है। शक्ति हमें सफल बनाने में मदद करे तो कैसे ? क्योंकि शिव तो उसके साथ है ही नहीं। प्रारम्भ में 'अशिव' शक्ति से भी थोड़ी सफलता मिलती है। इसी कारण कालाबाजारी, मिलावट, चोरबाजारी, घूसखोरी, बेईमानी आदि करने वाले लोग फलते-फूलते नजर आते हैं लेकिन धन कमाने, संचय करने और उसे सुरक्षित रखने के चक्कर में वे शारीरिक, मानसिक और सांवेगिक (प्राणिक) दृष्टि से इतना टूट चुके होते हैं कि उदर, रक्त, हृदय रोग उन्हें आ घेरता है और हाय-तोबा करते-करते अल्पायु में ही वे परलोकवासी हो जाते हैं। सम्पत्ति विरासत में मिलने के कारण बच्चे संघर्षमय जीवन से दूर हो जाते हैं। 'खाओ, पियो और मौज करो' ही उनका लक्ष्य बन जाता है। इस स्थिति में बच्चे लम्पट, लबार, चोर, बदमाश या काहिल, कामचोर बन जाते हैं और सम्पत्ति उपभोग और बंटवारे को लेकर आपस में झगड़ते-झगड़ते विनष्ट हो जाते हैं। विश्व के बड़े लोगों की जीवनी उठाकर हम पढ़ें तो पायेंगे कि संघर्षमय जीवन ने ही उन्हें बड़ा बनाया है। गरीबी जीवन में सफल बनने का माध्यम है, आदर्श नहीं। यही तांत्रिक सीख है। लेकिन हम ठीक इसके उल्टा गरीबी को आदर्श मानकर इस अधोगति को प्राप्त हुए हैं। इस प्रकार अगर हम असफल, अनाकर्षक या दुखी जीवन में होते हैं तो अपनी शक्ति को अकल्याणकारी, निराशावादी या ऋणात्मक दिशा में प्रवाहित करने से हमारा परिवार या खानदान विनष्ट होता है या बच्चे आवारा निकलते हैं। उसके जिम्मेदार दृश्य या अदृश्य रूप में हम ही हैं।

'शिव संकल्प युक्त इच्छा' जब लक्ष्य बनती है तब हमारा लक्ष्य इष्ट का रूप ले लेता है फिर हम जिस काम में हाथ डालते हैं सफलता आगे-आगे दौड़ने लगती है। इसका पूर्ण वैज्ञानिक विश्लेषण विभिन्न शक्ति के विकास के साथ आगे किया गया है। इसे तन्त्र में शक्ति का अन्तर्मुखी बना कहते हैं। शिव के बहिर्मुखी बनने पर शक्ति की अभिव्यति होती है जो हमारे जीवन की सफलता के लिए आवश्यक है। बिना शिव को साथ लिए शक्ति विखर कर बंध्या बन जाती है और बिना शक्ति के शिव बनकुसुम की तरह निष्प्रयोजन मुरझाकर विनष्ट हो जाता है।

हमें पुरुषार्थी बन जीवन को सफल और आनन्दमय बनाने के लिए कल्याणकारी लक्ष्य बनाकर ही जीवन-यापन के लिए व्यवसाय करना होगा। सम्भव है इससे प्रगति थोड़ी धीमी हो लेकिन सफलता निश्चय मिलती है तथा जीवन में उन्नति

करने के अवसर बार-बार प्राप्त होते हैं।

जैसा ऊपर कहा गया है कि संकल्प से इच्छा लक्ष्य का रूप ले लेती है लेकिन उसे कल्याणकारी रूप देने या शिवसंकल्प युक्त बनाने के लिए हमें शक्ति को अन्तर्मुखी करना पड़ता है। लक्ष्य प्रशांत चित्तशक्ति में पड़ते ही बिन्दु के रूप में अवतरित होता है और मंडलाकार रूप में एक निश्चित सीमा तक फैलकर इच्छाशक्ति का निर्माण करता है। इसलिए किसी भी बिन्दु पर ध्यान केन्द्रित करने पर मेरुदण्ड से सम्बद्ध मस्तिष्क के पूर्व में मंडलाकार लहरें उठने लगती हैं। उसमें विभिन्न न्युरेन सक्रिय हो द्रुतगति से रासायनिक प्रक्रिया द्वारा मस्तिष्क के विभिन्न तनाव दबाव को खत्म कर देते हैं और चित्त के पूर्णशान्त होने पर प्रभामण्डल भी स्पष्ट दीखने लगता है।

इसी प्रकार गुरु के चित्र या नाद पर भी ध्यान करने पर विभिन्न प्रकार के प्रभामण्डल बनने लगते हैं। यही प्रभामण्डल है या इथर मण्डल है। यही है चित्तशक्ति का भण्डार, पृथ्वी, सूर्य, नक्षत्र, ग्रह, तारे आदि के व्योम में एक प्रकार की शक्ति भरी रहती है उसे इथर कहते हैं। ऐसा अनुमान है कि एक व्यापक द्रवशक्ति ब्रह्माण्ड के प्रत्येक परमाणु को स्पंदित करती है। उसी व्यापक द्रव्य को इथर कहते हैं। यह व्योम के सारे रिक्त स्थानों में भरा पड़ा है। यही हमारे शरीर एवं मस्तिष्क में भी शक्ति रूप में विद्यमान है। प्रभामण्डल का यही स्रोत है। क्योंकि हवा केवल ध्वनि वाहक है प्रकाश और अतिस्पंदनात्मक तत्त्वों का नहीं। इथर हजारों अणुजीवत् का संकोचन मात्र है।

प्रकाश और उससे उच्च द्रव्य स्पन्दनात्मक तत्त्वों का वाहन इथर है। इस प्रकार ध्यान के अभ्यास से हमारे मेरुदण्ड से संबद्ध मस्तिष्क द्रव के इथर में अपने विचारों को बिना बोले ही अपने सहयोगियों तक पहुंचाने की क्षमता आ जाती है। अपने शिव स्वरूप कल्याणकारी सहयोग, प्रेम, करुणा आदि भावनाओं को लक्ष्य के साथ सम्मिलित कर उसे इष्ट का रूप देना इसी स्तर पर सम्भव होता है और एक बार जहां लक्ष्य ने इष्ट का रूप ले लिया, फिर जो भी संपर्क में आता है सबका वही लक्ष्य बन जाता है। इस प्रकार लक्ष्य की प्राप्ति में अधिक विलम्ब नहीं होता। दूरभाष (टेलीफोन) के आविष्कारक आलेक्जेण्डर ग्राह्म बेल ने भी बताया है कि विचार तरंग बेतार के तार के तरंग की तरह ही है जो हमारे मस्तिष्क से गुजर कर निस्सीम ब्रह्माण्ड में प्रवाहित होती रहती है। इस विचार-तरंग के प्रवाह को हमारी ठोस खोपड़ी और शरीर निस्सीम ब्रह्माण्ड में फैलने में बाधा नहीं पहुंचाता क्यों कि विचार तरंग इथर से गुजरती है जो हमारे शरीर के अणु-अणु में व्याप्त है। भले ही उसके रूप खोपड़ी और शरीर के रूप में घना और ठोस क्यों न हो गया हो। दूसरे की विचार-तरंग इसमें बाधा पहुंचाती है। यही कारण है कि श्रोता की विचार-तरंगों के कारण वक्ता उत्साहित और हतोत्साहित हो जाते हैं। हमारी विचार-तरंग विद्युत तरंग की तरह है। हमारा वायुमण्डल विद्युत तरंग का श्रेष्ठ वाहक है। प्रयोग कर देखा गया है कि स्नायु के मध्य से विद्युत ले जाने पर मरा हुआ व्यक्ति भी उठ बैठता है तथा हिलने-डुलने लगता है। इस

प्रकार विद्युत प्रवाह-युक्त स्नायु, हमारे शरीर की मांस-पेशियों को जीवित व्यक्ति की तरह ही संकोचन-प्रसारण कराने लगता है। इससे यह सिद्ध हो चुका है कि हमारें विचार-तरंग विद्युत-तरंग की तरह ही हैं। इथर बिजली का वाहक है जो सारे आकाश में भरा पड़ा है तथा विश्व के सारे जड़-जंगम और जीवन के अणु-अणु में भी व्याप्त है। इसी कारण जिस प्रकार बेतार के तार की तरंग को निकलते हम देख नहीं पाते उसी प्रकार अपने कुविचार और सुविचार की तरंगों को भी निकलते नहीं देख पाते। अपनी चित्तशक्ति को अन्तर्मुखी कर उसे शिव बनाने में ध्यान की एकाग्रता हमारे मस्तिष्क के प्रसारण और प्राप्ति करने के स्थानों को विकसित कर देती है जिससे हमारा शिव बर्हिमुखी होकर इच्छा-शक्ति का रूप लेता है। हमारा मस्तिष्क ही विचार स्पन्दन का प्रसारण और प्राप्ति स्टेशन है और वह हमारी इच्छा शक्ति को दृढ़ करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। संस्थान में इसी लिए सर्व प्रथम मुद्रा, आसन, प्राणायाम, धारणा और ध्यान का पूर्ण अभ्यास कराकर यम नियम में प्रतिष्ठित कराया जाता है, जिससे पुरुषार्थी के अन्दर बर्दाशत करने, गुण-विवेचन करने, पाने से अधिक करने, आत्मनियंत्रण, बचाने की आदत, निर्भीकता और उद्योगशीलता, यथार्थ चिन्तन, कल्पनाशीलता और रचनात्मक क्रियाशीलता की क्षमता को बढ़ाया जा सके और अन्त में 'लक्ष्य' निर्धारित कर उसे स्वस्थ, सफल आकर्षक और अह्लादित व्यक्तित्व के योग्य बना दिया जाये।

हमें यह कभी न भूलना चाहिए कि हमारे शरीर का संचालन शक्ति द्वारा ही होता है उसे ही क्रियाशीलता कहते हैं। हमारी विभिन्न शक्तियों का स्रोत चिद्शक्ति है और इच्छा के उत्पन्न होते ही उसमें लहरें उठने लगती हैं, स्पन्दन होने लगता है। 'इच्छा' संकल्प का रूप लेती है और उसके प्रति दृढ़ता आती है। साधना द्वारा शक्ति को अन्तर्मुखी करने का अभ्यस्त होने से लक्ष्य इष्ट का रूप ले लेता है। एवं इच्छाशक्ति उसके प्रति दृढ़ हो जाती है तथा सम्पर्क में आने वालों को भी इस लक्ष्य के प्रति आकृष्ट करने लगती है। वस्तुतः संकल्पित लक्ष्य ही प्रेरक बन जाती है तथा कार्यान्वित होने के लिए हमारी इच्छाशक्ति, मनःशक्ति, बौद्धिकशक्ति, भावनाशक्ति और क्रियाशक्ति के स्रोत विद्युतशक्ति को उत्तेजित करती हैं। लक्ष्य प्राप्ति ही शक्ति प्रकाशन प्रक्रिया है। हम दिन-प्रतिदिन प्रकृति में तीन प्रकार की क्रियाओं को देखते हैं। सृष्टि, स्थिति और संहार। यह प्राकृतिक शक्ति का खेल है। विषम अवस्था में जब एक शक्ति दूसरे को दबा देती है तब क्रिया रूप में प्रकट हो जाती है और हमसे संहार या निर्माण का कार्य कराने लगती है। लेकिन इन शक्तियों की साम्यावस्था की स्थिति को शास्त्रों में ब्रह्म, ईश्वर आदि नामों से पुकारा गया है। इस प्रकार संसार की सारी क्रियाशक्तियों की विभिन्न अभिव्यक्तियां हैं। हमारी सारी क्रिया इन्द्रियों के माध्यम से होती है जिसके मूल में हमारी इच्छाशक्ति ही कार्य करती है। इसे ही तांत्रिकों ने चण्डी नाम से पुकारा है।

प्रश्न उठता है, कैसे इच्छाशक्ति क्रियाशक्ति में परिणत हो जाती है? क्या प्राकृतिक शक्ति और व्यक्तिगत इच्छाशक्ति में कोई सम्बन्ध है ?

हमारी क्रियाएं दो प्रकार की होती हैं। इच्छाकृत कर्म और अनिच्छाकृत कर्म।

हमारी विभिन्न शारीरिक यांत्रिक क्रियाएं जो विशेषकर शिरोगह्वर वक्षोगह्वर, उदरोगह्वर और कटिगह्वर की मांसपेशियों से सम्बन्ध रखती हैं, प्रायः अनैच्छिक क्रियाएं होती हैं जैसे रक्त संचालन-क्रिया, पाचन-क्रिया आदि। लेकिन विभिन्न साधना आदि अभ्यासों से भारतीय साधकों ने अनैच्छिक क्रियाओं को इच्छाकृत कर्म में परिवर्तित कर दिया है। और एक अपूर्व और अद्वितीय व्यक्तित्व को प्राप्त किया है। इसी प्रकार प्राकृतिक क्रियाओं पर आजकल विभिन्न वैज्ञानिक अपने स्तर से नियंत्रण स्थापित करने की कोशिश में लगे हैं। और इसमें बहुत कुछ उन्हें सफलता भी मिली है। यह बाह्य प्राकृतिक क्रियाओं और शारीरिक अनैच्छिक क्रियाओं को नियंत्रण करने में हमारी इच्छाशक्ति का ही कौशल होता है। शक्ति मूल रूप में एक ही है। चाहे वह विद्युतशक्ति और आणविकशक्ति हो या विद्शक्ति या इच्छाशक्ति। इथर के माध्यम से सारी शक्तियां एक-दूसरे से सम्बन्धित हैं जैसा कि दूरभाषा के आविष्कारक अलेक्जेन्डर ग्राह्म बेल ने अपने प्रयोगों के आधार पर सिद्ध कर दिया है।

हमारी इच्छाशक्ति का केन्द्र है विद्या, चित्ताणु या चेतना, जिसके तीन स्तर होते हैं। अवचेतन, चेतन और अतिचेतन। हमारी चेतना वंशानुक्रम और वातावरण दोनों से प्रभावति होती है "आदत के नियम" के अनुसार हम स्वगतभावना और परगतभावना द्वारा विभिन्न प्रकार के संस्कारों को जाने-अनजाने सीखते रहते हैं। अवचेतन हमारा चित्त है जो सारी शक्तियों का स्रोत चिद्शक्ति है तथा सामाजिक और वंशानुक्रमिक संस्कारों का खजाना भी। यहीं पर हमारी इच्छाओं का सृजन होता है जो संकल्पित होने पर लक्ष्य का रूप ले लेता है। ऐसी स्थिति में शक्ति अपना प्रभाव बिखेरना शुरू कर देती है। लेकिन जब वह सर्व प्रथम प्राणायाम, ध्यान आदि साधना द्वारा अन्तर्मुखी की जाती है, जब इष्ट का रूप ले लेती है तो चुम्बकीय शक्ति की तरह सम्पर्क में आने वाले सभी लोगों को अपनी ओर आकृष्ट करने लगती है। नैपोलियन हिल जैसे अमेरिकन विद्वानों ने इसको ही 'मास्टर माइन्ड' कहा है। इस प्रकार प्रभावित व्यक्तियों का लक्ष्य हमारा ही लक्ष्य बन जाता है। लक्ष्य प्राप्ति के प्रयत्नों में सभी ओर से सहयोग, प्रेम और मदद मिलने लगती है और देखते-देखते राई से पहाड़ खड़ा हो जाता है। यही कारण है कि किसी इच्छा की पूर्ति का संकल्प गुरु, भाई, माता-पिता या समाज के समक्ष लेने के लिए भारतीय परम्परा है। यह संकल्पित इच्छा या लक्ष्य को आदर्श बनाने की दृष्टि से किया जाता है वैसे स्वयं भी किसी इच्छा की पूर्ति का संकल्प बनाया जा सकता है। जैसे 'शिव संकल्प कीन्ह मन माही, यह तन सती भेंट अब नाहीं।' हमारे धार्मिक कामों में आज भी यह पद्धति अस्थिपंजर रूप में ज्यों की त्यों वर्तमान है। यह 'इष्ट' ही है जिसमें हमारी इच्छाशक्ति की पूर्ण प्रभा देखने को मिलती है। यही लक्ष्य प्राप्ति के लिए आत्मन्योछावर की प्रेरणा हममें लाता है और सहयोगियों को उसके लिए जानलेवा खतरा उठाने के लिए बाध्य करता है। यह 'इष्ट' ही हमें व्यवसाय राजनीति या वैज्ञानिक किसी भी काम में निर्भीक हो प्राणपण से लग जाने और करो या मरो की प्रेरणा प्रदान करता है।

हमारा अवचेतन मन हमारे कुसंस्कारों के चलते प्रायः गलत दिशा में निर्देशित हो जाता है और हमारी असफलता और बरबादी का कारण बन जाता है। इसीलिए आसन, प्राणायाम और ध्यान द्वारा अवचेतन में भरे कूड़ा, करकट स्वरूप संस्कारों को क्षय कराकर सहयोग, प्रेम, करुणा आदि संस्कारों को डालना किसी लक्ष्य का इष्ट बनने के पूर्व आवश्यक हो जाता है। इसे ही शक्ति को अन्तर्मुखी कर शिव बनाना तंत्र में कहा गया है। यही शिव जब शक्ति के रूप में लक्ष्य प्राप्ति-सम्बन्धी क्रियाओं में परिणत होता है तो वह स्वास्थ्य हो, व्यवसाय हो या राजनीति या अन्य कोई क्षेत्र, हम निश्चय ही सफल हो निरोग, आकर्षक और अह्लादित व्यक्तित्व प्राप्त कर लेते हैं। चेतन मन और अतिचेतन मन यम-नियम सम्बन्धी बर्दाश्त करने की क्षमता, गुण विवेचन आदि उच्च संस्कार युक्त चेतना है। आधुनिक मनोविज्ञान में वर्णित मन के तीन स्तर-अचेतन, चेतन और अतिचेतन नहीं बल्कि अवचेतन (चित), चेतन (मन) और अतिचेतन (आत्मा) है। अतिचेतन यम-नियम से उच्च संस्कार-युक्त चेतना है। जब चेतना के स्तर पर शक्ति का विकास होता है तब उसे इच्छाशक्ति कहते हैं और अवचेतन क्षेत्र या प्राकृतिक क्षेत्र में इसका विकास होनें से विद्युत या जड़शक्ति कहा जाता है। वस्तुतः दोनों शक्तियां एक ही हैं। यही तन्त्र में महाशक्ति के रूप में वर्णित है। आधुनिक विज्ञान जिस दिन शक्ति को इच्छा के रूप में पकड़ पायेगा और प्राकृतिक शक्तियों से इच्छा के सम्बन्धों का .आविष्कार कर पायेगा, उसी दिन तन्त्र और आधुनिक विज्ञान का संगम हो जायेगा।

मनःशक्ति

"शक्ति के प्रसारण में बाधाएं पड़ने पर उसमें संकोचन की क्रिया प्रारम्भ हो जाती है।" यह एक वैज्ञानिक प्राकृतिक नियम है। इसी नियम के चलते प्राकृतिक वैषम्य अवस्था को त्याग कर हमेशा साम्यावस्था को प्राप्त कर लेती है। किसी सरोवर के स्थिर और शान्त जल में एक कंकड़ फेंकने पर उसमें मण्डलाकार लहरें उठने लगती हैं और वह अस्थिर और असामान्य हो जाता है। लेकिन एक सीमा तक ही उन मण्डलाकार लहरों का फैलाव होता है और अंत में फैलाव के रुक जाने पर पुनः रिक्तस्थान अन्त में बराबर हो जाता है। इसी प्रकार किसी कुएं से एक लोटा जल निकालने पर चारों ओर का जल मण्डलाकर रूप में आकर उस रिक्तस्थान को भर देता है। हमारा लक्ष्य (संकल्पित इच्छा) भी इसी प्रकार हमारी सुषुप्त शक्ति में मंडलाकार स्पन्दनात्मक लहरें उत्पन्न कर देती हैं जिसे इच्छाशक्ति कहते हैं। वास्तव में निःसीम चिद्शक्ति-सागर में इच्छाशक्ति लक्ष्य की दृढ़ता की क्षमता के अनुकूल एक मंडलाकार सीमा रेखा बनाती है। मनःशक्ति साधन संचार क्रिया का काम करती है जिससे पुनः चिद्शक्ति इच्छा की सीमा को तोड़कर स्थिर न हो जाये या साम्यावस्था को प्राप्त न कर ले जिससे हम लक्ष्य ही न भूल जाएं। मनःशक्ति का उप-उत्पादन है आत्मविश्वास। मनःशक्ति लक्ष्य तक पहुंचाने का आत्मविश्वास भी संचार साधन को उपलब्ध करता है जिससे हम लक्ष्य को प्राप्त करने में सफल हो पाते हैं। इच्छा, चिद्शक्ति में लहरें पैदा कराती और मनःशक्ति आत्म विश्वास रूपी बवंडर उठाकर उसमें उमंग की लहरें पैदा कर देती है तथा लक्ष्य रूपी नौका पर इच्छा को बैठाकर गन्तव्य स्थान पर पहुंचा देती है। लक्ष्य और उसकी प्राप्ति के बीच साधन संचार व्यवस्था का काम मनःशक्ति ही करती है। इस प्रकार मनःशक्ति लक्ष्य प्राप्ति करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

जैसा कि कहा गया है मनःशक्ति का उत्पाद है आत्म विश्वास और उमंग। आत्म विश्वास हो जाने से हम बड़े से बड़े लक्ष्य की प्राप्ति कर सकते हैं। यह शक्ति जागृत होती है, अपने में सहनशीलता और गुण विवेचन की क्षमता के बढ़ाने तथा अपनी कमजोरियों को जानकर उसे दूर करने के लिए प्रयत्नशील होने से। इसे ही तांत्रिक भाषा में अहिंसा, ब्रह्मचर्य और सत्य में प्रतिष्ठित होना कहते हैं। वास्तव में हम तब तक स्थायी सफलता से वंचित रहते हैं जब तक अपने में सहनशीलता, आत्म-नियंत्रण और गुण विवेचन की क्षमता को बढ़ाकर अपनी

असफलताओं और भूलों की ओर से आंखें नहीं फेरते। हमें यह कभी न भूलना चाहिए कि बाजार में मोल-भाव हमारे व्यक्तित्व का होता है। हमारी मनःशक्ति या आत्मविश्वास हमें लक्ष्य की प्राप्ति कराता है। अन्य साधनों का महत्त्व इसके समक्ष नगण्य हो जाता है। क्या हमने किसी दुकानदार से प्रभावित होकर ऊंचे दाम पर घटिया सामान नहीं खरीद लिया है ? क्या इच्छा न रहते हुए भी जीवन-बीमा के एजेन्टों के चक्कर में आकर अपना जीवन-बीमा हमने नहीं कराया है और बाद में पछताये हैं ? ये सारे करिश्मे मनःशक्ति और आत्म विश्वास के हैं। एक मनःशक्ति युक्त आत्मविश्वासी व्यक्ति हमेशा खुशमिजाज होता है और उसमें दूसरों की कड़वी बातों को भी सहन कर लेने और उसके साधारण गुणों को भी पहचान कर विवेचन (तारीफ) करने की अद्भूत क्षमता होती है; जिस पर किसी साधारण व्यक्ति का ध्यान जा ही नहीं सकता है। हर व्यक्ति में अपनी बातों को व्यक्त करने, चाय और शरबत को बनाने, टेबुल और घर को सजाने आदि का विशिष्ट ढंग होता है। किसी की थोड़ी तारीफ या गुण विवेचन कर देने से ही हम खुशी से आत्मविभोर हो जाते हैं और इसी प्रकार किसी की उपेक्षा को सहन कर लेने से. ही हम स्वयं द्वेष, ईष्या, घृणा आदि से बच जाते हैं और उस व्यक्ति को भी लक्ष्य-साधन के एक सहयोगी के रूप में पा जाते हैं। आत्मविश्वास या मनःशक्ति हमें लक्ष्य के प्रति तत्पर बना देती है और इसके अभाव में हम अनावश्यक थकाने वाले बिना लक्ष्य की व्यस्तता दिखाकर जीवन में सदा असफल होते रहते हैं।

हमारा चित्त योगभूमि या भावना भूमि है। यही हमारी सुषुप्त शक्ति, चिद्शक्ति या बल है और जिसकी वृद्धि संतुलित तथा युक्तायुक्त आहार-विहार और वीर्य-रक्षण से होती है। यही हमारी पांचों शक्तियों का स्रोत है। अगर हम चित्त को निस्सीमशक्ति सरोवर मान लें तो हमारी इच्छाशक्ति, उसकी मंडलाकार अंतिम सीमा है। मनःशक्ति उस सरोवर से लक्ष्य प्राप्ति स्थल तक साधन संचार व्यवस्थापिका नहर है। बौद्धिक शक्ति उस चिद्शक्ति सरोवर से लक्ष्य तक शक्ति स्रोत संचालित करती है। भावना शक्ति सिंचाई योग्य भूमि और नहर की उपयोगिता को ध्यान में रखते हुए योजना तैयार करती है और नहर का फाटक खोल कर शक्ति प्रवाह की गति को तीव्र कर देती है। क्रियाशक्ति हमारे संगठनात्मक सहयोगात्मक और समन्वयात्मक क्षमता को बढ़ाकर हमारी जीवन-वाटिका को सिंचित, पल्लवित एवं पुष्पित करती है। इस प्रकार विभिन्न शक्तियों का विकास कर हम निरोग, आकर्षक और सफल व्यक्तित्व कों पा लेते हैं। इसे ही तंत्र में पंचाग्नि महायज्ञ का अनुष्ठान कर जीवन-यज्ञ सम्पन्न कराना कहा गया है। हमारे चित में ही अनुकूलता और प्रतिकूलता की भावना भरी रहती है। चित्त के तीन स्तर होते हैं, अवचेतना, चेतना और अतिचेतना। अवचेतना ही अनुकूल या धनात्मक और प्रतिकूल या ऋृणात्मक भावनाओं का खजाना है। मनःशक्ति इसी प्रतिकूलता निराशावादिता और भयानाकता की भावना का नियंत्रण और शमन करती है और उसके प्रतिद्वन्द्वी आत्मविश्वास और उमंग को खड़ा कर देती है जो लक्ष्य तक पहुंचने में साधन संचार व्यवस्था का काम करती है तथा लक्ष्य की प्राप्ति कराती है।

आत्मविश्वास

हमारे चित के तीन स्तर हैं अवचेतना, चेतना और अतिचेतना। तंत्र में अवचेतना को 'प्राण' चेतना को 'मन' और अति चेतना को 'आत्मा' कहा गया है तथा इसके गुणों को क्रमशः तम, रज और सत्त्व कहा गया है। अवचेतना की विशेषता या गुण है तम, जो आवेग-संवेग से नियंत्रित होता है एवं जिसकी ऋृणात्मक और निराशावाद दो धाराएं होती हैं। यही कारण है कि चित, प्राण या अवचेतना के स्तर पर पशु-पक्षी का विकास अवरुद्ध हो जाने से मैथुन करने, खाने, सोने में जितना अधिक आनन्द लेते हैं उतना अधिक आनन्द हम नहीं ले पाते। यह बात उनकी क्रियाओं को देखने से स्पष्ट हो जाती है। तथा पशुओं में जितना अधिक मरने-मारने, घृणा-ईष्या, दुश्मनी आदि ऋृणात्मक या तमोगुण पाया जाता है उस मात्रा में हममें नहीं पाया जाता है। हमारा क्रमिक विकास पशुयोनि के बाद ही हुआ है इसलिए वंशानुक्रमिक रूप में ये गुण धरोहर के रूप में हमें प्राप्त हो गये हैं। आदि मानव में भले ही ये गुण मूलरूप में वर्तमान हों लेकिन जैसे-जैसे हम विकसित और सभ्य होते गये, ये गुण परिष्कृत होते गये और आज हम दूसरों की हत्या तो नहीं करना चाहते लेकिन आर्थिक दृष्टि से अवश्य चोरी, बेईमानी आदि कर इन गुणों की हत्या कर देते हैं। और प्रतिद्वन्द्वी को एकाएक जान से मारने के बजाय दरिद्रता और अभाव की मार से तड़पा-तड़पा कर मारते हैं। आज के धनी और गरीब, सर्वहारा और सरमायेदार के बीच का यही रहस्य है। इसी प्रकार मैथुन, आहार और भय के सम्बन्ध में भी चारों ओर यही प्रकृति देखने को मिलती है। इसे ही शास्त्रों ने तमोगुण कहकर हेय दृष्टि से देखा और वर्णन किया है एवं इस गुण से सम्पन्न व्यक्ति स्वकेन्द्रित होने के कारण रोगी, असफलता, अनाकर्षण और दरिद्रता की भूमिका ही निभाता है।

पशु का विकास प्राण या अवचेतना स्तर पर अवरुद्ध होने से वह पूर्णरूपेण तमोगुणी होकर आहार, निद्रा और मैथुन का आनन्द लेने में अपना सारा जीवन बिता देता है। वह इसके लिए अपने से कमजोर जानवर को भयभीत करता है और स्वयं अपने से बलिष्ठ जानवरों से भयभीत होता रहता है। पशु जीवन की कहानी दर्दनाक हत्या, बर्बादी और भयाकुलता की कहानी है। मानव का विकास अवचेतना या प्राण स्तर पर ही अवरुद्ध नहीं होता बल्कि बुद्धि और विवेक स्तर पर यह पूर्ण विकसित हो अतिचेतना का रूप ले लेता है। अतिचेतना की विशेषता या गुण है 'सत्त्व'। इसकी धनात्मकता और आशावादिता, दो युगल धाराएं होती हैं। यही कारण है कि चित्त के अतिचेतना स्तर पर विकसित होने से मानव ही केवल निरोग, सफल, आकर्षित और आह्लादित व्यक्तित्व को प्राप्त कर सकता है। पशु जगत में इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। सत्त्व गुण हैं सहकारिता, सहयोग, संगठन, प्रेम, करुणा, आदि की क्षमता का पूर्ण रूप से विकसित होना। हमारी बुद्धि या विवेक इसका माध्यम हैं। यही चित्त का अतिचेतन स्तर है जिसे शास्त्रों में आत्मा, ब्रह्मा, शिव आदि कहा गया है। इसी अतिचेतना के कारण आहार,

निद्रा और मैथुन में पशु की तरह हमें आनन्द नहीं मिल पाता जबकि वंशानुक्रमिक संस्कार के रूप में हममें वह वर्तमान रहता है। लालच में हम इन क्रियाओं को बार-बार करते हैं जिससे न हम पशु की तरह आनन्द ही प्राप्त कर पाते हैं और न मानव की तरह संतुलित हो किसी काम में सफ़ल और निरोग ही हो पाते हैं। पशुओं जैसी विरासत में मिली भयाकुलता भी हमारा बराबर पीछा करती रहती हैं। अतिचेतना के सत्त्वगुणों को विकसित करना या आत्मा में प्रतिष्ठित होना अपने में सहकारिता, सहयोग, संगठन, प्रेम, करुणा, आदि गुणों को विकसित करना है।

अवचेतना और अतिचेतना चित्त के दो अति (छोर) हैं जिसके एक छोर को पकड़ने से पशु की श्रेणी में हम आ जाते हैं और दूसरे छोर को पकड़ने से काल्पनिक स्वर्गवासी देव बनकर केवल पूजा की वस्तु रह जाते हैं। दोनों के समन्वित, समयोजित, संगठित और उत्पादित स्तर ही चतेना है जिसका गुण है 'रज'। संयम तथा वास्तविकता नाम की दो युगल धाराएं इसकी भी हैं। इसी के माध्यम से हम निरोग, सफल, आकर्षक, और आह्लादित व्यक्तित्व प्राप्त करते हैं। इसी से पुरुषार्थ और साधना सम्भव होती है। यही है हमारा पौरुष। आत्मविश्वास अतिचेतना के गुणों में आस्था और विश्वास रखते हुए, अवचेतन के आवेगिक संविगिक, तमोगुणों को परिष्कृत, परिमार्जित और निरोध कराकर रजोगुण में प्रतिष्ठित करना चेतना को विकसित करना है। आत्मविश्वास को प्राप्त करना ही हमारे संस्थान का उद्देश्य है। आहार, निद्रा, मैथुन और भय के नियंत्रण, भोजन और मार्गोन्तिकरण से आत्मविश्वास आता है जिसके लिए अंगोपांग शोधन-भेदन, प्राणायाम और ध्यान आदि तांत्रिक विधियाँ आवश्यक होती हैं। इसे ही शक्ति को अन्तर्मुखी कर शिव बनाना तांत्रिक भाषा में कहा जाता है। यही है मनःशक्ति या आत्म-विश्वास को विकसित करने का सुगम मार्ग। हम जैसा आध्यात्मिक, शारीरिक और मानसिक दृष्टि से हैं, वही हमारा व्यक्तित्व है तथा वह शारीरिक, सामाजिक, वंशानुक्रम और साधना का ही प्रतिफल है।

हमने अपने क्रमिक विकास में 'एमिवा' से मनुष्य योनि के बीच के सभी योनियों के रूप और आदतों का संकलन शारीरिक वंशानुक्रम में किया है जो निर्दयता, बरबादी और मृत्यु की दर्दभरी कहानी के सिवा और कुछ नहीं है। बड़ा पौधा छोटे पौधे का रस चूसकर उसे सुखा देता है और स्वयं बढ़ता है। उसी प्रकार पशु भी अपने से कमजोर पशु-पक्षी मारकर जीते तथा बढ़ते, विकसित होते हैं। इस प्रकार जानवरों की पेशियां (सेल्स) भय से सम्वेदनशील होती हैं और इसी कारण मनुष्य भी बुढ़ापा, बीमारी और मृत्यु से सदा भयभीत बना रहता है। हमारा तामझाम (मिक-अप), चमंक-दमक तथा चाल-चलन सामाजिक वंशानुक्रम का प्रतिफल है, जो धार्मिक विश्वास, अंधविश्वास आदि कहानी, मुहावरा, लोकोक्ति आदि के माध्यम से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को प्राप्त होता है। यह है सामाजिक वंशानुक्रम। यह भी हमारे व्यक्तित्व का विशिष्ट अंग बन जाता है जिसमें परिवर्तन लाना या परिष्कृत करना अधिक मुश्किल होता है। इसी के चलते मुसलमान का बेटा मुसलमान, हिन्दू का बेटा हिन्दू, इसाई का बेटा इसाई होता है। इसे हम स्वगत और परगत

भावना से सीखते हैं। दरिद्रता, आलोचना और अपमान का भय हममें इसी माध्यम से आता है जो लक्ष्य प्राप्ति के प्रयत्न में आड़े हाथों आ खड़ा होता है और हममें ऋणात्मक, निराशावादिता आदि तमोगुणी भावधारा बहाकर सहकारिता, सहयोग, प्रेम आदि धनात्मक और आशावादिता की भावधारा को नष्ट कर देता है जिससे जीवन में सर्वोत्तम स्वास्थ्य, सफलता और आह्लाद को पाना असम्भव हो जाता है।

अपने में आत्मविश्वास जागृत करने के लिए हमें बर्दाशत करने (सहनशीलता) और गुण विवेचन की क्षमता विकसित करनी होगी। यही है अहिंसा और सत्य में प्रतिष्ठित होना या मनःशक्ति को विकसित करना। अगर हम विश्व के इतिहास पर दृष्टिपात करें तो पायेंगे कि अधिकांश लड़ाइयों और झगड़ों के पीछे बर्दाश्त करने की क्षमता या सहनशीलता की कमी ही थी तथा जिसके फलस्वरूप पूरा-का-पूरा राष्ट्र या पूरी-की-पूरी जाति ही अंधकार के गर्त में विलीन हो गई। पति-पत्नी का सम्बन्ध-विच्छेद, भाई-भाई की लड़ाई, पास पड़ोस की व्यंग्योक्तियाँ, हिंसा, मार-धाड़, खून-खराबे के पीछे इसी बर्दाश्त न करने की क्षमता या सहनशीलता का अभाव था। इसी की मानसिक अभिव्यक्ति, कलह, व्यंग्योक्ति, कटूक्ति, गाली-गलौज आदि हैं और क्रिया के रूप में जघन्य अपराध और हिंसा। इस गुण के अभाव में दूसरों को हम कितना अधिक शारीरिक और मानसिक कष्ट देते हैं और स्वयं बदले में शारीरिक मानसिक कष्ट उठाते हैं उसका ज्ञान हमें विभिन्न शारीरिक, सांवेगिक और मानसिक रोगों के शिकार हो, आत्मविश्वास या मनःशक्ति को खोकर सब कुछ लुटा देने के बाद होता है। इसी गुण के अभाव में हममें असहनशीलता आती है।

असहनशीलता हममें बदला लेने की प्रवृत्ति और लालच भर देती है। इसके चलते हम एक स्वार्थ की काल्पनिक दीवार खड़ी कर लेते हैं एवं उस सीमा को अपना कहकर घेरे के बाहर को पराया समझने लगते हैं। ऐसी स्थिति में हम अपनी उस सीमा से बाहर न जाते हैं और न उसके अन्दर दूसरों को पराया समझकर घुसने देते हैं। यही बदले की प्रवृत्ति का उदय होता है जिससे जाने-अनजाने हममें दूसरों के मान-सम्मान और ऐश्वर्य को नष्ट करने की प्रवृत्ति आ जाती है। इससे अहंकार और सन्देह का हमें शिकार होना पड़ता है और हमारा विश्वास अपने परिवार के सदस्यों, सहयोगियों, मित्रों आदि पर से उठ जाता है। मनःशक्ति दुर्बल हो जाती है, आत्मविश्वास जाता रहता है, उमंग क्षीण हो जाती है और उत्तम स्वास्थ्य, सफलता और आनन्द मृगमरीचिका बन जीवन की घुड़दौड़ में हमें परास्त कर दरिद्र और दुःखी बना देती है। हमारे सामने दो ही रास्ते बच जाते हैं या तो हम सहनशीलता की क्षमता को अपने में विकसित कर सन्देह और अहंकार को मार डालें और मनःशक्ति को विकसित करें या स्वयं सन्देह और अहंकार द्वारा मारे जांए। वास्तव में असहनशीलता हमारी अनुभवहीनता और विवेक के दिवालियापन का द्योतक है और साथ-ही-साथ आत्मविश्वास और मनःशक्ति का दुश्मन । इसी से हमारा विवेक मर जाता है और उसके स्थान पर समूह

मनोविज्ञान प्रतिष्ठापित हो जाता है। यह सभी प्रकार के शारीरिक-मानसिक स्वास्थ्य, व्यवसाय और सम्मानित जीवन यापन का दुश्मन है। यह असहनशीलता ही हमारी मनःशक्ति या आत्मविश्वास को मारकर इच्छाशक्ति से लक्ष्य प्राप्ति तक की संचार साधन व्यवस्था को छिन्न-भिन्न कर देती है। यह विश्व-मानव के विकास की गति को अवरुद्ध करती है, हमारे व्यक्तिगत जीवन के सामाजिक और आत्मिक पतन का कारण बनती है एवं जीवन में रोगी, असफल, अनाकर्षक और दुःखी बनाती है। इसीलिए हमारे पूर्वजों ने अहिंसा में प्रतिष्ठित होने की नेक सलाह दी है।

सहनशीलता की तरह ही गुण विवेचन (एप्रिशिएशन) की क्षमता विकसित न होने के कारण हमारी मनःशक्ति और आत्मविश्वास क्षीण होता है। चाहे ज़िस स्तर के हम व्यक्ति हों, ऑफिसर हों या कर्मचारी, देहाती हों या शहरी, पुरुष हों या नारी, सभी चटकार मार-मार व्यक्तिगत आलोचना पढ़ने, कान-में-कान डॉलकर सुनने और मुँह-में-मुँह सटाकर बोलने के अभ्यस्त हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में अगर वे स्वयं आलोचना के शिकार हो जाते हैं या स्वयं ईष्या की अग्नि में जलते हैं या ईष्यालु व्यक्तियों को अपने इर्द-गिर्द इकट्ठा कर लेते हैं, तो कोई आश्चर्य नहीं। हम प्रायः सत्तावान, ज्ञानी और ऐश्वर्यशाली व्यक्तियों से भयभीत रहते हैं। इसीलिए जैसे भी हो उन्हें खुश रखने और गोद में जा बैठने की चेष्टा करते हैं। जिससे हममें प्रशंसा, चापलूसी, चमचागीरी आदि लक्षण आ जाते हैं। गुण विवेचन की क्षमता के विकास के अभाव में यह दुर्गुण हममें विकसित होता है। बुरे-से-बुरे व्यक्ति में यदि कुछ विशेष गुण हो तो उन्हें सुनकर वह बाग-बाग हो जाता है क्योंकि लोग उसके अवगुणों की ही विवेचना करते हैं जो उसके लिए सुनना बहुत कष्टदायक होता है। इस हालत में किसी विशेष गुण को हमारे मुंह से सुनकर और उसके लिए तारीफ पाकर अगर वह उत्साहित होता है, हमारे सम्पर्क में आता है और अपने गुणों की विवेचना सुनने के लोभ में कई अन्य गुणों को भी अपने में विकसित कर लेता है तो कोई आश्चर्य नह। साथ-ही-साथ वह एक अच्छा मित्र भी साबित हो सकता है। वास्तव में गुण विवेचन के अभाव में हम दूसरों की सफलता, अच्छे काम और उत्थान के साथ अपनी कमजोरियों, असफलताओं और गिरावटों से तुलना करने लगते हैं और अन्त में ईर्ष्या से भर जाते हैं। इस हालत में किसी के अच्छे कामों के लिए प्रशंसा करने और दाद देने के बजाय वास्तविक तथ्य को ही तोड़-मरोड़कर उसे विकृत करने और आलोचना का पात्र बनाने के चक्कर में हम पड़ जाते हैं।

समान समान को आकर्षित करता है, यह एक प्राकृतिक नियम है और हम भी इस नियम से संचालित होते हैं। किसी की आलोचना और चापलूसी बार-बार करने, सोचने और करते रहने से, हमारी अवचेतना में वे भाव भर जाते हैं और वैसे ही लोगों को अपने अगल-बगल आकर्षित कर खड़ा कर देते हैं। इसका प्रतिफल यह होता है कि हमारी भी आलोचना होने लगती है। हमसे भी लोग ईष्या करने लगते हैं और अन्त में आत्मविश्वास या मनःशक्ति को हम क्षीण कर लेते हैं। हमें यह कभी न भूलना चाहिए कि पानी अपने स्तर तक जाकर ही रहता है।

उसी प्रकार हम भी अपने साथ के लोगों की मित्रता और संगति पसन्द करते हैं। यही कारण है कि हम अगर आलोचक हैं तो आलोचक को और गुणविवेचक हैं तो गुणविवेचक को आकर्षित करेंगे ही। अगर कोई विजातीय हमारी संगत में आ जाता है तो वह भी हमारे जैसा बन जायेगा और अपना प्रथम शिकार हमें ही बनायेगा। गुण-विवेचन से हमारा मन हर्षातिरेक हो आनन्द से भर जाता है और हम अत्यधिक कार्यशील हो जाते हैं। इस गुण के अभाव में ही हम अपने अधीनस्थ कर्मचारियों, परिवार के सदस्यों और अनुयायियों को अनजाने हतोत्साहित कर देते हैं तथा उनकी मनःशक्ति को क्षीण कर देते हैं। इससे उनकी कार्यक्षमता घट जाती है। अन्त में वे आलसी, काहिल, डरपोक और प्रमादी बनकर अपने गले में स्वयं फाँसी का फंदा डाल लेते हैं। गुणविवेचन की क्षमता को बढ़ाना मनःशक्ति को विकसित और आत्मविश्वास को दृढ़ करना है। इसे शास्त्रीय भाषा में सत्य में प्रतिष्ठित होना कहा गया है। सहनशीलता और गुणविवेचन जनतंत्र के दो गुण हैं और इस दृष्टि से एक जनतंत्रवादी वही हो सकता है जिसकी मनःशक्ति पूर्ण विकसित हो और उसका हृदय आत्मविश्वास से लबा-लब भरा पड़ा हो।

मनःशक्ति का दूसरा उपउत्पादन (बॉई प्रोडक्ट) उमंगें भी हैं। किसी इच्छा का संकल्प लेने से वह लक्ष्य बन जाता है और हमारी सुषुप्त शक्ति या चिद्कृत शक्ति में लहरें मण्डलाकार लहरों का रूप ले लेती हैं। मनःशक्ति के स्तर पर ये उमंगें शारीरिक स्फूर्ति, ताजगी और कुछ करने की तैयारी की स्थिति में उमंग बन जाती हैं। यह एक संक्रामक स्थिति है और सम्पर्क में आने वाले व्यक्ति को भी यह उमंगित कर देती है। इसी स्थिति में लक्ष्य प्राप्ति के लिए हमारे पास सहयोगी मित्र और मददगार अपने आप आ खड़े होते हैं। मनःशक्ति की उमंग ही वह विशिष्ट उपउत्पादन है जो क्रियाशक्ति को संचालित करता है और लक्ष्य प्राप्ति कराकर हमें सफल, आकर्षक और आह्लादित व्यक्तित्व प्रदान करता है। आत्मनियंत्रण के अभाव में यह असंतुलित और गलत दिशा में निर्देशित होकर हमारी बरबादी और विध्वंस का कारण बन जाता है। अमेरिकन वैज्ञानिक श्री नेपोलियन हिल ने एक लाख साठ हजार कैदियों का सर्वेक्षण कर पता लगाया कि उनमें 92 प्रतिशत कैदी आत्मनियंत्रित न होने के कारण अपनी उमंग को गलत दिशा में निर्देशित कर अपराधी बन गये थे। इसलिए आत्मनियंत्रण मनःशक्ति को विकसित करने और दिशा निर्देशित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता हैं। इसके अभाव में ही हम किसी के हंसी मजाक या व्यंग्य विनोद का तत्काल जवाब दे देते, मर्माहत हो चिड़-चिड़े हो जाते हैं, आवेग संवेग में आकर कोई निर्णय ले लेते हैं या ईर्ष्या-द्वेष की आग में स्वयं जलते रहते हैं। हमारे जीवन की अधिकांश परेशानियों का आमंत्रण और गलत दिशा निर्देशन, आत्मनियंत्रण के अभाव में ही होता है। बक-बक करने, दो आदमियों को धीरे-धीरे बातें करते रहने पर भी उसे कान खड़ा कर सुन लेने और अनावश्यक चीजों को देखने के हम अभ्यस्त हो जाते हैं एवं अपनी मनःशक्ति को क्षीण कर जीवन में रोगी, असफल और दुखी बन जाते हैं। आत्मनियंत्रण का प्रथम पाठ है कम बोलना, कान बन्द रखना और काम की वस्तुओं को ही

देखना। आत्मनियंत्रण अवचेतना नियंत्रण और अतिचेतना सम्वर्धन का प्रेरक है। इसी से हममें मित्रता, सहयोग, संगठन और सहकारिता की बुनियाद पड़ती है। तथा दुश्मन को माफ कर देने की कला में हम प्रवीण हो जाते हैं। एक आत्मनियंत्रित व्यक्ति दुश्मन का भी मुस्कुराकर स्वागत करता है, दूसरों की बातें ध्यान से सुनता है और सभी की यथाशक्ति मनसा, वाचा और कर्मणा मदद करने के लिए सदा प्रस्तुत रहता है। ऐसे व्यक्ति पर ही शुभावसर, सौभाग्य और शुभदिन न्योछावर होते रहते हैं।

बाधाएं चाहे परिवार के सदस्यों या दुश्मनों की ओर से आयें या स्वयं अपनी छोटी-मोटी भूलों के चलते, वे चुनौती होती हैं और चुनौती भविष्य में सावधानी का संकेत देती है हार की सूचा नहीं। आत्मनियंत्रण होने से ही हममें बाधाओं से लड़ने, काम की सामग्रियों और तथ्यों को इकट्ठा करने, उसे संकलित करने और संगठित रूप देने, उसका विश्लेषण और वर्गीकरण करने तथा सफल प्रयोग करने में सतर्कता और सावधानी बरतने का शुभावसर प्रदान करता है। जीवन में सफलता पाने की यही वैज्ञानिक विधि है। एक आत्मनियंत्रित व्यक्ति बड़े कार्य के अवसर के लिए प्रतीक्षा न कर, छोटे काम को ही अच्छी तरह करके बड़ा बनने के लिए प्रयत्नशील रहता है। वह किसी की बात पर असहमत हो जाने पर न किसी की बुराई करता है और न उसके प्रति अपने मन में घृणा का भाव ही रखता है। आत्मनियंत्रण के अभाव में ही हम संवेदनशीलता का शिकार बन जाते हैं और इसलिए दूसरा जो करता है, रखता है, या सोचता है उसे पाने, करने या रखने की तृष्णा को हम रोक नहीं पाते। यह हमारी मनःशक्ति की दुर्वलता का द्योतक है।

मनःशक्ति को विकसित करने के लिए हमें अपने में सहनशीलता, गुणविवेचन और आत्मनियंत्रण की क्षमता को विकसित करना या अहिंसा, सत्य और ब्रह्मचर्य में प्रतिष्ठित होना होगा। इसी स्थिति में मनःशक्ति के उप-उत्पादन आत्मविश्वास और उमंग को सही दिशा निर्देशित कर उत्तम स्वास्थ्य, सफल, आकर्षक और आह्लादित व्यक्तित्व को हम पा सकते हैं। यह हमारी क्रियाशीलता को बनाये रखने के लिए साधन-संचार व्यवस्था का काम करती है। निम्न तरीकों से मनःशक्ति को विकसित किया जा सकता है।

प्रतिदिन सुबह शाम कुछ मिनट सर्वांगव्यायाम, प्राणायाम और ध्यान करना मनःशक्ति के विकास के लिए अति आवश्यक है। इस पुस्तक के उपचार शीर्षक भाग में इसकी सरल सुगम और सुलभ विधि बतायी गयी है।

प्रतिदिन नाश्ता के पूर्व मौन रहना, दूसरों को कम-से-कम शब्दों में जवाब देना, अपना प्रतिदिन का काम खत्म कर लेना, कम-से-कम 5 व्यक्तियों का प्रतिदिन गुणविवेचन करना, दूसरों की आलोचना करने वालों को धीरे से मना कर देना और नित्य किसी-न-किसी रूप में दूसरों की अवश्य मदद करना मनःशक्ति के विकास के लिए आवश्यक है।

हमारा अवचेतन मन स्वगत और परगत भावना द्वारा नित्य जाने-अनजाने

कुसंस्कारों को जिस किसी से भी ग्रहण कर उसे पंजीकृत करता रहता है। ऐसे ही कूड़ा-करकट सदृश्य भावनाओं के चलते मनःशक्ति के विकास में रोड़ा आता है और आत्मविश्वास और उमंग को गलत दिशा निर्देशित हो जाता है। इन संस्कारों को दूर कर उसके स्थान पर नये संस्कारों को डालने का उपाय है शुभभावना। इसलिए निम्न वाक्यों को कागज पर लिखकर नित्य सोने से पूर्व और जागने के ठीक बाद उसे पाँच-पाँच बार अवश्य मानसिक जाप कर लेना चाहिए।

"हममें सहनशीलता, गुणविवेचन और आत्मनियंत्रण की क्षमता का विकास हो रहा है और अहिंसा, सत्य और ब्रह्मचर्य में प्रतिष्ठित होने से हमारी मनःशक्ति बढ़ रही है। हममें आत्मविश्वास और उमंग का संचार हो रहा है।" साधक को दोनों समय साधना करना और इष्ट मंत्र का भाव सहित जाप करना मनःशक्ति को दृढ़ करने के लिए आवश्यक है।

बौद्धिक-शक्ति

बौद्धिक शक्ति ही ज्ञान-शक्ति है। यह इच्छाशक्ति और क्रियाशक्ति के बीच सम्पर्क स्थापना शक्ति है। इसके अभाव में क्रियाशीलता सम्भव नह। यही चेतना है। उपयुक्त वातावरण और साधना के अभाव में इसमें स्फुरण नहीं हो पाता और हममें अथाह शक्तिसागर होते हुए भी संबंधित व्यक्ति अपने को अल्पज्ञ और अल्पशक्ति युक्त समझने लगते हैं। अस्वस्थता, असफलता, अनाकर्षण, दुर्भाग्य आदि वास्तविकता नहीं, केवल स्वांग या अभिनय मात्र है। तन्त्र साधना बौद्धिकशक्ति को जागृत कराकर जीवन के हर क्षेत्र में सफल बनाती है और खुशी एवं आनन्द की स्रोतस्विनी को प्रवाहित करती है। ज्ञानशक्ति, भावनाशक्ति और क्रियाशक्ति की भूमिका का प्रतिफल ही हमारा उत्तम स्वास्थ्य, सफलता, आकर्षण और आह्लादित व्यक्तित्व है। इसे ही तन्त्र में ज्ञान-साधना, भाव-साधना और कर्म-साधना के रूप में तीन स्तर व्यक्त किया गया है। तीनों को बिना समान महत्व दिये न हम शक्तिशाली बन सकते हैं और न शुभावसर और सौभाग्य को ही पा सकते हैं। हम चाहे बहुत अच्छा कार्य करने के लिए क्यों न आगे बढ़ें, हमें सर्वप्रथम विभिन्न बाधाओं का सामना करना ही पड़ेगा या स्वयं अपने से भी कोई-न-कोई भूल होगी ही। बौद्धिक शक्ति के अभाव में हम उसे अपनी हार समझ बैठते हैं और जीवन के शतरंज के खेल में मात खा जाते हैं। इसके प्रतिकूल हममें ज्ञानशक्ति का उपयुक्त विकास होने पर किसी भी कार्य में विघ्न, बाधा और भूलों को हम स्वाभाविक तथा आवश्यक मानकर उसे चुनौती के रूप में कबूल करते हैं। इसे भविष्य में सावधानी से काम करने का संकेत और सूचना हम मानने लगते हैं। पराजय, असफलता की घोषणा नहीं। विघ्न, बाधाएं और भूलें हमें वैज्ञानिक चिन्तन का अवसर देती हैं और बौद्धिकशक्ति को विकसित करती हैं। इसके चलते हम लक्ष्य सम्बंधी आवश्यक तथ्यों और सामग्रियों को सावधानी से इकट्ठा और संकलित करने, उसे संगठित रूप देने, उसका विश्लेषण और वर्गीकरण करने एवं उसके सफल प्रयोग में सतर्कता रखने में सक्षम हो पाते हैं। यही है ज्ञानशक्ति का चमत्कार

और हमें सर्वोत्तम स्वास्थ्य, सफल आकर्षक और आह्लादित व्यक्तित्व प्रदान करने की प्रक्रिया।

हमारी बौद्धिकशक्ति ही हमें उद्देश्य प्राप्ति के लिए क्रियाशील बनाती है तथा अभिप्राययुक्त काम करने, तर्कसंगत विचार करने, परिस्थिति के अनुकूल प्रभावपूर्ण कदम उठाने और अभियोजित होने की सामान्य व्यक्तिगत क्षमता प्रदान करती है। बौद्धिकशक्ति में निखार आता है, कठिनाइयों, बाधाओं, दुःखों और तकलीफों का मुकावला करने में हम सफल होते हैं। हममें टालने की प्रवृत्ति का आना बौद्धिकशक्ति के ह्रास का द्योतक है। टालने की प्रवृत्ति से ही आया अवसर भी हाथ से निकल जाता है तथा बना काम बिगड़ जाता है। ऐश्वर्य, ज्ञान और सत्ता ऐसे लोगों से कोसों दूर भागते हैं। यह प्रवृत्ति हममें आती है अनिश्चयता के कैदी बनने से। अनिश्चयता या किसी काम को 'हाँ' और 'न' में फैसला न करने के कारण हमसे अत्यधिक देर हो जाती है जिसके कारण समय आगे निकल जाता है और हम बहुत पीछे पड़ जाते हैं। ऐसी स्थिति में हमारी दशा ठीक **अपने** दल में पिछड़ी उस भेड़ की हो जाती है जो बेचारी भेड़ चाहे जितना भी चले, गडरिए का डंडा उसी के पीठ पर पड़ता है। हमें यह कभी न भूलना चाहिए। समय बड़े-से-बड़े घाव को भी भर देता है और असफलता को सफलता में बदल देता है अगर हम बहाना बनाकर टालने की प्रवृत्ति से ग्रसित न हों। हमारी बौद्धिकशक्ति के विकास में यह प्रवृत्ति बहुत बड़ी बाधा है। अगर तत्काल निर्णय करने से एक-आध छोटी-मोटी असफलता भी हमें मिलती है तो भी अनिश्चितता और बहाना बनाकर टालने की प्रवृत्ति से दूर रहना ठीक होता है। सर्वप्रथम हम 'हाँ', 'न' के बीच अनिश्चित समय तक त्रिशंकु की तरह लटके रहने से बच जाते हैं, तथा उस समय का क्रियाशील बनकर सदुपयोग कर लेते हैं एवं भूलों और असफलताओं से शिक्षा लेकर अधिक अभिप्राययुक्त कार्य, तर्कपूर्ण चिन्तन और प्रभावोत्पादक निर्णय की क्षमता प्राप्त कर अपनी बौद्धिक शक्ति को विकसित कर लेते हैं। तत्क्षण निर्णय की क्षमता को बढ़ाना, अपनी बौद्धिक शक्ति को सम्पन्न करना है। भूल क्षम्य है लेकिन् अनिश्चयता नहीं।

हमारी ज्ञानशक्ति के विकास में संस्कार महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। किसी काम् को बार-बार करने से हमारी आदत उस काम को करने की पड़ जाती है और अन्त में वह हमें उस काम को बार--बार करने के लिए बाध्य करती है। संस्कार निर्माण की भी यही विधि है लेकिन उसे व्यापक अर्थ में प्रयोग किया गया है। आदत संस्कार का एक पक्ष है। संस्कार बनता है वातावरण से और वातावरण चार प्रकार का होता है, शारीरिक वातावरण, मानसिक वातावरण, आध्यात्मिक वातावरण और प्राकृतिक वातावरण। इन चार तरह के वातावरणों का प्रभाव हमारे शरीर और मन पर पड़ता है। संस्कार को आगे चलकर बदलना असम्भव नहीं लेकिन मुश्किल अवश्य हो जाता है। शारीरिक वातावरण में हमारा वंशानुक्रमिक, शारीरिक अवस्था और दूसरे के साथ सम्पर्क आता है। हम क्रमिक विकास की हालत में विभिन्न योनियों के तथा पूर्वजों के रूपरंग और आदतों को

वंशानुक्रमिकता के रूप में पाते हैं। मानव जीवन के क्रमिक विकास की कहानी कमजोर जन्तु को मजबूत जानवरों द्वारा दर्दनाक हत्या, बरबादी, भयातुरता और मृत्यु की करुण कहानी है। यह बीज रूप में हमारे अन्दर बुढ़ापा, बीमारी और मृत्यु से भयभीत होने का संस्कार बना रहता है। रंग रूप आदि हम पूर्वजों के वंशसूत्र के रूप में पाते हैं। ये सभी वंशानुक्रमिक संस्कार हैं। इसके अलावा विकलांग होना या किसी रोगी नारी या पुरुष से सम्पर्क कर स्थायी रोग को पाल लेना भी शारीरिक संस्कार के अन्दर आता है। विकलांग और रोगी व्यक्ति के अन्दर आत्महीनता की ग्रन्थि बन जाती है जिससे बौद्धिकशक्ति में अत्यधिक ह्रास हो जाता है। उसी प्रकार बुढ़ापा, बीमारी और मृत्यु का भी भय हमारी ज्ञानशक्ति में बाधक बनता है। मानसिक वातवरण में माता-पिता, पास-पड़ोस, शिक्षक सहपाठी, धर्म-कर्म आदि आता है जिसे स्वगतभावना और परगत भावना द्वारा हम जाने-अनजाने में सीखकर संस्कार का रूप दे देते हैं। इससे हम पूर्वाग्रही बन जाते हैं और वहीं हमारी बौद्धिक शक्ति अवरुद्ध हो जाती है। इसे ही ध्यान में रखते हुए कहा गया है कि पूर्वाग्रह से मुक्त होकर ही हम अपनी ज्ञानशक्ति को बढ़ा सकते हैं। हमारे जीवन-शैली का निर्माण मानसिक वातावरण के कारण ही होता है जो मृत्युपर्यन्त हमें अपनी जंजीरों में जकड़कर रखता है। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक एडलर ने इस पर काफी प्रयोग किया है।

प्राकृतिक वातावरण पर भारतीय साधकों ने अत्यधिक खोज की है और बताया है कि शान्ति, सुन्दर और मनोरम प्राकृतिक वातावरण बौद्धिक-शक्ति के विकास के लिए बहुत अनुकूल पड़ता है। क्योंकि ऐसी प्राकृतिक वातावरण और हमारी प्रकृति में अधिक साम्य है। इसलिए ऐसे वातावरण में आते ही हमारा मन रम जाता है। प्राकृतिक वातावरण से हमारी प्रकृति का तादात्म्य होने के कारण ही एकाग्रता और तारतम्य हममें आ जाती है। भूत-पूजा या प्रकृति-पूजा या सौंदर्य साधना की व्यवस्था मानसिक वातावरण का सृजन करने और शान्त, सुरम्य और मनोरम वातावरण में ज्ञान शक्ति की आशातीत विकास करने के लिए ही की गई है। इसे भुलाकर ही हम क्रूर, निरंकुश संस्कारों के चक्कर में पड़कर अपनी बौद्धिकशक्ति को बिखेर देते हैं, जिसके चलते हम एकाग्र होकर न किसी विषय पर सोच-समझ सकते हैं और न उसे सजाने, संवारने और अधिक उपयोगी बनाने की बात ध्यान में ला सकते हैं। आधुनिक मनोविज्ञान इन आदतों के नियंत्रण के सम्बन्ध में पूर्ण निश्चित नहीं है लेकिन भारतीय तन्त्रसाधना विज्ञान ने आज से हजारों वर्ष पूर्व कुसंस्कारों को क्षीण करने और उसके स्थान पर नए सुसंस्कारों को डालने के सिद्धान्त का प्रतिपादन ही नहीं किया बल्कि उससे हजारों लोगों की ज्ञानशक्ति को विकसित करके स्वस्थ, सफल बनाया। आदत या संस्कार हमारा मानसिक रास्ता है जिसपर हमारी बौद्धिक शक्ति परिभ्रमण करती हुई ज्ञानप्रभा को बिखेरती है। पुराने संस्कार को छोड़ने के लिए नये संस्कारों को हमें उसके स्थान पर डालना प्रारम्भ कर देना चाहिए जिससे पुराने संस्कार में विघ्न उपस्थित होना प्रारम्भ हो जाये।

नये संस्कार डालाने के साथ-साथ उसके लिए अधिक उत्साहित रहना, उसके

लिए शुभ भावना लाना, जिससे मन की गहराई में उसके संस्कार पंजीकृत हो जाएं, सदा नये पथ पर अपना ध्यान केन्द्रित रखना, अवसर की प्रतीक्षा न कर उसके लिए मौका निकालकर सुबह-शाम पुनरावृत्ति कर लेना, पुराने संस्कार का अधिक-से-अधिक प्रतिवाद करना जिससे पुराने संस्कार छोड़ने और नये संस्कार जगाने में सुविधा हो, पुराने संस्कार के प्रति बार-बार न झुकना, प्रारम्भ में ही संकल्प लेकर इच्छा शक्ति को दृढ़ बनाना और नये रास्ते पर निर्भय होकर बढ़ते जाना बहुत जरूरी है। इस प्रक्रिया में ही हम देखेंगे कि हमारी बौद्धिक-शक्ति आशा से अधिक विकसित हो गयी है और ज्ञान का स्वर्ण विहान का आभास हममें शुरू हो गया है। ज्ञानशक्ति और भावनाशक्ति में चोली दामन का सम्बन्ध है इसलिए शुभभावना सत्संग और स्वाध्याय बौद्धिक-शक्ति को बढ़ाने और ज्ञान को विकसित करने में अधिक भूमिका निभाती है। यही है आध्यात्मिक वातावरण। भावनाशक्ति शीर्षक में इसकी विशेष विवेचना की गई है। पाने से अधिक करने और साधारण जीवन यापन करते हुए कुछ बचाने के संस्कार को जमाकर अस्तेय और अपरिग्रह में प्रतिष्ठित होना, बौद्धिक-शक्ति के मार्ग को प्रशस्त करना है। बौद्धिक शक्ति को विकसित करने में एकाग्रता का अभ्यास और संवेगिक शक्तियों का प्रतिरोध करना पड़ता है चाहे वह पढ़ने-लिखने और सीखने-सिखाने का काम हो या सोचने-समझने और देखने-दिखाने का। पाने से अधिक करने और सामान्य जीवन व्यतीत करते हुए कुछ बचाने का संस्कार उपर्युक्त तीनों ज्ञानात्मक पहलू को परिष्कृत, परिमार्जित और विकसित करता है।

बिना काम किये कुछ पाने की इच्छा करना, करने से अधिक पाने की चाह करना या जितना पैसा उतना काम की मनोवृत्ति, अपनी बौद्धिक-शक्ति की चोरी कर स्वयं दिवालिया होना है। इसलिए पाने से अधिक करने के संस्कार को डालना, अपनी ज्ञानशक्ति को बढ़ाना और शास्त्रीय भाषा में अस्तेय में प्रतिष्ठित होना है। अस्तेय की सांवेगिक अभिव्यक्ति प्रेम है। इसलिए इसका प्रथम पाठ प्रेम से प्रारम्भ होता है। इसके प्रतिकूल द्वेष, क्रोध, घृणा और लोभ ज्ञानशक्ति को विकृत और क्षीण करता है। किसी पर क्रोध करना, अपने भीतर की कमजोरियों और गंदगी को उभारकर बाहर लाना है। किसी के कड़वे व्यंग्य और उपहास के शब्द इसी प्रकार हमारे क्रोध को उभार-कर हमारे अवचेतन मन की गन्दगी को मन में लाकर उसे गन्दा कर देते हैं तथा बौद्धिक-शक्ति को मारकर हमसे गन्दी गालियां दिलवाते और भद्दे और अटपटे व्यवहार कराते हैं जिसकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते।

इसी कारण क्रोध में हमारी तर्कशक्ति लुप्त हो जाती है और प्राणिक आवेगों-संवेगों से हम उस वक्त नियंत्रित होने लगते हैं। हमें यह कभी न भूलना चाहिए कि सत्य का ही दूसरा नाम आलोचना, कुवचन, छिद्रान्वेषण आदि है और इससे हमें अपनी कमजोरियों का वैज्ञानिक अध्ययन और उसे निर्मूलन करने के प्रयत्न में हमारी बौद्धिक-शक्ति और अधिक तीव्र और तीक्ष्ण होती है। इस दृष्टि से भी हमारा उपकार ही होता है। इसी प्रकार द्वेष, घृणा, लोभ आदि हमारी सांवेगिक

शक्तियों का आवेश मात्र है, जो हमारी बौद्धिक-शक्ति को अवरोध कर तूफान की तरह उसे उड़ा ले जाती है। अगर बौद्धिक-शक्ति इस पर स्वतः मृदु मरहम पट्टी न कर दे तो ये हमें या तो आत्महत्या करा दे या दूसरे का सिर फोड़वा दे। ज्ञानशक्ति का स्वच्छ प्रवाह ही घृणा, द्वेष और लोभ के तूफानों को धीरे-धीरे शान्त कर देता है।

प्रेम, ज्ञान शक्तिवर्धन का प्रारम्भिक स्रोत है। वैज्ञानिक प्रयोग से पता चला है कि उन कामों को जिसे हम पसंद नहीं करते वह जल्द ही हमें थका देने और उबा देने वाले होते हैं। ठीक इसी प्रकार जिस काम को हम पसंद करते हैं या प्यार करते हैं उसे रात-दिन करते रहने पर भी हम न थकते हैं और न ऊबते हैं। विश्व के बड़े-बड़े वैज्ञानिकों, लेखकों, राजनेताओं, कुशल कारीगरों आदि का अनवरत काम करते रहने का यही रहस्य है। हम भी अगर अपने से प्यार करना या उसे पसंद करना सीख लें तो निश्चय ही हममें भी अनवरत काम करने और उसमें कुशलता प्राप्त करने की क्षमता आ जायेगी। क्योंकि यह सर्वमान्य नियम है कि एक व्यक्ति जिस काम या व्यक्ति को पसंद करता है वह उसी के लिए सब कुछ करता है, व्यक्तिगत लाभ की ओर उसका ध्यान ही नहीं जाता। उस काम में वह बहुत असानी और तेजी से कुशलता प्राप्त कर लेता है तथा सफल हो जाता है। इस प्रकार प्रेम के शरण पाने से अधिक करने का संस्कार आ जाता है और वह हमारी बौद्धिक शक्ति को बढ़ाकर हमें स्वस्थ, सफल, आर्कषक और आह्लादित व्यक्तित्व प्रदान कर देता है। पाने से अधिक करने की आदत न विकसित होने के कारण ही हममें विभिन्न प्रकार की चोरियों के माध्यम से अपनी ही बौद्धिक-शक्ति की चोरी करने की आदत पड़ जाती है। बहानेबाजी कर टालने की प्रवृत्ति को विकसित कर आलसी, जाहिल और चापलूस बनना इसका उदाहरण है। हमारी प्रमुख कमजोरी है, बिना बोये काटने की प्रवृत्ति। अधिक और सुन्दर काम ही हमारे बौद्धिक-शक्ति को विकसित कर सकता है और यह कला आयेगी दूसरों से प्रेम करने और उनकी सेवा के लिए प्रस्तुत रहने से। अपनी जिम्मेदारियों को चाहे वह सेवात्मक, व्यावसायिक या संगठनात्मक हो, अच्छी तरह निभाने से ही बौद्धिक-शक्ति का विकास हो सकता है। बौद्धिक-शक्ति में विकसित व्यक्ति आत्म-प्रशंसा को प्यार करता है पूजता नह। उपहास से डरता है, हतोत्साहित नहीं होता यही ज्ञानशक्ति का संतुलन है। प्रारम्भिक असफलताएँ ज्ञान सम्वर्धन का प्रायः सन्देश लाती हैं यह हमें कभी न भूलना चाहिए। नदी के बीच धार में किसी बड़े पत्थर का आ जाना उसके बहाव को अधिक देर तक रोकता नहीं बल्कि उसकी गति -को और तेज कर देता है और बाधा के रूप में उपस्थित पत्थर को नदी का पानी रगड़-घिस कर बालू बना देता है। "करने से अधिक पाने" रूपी पहाड़ को हटाकर पाने से अधिक काम रूपी धारा को बहाना होगा तभी हम अपनी बौद्धिक शक्ति को बढ़ा सकते हैं। इससे हमें विभिन्न प्रलोभनों के चक्कर से छुटकारा मिल जाता है।

प्रायः हम देखते हैं कि उदर-सम्बन्धी रोगों का कारण अधिक खाना और श्वास,

रक्त और हृदय-सम्बन्धी रोगों का कारण संग्रह करने, उसकी रक्षा करने और उसे खर्च न हो जाने के मानसिक तनाव और दबाव से अत्यधिक ग्रसित होना है। साथ-ही-साथ ऐसे व्यक्तियों की बौद्धिक-शक्ति अधिक तेज नहीं हो पाती क्योंकि इनमें बुढ़ापा, बीमारी और मृत्यु का भय, आवश्यक कार्य को भी बहाना बनाकर टालने की प्रवृत्ति विकसित कर देता है। भारतीय साधकों ने हजारों वर्ष पूर्व ही इसकी खोज कर ली थी और अपरिग्रह में प्रतिष्ठित होने के लिए आदेश दिया था। सामान्य जीवन स्तर को अपना-कर कुछ-न-कुछ बचाना और उसे भी जनकल्याण में लगाना अपरिग्रह में प्रतिष्ठित होना है और यही है बौद्धिक-शक्ति को विकसित करने का सर्वोत्तम माध्यम। इसे ही सामान्य जीवन स्तर और उच्च्य विचार कहा गया है। भौतिक वस्तुओं का व्यवहार उसी मात्रा में करना जिससे हमारी क्रियाशीलता में किसी प्रकार की बाधा न आये और कुछ न कुछ बचाने का संस्कार भी दृढ़ होता जाये, बौद्धिक-शक्ति को विकसित करने की सर्वोत्तम विधि है। क्योंकि बार-बार किसी एक ही काम को करते रहने से हमारी आदत बनती है और एक बार किसी विषय या वस्तु की आदत पड़ जाने से, जब वह बार-बार उसे करने के लिए हमें बाध्य करने लगती है तब वह संस्कार का रूप ले लेती है। हमारा मन दिन-प्रतिदिन की ऐसी ही आदतों और संस्कारों की उत्प्रेरक मानसिक शक्तियों का संग्रहालय बना रहता है। इसी कारण हम विभिन्न आलतू-फालतू आदतों का शिकार और गुलाम बन जाते हैं एवं उन आदतों और संस्कारों के अतिरिक्त या तो हम कुछ करना नहीं चाहते या इनके विरुद्ध कुछ करना चाहकर भी कर नहीं पाते और आदतन दूसरी ओर मुड़ जाया करते हैं। ये आदतें ही हमारे व्यक्तित्व में सीमा की एक मजबूत दीवार खड़ी कर देती हैं और उस लक्ष्मण-रेखा को पार न कर सकने के कारण ही हम प्रायः अपनी बौद्धिक शक्ति को लुटा देते हैं। और अन्त में विपन्न बन असफलता और दरिद्रता को गले लगाते हैं। इससे बड़ी दुर्भाग्य की मार और दूसरी हो ही क्या सकती है! इसी के कारण सामाजिक अभियोजन, आज के मनोवैज्ञानिक और समाज शास्त्रियों के समक्ष प्रश्नवाचक चिन्ह बना पड़ा है। कभी-कभी तो हम अनजाने ही इन आदतों के चलते अपनी बौद्धिक क्षमता का विनाशकारी प्रयोग कर डालते हैं और आकर्षण नियम के अनुसार अपने इर्द-गिर्द वैसी ही आदतों और संस्कार वाले लोगों को जमा कर जीवन में अभागा और बेवकूफ की उपाधि से विभूषित होते हैं। क्योंकि इस नियम के अनुसार समान-समान को आकृष्ट करता है। अतः जब तक तन्त्र के सर्वोत्तम स्वास्थ्य, सफलता, आकर्षण, शक्ति और आनन्द के सिद्धान्तों पर आधारित नई आदतों और संस्कारों को नहीं डाला जायेगा तब तक प्रेयस और श्रेयस प्राप्ति का शुभावसर हमारा दरवाजा नह खटखटायेगा तथा हम कुसंस्कारों के चलते दुर्भाग्य और बरबादी का शिकार होते रहेंगे। सादा जीवन और बचाने की क्षमता आने से हममें नई-नई सूझ आने लगती है। नई-नई योजनाओं से हमारी कल्पनाशीलता भर जाती है। शरीर और मन आत्मविश्वास और उमंग से तरंगित होने लगता है। भरपूर उल्लास तथा आनन्द से भरी हमारी बौद्धिक शक्ति इसी स्थिति में इच्छाशक्ति और क्रियाशक्ति के बीच

सम्पर्क साधन व्यवस्था का कार्य बड़ी आसानी और तेजी से करती है। इसके बाद सफलता हमारे आगे-आगे दौड़ने लगती है।

आज जो हम रोगी, दीन, हीन, मलीन या असफल, अपमानित और दरिद्र हैं वह अपनी आदतों के चलते। हममें बुद्धिवल की कमी नहीं। बौद्धिक-शक्ति को विकसित करने की हममें कुशलता नहीं और इसी स्थिति में अगर हम बेसहारा और बेढंगा दीखते और कहलाते हैं तो कोई आश्चर्य नहीं! बुद्धिहीनता हममें निराशावादिता लाती है और बुद्धिहीन स्वयं तो बर्बाद होता ही है साथ-ही-साथ परिवार, हितैषियों, सभी को ले डूबता है। जबकि बौद्धिक-शक्ति से युक्त व्यक्ति आशावादी होकर मितव्ययी, मितहारी, सक्रिय, सहयोगी और सहकारी बनकर सर्वोत्तम स्वास्थ्य, दया, प्रेम, करुणा, खुशी आदि को दोनों हाथों से बटोरता है और अन्त में एक चमत्कारिक, व्यक्तित्व को प्राप्त कर लेता है। हमें सदा यह याद रखना चाहिए कि हम एक मानवीय चुम्बक हैं और अपने जैसे चरित्र और विचारों वाले लोगों को ही अपनी ओर आकृष्ट करते रहते हैं और खींचते रहते हैं। कर्जखोरी, बचत की आदत (बौद्धिक-शक्ति) का दुश्मन और दरिद्र का मित्र है। भारतीय परिवार का ढाँचा अभी भी सामान्तशाही है तथा माता-पिता अपने बच्चे को लाड़ प्यार और दुलार से बचपन में ही आलसी और शाहखर्च बनाकर उसे बुद्धिहीन बनाने का पूरा उपक्रम कर देते हैं और अन्त में कुपुत्र होने पर सिर धुन-धुनकर पछताते हैं। उनके दिमाग में यह छोटी-सी बात आती ही नहीं कि सादा जीवन और कुछ-न-कुछ बचाने की आदत न डालना बच्चे को परमुखापेक्षी और बुद्धिहीन बनाकर जीवन में रोगी और असफल कराना है। दक्षिणी पूर्वी एशिया के देशों की गरीबी और पिछड़ेपन का मूल कारण है जितनी आमदनी उससे अधिक खर्च। कर्जखोरी कर झूठी इज्जत की रक्षा करना। लक्ष्य चाहे हमारा श्रेयस हो या प्रेयस बिना आर्थिक मदद के कार्यान्वित नहीं हो सकता। वैसे टुकड़खोर बनकर अपने पेट के अभियान में जीवन बिताना प्रेयस और आँखें बन्द कर बैठना को हम श्रेयस मानते हों तो यह संसार नहीं, किसी जेल की काली क़ोठरी ही हमारे लिए श्रेयस्कर होगी। श्रेयस का मार्ग सांसारिक सफलता या प्रेयस की सीमा से होकर गुजरता है। इसलिए बिना सांसारिक सफलता के श्रेयस का अभिनय हो सकता है, प्राप्ति नहीं। प्रेयस की ओर बढ़ा हुआ कदम सम्मानित जीवन यापन के लिए, समाज कल्याण को ध्यान में रखते हुए विभिन्न उद्योग-धन्धों को करता है और कुछ-न-कुछ समाज कल्याण की योजनाओं को कार्यान्वित करता रहता है। मिलावट, चोरबाजारी, घूसखोरी आदि असामाजिक कर्म, समाज को बिना उपयोगी सेवाएं अर्पित किये ही. रातों-रात धन्ना सेठ बनने या बहुत कुछ पाने का कुसंस्कार, बुद्धि हीनता का द्योतक है, प्रेयस की प्राप्ति या बौद्धिक-शक्ति सम्पन्नता नहीं। भूल से हम इसी पागलपन को प्रेयस समझ लते हैं और कर्म से भाग खड़ा होना विराग। यह प्रेयस और प्रेयस का मतलब हमने मध्यकालीन युग की दासता और गुलामी की अवधि में सीखा और आंज स्वतंत्रता कां श्वास लेते हुए भी उसी मनोवृत्ति को पाले हुए हैं। सादा जीवन, उच्च चिन्तन और बचाने की प्रवृत्ति ने ही विश्व

के समस्त बुद्धिमान, चिन्तक, वैज्ञानिक और ऋषि-मर्हिषयों को अपरिग्रह में प्रतिष्ठित कराकर सर्वोत्तम स्वास्थ्य, आकर्षक और आह्लादित व्यक्तित्व को प्रदान किया था। अर्थ-साधना को इसीलिए पुरुषार्थ का एक प्रमुख अंग माना गया है। शाहखर्च होने के कारण ही हम दरिद्र हैं तथा दरिद्रता और नैतिकता परस्पर विरोधी होने के कारण अनैतिक। शाहखर्ची मात्र भूख मिटाने के लिए भी जघन्य अपराध करा सकती है।

बौद्धिक-शक्ति हमारी इच्छाशक्ति और क्रियाशक्ति में सम्पर्क व्यवस्था का काम करती है। इसलिए इनके विकसित न होने के कारण ही हमारी कथनी और करनी में कोई सामंजस्य नहीं दिखता और हम जीवन में रोगी, उपेक्षा, असफलता और दरिद्रता का पात्र बने रहते हैं। इसके विकास के लिए हमें प्रतिदिन कुछ लोगों को आर्थिक, शारीरिक और मानसिक (सांत्वना और अच्छी सीख) मदद करना तथा अन्न-वस्त्र और दवादान की व्यवस्था कर 'यज्ञ' करना, गृह-उद्यान बनाकर अच्छे फल-फूल और साग सब्जियों को उगाने के साथ किसी-न-किसी जानवर को पालकर भूत यज्ञ सम्पन्न करना, अपने में पाने से अधिक करने की आदत डालना, छोटे-छोटे कामों को भी पूर्ण मनोयोग के साथ करना और पत्नी की मदद करना, विलास की वस्तुओं और अनावश्यक खर्चों में कटौती कर कुछ न कुछ बचाने की आदत डालना, सम्मानित जीवन यापन के लिए किसी उद्योग धन्धे को सामाजिक कल्याण की दृष्टि में रखते हुए करना तथा सीमित परिवार रखकर उसकी अच्छी तरह लालन-पालन शिक्षा-दीक्षा की व्यवस्था करना आदि अति आवश्यक है।

भावना-शक्ति

शक्ति जब अन्तर्मुखी होती है तब हमारे अन्दर वास्तविक भावनाशक्ति का स्फुरण होता है और इस स्थिति में हमारी क्रिया शक्ति हमें सक्रिय कर सफल आकर्षक और आह्लादित व्यक्तित्व प्रदान करती है। हमारे सृजनात्मक, रचनात्मक और सात्त्विक विचार इसी स्तर पर बनते हैं और वह आशावादिता और धनात्मकता का रूप ले लेते हैं। इसे ही तांत्रिक भाषा में शक्ति का अन्तर्मुखी होकर शिव कहलाना और शिव का बर्हिमुखी होकर शक्ति का रूप लेना कहा गया है। हम सभी में भावना बल विद्यमान रहता है। केवल उसको रचनात्मक कल्पनाशीलता की ओर मोड़कर शक्ति का रूप देने की कला से अनभिज्ञ होने के कारण प्रायः हम अस्वस्थ और असफल हो जाया करते हैं। विचारों की पतंग तो हम सभी उड़ाते हैं और दूर क्षितिज के पार भी वह चली जाती है। लेकिन वे जो विचार रूपी पंतग की डोर को समेटकर उसे नीचे वास्तविक धरातल पर लाने की कला नहीं जानते या भूल जाते हैं, वे या तो दिवास्वप्न, खिन्नता आदि का शिकार बन केवल मनमोदक खाते और असफल और दरिद्र बन उपेक्षित जीवन बिताते हैं या पागल बन व्यर्थ की लकड़ी सड़क पर बंटोरते और पागल खाने को आबाद करते हैं। विचारों की डोर को समेटने की कला हमें स्वाभाविक रूप से प्राप्त

है केवल उस क्षमता को अन्तर्मुखी कर विकसित करना है। ऐसा नहीं करने के कारण ही हम व्यर्थ के चिन्तन में अपना अधिक समय नष्ट करते और दिवास्वप्न तथा दुश्चिन्ता करके अपनी भावना शक्ति को और वंध्या वना देते हैं। हमारी संस्कृति का विकास, चमत्कारिक विज्ञान एवं साहित्य और कला का अद्वितीय सृजन, भावना शक्ति के प्रजनन का ही प्रतिफल है। हमारी भावना शक्ति वह सांचा है जिसमें हमारे सारे विचार और व्यवहार ढलते हैं। जैसी हमारी भावना होती है वैसे ही हम शारीरिक, मानसिक और संविगिक दृष्टि से होते हैं। हम व्यावहारिक दृष्टि से भी एक दूसरे के मित्र, सहयोगी, प्रेमी आदि भावनात्मक स्तर पर ही बनते हैं। जरा भी भावानाओं को ठेस पहुंची और वर्षों की दोस्ती, अपनत्व और लगाव खत्म। अन्तर्विज्ञान और अतीन्द्रियता प्रत्यक्षीकरण आदि भावना का ही खेल है। हमारे व्यक्तित्व में चुम्बकत्व और आकर्षण भावना शक्ति के चलते ही आता है। स्वगत भावना और परगत भावना के माध्यम से हम जाने अनजाने सृजनात्मक और विकासात्मक विचारों को सीखते हैं।

भावनाशक्ति ही हमारी विचार तरंग है। दूरभाष के आविष्कारक डॉ० ग्राह्म बेल ने बताया है कि विचार तरंग बेतार के तार के तरंग की तरह ही है जो हमारे मस्तिष्क से गुजरता है और निस्सीम ब्रह्माण्ड में प्रवाहित होता है। उसे हमारी ठोस खोपड़ी और शरीर बाधा नहीं पहुंचा पाता। क्योंकि भावना या विचार तरंग इथर से होकर गुजरती है जो हमारे शरीर के अणु-अणु में मौजूद है, भले ही उसका रूप घना और ठोस क्यों न हो गया हो। प्रतिकूल विचार तरंग इसमें बाधा पहुंचाते हैं। इसी कारण से श्रोता के अनुकूल और प्रतिकूल विचार तरंगों से वक्ता उत्साहित और अनुत्साहित देखे जाते हैं। हमारी विचार तरंग या भावना शक्ति एक ही स्वभाव की है। हमारा स्नायुमण्डल भावना तरंग को लेनें और छोड़ने का माध्यम है। वह विद्युत तरंग का भी श्रेष्ठ वाहक है। यही कारण है कि मरे हुआ व्यक्ति के स्नायु के मध्य से विद्युत पास कराने से वह उठ बैठता है और हिलने-डुलने लगता है। यह प्रयोग करके देखा जा चुका है। इस प्रकार हमारी भावना शक्ति या विचार तरंग और विद्युत तरंग एक ही प्रकार की है और दोनों का वाहक इथर है जो सारे व्योम में भरा पड़ा है तथा सारे जड़-जंगम और जीवन में वर्तमान है। जिस प्रकार बेतार के तार के सम्वाद को हम नहीं देख पाते उसी प्रकार विचार-तरंग या भावना-शक्ति को भी नहीं देखते। हमारा मस्तिष्क हमारी भावना-शक्ति या विचार तरंग का प्रसारण और प्राप्ति-स्थान है। इथर ध्वनि, प्रकाश और गर्मी के स्पंदनों का वाहक है और वह सारे व्योम में फैला होने के साथ-साथ मानव मस्तिष्क में भी विद्यमान है। इसलिए भावना शक्ति की तीव्रता के चलते प्रेम, करुणा, सहयोग या घृणा, लोभ, द्वेष आदि के विचार तरंग एक दूसरे को देखते ही पकड़ लेते हैं और जिससे हम घृणा या द्वेष का भाव रखते हैं वह तत्काल बिना बोले समझ लेता है। दो प्रेमी एक दूसरे की भाषा से अनभिज्ञ होते हुए भी भावना-शक्ति की डोर में खिंचकर करीब आ जाते हैं। भाषा भाव की अभिव्यक्ति है इसे ध्यान में रखते हुए ही कहा गया है। अभिनेताओं

का भी यह अनुभव है कि अभिनय करते वक्त स्वाभाविक भाव के अनुकूल भाषा अपने आप रूप लेती है या 'डायलाग' बोलते वक्त वैसी ही स्वाभाविक भावना आ जाती है और दर्शक उसी भाव में बहने लगते हैं। रेडियो सिद्धान्त ने भी उपर्युक्त कथन का अनुमोदन किया है। उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर भावना-शक्ति की महत्ता को जाना-समझा जा सकता है।

प्रश्न उठता है भावना-शक्ति कैसे बनती है या बिगड़ती है तथा उसके विकास या अवरुद्ध होने का कारण क्या है ? वास्तव में हमारा जैसा आज भला-बुरा व्यक्तित्व है वह वंशानुक्रमिक, प्राकृतिक और सामाजिक संस्कारों द्वारा अर्जित भावना-शक्ति का प्रतिफल ही है जिसे स्वगत और परगत भावना के माध्यम से सीखते आ रहे हैं। माता-पिता और पाठशाला के शिक्षकों से लेकर हित-मित्र, होटल-क्लव, सभा-सोसाइटी आदि के रहन-सहन, बातचीत, चाल-चलन आदि से अनजाने हो परगत भावना के माध्यम से सीखते आ रहे हैं। मगर इनके माध्यमों से अनजाने ही हम परगत भावना और अनुकरण द्वारा कुछ बुरी-भली आदतों को भी सीख लेते हैं, कुछ स्वगतभावना द्वारा वंशानुक्रमिक और प्राकृतिक गुणों के आधार पर बुढ़ापा, बीमारी और मृत्यु का भय एवं दरिद्रता, सामाजिक अपमान, प्रिय के विछोह आदि का भय परगत भावना द्वारा हममें आदत और संस्कार का रूप लेते हैं तथा जीवन के हर क्षेत्र में छाया की तरह लगकर हमें रोगी, असफल और दरिद्र बना देता है। इन संस्कारों का पंजीकरण हमारे चित्त के निम्नस्तर, अवचेतना में हो जाता है और धीरे-धीरे हमारा ही रस पी-पीकर हमें ठूंठ और निकम्मा बना देता है। क्योंकि इसकी युग्म धाराएं निराशावादिता और ऋणात्मकता की होती हैं जो भावना-शक्ति को क्षीण करने का काम करती हैं।

स्वाध्याय के सिद्धान्तों के आधर पर ही इन कुसंस्कारों को हटाया जा सकता है। स्वाध्याय की तीन विधियाँ हैं शुभभावना, स्वाध्यायभावना और सत्संगभावना। सुसंस्कारी वाक्यों को साफ-साफ लिखकर नित्यप्रति, ध्यान के अभ्यास के बाद 5 मिनट तक बार-बार दुहराना और इष्ट मंत्र का जाप करना, अवचेतन मन के कुसंस्कारों को दूर भगाना और सुसंस्कारों को डालने की सरल और सुगम विधि है। इसी विधि से कुसंस्कारों को क्षय कर और सुसंस्कारों को डालकर भावनाशक्ति को विकसित करने की भूमिका तैयार की जा सकती है। स्वाध्याय भावना लक्ष्य सम्बन्धी ग्रन्थों और पुस्तकों का सक्रिय अध्ययन और अध्यापन है। बिना स्वाध्याय भावना यह सीखने और समझने के सक्रिय प्रयत्नों के हमारी भावना-शक्ति का विकास हो ही नहीं सकता। विभिन्न ग्रन्थावलोकन, देश-विदेश परिभ्रमण, स्कूल कॉलेज में अध्ययन आदि स्वाध्याय भावना से ही उपयोगी सिद्ध हो सकता है। सत्संग भावना कुसंगति से वचाने और सुसंगति में डॉलकर विजातीय बुरे गुणों से भरे हुए होने पर भी आकर्षण नियम के अनुसार अच्छी संगति से अच्छा संस्कार डालने का नियम है। किसी शुभ कार्य के लिए इकठ्ठी सुसंस्कारी भीड़ में कुछ कुसंस्कारी भी अच्छे हो जाते हैं। इसे ध्यान में रखते हुए ही संस्कारोत्सव, धार्मिकोत्सव

या सांस्कृतिक सम्मेलनों का विधान कर सत्संगति भावना से भावना-शक्ति को विकसित कराया जाता है।

भावना-शक्ति ही हमारी कल्पनाशीलता है जो हमारे मस्तिष्क की निर्माणशाला है। स्वाध्याय की विधियों द्वारा संगठित ज्ञान हमारे नये-पुराने अनुभवों से मिश्रित होते रहते हैं और भावना-शक्ति को विकसित कर सफल, आकर्षक और आह्लादित व्यक्तित्व प्रदान करते हैं। भावना-शक्ति ही हमारी रचनात्मक क्षमता है। जिन सामानों से हमारे लक्ष्य का निर्माण और प्राप्ति होती है वे हमारी कल्पानाशीलता की निर्माणशाला में ही जोड़-जोड़कर खड़ा किया जाता है। आत्मविश्वास, उमंग और उद्यमशीलता का निर्माण सर्वप्रथम हमारी भावना-शक्ति द्वारा कल्पनाशीलता में होता है। क्रियाशक्ति, मनःशक्ति तथा बौद्धिक शक्ति की वृद्धि में इसका बहुत बड़ा हाथ होता है। इसी शक्ति से स्वगत और परगत भावना द्वारा हमारी अवचेतना में भरा पड़ा कूड़ा-करकट स्वरूप कुसंस्कार या ऋणात्मक और निराशावादी भावनाओं का क्षय किया जाता है। शुभभावना, स्वाध्यायभावना और सत्संगभावना के माध्यम से सुसंस्कार का बीजारोपण किया जाता है। सर्वप्रथम कोई भी इच्छा हमारी कल्पना में उठती है और उसमें से एक, लक्ष्य का रूप ले लेती है। उस लक्ष्य की प्राप्ति की योजनाएँ भी हमारी कल्पनाशीला में ही तैयार होती हैं और इसी निर्माणशाला में काट-छांट कर परस्पर गढ़ी, जोड़ी और खड़ी की जाती हैं। इतना होने के बाद ही हमारी क्रियाशक्ति उस लक्ष्य को साकार रूप दे देती है। हमारी भावनाशक्ति की कल्पना संश्लेषणात्मक और विश्लेषणात्मक दोनों है। इसलिए जिस प्रकार रेडियो स्टेशन के ध्वनि-पकड़-यंत्र में ध्वनि के स्पंदन को पकड़ने की क्षमता होती है उसी प्रकार बाह्य श्रोताओं के गत्यात्मक विचार स्पंदन की लहरों को हमारी कल्पना में पंजीकरण कर लेने की क्षमता होती है। कल्पनाशीलता के इस विश्लेषणात्मक और संष्लेषणात्मक प्रक्रिया का ही नाम अतिन्द्रिय-प्रत्यक्षीकरण या टेलीपैथी है। हमारी भावनाशक्ति में इथर-स्वरूप विचार स्पंदनों को अपनी ओर आकृष्ट करने की अद्भुत क्षमता होती है तथा इसी कारण से ऋृणात्मक या निराशावादी विचार स्पंदन वाले व्यक्ति के इर्द-गिर्द आत्महीन, निराश्य, अपराधी, भावनाग्रस्त, दरिद्र और असफल व्यक्तियों का जमघट लगा रहता है। आज संसार में ऋणात्मक विचार-स्पन्दन वाले इतने लोग भरे पड़े हैं कि किसी प्रकार की असफलता और दुर्घटना के शिकार होने पर पूछताछ करने और संवेदना प्रकट करने वालों की भीड़ लग जाती है लेकिन अच्छा काम करने या जीवन के किसी विशिष्ट क्षेत्र में सफल होने पर शायद ही किसी के हृदय से गुण विवेचनात्मक और उत्साह के दो शब्द निकल पाते हैं। अधिकांश सगे-सम्बन्धी और मित्र हमारी सफलता पर ईर्ष्या से भर जाते हैं। अखबार जन-मनोवृत्ति का आइना होता है। इसलिए अखबारों में अपराध, शोकसम्वाद और आलोचना ही अधिक छपते हैं क्योंकि गुण विवेचन में आड़े हाथों अपने अवगुण, असफलताएं और अनाकर्षण जो आ जाते हैं। साथ-साथ ऐसी खबरों को रुचि लेकर पढ़ने वाले पाठक अधिक होने के कारण अखबार की खपत भी अधिक होती है। इसी श्रेणी के अखबारों में कई ऐसे हैं जिनमें एक तरफ अपराध

की खबरों और नारी के नग्न चित्रों से 98 प्रतिशत पृष्ठ भरे रहते हैं और 2 प्रतिशत पृष्ठ किसी बड़े नेता के प्रशस्ति गान, चाटुकारिता और चापलूसी से भरा होता है एवं उसे ही अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की पत्रिका कहकर पुरस्कृत किया जाता है।

हमें अपनी भावनाशक्ति का महत्त्व तब मालूम पड़ता है जब हम स्वाध्याय साधना द्वारा उसे नियंत्रित कर लेते हैं या रचनात्मक कल्पनाशीलता का विकास कर लेते हैं। इसके अनियंत्रित होने पर हमारे विचारी रूपी पतंग खूब उड़ान भरती हैं, क्षितिज के उस पार चली जाती है। लेकिन इस स्थिति में विचार पतंग की डोर को समेटने की कला हम भूल जाते हैं और कटी पतंग की तरह हवा के झोकों के अनुकूल गिरते-पड़ते रहते हैं। हमारे विचारों की तारतम्यता और एकता भंग होने और विक्षिप्त बनने का यही कारण है। अतः हमारे अन्दर अगर किसी चीज की वास्तविक कमी है तो वह है अपनी भावनाशक्ति को विकसित करने के लिए स्वाध्याय में प्रतिष्ठित होना और कल्पनाशीलता को अच्छी तरह समझने एवं उसे समझ-बूझकर उसकी सृजनात्मक तथा स्पन्दनात्मक शक्ति को लक्ष्य-प्राप्ति के लिए उपयोग में लाना। अपनी कल्पनाशीलता को प्रयोग में लाकर कम समय में ही दुश्चिन्ता, दरिद्रता, दलन, दोहन और उत्पीड़न आदि को खत्म किया जा सकता है। हमारा प्रत्येक विचार-स्पंदन अपने आप सम्पर्क में आने वालों के मन में पंजीकृत होने लगता है। यही है मानवीय आकर्षण नियम। यही वास्तविकता है, गप नहीं। यहां लक्ष्य को इष्ट बनाकर कठिन-से-कठिन काम कर लेने का रहस्य है। हमारी कल्पना सम्बद्ध होती है भूल-चूक से। सिर्फ इसकी क्षमता को बढ़ाने के लिए आशावादिता, सात्त्विक और धनात्मक विचारों को प्रोत्साहन मिलना चाहिए। हमारे व्यक्तित्व के लिए यह छोटी-सी बात बहुत महत्त्वपूर्ण है। यह हमें यह सोचने को विवश करती है कि हम अशुभ सम्वाद देने और शिकायत करने वाले व्यक्ति हैं या बरदाश्त की क्षमता को विकसित कर गुण विवेचन करने और यथार्थचिन्तन में प्रतिष्ठित हो शुभ-सम्वाद देने वाले हैं। हमें यह कभी न भूलना चाहिए कि गम्भीर और विवादास्पद विषय का निबटारा शान्ति, धैर्य और सुलह कराने की कल्पनाशीलता से होता है। इसमें जल्दी करना, गुस्सा करना चिल्लाना या भागना अपनी भावनाशक्ति का दिवालियापन घोषित करना है, बन्दरघुड़की दिखाना है। यही है हमारी असफलता, दुर्दिन और हार।

हमारी सुस्ती और आलसपन की आदतों का भी प्रमुख कारण भावनाशक्ति को स्वाध्याय की विधियों से विकसित न करना है। सोते में जो हमारा चिन्तन होता है वह स्वप्न और जागते में बिना क्रियाशील बने जो चिन्तन होता है, उसे दिवास्वप्न कहते हैं। लेकिन जब संगठित और व्यवस्थित चिन्तन हमारे शरीर और मन को तरंगित कर क्रियाशील बना देता है तब वह भावनाशक्ति का रूप ले लेता है। वास्तव में हमारा शरीर अति स्पंदनशील कोष्ठकों का बना है जो भावनाशक्ति या कल्पनाशीलता द्वारा मन स्पंदित होते ही तरंगित होने की क्षमता रखते हैं। यही कारण है कि मन आलसी और सुस्त होने से शरीर भी आलसी और सुस्त,

हो जाता है तथा शरीर सुस्त, आलसी और रोगी रहने से मन को भी सुस्त आलसी और रोगी बना देता है। इसीलिए शास्त्रों में नित्य स्नान करने आदि द्वारा शौच या यथार्थ चिन्तन में प्रतिष्ठित होने की राय दी गई है। आलस और सुस्ती महसूस होने पर हमें गर्म और ठंडे पानी से बारी-बारी से स्नान कर लेना चाहिए। इससे शरीर तरोताजा हो, मन में स्फूर्ति ला देता है। हमें यह कभी न भूलना चाहिए कि सर्वोत्तम स्वास्थ्य, आकर्षण और आह्लाद रूपी शिव के साथ-साथ ही शक्ति बनी रहती है।

निर्भीकता और उद्योगशीलता का अपने अन्दर बढ़ाना या शौच में प्रतिष्ठित होना, भावनाशक्ति को विकसित करना है। मानसिक अनुशासन हीनता ही आभ्यंतरिक अशौच है और यह अनजाने ही शारीरिक और बाह्य अशौच में अभ्यस्त हो जाने के कारण आ जाती है। इसके कारण हममें व्याकुलता और जल्दबाजी की आदत पड़ जाती है तथा हममें ईष्या, घृणा, द्वेष और भय का बीज बोती रहती है। इससे हमारी पाचनक्रिया रक्त संचार और हृदय गति पर बड़ा बुरा प्रभाव पड़ता है तथा मन नैराश्ययुक्त हो ऋृणात्मक विचारों से भर जाता है। इससे जीवन में सफलता और निरोग के कई तत्त्व उद्यमशीलता, निर्भीकता, उत्साह आदि नष्ट हो जाते हैं। हम नित्य अनुभव करते हैं कि हमारा प्रत्येक भला-बुरा विचार मन में आते ही अपना कार्य प्रारम्भ कर देता है और मस्तिष्क तत्क्षण हमारे शरीर के सारे चित्ताणुओं को प्रभावित कर देते हैं। इसी कारण से भयाक्रान्त होने पर तत्क्षण हमारे रोंगटे खड़े हो जाते हैं, चेहरे का रंग उड़ जाता है और किंकर्तव्यविमूढ़ावस्था में हम कांपने लगते हैं। इसी प्रकार हमारी बाह्य क्रियाएं या शारीरिक अशौच, मानसिक दृष्टि से अकर्मण्य, सुस्त और आलसी बना देती हैं।

हमारी व्याकुलता, दुश्चिन्तन और जल्दबाजी का मूलकारण बाह्य और आभ्यंतरिक अशौच ही है जिससे भावनाशक्ति अत्यधिक क्षीण होती है। भय चाहे बुढ़ापा, बीमारी और मृत्यु का हो या दरिद्रता, अपमान या प्रिय वस्तु या व्यक्ति के विछोह का, चाहे हम बड़े हों या छोटे, ऐश्वर्यशाली हों या दरिद्र, विद्वान हों या मूर्ख, सब पर किसी-न-किसी रूप में सवार होता है। अगर हममें भय की मात्रा अधिक रहती है तो ये भय का भूत भावनाशक्ति की योजनाओं को कार्यान्वित करने में सफलता प्राप्ति के ऐन मौके पर धावा बोलकर हमें असफल बना देते हैं। यह सब कुछ अनजाने में ही हो जाता है और सब कुछ लुटा चुकने के बाद भी उसका ज्ञान हमें नहीं हो पाता है। हम 'बीमार हैं या इस काम को करने में कहीं बीमार न हो जायं, कहीं घाटा हुआ, दिवालिया हो गये या दोस्तों ने धोखा दे दिया तो हमारे बुढ़ापे का क्या होगा, कहीं इस काम में हमारी जान न चली जाय, आदि इन भय-रूपी भूतों के ऋृणात्मक निराशावादी और तमोगुणी निर्देश हमें प्राप्त होने लगते हैं जिससे लक्ष्य की प्राप्ति की योजनाओं के कार्यान्वयन में हमारी मनःशक्ति क्षीण हो जाती है, आत्मबल गिर जाता है और हिम्मत हार कर हम बीच रास्ते में ही बैठ जाते हैं या आगे बढ़ने के बजाय पीछे मुड़ जाते हैं। इसी प्रकार दरिद्रता का भय, सामाजिक असुरक्षा के कारण होता है।

हिंसावृत्ति को मनुष्य ने वंषानुक्रमिक रूप में विभिन्न योनियों की दर्दनाक और निर्दयतापूर्ण अपनी हत्या होते रहने से पाया है, जिसे मानव योनि में वह एक दूसरे की हत्या कानूनी भय और विवेकी होने के कारण कर नहीं पाता इसलिए मौका पाते ही वह एक दूसरे का शिकार आर्थिक दृष्टि से करता है। इसका सबूत है दुनिया के कानून की किताबों का 90 प्रतिशत पन्नो का मानव द्वारा मानव के आर्थिक दलन, दोहन और दमन से बचाव के नियमों से भरा होना। जानवर मूल प्रवृत्ति से संचालित होने के कारण शारीरिक शिकार करता है पर मानव चिन्तनशील और विवेकी होने के कारण पशु से भी अधिक हिंसक होकर आर्थिक आक्रमण करता है और दुश्मन के सारे परिवार को ही तड़पा-तड़पा कर मार डालता है। इसी प्रकार अपने आत्मीय जन के स्नेह और प्यार के खो जाने का भय हमें ईर्ष्यालु और विद्रोही स्वभाव का बना देता है, जो एक सामाजिक मान्यता प्राप्त पागलपन के सिवा और कुछ नहीं है। इन भूतों के चक्कर में किसी व्यक्ति की भावनाशक्ति ही विकृत हो जाती है और अपने साथ-ही-साथ समाज और राष्ट्र को ही वह बरबाद कर देती है। आलोचना का भय तो हममें छिपकर कुकर्म करने का संस्कार डाल देता है और इससे हम अपराधवृत्ति और आत्महीनता के शिकार हो, अपनी भावनाशक्ति को विकसित नहीं कर पाते और जीवन में असफल, दरिद्र और दुखी बने रहते हैं।

निर्भीकता, उद्योगशीलता की क्षमता को बढ़ाकर अपनी भावनाशक्ति को विकसित करने की दो विधियां हैं। दीर्घसूत्रता या बहाना बनाकर टालने की प्रवृति को दूर भगाना और स्वाध्याय के नियमों द्वारा अवचेतन मन में लक्ष्य से सम्बंधित सात्विक रचनात्मक या धनात्मक विचारों को सदा भरते रहना। हमें यह कभी न भूलना चाहिए कि सात्त्विक विचार आशावादी और धनात्मक होते हैं और तामसिक विचार निराशावादी और ऋणात्मक। भावनाशक्ति को विकसित कर सफलता और प्रसन्नता प्राप्ति का एक ही रास्ता है, दूसरों को सुखी करना एवं दूसरों की सेवा और मदद के बदले में अपने अन्दर उद्योगशीलता की आदत और संस्कार को डालना। किसी व्यक्ति से अकारण झगड़ा मोल लेना, उसे क्षति पहुंचाने का प्रयत्न करना, उसे किसी काम को करने में हतोत्साहित करना, आदि क्षतिपूर्त्यात्मक नियम के अनुसार अपने में ही उन अवगुणों को विकसित करना और भावनाशक्ति को क्षीण तथा दूषित कर जीवन में असफल बनाना है। भावनाशक्ति में विकसित व्यक्ति की बुराई, उपहास या बदनामी कर कोई उसका कुछ बिगाड़ नहीं सकता बल्कि उसकी योग्यता पर और रोशनी डालकर उसे अधिक विख्यात बना देता है। भावनाशक्ति के दृढ़ होने से हममें यथार्थ ज्ञान के प्रति निष्ठा, दूसरों के समक्ष उसे व्यक्त करने की क्षमता तथा स्वाभिमान का भाव आता है। शारीरिक, मानसिक दृष्टि से साफ रहना, सही राय देने की क्षमता रखना और यथार्थ काम करना ही नैतिक प्रभुत्व है और यह आता है भावनाशक्ति के विकसित होने के बाद ही। हमें यह कभी न भूलना चाहिए कि जैसी हमारी भावनाशक्ति होती है वैसा ही हम सोचते, बोलते और करते हैं। वह हमारे बाह्य आकृति से साफ-साफ झलकता

रहता है, प्रतिबिम्बित होता रहता है तथा वैसे ही लोगों को अपने इर्द-गिर्द हम इकट्ठा कर 'जैसी संगति वैसे हम' की उक्ति चरितार्थ करते हैं।

भावनाशक्ति को विकसित करना अपने यथार्थ चिन्तन को बढ़ाना या संतोष में प्रतिष्ठित होना है। पशुओं में जिन वृत्तियों का नियंत्रण स्वयं प्रकृति करती है, उसे वह हमारी बुद्धि पर छोड़ देती है। क्योंकि हम अपने शरीर, मन, प्राण और बुद्धि पर प्रकृति से कहीं अच्छा विवेकपूर्ण नियंत्रण स्वयं कर सकते हैं। प्रकृति के इस नियम के साथ हम सहयोग तभी कर सकते हैं जब हम स्वयं आहार-विहार में नियंत्रित हों। आपस में हम एक दूसरे के साथ मिल-जुलकर रहें एवं सबके लिए भले की शुभभावना रखें। प्रकृति के साथ इस प्रकार सहयोग किये बिना हम भावनाशक्ति को विकसित कर स्वास्थ्य और सफलता की आशा ही नहीं कर सकते। अगर हम अपनी असीमित इच्छाओं और उसकी प्राप्ति के आज तक के प्रयत्नों को वैज्ञानिक दृष्टिकोण से देखें तो पायेंगे कि जन्म से लेकर मृत्यु तक हमारा मन उसे ही प्राप्त करने का प्रयत्न करता है जो हमारे पास नहीं है या पुराना पड़ गया है। अपना खिलौना फेंककर दूसरों के खिलौनों के लिए हम बचपन में ललचाते रहे। नवजवानी में दूसरों का ओढ़न-पहिरन, साज-सामान, खान-पान और जोरू-जाता अधिक आकर्षक लगता रहा और बुढ़ापे में अपना भाग्य दूसरों के समक्ष खोटा दीखता रहा। हमें सदा बाड़े के दूसरी ओर की घास अधिक हरी लगती रही। इसी कारण कुंवारे अपने को मूर्ख समझते और विवाहित अपने भाग्य को कोसते हैं।

यथार्थ चिन्तन की क्षमता को न बढ़ाने या संतोष में प्रतिष्ठित न होने के कारण जीवन के हर चौराहे पर असंतोष हमारा स्वागत करता है और हर मोड़ पर मुड़ने का इशारा करता है और अन्त में भावनाशक्ति को ही चक्करों में डाल कर ले डूबता है। असंतोष ही वह अस्त्र है जिससे हमारी भावनाशक्ति का अधिक हनन होता है और हम स्वगत भावनाओं के द्वारा भय, नैराश्य और अशान्ति सीखने लगते हैं और यह सोचते हैं कि यह शरीर रोग का घर है और यह संसार दुःख और अशान्ति का सागर है। हमारी इस कमजोरी का फायदा उठाकर ही विभिन्न सम्प्रदाय वाले अपनी दुकान खोले मिलते हैं और परलोक या स्वर्ग के हरे-भरे सर-सब्ज बाग के चक्कर में हमें फंसा लेते हैं। इस प्रकार खुशी और शान्ति की खोज में हम और अधिक दुःखी और अशान्त हो जीवन भर भटकते और संघर्ष करते रह जाते हैं। वास्तव में हमारा मन चाहता है सुन्दरता, आनन्द और मग्नता को प्राप्त करना जिसे किसी भी कीमत पर हम बाहर नहीं प्राप्त कर सकते और न किसी इच्छा विशेष की तृप्ति से ही यह उपलब्ध हो सकता है। लक्ष्य प्राप्ति की इच्छा ही मनोहारी होती है। प्रकृति ने हमारी मानसिक बनावट ही ऐसी कर दी है जिससे अपने भविष्य को पाने के प्रयत्नों में ही स्थायी आनन्द, शान्ति और सुन्दरता पाते हैं जोकि भावनाशक्ति को बढ़ाकर यथार्थ चिन्तन से ही सम्भव हो सकता है।

हमारा यथार्थ चिन्तन अपने लक्ष्य से सम्बन्धित सारे तथ्यों का संकलन और

तत्सम्बन्धी यथार्थ चिन्तन, विना अपने घरौंदे से वाहर निकले नहीं हो सकता। 'लड़के को पढ़ाइये, नहीं तो खूब घुमाइए' की उक्ति यथार्थ चिन्तन की आदत को डालकर भावनाशक्ति को विकसित कराने का सरल और सुगम तरीका है। हम घर या निवास स्थान को प्रायः छोड़ना नहीं चाहते। अपने सगे-सम्बन्धी से दूर होना हम पसन्द नहीं करते क्योंकि प्रायः हम जीवन में असफलता की ही आशा करते हैं। हम परिवार-हित-मित्र से जीवन में अशान्त, दुःखी और असफल होने पर सांत्वना के दो शब्दों की आशा करते हैं। ऐसे व्यक्तियों में सफलता की नहीं स्वजनों से संत्वाना की अधिक भूख होती है तथा वे प्रारब्ध और भाग्य की दुहाई देकर अपने मन को मनाते या संतुष्ट होने का नाटक करते हैं। ऐसे लोग लोभी और लालची होते हैं। और कमजोर सगे सम्बन्धी या कमजोर वर्ग के लोगों या परिवार के सदस्यों को ही सताया करते हैं और बढ़-बढ़कर बातें किया करते हैं। भावनाशक्ति को विकसित करने के लिए यर्थाथ चिन्तन "चरैवेति चरैवेति" को सदा याद रखना होगा। अपने गाँव, शहर और परिवार के घरौंदे से बाहर निकलकर सफलता प्राप्ति के मौके की खोज करनी होगी और इसकी प्रतीक्षा में परेशानी एवं कष्ट के मौका पर सामना कर सफलता की आशा में आनन्द और शन्ति का अमृत पान करना होगा। हमें यह कभी न भूलना चाहिए कि सफल, आकर्षक और आह्लादित व्यक्तित्व काँटों का ताज है, फूलों की सेज नहीं। बिल्ली भी अपने बच्चे को प्रायः सात-आठ घर बच्चों की आँखें खोलते ही घुमाया करती है और उसे अपने पैर पर खड़ा कर चिन्तामुक्त हो जाती है। लेकिन हम विवेकशील होते हुए भी इस निम्न पशु व्यवहार की उपयोगी आदत को न अपना कर अपने को उससे भी निम्नतर बनाते जा रहे हैं। अपने घर से बाहर निकलने पर ही हम विभिन्न प्रकार के लोगों के सम्पर्क में आते हैं, विभिन्न विचारों का आदान-प्रदान होता है तथा अगर हम गंदी आदतों के शिकार हैं तो उपेक्षा, ताड़ना और तिरस्कार पाते हैं। एवं अपने आंप में सुधार लाने तथा तथ्यात्मक चिन्तन करने के लिए बाध्य होकर अपनी भावनाशक्ति को विकसित करते हैं।

हममें तन्मयता यर्थाथ चिन्तन से ही आती है। हममें प्रायः दूसरों में दोष देखने की प्रवृत्ति होती है और उसी के चलते अफवाह फैलाने और बुराई करने में हम कुशल हो जाते हैं। एक भावनाशक्ति से पूरित व्यक्ति न दुश्मन की कमजोरी को बढ़ाचढ़ा कर कहता है और न उसे घटाकर देखता है। आलोचक भी झूठी अफवाहों को फैलाकर हमारे कामों में रोड़ा अड़ाने का प्रयत्न करते हैं और अपनी आधारहीन अफवाहों की तलवार हमारी गर्दन पर खड़ी कर देते हैं। ऐसी हालत में अगर हमारी भावनाशक्ति विकसित नहीं रहती तो यथार्थ चिन्तन या तथ्यात्मक चिंतन के अभाव में वह तलवार हमारी गर्दन पर सीधी आ लगती है जिससे घृणा का भूत हम पर सवार होकर हमें जीवन में रोगी, असफल बना देता है। भावनाशक्ति जिसकी विकसित होती है वह दूसरों से उस वस्तु को पाने की कभी कोशिश नहीं करता जिसके लिए उसने कोई प्रयत्न नहीं किया होता है या जहाँ

पुरस्कार से अधिक उपेक्षा ही मिलने की सम्भावना होती है। वह दूसरों को धोखा भी नहीं देता क्योंकि वह स्वयं अपने को धोखे में नहीं रखता। इसे समझने के लिए हमें यर्थाथ चिन्तन के क्रमिक विकास को समझना होगा।

मानव जीवन का विकास जड़ जंगम और पशु स्तर को पार कर चुका है इसे ही ऋृषियों ने चौरासी लाख योनि भ्रमण कर मनुष्य का शरीर पाना कहा है। हमारे चिन्तन पर भी ये तीनों प्रमुख स्तर देखने को मिलते हैं। जड़-स्तर के चिन्तन के स्तर पर या तो हमारी बुद्धि का समुचित विकास नहीं हुआ होता है और पत्थर की तरह स्थिर बने रहते हैं या बुद्धि का विकास होते हुए भी आलसी होकर पूरे गोबरगणेश बन जाते हैं या जड़भरत की तरह जिस बात पर अड़ते, चाहे वह बिल्कुल गलत और बुरी बात ही क्यों न हो, अड़े रहते हैं। जंगम स्तर का चिन्तन थोड़ा परिष्कृत रूप में जड़ स्तर के चिन्तन का ही रूप होता है। पेड़ों के फल-फूल देने के बावजूद भी स्थिर रहने की तरह हमारा चिन्तन भी, बड़ी जहाज की तरह लंगर डाले खड़ा रहता है। पशु स्तर पर हमारा चिन्तन जानवरों की तरह ही आवेगों-संवेगों से संचालित होता है तथा हम पर विभिन्न वृत्तियों का सतरंगा रंग इस प्रकार चढ़ा देता है कि हम रंगे सियार से भिन्न नहीं दिखते। वास्तव में मानव चिन्तन ही रचनात्मक, धनात्मक, सात्त्विक और सुसंगठित चिन्तन है जो बिना भावनाशक्ति के विकास किये सम्भव नहीं।

इस प्रकार भावनाशक्ति का विकास स्वाध्याय में प्रतिष्ठित हो रचनात्मक कल्पनाशीलता की क्षमता, शौच में प्रतिष्ठित हो निर्भीकता और उद्योगशीलता की क्षमता, संतोष में प्रतिष्ठित हो यर्थाथ चिन्तन की क्षमता को बढ़ाकर किया जा सकता है। इसके लिए शुभभावना, स्वाध्याय भावना और सत्संग भावना की विधि का अनुसरण करने, बाह्य और अभ्यान्तरिक सफाई एवं स्वच्छ रहने और दूसरों को प्रसन्न रखने एवं अपने घेरे से बाहर निकल कर यर्थाथ चिन्तन की क्षमता को बढ़ाना होगा।

क्रियाशक्ति

क्रियाशक्ति हमारी संगठनात्मक, सहयोगात्मक और समन्वयात्मक शक्ति है। इसी स्तर पर हमारा इच्छाबल, मनोबल, बुद्धिबल और भावनाबल शक्ति का रूप लेकर हमें सफल, आकर्षक और आह्लादित व्यक्तित्वं प्रदान करता है। वास्तव में 'बल' शक्ति और क्रिया एक ही तत्त्व का नाम है। जब वह सुषुप्तावस्था में निष्क्रिय रहता है तो 'बल' जब कार्य करने के लिए सक्रिय होता है तब शक्ति, जब वह कार्यरत होता है तब क्रिया कहलाता है। इस प्रकार मनुष्य मात्र में ही बल का भण्डार है। केवल उसे सक्रिय करने की आवश्यकता है। फिर शक्ति सम्पन्न होते देर नहीं लगती है और इस स्थिति में जो भी वह कार्य हाथ में लेता है उसमें उसे सफलता मिलती ही है। सक्रियता या क्रियाशक्ति ही हमारे उत्तम स्वास्थ्य, सफलता, आकर्षण और आनन्द का केन्द्र बिन्दु है। इच्छाशक्ति का क्रियाशक्ति

में परिणत होते ही लक्ष्य साकार बन जाता है। मनःशक्ति क्रियाशीलता के लिए संचार-साधन व्यवस्था का कार्य करती है और बौद्धिकशक्ति सम्पर्क साधन-व्यवस्था का। लक्ष्य सम्बन्धी सारे तथ्य का सुधार कर भावनाशक्ति के निर्माणशाला में योजनानुकूल गढ़कर खड़ा किया जाता है और क्रिया आधारित होती है तब उसका साकार रूप देती है। इस प्रकार हमारी विभिन्न शक्तियां हमारी क्रियाशक्ति पर ही आधारित हैं और केवल हमारी क्रियाशीलता के अभाव में निष्क्रिय और बेकार हो जाती हैं। वस्तुतः हमारी क्रियाशीलता ही विभिन्न शक्तिसम्पात कराती हैं। इस दृष्टि से हमारे व्यक्तित्व निर्माण में क्रियाशक्ति की ही आधारभूत भूमिका होती है।

हमारी बाह्य अभिव्यक्ति कर्मों के रूप में ही होती है। इसलिए काम ही हमारी पहचान है, परिचय है। क्रियाशीलता से हमारी सुषुप्त शक्तियां जो 'बल' के रूप में निष्क्रिय और बेकार पड़ी रहती हैं स्पष्ट, अभिव्यक्त और सक्रिय होकर रोगी को स्वस्थ और असफलता को सफलता में परिवर्तित कर अदृश्य को हमारे सामने साकार खड़ा कर देती हैं। अतः हमारी क्रियाशक्ति ही अपना स्वरूप है और उसे अनुभव करना या साकार करना ही स्वतंत्रता है। एक निष्क्रिय और आलसी व्यक्ति अपनी स्वतंत्रता को कभी भी कायम नहीं रख सकता। इसे ही ऋषियों ने कर्म में प्रवृत रहते हुए सौ वर्ष जीने की इच्छा करने का निर्देश दिया है। सच्ची आध्यात्मिकता क्रियाशील रहकर अपनी विभिन्न आन्तरिक शक्तियों और बाह्य शक्तियों में संतुलन बनाये रखना है। क्रियाशक्ति हमें सक्रिय करती है। इसीलिए क्रियाशील व्यक्ति को काम करने में आनन्द मिलता है और खेल-खेल में उसे पूरा कर देता है। योगेश्वर श्री कृष्ण के सारे विकट कार्यों को इसी कारण कृष्ण-लीला या आनन्द का खेल कहा जाता है। एक सक्रिय व्यक्ति के पास केवल आनन्द ही रहता है जिससे खेल-खेल में बड़े-से-बड़ा काम वह कर देता है। जिसके पास जो वस्तु होती है उसी को वह बढ़ाता है। इसलिए निष्क्रिय होने पर हम दुखी और निराश होते हैं तथा दूसरे को भी निराशा और दुःख बांटते हैं। इसी प्रकार सक्रिय होने पर हम आनन्दित और आशावादी होते हैं और दूसरों को आशावादिता और आनन्द बांटते हैं तथा अपने चारों ओर आनन्द और आशा की किरण फैला देते हैं। योगियों और साधकों के समक्ष शक्ति और आनन्द मिलने का रहस्य यही है।

हमारी क्रियाशक्ति का स्रोत है हमारा अवचेतन मन। यह वह खेत है जिसमें रचनात्मक, धनात्मक, निर्माणात्मक या सात्त्विक विचार रूपी खाद और यंत्र से लक्ष्य रूपी बीज चेतनमन में अंकुरित होता है। अगर ईष्या, द्वेष, घृणारूपी बीमारियों के कीटाणुओं से इसकी समुचित रक्षा की गई तो फसल अच्छी होती है वरना खड़ी फसल ही नष्ट हो जाती है। हमारा अवचेतन मन, चित्त का निम्नस्तर होने के नाते, फोटो कैमरा के प्लेट की तरह है जिस पर किसी प्रकार का चित्र अंकित हो जाता है। वह यह नहीं विचार करता कि किस प्रकार का चित्र खींचना चाहिए और किस प्रकार का नहीं। उस कैमरे का लेन्स हमारी स्वगत भावना और परिणत

भावना है और चेतनमन शटर का काम करता है। बुद्धि चित्र को धोती और साफ करती है इसके बाद ही हमारे वास्तविक व्यक्तित्व का चित्र सामने आता है।

इस प्रकार हमारी क्रियाशक्ति को विकसित करने में हमारी स्वगत और परगत भावना का प्रमुख हाथ होता है। इसी पर हमारी एकाग्रता निर्भर करती है। एकाग्रता क्रियाशक्ति के विकास के लिए अति आवश्यक है। किसी इच्छित वस्तु या विषय पर मन को एकाग्र करने से ही हम उसे दत्तचित्त हो समझते-बूझते और अनुभव करते हैं। एवं हमारा मन उस वस्तु या विषय पर तब तक स्थिर रहता है जब तक हमारी क्रियाशक्ति उसे प्राप्त न कर ले। हमारे चित्त के तीन स्तर होते हैं–अवचेतना, चेतना और अतिचेतना। साधना विज्ञान में अवचेतना को प्राण, चेतना को मन और अतिचेतना को आत्मा कहते हैं। हमारे प्राणिक आवेग-संवेग तथा वंशगत, जातिगत और समाजगत संस्कार अवचेतना में सुरक्षित रहते हैं और उसी के कारण हमारा मन (चेतना) चंचल रहता है।

हमारा चित्त एक सरोवर की तरह है जिसके निचले स्तर का अधिकांश जल आवेग-संवेग और पूर्व संस्कारों से अस्थिर और गंदला रहता है। अतिचेतना उस सागर के ऊपरी सतह के जल से थोड़ा नीचे होता है और चेतना सागर के जल का ऊपरी स्तर होता है। अवचेतना की अस्थिरता या सागर के अधिकांश निचली सतह के अस्थिर और उद्वेलित होने से ऊपरी सतह का जल चेतना या मन भी अस्थिर और चंचल रहता है जिससे नीचे की गन्दगी ऊपर आती रहती है और सब कुछ अस्थिर बना रहता है। ध्यान की साधना और अभ्यास से चंचल मन को स्थिर करने की कृत्रिम प्रतिरोधात्मक क्रियाएं की जाती हैं जिससे चंचल चित्त की चंचलता स्थिर होने लगती है और किसी वस्तु या विषय पर एकाग्र होने की क्षमता हममें आ जाती है। स्थिर चित्त में ही क्रियाशक्ति का विकास होता है और अस्थिरता की हालत में उसका विनाश। हमारे चित्त को स्थिर और अस्थिर करने में हमारे विभिन्न संस्कारों का हाथ बहुत अधिक होता है।

किसी काम को बार-बार करने से उसे करने की हमारी आदत बन जाती है, फिर बार-बार हमारे स्मृति-पटल पर आकर हमें उसके सम्बन्ध में सोचने के लिए मजबूर करती है और वहीं काम करने के लिए बाध्य करती है। तब वह संस्कार का रूप ले लेती है। ऐसी स्थिति में उसे बदलना असम्भव नहीं तो मुश्किल अवश्य हो जाता है। इसी आधार पर हम रटकर अपना पाठ यादकर लेते हैं और हम किसी विषय या व्यक्ति को अवचेतना में बार-बार पुनरावृत्ति कर बैठा लेते हैं। इससे जब मन प्रशिक्षित हो जाता है तब हम जब चाहें उसे स्मरण करने में सफल हो जाते हैं। जिनका जितना अधिक जिस विषय और वस्तु का संस्कार दृढ़ होगा उसकी स्मृति उतनी ही अधिक तीक्ष्ण और साफ होगी तथा क्रियाशक्ति का विकास भी उसी अनुपात में होगा। तन्त्र साधना के विभिन्न नियम संस्कार-निर्माण के नियम हैं। इसके आधार पर अगर शिक्षा बच्चों को दी गई तो उनका मन वैसे सांचे में ढाला जा सकेगा तथा उनमें ऐसी आदतें और संस्कार डालने में

हम सफल हो सकेंगे जिससे उनका मन वातावरण से सदा ऊपर उठा रहा करेगा।

ऐसी स्थिति में वह अपने चारों ओर के वातवरण से सामग्री एकत्रित कर नये-नये विचारों का सृजन करेगा और उसे संस्कारित कर अपने अचेतन मन में रख देगा जो उसके व्यक्तित्व का सदा अंग बना रहेगा। इससे उसके अंधविश्वासों, भ्रान्त धारणाओं और पक्षपातपूर्ण विचारों का नियंत्रण और क्रियाशक्ति का विकास होगा। हमारी क्रियाशक्ति के विकास में संस्कार और हमारे चारों ओर के वातावरण का विशेष महत्त्व होता है क्योंकि हमारा मन अपनी मानसिक खुराक को उसी से ग्रहण करता है और वैसे ही विचार सृजन करता है। इसी कारण उपनिषदों ने मनुष्य को संस्कारी जीव कहा है। यह सत्य है कि क्रूर और निरंकुश संस्कारों के हाथों जितना अधिक हमारी इच्छाओं, लक्ष्यों और आदर्शों की हत्या एवं क्रियाशक्ति का हनन स्वयं अपने हाथों किया जाता है उतना किसी अन्य स्रोतों से नहीं होता है।

इन आदतों और संस्कारों के चलते हमारी क्रियाशक्ति बिखरी रहती है। इसके चलते एकाग्र होकर हम किसी विषय पर सोच नहीं सकते। ऐसी स्थिति में भाग्य और भगवान के भरोसे जीवन की गाड़ी खींचने के सिवा और कोई रास्ता नहीं एवं जीवन में रोगी असफल, दरिद्र और दुःखी होकर आत्मघात कर लेना या दूसरों की हत्या कर देना भी कोई आश्चर्य नहीं। मजहबी इतिहास के पन्ने ऐसे ही पागलपन की घटनाओं से भरे पड़े हैं और ऐसे ही लोगों के मजार पर प्रायः मर्सिया पढ़ी जाती है और माल्यार्पण होता है। तन्त्र-साधना विज्ञान ने हजारों वर्ष पूर्व कुसंस्कारों को रोकने और उसके स्थान पर नये संस्कार डालने के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है। उसका प्रयोग कर अनेक लोगों के कुसंस्कारों को दूर किया गया है। उनकी आदतों की शक्ति को एक नई धारा में मोड़कर उसे बर्बाद होने देने के बजाय उसे उद्देश्य प्राप्ति के रास्ते में लगा दिया गया और क्रियाशक्ति को जगाकर स्वस्थ, सफल, आकर्षक और आह्लादित व्यक्तित्व प्रदान किया गया है। संस्कार या आदतें क्रियाशक्ति संचार के रास्ते हैं जिस पर हमारी मानसिक और शारीरिक क्रियाएं परिभ्रमण किया करती हैं और प्रत्येक बार उस रास्ते को साफ, सुथरा, चौड़ा और गहरा बनाती जाती हैं। किसी काम को बार-बार करने से "रसरी आवत जात ते सिरे पर परत निशान" की उक्ति चरितार्थ करते हुए हमारी आदतें संस्कार का रूप ले लेती हैं और हमारे व्यक्तित्व में एक सीमा की दीवार खड़ी कर हममें एक विशिष्ट जीवन-शैली का निर्माण करती हैं। व्यक्तिगत विभिन्नता का यही कारण है। किसी विनाशकारी, निरंकुश आदत को छुड़ाकर उसके स्थान पर नयी आदत और संस्कार को डालने तथा जीवन को स्वस्थ, सफल और आनन्दमय बनाने के लिए आक्षेपण-आरोपण विधि, निर्मेष वर्जन विधि, अधः-ऊर्ध्व-क्रमाक्रम विधि आदि है।

आरोपण विधि में निर्देश देने वाले व्यक्ति को आधा घंटा स्वयं ध्यान की साधना कर स्वच्छ और एकान्त कमरे में आरोपित करने वाले व्यक्ति की आंखों में आंखें डालकर, सुखासन की स्थिति में बैठकर और सुषुम्ना में प्राण वायु का प्रवेश कराकर

मन को उर्ध्वगति किया जाता है। इस स्थिति में ही चित्त साम्य भाव में होता है और नया संस्कार कम-से-कम शब्दों में धीरे-धीरे मीठी आवाज में डाला जाता है। गुरु-शिष्य परम्परा के रूप में यह आज भी क्रियाशक्ति-सम्पात कराने की सर्वोत्तम विधि है। अजपाप्राणायाम विधि के माध्यम से भी शक्ति-सम्पात कराया जाता है। हमारे श्वास-प्रश्वास की दो प्रकार की गति होती है–वस्तुगत और विषयगत। भोजन करने, तेज बोलने और विषय वासना में संलग्न होने में श्वासगति अस्वाभाविक और तेज हो जाती है जिसे वस्तुगत श्वास-प्रश्वास-गति कहते हैं। यह बहिर्मुखी गति है। अन्तर्मुखी श्वासगति विषय गति है जो नियंत्रित और स्वाभाविक होती है।

औसतन एक मिनट में 15 श्वास-प्रश्वास गति होनी चाहिए लेकिन अन्तर्मुखी होने से यह और कम हो जाती है और ऐसी ही स्थिति में शक्ति-सम्पात होता है। इसी प्रकार निर्मेष वर्जन विधि में सुखासन में बैठकर आंखें उलट कर दोनों भौंहों के बीच धारणा करने की विधि है। इसके तीन प्रकार हैं–दूर, नजदीक, और अन्तर निर्मेष वर्जन विधि। खुली आँखों में पलकें न गिरें इसके लिए नेत्र को ढीला और तनाव रहित बनाना आवश्यक होता है। ये लक्ष्य भेद विधियां हैं। इनकी पूर्ण आलोचना पुस्तक में सविस्तार की गई है। अद्यः उर्ध्व क्रमाक्रम विधि को तो तन्त्र-साधना विज्ञान में प्राण प्रतिष्ठा कर्मविधि कहा जाता है। अगर किसी लक्ष्य की पूर्ति के लिए यह विधि अपनाई जाती है तो हलादिनीशक्ति का सम्पात होता है जो हमारी विभिन्न शक्तियों का प्रमुख स्रोत है। उससे हमारी वृत्तियां पूर्ण नियंत्रित हो जाती हैं और वे हमारी दास बन जाती हैं। यही हमारी आत्मस्वरूपा क्रियाशक्ति है। उपर्युक्त सारी विधियों के साथ शुभभावना, सत्संगभावना और स्वाध्यायभावना बनाये रखना संस्कार को दृढ़ रखने के लिए अति आवश्यक हो जाता है।

अपनी क्रियाशक्ति के विकास के सम्बन्ध में हमें यह सदा याद रखना चाहिए कि वे किताबें जिसे हम पढ़ते हैं, वे लोग जिसके साथ में हम लोग रहते हैं, वह जाति जिसमें पलते हैं, वे काम जिसे हम करते हैं, कपड़ा जिसे पहनते, गाना जिसे गाते और मजहब जिसे मानते हैं, इन सबका प्रभाव हमारी क्रियाशीलता पर पड़ता है तथा इनमें से ही वे सामान हमें प्राप्त होते हैं जिससे लक्ष्य की प्राप्ति होती है। प्रत्येक शब्द जिसे हम बोलते और सुनते हैं एवं प्रत्येक दृश्य जिसे प्रतिदिन देखते हैं, वे हमारे विचार को निश्चित रूप से प्रभावित करते हैं। अगर इनमें से कोई भी हमारे लक्ष्य में बाधक जान पड़े तो उसे तत्काल परिवर्तित कर देना चाहिए। आशावादिता ही विश्व के सारे आविष्कारों, खोजों और अन्य तरह की सफलताओं की जननी है और यह आती है ध्यान के केन्द्रीकरण और रचनात्मक क्रियाशीलता से। हममें क्रियाशक्ति को प्राप्त करने की उत्कट अभिलाषा होनी चाहिए। विना इसके न ध्यान का केन्द्रीकरण हो सकता है और न लक्ष्य की प्राप्ति ही। ध्यान केन्द्रीकरण ही वह हमारी योग्यता है जिससे क्रियाशक्ति को विकसित कर हम स्वस्थ, सफल, आकर्षक और आह्लादित व्यक्तित्व को प्राप्त कर सकते हैं। ध्यान को केन्द्रीकरण करना ध्यान और विचार नियंत्रण है, जिसकी आवश्यकता

क्रियाशील व्यक्ति के लिए बार-बार, पग-पग पर पड़ती है। यही तप में प्रतिष्ठित होना है। शास्त्रों ने ऐसे ही ध्यान और विचार में पूर्ण संयमित और नियंत्रित व्यक्ति को मुक्त पुरुष या ईश्वर कहा है। तन्त्र ने बिन्दु शक्ति और शिव के द्वारा इसी बात को और अधिक स्पष्ट किया है। हमारा स्व ही बिन्दु है जो अपने संस्कारों द्वारा अपनी सीमा की दीवार खड़ी कर लेता है। इस सीमा से न स्वयं बाहर जाता है और न दूसरे को उसके भीतर आने की अनुमति देता है। जिसके चलते सर्वशक्तिमान होते हुए भी वह अस्वस्थ, असफल, दरिद्र और दुःखी बना रहता है तथा महामाया की उपाधि से विभूषित होता है।

जब हमारी शक्ति अन्तर्मुखी हो हमें सात्त्विकता, धनात्मकता और आशावादिता से भर देती है तब शिव कहलाती है और लक्ष्य को इष्ट का रूप प्रदान कर सहयोग, प्रेम भ्रातृत्व आदि द्वारा बड़े-से-बड़े लक्ष्य को प्राप्त कराकर हमें आकर्षक व्यक्तित्व प्रदान करती है। यह शिव जब बाह्य रूप में अभिव्यक्त होता है तव क्रियाशक्ति का रूप ले लेता है और सफलता और आनन्द उस स्थिति में हमारे आगे-आगे दौड़ने लगते हैं। इस प्रकार शिव के अभाव में हम असंयमित और अनियंत्रित हो वज्रस्वार्थी बन जाते हैं। इसी के चलते कंजूस, मक्खीचूस और अहंकारी बन हम दूसरों का दलन, दोहन और दमन करते हैं और ऐश्वर्य का अर्जन, लेकिन उसकी सुरक्षा और संचय की चिन्ता के मारे उदर, हृदय और रक्त विकारों के शिकार बने रहते हैं या अनाचारी, दुराचारी और व्यभिचारी बन समाज के समक्ष मुर्दा या 'शव' बन जाते हैं या कानून के चपेटे में आकर जीवन भर जेलों में सड़ते रहते हैं। इसी प्रकार क्रियाशक्ति के अभाव में हम आलसी, काहिल और वहानेबाज बन जाते हैं और निष्क्रिय बन शेर होकर भी कुत्ते की मौत मरते हैं। वास्तव में अपनी शक्ति को अन्तर्मुखी कर अपने विचार और ध्यान को संयमित और नियंत्रित करना और उसे आशावादिता; सात्त्विकता और धनात्मकता से भर देना और फिर क्रियाशक्ति को विकसित कर रचनात्मक क्रियाशीलता में लगाना ही जीवन को निरोग और सफल बनाना है।

प्रकृति की सारी क्रियाएं 'जैसे को वैसा' सिद्धान्त पर संचालित होती हैं। इसीलिए हम जैसा बोते वैसा काटते हैं या जैसा करते वैसा पाते हैं। एक रुपए का सामान हम उतना ही खरीद पाते हैं जितना नियम से मिलना चाहिए। कहीं-कहीं हमें इस नियम का अपवाद देखने को मिल जाता है। लेकिन ऐसा नहीं कि एक रुपये के बदले में चार रुपये का सामान मिल जाय या चवन्नी का भी न मिले। हम प्रायः इस नियम की अवहेलना व्यावहारिक क्षेत्र में कर दिया करते हैं और किसी को पैसा भर प्यार देकर एक रुपया के बरावर प्यार पाने की आशा करने लगते या किसी की थोड़ी मदद कर उसे जीवन भर के लिए आदेशपाल समझने लगते हैं। इस नियम को अच्छी तरह नहीं समझने-बूझने के कारण हम परिवार, पड़ोसी, सहयोगी, मित्र आदि से झगड़ा मोल ले लेते हैं और बैठे-बिठाये मनोमालिन्य, द्वेष, कलह, ईर्ष्या, वैर आदि से अपनी टोकरी भर लेते हैं। अन्त में इसी प्राकृतिक नियम 'जैसे को तैसा' के अनुसार जैसा दूसरों के बारे में हम सोचते-विचारते

हैं वे भी वैसा ही हमारे सम्बन्ध में सोचने-विचारने लगता है। इसलिए यह छोटी सी बात हमारी क्रियाशीलता में बहुत बड़ी बाधा पहुंचाती है। बर्दाशत करने और गुण विवेचन की क्षमता का विकास अपने अन्दर लाने से ही हमारे दोषों को सहन करने वाले और गुणों के ग्राहक मिल पायेंगे। कोई बेवकूफ ही डंडा खाने की नीयत से दूसरों के पीछे डंडा लेकर पड़ेगा। लेकिन यह नग्न सत्य है कि हम यही सब कुछ जीवन में करते हैं और अपनी क्रियाशक्ति को इन्हीं अनावश्यक क्रियाओं में बिखेर कर रोगी, असफल और दरिद्र होते हैं और भाग्य को कोसते हैं। हमें दूसरे को सहयोग और प्यार देकर ही सहयोग और प्यार मिलता है तथा दूसरे के प्रति करुणा, दया, सौहार्द और अपनत्व दिखाकर ही बदले में दूसरों की करुणा, दया, सौहार्द और अपनत्व पा सकते हैं। यही है रचनात्मक क्रियाशीलता को विकसित कर अपनी क्रियाशक्ति को बढ़ाने का पहला पाठ।

हमारा मनोभाव हमारे चेहरे और आंखों के झरोखे से झांका करते हैं। जैसा हमारा मनोभाव और मनोवृत्ति है वह हमारे हाव-भाव, चाल-ढाल और बोल-चाल में उभर आती है और दूसरे इसे आसानी से पढ़ लेते हैं। इसी कारण किसी को देखते ही हमें प्यार उमड़ आता है और किसी से जान छुड़ाने के चक्कर में हम रहते हैं। किसी से घृणा कर हम स्वयं घृणित बन जाते हैं, किसी पर सन्देह कर हम स्वयं संदेहास्पद हो जाते हैं और किसी के प्रति सहयोग तथा प्रेम कर हम स्वयं प्रेम और सहयोग पाने लगते हैं। यही है प्रकृति का चिरंतन सत्य नियम। अगर हम अपने विचारों को सहयोग, प्रेम, करुणा आदि सात्त्विक गुणों से भर कर किसी रचनात्मक कार्य में लग जायें तो मानसिक तनाव-दवाव और संघर्ष अपने आप खत्म हो जाता है और क्रियाशक्ति स्वतः विकसित होने लगती है। इसी स्थिति में हम जो करना चाहते हैं वह कर लेते हैं और जो पाना चहते हैं उसे पा लेते हैं क्योंकि ऐसी स्थिति में प्रतियोगिता का स्थान सहयोग, घृणा का प्रेम और क्रूरता का करुणा ले लेती है। रचनात्मक गुणों के अभाव में ही एक धनी व्यक्ति के चेहरे पर न आन्तरिक स्वागत और आवभगत का कोई भाव दिखता है, न शब्दों में अपनत्व की मिठास और न क्रिया में दया और मदद। ऐसे स्वार्थी और कंजूस व्यक्ति को स्वयं वह जी रहा है या मर गया इसका कोई ज्ञान ही नहीं होता। सड़क पर व्यर्थ की लकड़ी बटोरने वाले पागलों और समाज को लूट-पाटकर चाँदी के ठीकरे बटोरने वालों में कोई फर्क नहीं होता और कोई मूर्ख ही ऐसे व्यक्ति को क्रियाशक्ति से विकसित सफल, आकर्षक और आह्लादित व्यक्तित्व वाला कह सकेगा।

स्व का विनाश नहीं, विकास करके परिवार समाज और विश्व को अपनी सीमा के अन्दर ले लेना, भ्रातृत्व, सहयोग, प्रेम आदि सात्त्विक विचारों के माध्यम से होता है और जब स्वयं स्व और पर में कोई फर्क नहीं दिखे तो हममें निश्चय ही क्रियाशक्ति का विकास हो चुका होता है। ऐसे क्रियाशील व्यक्ति के स्व की सीमा की दीवार गिर चुकी होती है और वह सबके लिए जीता, मरता और करता है। यही वास्तविक क्रियाशीलता है जो हमें सर्वोत्तम स्वास्थ्य, सफल,

आकर्षक और आह्लादित व्यक्तित्व प्रदान करती है। वही पुरुषार्थी होता है। रचनात्मक कार्य में ही समाज के भले की भावना बनी रहती है। इसलिए समाज सेवा की इच्छा करते हुए अपने और परिवार के सम्मानजनक पोषण के लिए कोई कार्य या व्यवसाय करना और उसी से बचाकर अन्न, वस्त्र और दवा दान करते रहना अपने में रचनात्मक क्रियाशीलता की क्षमता को विकसित करना है। यही ईश्वरप्रणिधान में प्रतिष्ठित हो अपनी क्रियांशक्ति को विकसित करना है। दूसरों के प्रति उदार बनना, जो अपने लिए अच्छा काम न हो उसे दूसरों के लिए भी न करना, लेन-देन में सदा ईमानदार बने रहना, किसी की न बदनामी करना और न सुनना आदि अपनी क्रियाशक्ति को बढ़ाने का सरल, सुगम और सुलभ तरीका है। ध्यान का अभ्यास करना अपनी शक्ति को शिव बनाना और शिव रूपी क्रियाशक्ति को बहिर्मुखी करना है। इसका ही तांत्रिकी संयम और उपचार में नृयज्ञ, आत्मयज्ञ, पितृयज्ञ और भूतयज्ञ में क्रमशः काम साधना, मोक्ष साधना, धर्म साधना और अर्थसाधना के रूप में वर्णन किया गया है। वास्तव में तन्त्र-साधना की विभिन्न विधियों द्वारा क्रियाशक्ति का विकास कर हमें निरोग, सफल, आकर्षक और आह्लादित व्यक्तित्व प्रदान करना और पुरुषार्थी बनाना है।

संस्कार और क्रियाशीलता

हमारी शक्ति जब अन्तर्मुखी होकर शिव बन जाती है तब उसे आध्यात्मिकता कहते हैं और वही शक्ति जब बाह्य रूप में प्रकाशित होती है तब भौतिकता, कहा जाता है। तन्त्र-शक्ति को सर्वप्रथम अन्तर्मुखी कर शिव बना देता है और उस शिव को शक्ति के रूप में बहिर्मुखी बना शक्तिसम्पात कराता है। इसलिए आध्यात्मिकता और भौतिकता का समन्वित रूप या युग्मधारा का प्रवाह ही पुरुषार्थ पथ है। केवल भौतिकता में संलग्न व्यक्ति का आदर्श होता है 'बाबू बड़ा न भैया सबसे बड़ा रुपैया' जबकि केवल आध्यात्मिकता में संलग्न व्यक्ति का आदर्श होता है पलायनवादिता या अपने को मठ, मन्दिरों में बन्द कर "मूंदहु आंख कतहुं कछु नाहीं।" दोनों आदर्श एकांकी और आत्मघाती हैं। दोनों जीवन रूपी सूत्र के दो अन्तिम धारे हैं या जीवनीशक्ति रूपी मैगनेट के धनात्मक और ऋणात्मक (पॉजिटिव एण्ड निगेटिव) पोल हैं जिन्हें बिना मिलाये सर्वोत्तम स्वास्थ्य, सफलता, आकर्षण और आंह्लादित व्यक्तित्व की प्राप्ति होनी असम्भव है। हमारी क्रियाशीलता और गत्यात्मकता का यही रहस्य है जिसे संस्कार निर्माण के माध्यम से हम अच्छी तरह समझ सकते हैं।

हमारा जीवन विभिन्न जिम्मेदारियों के बोझ से लदा हुआ है और इन जिम्मेदारियों को समर्पण और त्याग की भावना से कर्म करके ही हम समुचित रूप से निभा सकते हैं। भूखे रहकर भी बच्चों को खिलाना-पिलाना, शिक्षा-दीक्षा देना, गीले-कपड़े में जाड़े की रात काटकर भी मां का बच्चे को सूखे कपड़े पर सुलाना, अपने जीवन को न्योछावर करके भी मानव जीवन में स्वतंत्रता, सुख, शान्ति की इच्छा

करना आदि समाज परिवार और स्वयं के प्रति जिम्मेदारियों को निभाना है। यही है याज्ञिक क्रिया। इसे ही ऋषि-ऋण, पितृ-ऋण और देव-ऋण से हम उऋण होना कहते हैं। यही है वह पुरुषार्थ पथ जिसका पथिक बन सर्वोत्तम स्वास्थ्य, सफल, आकर्षक और आह्लादित व्यक्तित्व को प्राप्त करते हैं।

संस्कार एक जटिल और भावकुण्ठित शब्द नहीं बल्कि शारीरिक, मानसिक और प्राणिक नियंत्रण और परिष्कार करने की विधि है। इससे हमारी इच्छाशक्ति, मनःशक्ति, बौद्धिकशक्ति, भावनाशक्ति और क्रियाशक्ति विकसित हो हमें जीवन में श्रेयस और प्रेयस की प्राप्ति कराती है। श्रेयस और प्रेयस या आध्यात्मिकता और भौतिकता दोनों एक सिक्के के दो पहलू हैं तथा बिना एक दूसरे के सम्मेलन के हमारा अस्तित्व ही खतरे में पड़ जाता है । बिना श्रेयस का ऐश्वर्य रूपी शक्ति और सत्ता हमें भस्मासुर बना, अपना विनाश स्वयं करा देती है और बिना प्रेयस को श्रेयस वनकुसुम की तरह खिलकर भी अनदेखे ही मुरझा कर झड़ जाता है। उस वन-सौरभ, सौन्दर्य और सुगन्धि से क्या लेना-देना जिस मानव से समाज रूपी वाटिका, न सौंदर्यमयी बन सकी और न सुगंधित ही हो सकी। उस शक्ति और सत्ता के मद में चूर भस्मासुर को क्या याद करना जिसने हरे-भरे, सर-सब्ज वाटिका को ही वियाबान बना दिया। संस्कार, कुसंस्कार और सुसंस्कार दोनों हो सकता है। इसका बनना-बिगड़ना जाने-अनजाने रूप में होता रहता है। कुछ संस्कार हममें माता-पिता, परिवार पड़ोसी, समाज आदि के द्वारा परगत भावना से आ जाते हैं और कुछ स्वयं को अच्छा बुरा लगने, अध्ययन, अध्यापन आदि द्वारा स्वगत भावना से सीख लेते हैं। इस प्रकार स्वगत और परगत भावना द्वारा हमारे संस्कार का निर्माण होता है और यह प्रक्रिया जाने-अनजाने अनवरत रूप से सारा जीवन चलती रहती है।

वस्तुतः संस्कार का अर्थ होता है परिशोधन या शुद्धिकरण। इसलिए संस्कार शब्द साधना में जाने-अनजाने स्वगत और परगत भावना द्वारा अवचेतन मन में भरे गये कुसंस्कारों के कूड़ाकरकट की सफाई से लेकर उसी शुद्धिकरण से होता है। क्योंकि कुसंस्कार हमारी प्रगति और सफलता में बहुत बड़ा बाधक होता है। कुसंस्कार प्रायः ऋणात्मक, निराशावादी या तमोगुणी और विचार चिन्तन होता है जबकि सुसंस्कार धनात्मक, आशावादी और सात्त्विक विचार होता है। संस्कार इस प्रकार सुसंस्कार निर्माण योजना विधि है जिसमें बुरे संस्कारों का क्षय और अच्छे संस्कारों के निर्माण की विधियां हैं और तांत्रिकी संयम और उपचार संस्थान ऐसी ही विधियों को प्रस्तुत कर हमें सफल आकर्षक और आह्लादित व्यक्तित्व प्रदान कराता है।

संस्कार का निर्माण गर्भस्थ बालक में ही माता के आचार-विचार, खान-पान द्वारा होना प्रारम्भ हो जाता है। इसलिए गर्भवती स्त्री में गर्भाधान संस्कार द्वारा आचार-विचार, खान-पान, रहन-सहन आदि का सुसंस्कार डाला जाता है। इसके द्वारा जच्चा और बच्चा दोनों के प्रति इष्ट मित्रों और सम्बन्धियों की शुभभावना और स्वस्थ रहने सम्बन्धी शिक्षाओं का प्रचलन और परिशीलन होना आवश्यक

है। इस प्रकार तंत्र साधना में कुसंस्कारी शूद्र बालक को सुसंस्कारी द्विज बनाने के लिए गर्भाधान से मृत्यु पर्यन्त अनेक संस्कारों का विधान है। हर हालत में उसे समाज में प्रचलित रखना मनुष्य के शारीरिक, मानसिक, प्राणिक, और आध्यात्मिक स्वास्थ्य के लिए अति आवश्यक है। इन संस्करों का लक्ष्य हमें संयमित और नियंत्रित बना 'स्व' की चहारदीवारी को गिराकर स्व और पर के एकीकरण या समन्वीकरण द्वारा जीवन को सफलता, आकर्षण, सर्वोत्तम स्वास्थ्य और आह्लाद प्रदान कराना है। संस्कारों द्वारा ही हमें दायित्वों या जिम्मेदारियों का बोध कराया जा सकता है। यही ब्रह्मचर्य और ईश्वरप्राणिधान में प्रतिष्ठित होने की प्रक्रिया है।

हमारा व्यक्तित्व बचपन से माता-पिता, परिवार, समाज, शिक्षा आदि द्वारा स्वगत भावना और परगत भावना द्वारा सीखी गई आदतों या संस्कारों का व्यक्त रूप है। किसी विशिष्ट क्रिया को बार-बार करने से हमारी वह आदत बन जाती है और हमारा व्यक्तित्व उन दिन-प्रतिदिन की आदतों द्वारा निर्मित, प्रेरक मानसिक शक्तियों का चलता-फिरता अजायबघर बन जाता है।

विभिन्न आदतों के गुलाम होने का यही कारण है तथा उन आदतों के प्रतिकूल हमें चाहते हुए भी कुछ करना मुश्किल हो जाता है या अनजाने ही आदतन हम दूसरी ओर मुड़ जाते हैं। इन संस्कारों के चलते ही हमारे व्यक्तित्व में एक सीमा की दीवार खड़ी हो जाती है और हम उस लक्ष्मण रेखा को पार न कर सकने के कारण प्रायः रोगी, असफल, अनाकर्षक और दुःखी हो जाया करते हैं। क्योंकि हमसे अनजाने ही पूर्वसंस्कार के चलते कुछ ऐसे गलत कदम उठ जाया करते हैं जो "अब पछताए होत क्या जब चिड़ियां चुग गईं खेत" की उक्ति चरितार्थ हो जाती है। 'जैसे को तैसा' नियम के मुताबिक हमारी बुरी आदतें, बुरे लोगों को अपने इर्द-गिर्द इकट्ठा कर लेती हैं और किसी व्यवसाय में असफल करा देती हैं। इसी नियम के मुताबिक दरिद्रता में रहने वाला कभी यह महसूस नहीं करता कि उसकी दरिद्रता का जिम्मेदार उसकी आदतें या संस्कार हैं। आदत के चलते ही हमारा अवचेतन मन आदत की सीमा को मंजूर करता है और दरिद्रता, अपमान, प्रिय के विछोह, बुढ़ापे, बीमारी और मृत्यु के भय से भयभीत होकर सर्वोत्तम स्वास्थ्य और बढ़े हुए कदम को भी पीछे मोड़ देता है। हम मौका की तालाश में पड़े रहते हैं और मौका जीवन भर पास नहीं फटकने पाता तथा हम बर्वादी और दुर्भाग्य का शिकार हो जाते हैं।

अंगोपांग शोधनभेदन विधि का अभ्यास प्राणायाम और ध्यान द्वारा हमारे बुरे संस्कार या आदतें क्षय होती हैं एवं संस्कार निर्माण के प्रमुख तीन अंग–शुभभावना, सत्संग और स्वाध्याय द्वारा नये संस्कारों का निर्माण होता है पुरुषार्थ पथ की यही है साधना विधि। पुसवन, नामकरण, जन्मदिवस, एवं विवाह संस्कार का महत्त्व शुभभावना और सत्संग की दृष्टि से अधिक है और हर हालत में एक पुरुषार्थी को इसका पालन करना और मानना चाहिए।

क्रियाशीलता और तन्त्रोपैथी

क्रियाशीलता ही अपने को निरोग, सफल, आकर्षक और आह्लादित बनाने का एक मात्र साधन है। लेकिन केवल हाथ-पैर मारना क्रियाशीलता नहीं। "परम स्वतंत्र न सिर पर कोऊ" की उक्ति चरितार्थ करते हुए जो जी में आया वही किया तथा समाज परिवार और स्वयं अपनी जिम्मेदारियों का ध्यान न रखते हुए, "जहाँ चाह वहीं राह," बना लिया, यह हमारी क्रियाशीलता का द्योतक नहीं। वास्तव में जन्म लेते ही तीन तरह की जिम्मेदारियां हमारे ऊपर आ जाती हैं। वे जिम्मेदारियां हैं समाज के प्रति, परिवार के प्रति और स्वयं अपने प्रति। हम आज जिस स्थिति में अपना मानसिक विकास कर सके हैं या जो बन सके हैं वह समाज की ही देन है। समाज से अलग होकर अपने विकास की कल्पना ही नहीं की जा सकती, समाज ने हमारे लिए स्कूल, कॉलेज, सामाजिक संस्थाएं आदि बनाकर हमें सभ्य बनाया है वरना आज हम भी जंगली पशुपक्षियों की तरह जिस किसी प्रकार से जीवन व्यतीत करते होते। हमारा भी कर्तव्य अपनी योग्यता और क्षमता के मुताबिक समाज को विकसित करने में योगदान देना ही सामजिक जिम्मेदारी को निभाना है जिसे साधकों ने ॠषि-ॠण कहा है। जब हम पैदा होते हैं पूर्ण रूप से निस्सहाय रहते हैं।

माता-पिता नाना प्रकार के कष्टों को झेल कर हमें पाल-पोस कर बड़ा तथा शिक्षा-दीक्षा देकर अपने पैरों पर खड़ा होने के योग्य बनाते हैं। ऐसी स्थिति में हमारा भी कर्तव्य अपनी संतानों को योग्य बनाना होता है तथा अपने माता-पिता के प्रति आदर-प्रतिष्ठा देना और सेवा-सुश्रुषा करना होता है। अंधकार को दूर कर जीवन में प्रकाश बिखेरने वाले गुरु के समक्ष श्रद्धाविश्वास के साथ प्रणत होना पितृ ऋण कहा गया है। अन्तिम जिम्मेदारी होती है स्वयं हमारी अपने प्रति। हम स्वयं आत्म-नियंत्रित रहकर ही शारीरिक, मानसिक दृष्टि से स्वस्थ और उपर्युक्त दोनों प्रकार के ॠषि-ॠण और पितृ-ॠण चुकाने के योग्य बन सकते हैं। हममें शक्ति का स्फुरण जन्म लेते ही होने लगता है और जब उस शक्ति का प्रवाह अन्तर्मुखी होता है तब उसे शिव कहते हैं और शिव जब बहिर्मुखी बनकर हमारे व्यवहार नियंत्रित करता है और हमें निरोग सफल, आकर्षक और आह्लादित व्यक्तित्व प्रदान करता है, तब वह शक्ति कहलाता है। इस प्रकार अंगोपांग शोधन, भेदन, प्राणायाम और ध्यान द्वारा शक्ति को अन्तर्मुखी कर शिव या कल्याणस्वरूप बनाना और तब शिव का ही शक्ति रूप में बर्हिर्मुखी हो समाज, परिवार और स्वयं के

Prof. Madhav Prasad Lamichhahe Collection, Kathmandu, Nepal

प्रति अपनी जिम्मेदारियों को निभाने के क्रम में सफल, सर्वोत्तम स्वास्थ्य, आकर्षक और अह्लादित व्यक्तित्व को पाना ही क्रियाशीलता है। यही पुरुषार्थी को कर्तव्य और समर्पणभाव से करना साधना या यज्ञ है। इसे ही जीवन यज्ञ या कर्म-साधना कहा जाता है।

पुरुषार्थी बनने या जीवन-यज्ञ स्वरूप कर्म-साधना को करने के लिए हमें अपने जीवन के प्रारम्भिक 25 वर्ष की आयु को आत्मसंयम और नियंत्रण द्वारा विभिन्न जिम्मेदारियों को एक जिम्मेदार व्यक्ति की तरह निभाने के लिए सक्रिय अध्ययन तथा प्रशिक्षणात्मक प्ररिभ्रमण करना, 'ब्रह्मचर्याश्रम' जीवन का परिपालन करना है। इस प्रारम्भिक जीवन में गृहस्थ बनने और उसके विभिन्न उत्तरदायित्वों को समझकर कार्यान्वित करने की पूर्ण क्षमता पा लेना ब्रह्मचर्य जीवन है। इसी प्रकार अपना लक्ष्य तीनों प्रकार की जिम्मेदारियों को ध्यान में रखते हुए बनाना, धर्म और अर्थ साधना में लग जाना है। किसी का दलन, दोहन, एवं दमन न करते हुए, न स्वयं होते हुए तथा अर्जित ऐश्वर्य को सामाजिक, पारिवारिक सुरक्षा को ध्यान में रखते हुए, खर्च करना एवं यश की प्राप्ति कर यशस्वी बनना, अपने को क्रियाशील बनाये रखना, साधना है। साथ-ही-साथ अपने को संयमित और नियंत्रित रखने के लिए विभिन्न तंत्र साधनाजन्य अभ्यासों को करते रहना मोक्ष साधना है। यही गृहस्थाश्रम की पुरुषार्थ-साधना है। जिसकी पूर्णाहुति 50 वर्ष की उम्र प्राप्त करते ही कर लेनी चाहिए। वानप्रस्थ आश्रम ढलती उम्र के 50 वर्ष से 75 वर्ष का समय है जिसमें व्यक्तिगत यशप्राप्ति, अर्जन और संचय के तनाव-दवाव से मुक्त हो सपान्तिक या अकेला अपने जीवन के विभिन्न खट्टे-मीठे अनुभवों के आधार पर शिक्षण-प्रशिक्षण दें, समाज को और अधिक जिम्मेदार बनाना और सादा जीवन व्यतीत करने का समय है। वानप्रस्थी को अपने कर्तव्य को पूर्ण रूप से निभाने के लिए सरकार का विशेष सहयोग आपेक्षित है। इस उम्र के हजारों व्यक्ति आज या तो गृहस्थ जीवन व्यतीत करते हुए अधिक तनाव और दवाव के चलते हृदय रोग और रक्त चाप से पीड़ित हो अल्पायु में ही अपने अनमोल अनुभवों को हृदय में समेटे काल के गाल में चले गये हैं या समाज, राज्य और परिवार से उपेक्षित हो जिन्दा ही मरे पड़े हैं। ऐसे व्यक्ति ही शिक्षण संस्थानों में या कम शारीरिक श्रम के स्थानों पर काम सुचारु रूप से कर सकते हैं और नौजवान शारीरिक और मानसिक श्रम वाले दोनों कामों को । 75 से 100 वर्ष की उम्र की अवस्था ही संन्यास आश्रम है। इस उम्र में पूर्ण रूपेण आत्मचिन्तन, भजन द्वारा ईश्वर प्राणिधान करना और मोक्ष की प्राप्ति करना और समाज को उससे लाभान्वित करना महत्त्वपूर्ण है।

इन आश्रमों पर ध्यान न रखते हुए कोई भी काम करना 'स्व' में केन्द्रित होना, अपनी प्रमुख जिम्मेदारियों को न निभाना और स्वयं सम्पत्ति और यश की प्राप्ति, संचय, संरक्षण और विनष्ट होने की दुःख-चिन्ता के तनाव और दबाव से शारीरिक, मानसिक और सांवेगिक उपद्रवों का शिकार होना साधना में बन्धन कहा गया है और "यज्ञार्थात्मकर्मणोऽन्यत्रलोकोयं कर्मबन्धनः" कहकर ऋषियों ने निर्देश

दिया है। संन्यास पूर्ण त्याग और परमपुरुष के प्रति समर्पण कर "आत्ममोक्षार्थ जगत् हितायच" का अवलम्बन करना है इसलिए वयस्क होते संन्यास लेने में कोई हानि नहीं। गृहत्यागी संन्यासी ही सच्चा सामाजिक, आध्यात्मिक पथ-प्रदर्शक हो सकता है। जिस प्रकार हमारा विकास बिना सामाजिक सम्पर्क के नहीं हो सकता उसी प्रकार बिना व्यक्तिगत क्रमिक आश्रम व्यवस्था और अपने मानसिक वर्ण-विकास को ध्यान में रखे विकसित नहीं हो सकता। हमारे 'स्व' को ध्यान में रखते हुए आत्म-विकास को आश्रम व्यवस्था कहते हैं। वस्तुतः 'स्व' के घेरे का विस्तार जब तक 'पर' तक नहीं पहुंच जाता है तव तक हम सर्वोत्तम स्वास्थ्य, सफलता, आकर्षण और आह्लादित व्यक्तित्व की कल्पना ही नहीं कर सकते। उसी का सम्मिलित नाम है–वर्णाश्रम व्यवस्था। वास्तव में हमारे मानसिक और सामाजिक स्तर का माप मानसिक और सामाजिक अवस्था है। अगर हम मानसिक दृष्टि से विकसित और विशिष्ट विषय में पारंगत हैं तो हममें ब्रह्मणत्व के गुण विद्यमान हैं। यही अगर शारीरिक विकास, मानसिक विकास से अधिक है तथा प्रतिरोधक क्षमता भी हममें अधिक है तो क्षत्रित्व, व्यवसाय के तरफ अधिक झुकाव से वैश्य और शारीरिक और मानसिक श्रम को बेचकर अपनी उदरपूर्ति के साधन को जुटाने की प्रवृत्ति रुचि को शूद्रत्व वर्ण की प्रधानता कही जा सकती है। वस्तुतः हमारे व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास के लिए चारों वर्णों के गुण हममें वर्तमान होना जरूरी है और इसे लाने के लिए ही विभिन्न आश्रम व्यवस्था की आवश्यकता पड़ी। सद्विप्र में ही चारों गुणों का पूर्ण विकास होता है।

आश्रमशब्द की 'श्रम' धातु से उत्पत्ति हुई है जिसका अर्थ है परिश्रम करना अतः 'आश्रम' क्रनशः शारीरिक और मानसिक श्रम से पुरुषार्थी बनने की विधि ही आश्रम व्यवस्था है। शाब्दिक अर्थ में आश्रम का अर्थ विश्राम स्थल होता है। अर्थात् एक निश्चित उम्र तक अपनी विभिन्न शक्तियों को विशिष्ट पेशे की ओर निर्देशित करना आश्रम व्यवस्था है। वस्तुतः ये चार आश्रम हमारे विकास की चार सीढ़ियां हैं जिसपर चढ़कर ही हम पुरुषार्थी बन सकते हैं। विभिन्न जिम्मेदारियों (ॠणों) का समुचित पालन के लिए त्याग और सम्पूर्ण भाव से लक्ष्य की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील होना तथा अपने मानसिक स्तर और सामाजिक ज्ञान के अनुसार पूर्ण मनोवैज्ञानिक क्रम से अपना विकास करना ही ॠणों और वर्णाश्रम के आधार पर पुरुषार्थी बनना है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों पुरुषार्थों का क्रमशः चारों आश्रम में करने की स्पष्टोक्ति आश्रम व्यवस्था में है और इसके लिए किसी खास उम्र का होना आवश्यक नहीं।

तृतीय परिच्छेद

आत्म सम्मोहन, व्यक्तिगत चुम्बकीयता

तंत्र का दूसरा नाम मोहिनी विद्या भी है। स्वसम्मोहन, पर सम्मोहन, चुम्बकीय प्राणिक शक्ति स्फूण के रूप में इसे पौराणिक युग से जाना जाता है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता विचार शक्ति आरोपण है। शायद इसी लिए तंत्र मोहन, मारण और उच्चाटन के नाम से मध्यावधि काल में प्रचलित हुआ। और इसी के चलते भूत-प्रेत, ओझा-डॉयन विद्या कहकर भारतीय मनीषियों ने इस ओर ध्यान नहीं दिया फिर बौद्ध और जैन के अभ्युदय ने तंत्र पर कई महत्त्वपूर्ण खोज किए जिसका अभ्यास कर कई वहुत बड़े-बड़े सिद्धों और मुनियों ने गरिमा प्राप्त की। बौद्ध काल में नालन्दा (विहार) नार्गाजुन सागर (आन्ध्र) और वाराणसी उत्तर प्रदेश आदि इसका प्रमुख केन्द्र था। हिन्दुओं के शक्त और शैव सम्प्रदाय कई प्रमुख शक्ति पीठ और मठ आज भी मौजूद हैं। जैसे विंध्याचल (यू. पी), कामक्षा (असम), क्षिन्नमष्तिका स्थान गोला (बिहार) आदि। तंत्र का कहना है–यह सृष्टि ही मोहिनी है। ब्रह्म सत्य है। लेकिन यह संसार भी अपेक्षित सत्य है। इसके मूल में ही सम्मोहन के अंकुर मौजूद हैं। यहां चेतन के अलावा जड़-जंगम भी एक दूसरे के प्रति सम्मोहित, आकर्षित और समर्पित होते हैं। लता-गुल्म सम्मोहित होकर पेड़ से लिपट जाती है। वीणा के स्वर को सुनते ही हिरण सम्मोहित हो जाते हैं। चन्द्रमा से सम्मोहित हो सागर में ज्वार उठ जाता है। चुम्बक निर्जीव होते हुए भी अपनी ओर लोहे को खींचता है और उसे अपने से चिपका-लिपटा लेता है।

मनुष्य प्राणियों में सबसे अधिक बुद्धिमान और चतुर प्राणी है। वह जाने-अनजाने स्वयं सम्मोहित होता रहता है और दूसरों को सम्मोहित करता रहता है, और उसे अपना अनुयायी, दास, चापलूस और चाटुकार बनाकर कभी अपना उल्लू सीधा करता है और कभी स्वयं बेवकूफ बनकर मरकट (बंदर) की तरह सारी जिन्दगी नाच दिखाता रहता है। हर व्यक्ति में सम्मोहित करने और होने के जन्मजात गुण और प्रवृत्ति होती है जो जाने अनजाने समय-समय पर प्रकट होकर अपना करिश्मा दिखाया करती है। कोई किसी के गुण-रूप, अदा (नाज-नखरा), छवि (पहनावा और सजावट पर), फिदा होकर सम्मोहित होता और कुर्बान हो जाता है तो कोई अपने जन्मजात आध्यात्मिक गुणों को तांत्रिक विधि से विकसित कर अपने अंतर्मन पर अधिकार कर लेता है। स्वयं स्वस्थ, आर्कषक और सफल होकर दूसरों के रोग, दुःख, बुरी आदतों, निराश और दुश्चिन्ता से छुटकारा दिलाता है।

आगम और निगम शास्त्रों के अनुसार तंत्र विद्या का प्रारम्भ मानव जाति की शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक शक्तियों के विकास और उससे सम्बन्धित समस्याओं को दूर करने के लिए ही हुआ था और बौद्धिक और तांत्रिक शास्त्रों

में हमें ऐसे मंत्रों मुद्राओं, भंगिमाओं और आसनों की चर्चा मिलती है जिसके उच्चारण से रोगी सम्मोहित हो स्वयं मंत्रों के रूप में ऋषियों के विचारों को अपने मष्ष्क में संसूचित (प्रत्यारोपित) कर अपने रोगों, दुःखों और अन्य नकारात्मक मानसिकता को दूर कर स्वस्थ, सुखी और सफल बन जाता है। भारतीय ऋषि, महर्षियों, योगी-मुनियों और तांत्रिकों के आशीर्वाद, शाप और वरदान के सफलीभूत होने के पीछे यही सम्मोहन, व्यक्तिगत चुम्बकीयता (आकर्षण) विचार प्रत्यारोपण और प्राणिक ऊर्जा प्रक्षेपण की क्रिया काम करती थी।

ऋग्वेद 10/137/7 में ऋषि वशिष्ठ कहते हैं,

"हस्ताभ्यां दशाखाम्यां,
जिह्वा वाचः पुरोगवो।
अनामयित्नुभ्यां त्वा,
ताम्यां त्वोप स्पृशामसि।।"

"हमारी जिह्वा (जीभ) जिससे हमारी प्रेरणा (प्राणशक्ति) बोली के रूप में अभिव्यक्त (उच्चारित) हुई है, और तुम्हें निरोग करने वाले हमारे हाथों की दशों अंगुलियों का स्पर्श तुम्हारे सभी रोग-दुःखों को दूर करेगा और तुम्हें स्वस्थ बनाएगा।" इस ऋषि वाणी में प्राणशक्ति का चिकित्सा के रूप में विचार प्रत्यारोपण तथा स्पर्श द्वारा व्यक्तिगत चुम्वकीयता और वाणी के प्रयोग को सम्मोहित करने की ओर ही इशारा है। रोग दूर करने की इस क्रिया को वशिष्ठ विद्या कहा गया है। यंत्रों के माध्यम से सिद्धान्तों को वतलाने की परिपाटी तंत्र में रही है और निम्नलिखित पौराणिक यंत्र आधुनिक सम्मोहन और चुम्बकीयता के सिद्धान्तों के सन्दर्भ में बिल्कुल वैज्ञानिक और व्यावहारिक हैं।

श्री	गु	व
धै	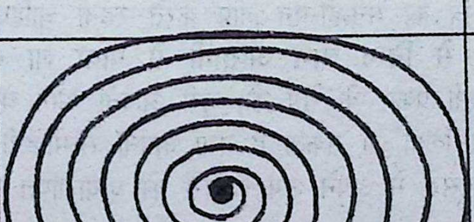	कि
अ	वा	श

'श्री' भारतीय तंत्र में ऋद्धि, सिद्धि और समृद्धि का प्रतीक है। 'गु' शब्द गुरु (इस विद्या के विशेषज्ञ) का द्योतक है। 'व' शब्द वशीकरण (वाणी, व्यक्तिगत आकर्षण और प्राणिक ऊर्जा द्वारा सम्मोहन की क्रिया की अभिव्यक्ति करता है।), 'धै' धैर्य शब्द विश्वास, लगन, कल्पनाशील और सम्भावना को व्यक्त करता है। 'अ' शब्द क्रमिक लगातार अभ्यास और आवृत्ति, 'वा वाक् सिद्धि, वचन सिद्धि (सफलता) तथा 'श' शक्ति सम्पन्न और शिव सान्निध्य की ओर है।

अर्थात इस चक्र द्वारा सम्मोहन, आकर्षण, विचार प्रत्यारोपण और प्राणिक ऊर्जा के भारतीय सिद्धान्त को निम्न शब्दों में बतलाया गया है।

"ऋद्धि सिद्धि और समृद्धि के इच्छुक व्यक्तियों को ('श्री') सम्मोहन, व्यक्तिगत चुम्बकीयता, विचार प्रत्यारोपण और ऊर्जा प्रक्षेपण विषय के विशेषज्ञ (गुरु) से सीखकर, उसे पूर्ण विश्वास, लगन, कल्पनाशीलता और सम्मान के साथ 'क्रि' इस क्रिया के अभ्यास में लग जाने और यंत्र में बने चक्र के बिन्दु पर क्रमिक लगातार ध्यान केन्द्रीकरण का अभ्यास करते रहने से बोली में मोहिनी शक्ति, शरीर में प्राण का विकास होकर व्यक्तिगत आकर्षण को बढ़ाने में वह सफल और सिद्ध हो जाएगा और उसे 'श' शिव और शक्ति दोनों की प्राप्ति होगी। जिसका उपयोग रोगियों और दुखियों के रोग-दुख को दूर करने में लगा कर वह यश का भागी बनेगा। इस यंत्र को 9"X9" के एक ताम्बे के पात्र पर बनाएं और अपने पूजा घर में उस स्थान पर दीवार में स्थापित करें जहां यंत्र में बना चक्र ठीक आँखों के सामने पड़े। न वह आंखों से ऊपर हो और न नीचे। अभ्यास नित्यक्रिया से निवृत्त होकर और पूर्ण स्नान करने और प्रतिमा की पूजा विधान के साथ करने के बाद ही करना चाहिए। चक्र में बिन्दु चमकीले उजले रंग से और चक्र काले रंग से बना होना चाहिए। ध्यान करते वक्त 'इष्ट मंत्र' या गुरुमंत्र (ॐ नमः शिवाय) या अन्य किसी मंत्र का मन-ही-मन जाप करते रहना चाहिए।

इस अभ्यास से निम्न लाभ आसानी से पाया जा सकता है।

1. अपने किसी प्रकार के रोग को, बुरी आदतों और चारित्रिक कमजोरियों को असानी से दूर किया जा सकता है तथा अपनी सम्मोहिनी, चुम्बकीयता और प्राणि ऊर्जा द्वारा दूसरों में अपने शुभ विचारों को प्रत्यारोपित कर उसे दूर किया जा सकता है।

2. हर घर प्रायः बच्चों की किलकारियों से गूंजता रहता है। लेकिन थोड़ा सयाने होने पर अपने जन्म-जात अनुकरण शक्ति और सम्मोहित होने की क्षमता के कारण वे शरारती भी बन जाते हैं। गलत आदतों को अपने माता-पिता, सहयोगी, रिश्तेदार आदि से सीखते और करते रहते हैं। इस विधि द्वारा बिना बच्चों को बताए हम उन्हें चरित्रवान, आज्ञाकारी और सभ्य नागरिक बना सकते हैं।

3. नौकरी पेशा में लगे व्यक्ति चाहे वह छोटा-मोटा ऑफिसर हो या नौकर

या बड़ा कार्याधिकारी, इस विद्या को जानकर उन्हें अपनी ओर आकर्षित कर उनका कृपा पात्र बन सकता है या उनसे अपनी मांगें मनवा सकता है।

4. परिवार में इस विद्या द्वारा आपसी रिश्तों में तनाव, दुराव और वैमनस्य को दूर किया जा सकता है। और एक अच्छे गृहस्थ की तरह अपने पारिवारिक जीवन में पति-पत्नी, सास-श्वसुर, बेटे-बेटियों, भाई-बहनों के सम्बंधों को मधुर बनाया जा सकता है।

5. व्यवसाय पेशे में लगे कारखाना मालिक, दुकानदार सटोरिये आदि भी इस विद्या में महारत हासिल कर अपने को सफल बना सकते हैं।

आत्म सम्मोहन व्यक्तिगत आकर्षण, प्राणिक ऊर्जा के विकास और अपने विचारों को मस्तिष्क में प्रत्यारोपण करने का आधार–

हमारा मन चार शारीरिक माध्यमों से व्यक्त होता है–1. आँख, 2. श्वास क्रिया, 3 वाणी, और 4. मांसपेशियां। मन में गुस्सा आते ही वह आँखों में उतर आता है और गुस्सैल मन आंखों में झांकने लगता है। इसके बाद वह श्वास-प्रश्वास को अनियंत्रित कर बेकाबू कर देता है और कर्कश और अटपटी भाषा में रौद्ररूप धारण कर मन हिंसक जानवर की भांति चिंघाड़ता है और इससे शारीरिक मांस-पेशियां उत्तेजित होकर उठा-पटक या मार-पीट करने लगता है, गुस्से की हालत में मन शरीर का स्वामी हाथी सदृश पहलवान बन कर अपना रूप दिखाता है। मन मतंग का मतवालापन किसी प्रेमी का प्रिया के प्रति देखने लायक होता है।

तंत्र में भौतिक विचारों, भावनाओं तथा आकर्षणों से मुक्त होने को 'भूत शुद्धि', शारीरिक क्रियाओं का निरीक्षण करके चक्रशोधन भेदन शोधन क्रिया करने को शरीर शुद्धि और प्राणायाम और मंत्र जाप द्वारा मन को नियंत्रित और सुव्यवस्थित करने को मन शुद्धि कहते हैं और यही भूत शुद्धि, शरीर शुद्धि और मनःशुद्धि सम्मोहन, व्यक्तिगत चुम्बकीयता, विचार प्रत्यारोपण और प्राणि ऊर्जा विकास की प्रमुख विधियां हैं। इसे ही तांत्रिक भाषा में ध्यान धारण और समाधि कहते हैं। ध्यान केन्द्रीकरण के अभ्यास के लिए निर्निमिष वर्जन विधि (त्राटक) का अभ्यास आवश्यक होता है। निर्निमिष वर्जन विधि तीन प्रकार की है–अंतर्त्राटक नजदीक त्राटक और दूर त्राटक।

अन्तर्त्राटक–इस विधि में साधक को किसी ध्यानासन में आराम से बैठ कर अपने हाथों की अंगुलियों को आपस में फंसाए और दो अंगूठे ऊपर उठाए कंधे पर रख देना चाहिए और एकाग्र होकर अपने नाक के अग्र भाग को पहले एक मिनट देखना चाहिए। इससे आंखों की मांसपेशियों में थकान और तनाव आ जाता है और इसके बाद त्रिकुटी में एक चमकीले बिन्दु पर आंखों को उलट कर ध्यान करना चाहिए। इससे आंखों की मांसपेशियां तनाव मुक्त होती हैं और चमकीले बिन्दु पर ध्यान करने पर मन सम्मोहित होने लगता है। यह स्व सम्मोहन और आत्म सम्मोहन की सरल और व्यावहारिक विधि है जिसे ऋषियों ने अध्यात्म विकास

के उपयुक्त माना है।

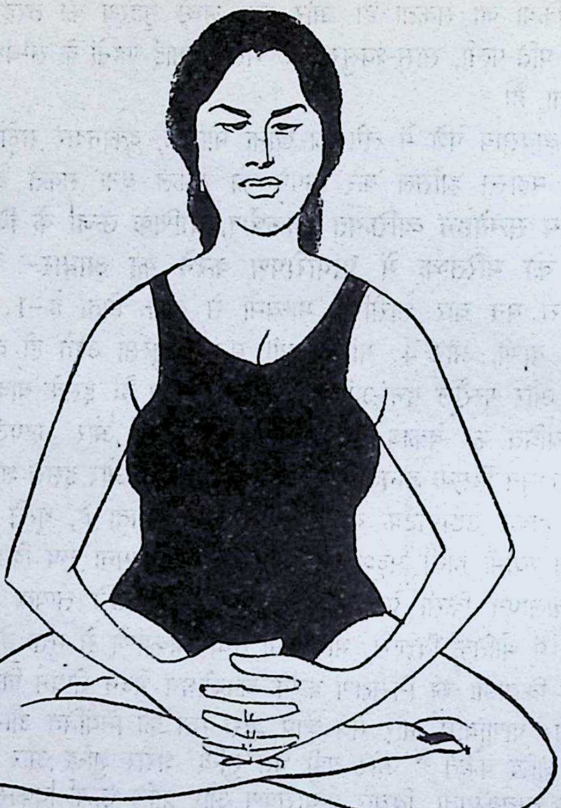

करीब निर्निमिष वर्जन विधि (त्राटक) प्राणिक शक्ति के विकास और अपने को परसम्मोहन के लिए उपयुक्त बनाने के लिए तथा अपने व्यक्तिगत चुम्बकीयता (आकर्षण) लाने के लिए करना आवश्यक होता है। इसे उपर्युक्त आसन में बैठकर शवासन में सोकर या खड़ा होकर भी किया जा सकता हैं। ये दूर निर्निमिष और करीब निर्निमिष वर्जन विधि है। इन्हें ताम्बे पर बने सम्मोहन शक्ति चक्रों के माध्यम से किया जा सकता है। इससे व्यक्ति की आँखों में एक विशेष चुम्बकीय शक्ति, आंखों की मांसपेशियों पर अदभुत नियंत्रण शक्ति, आंखों के गोलक को दृढ़ और स्थिर रखने की कला और अतीन्द्रिय शक्ति का प्रस्फुरण भी होने लगता है। नजदीक शक्ति चक्र अध्याय में सम्मोहन चक्र पर जिसे इसी परिच्छेद में दिया जा चुका है या शक्ति स्पंदन चक्रों पर जिसे विभिन्न नामों से यहां दिया गया

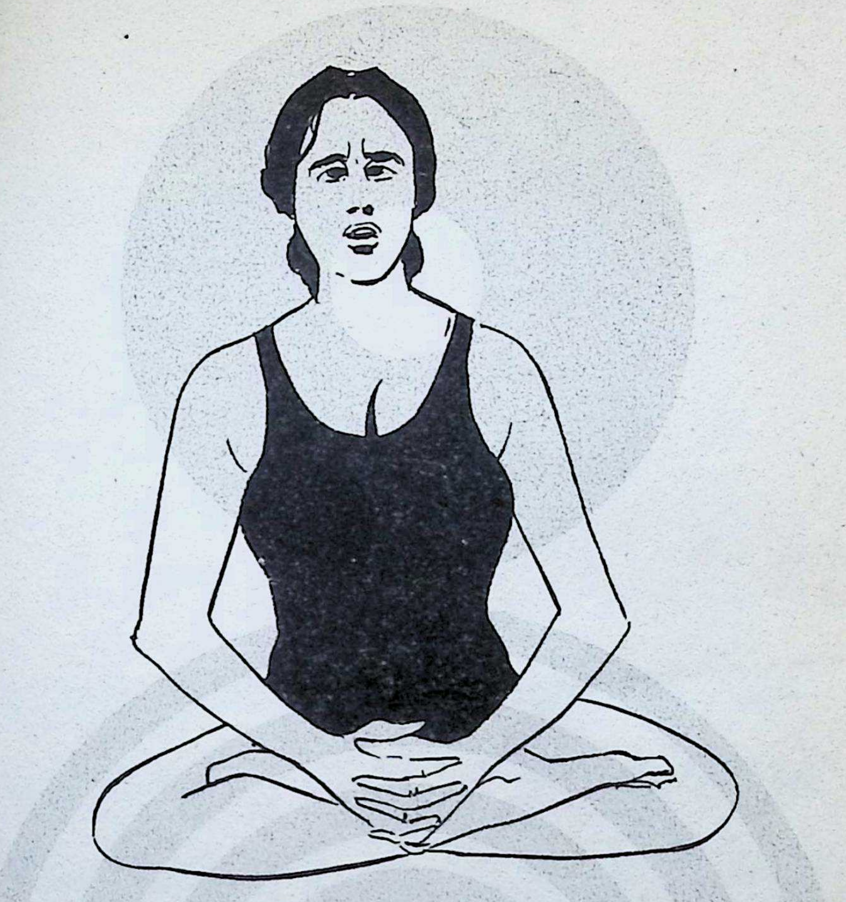

है, ध्यान से एकटक देखना चाहिए। ये चक्र अपने बैठने, खड़े होने या सोने के स्थान से करीब तीन या चार फुट की दूरी पर एक कोरे कागज पर काली स्याही से बनाकर और कार्ड बोर्ड पर चिपका कर दीवार पर लगा देना चाहिए और उसी पर अभ्यास करना चाहिए। इन्हें सौम्य, चपला, दिव्य, स्पंदन और दृष्टि बेधक शक्ति चक्र भी कहते हैं। इस अभ्यास को धीरे-धीरे बढ़ाना चाहिए क्योंकि इसके अभ्यास से आंखों की मांसपेशियां पूरी थकती हैं स्नायु शक्ति की गति बहुत अधिक तीव्र हो जाती है। आंखों में आंसू आते ही अभ्यास बंद कर देना चाहिए। इस अभ्यास को नियमित रूप से सुबह-शाम दोनों वक्त जागने के बाद और सोने से पहले करना चाहिए। इससे नींद भी अच्छी आती है, व्यक्ति नींद से उठने के बाद तरोताजा महसूस करता है। ध्यान करते वक्त केवल एक विचार मन में आना चाहिए कि ये चक्र घूम रहे हैं। कुछ देर के बाद ये चक्र घूमते नजर आने लगते हैं और मन उसी घनचक्कर में फंस कर शान्त और स्थिर भी हो जाता है। इन चक्रों पर ध्यान कराकर किसी भी व्यक्ति को सम्मोहित नींद में सुलाया जा सकता है। उसके रोग का विचार प्रत्यारोपण के माध्यम से दूर किया जा सकता है।

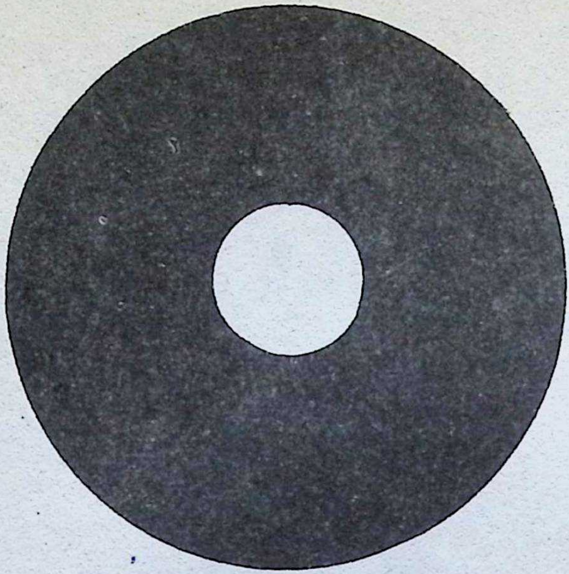

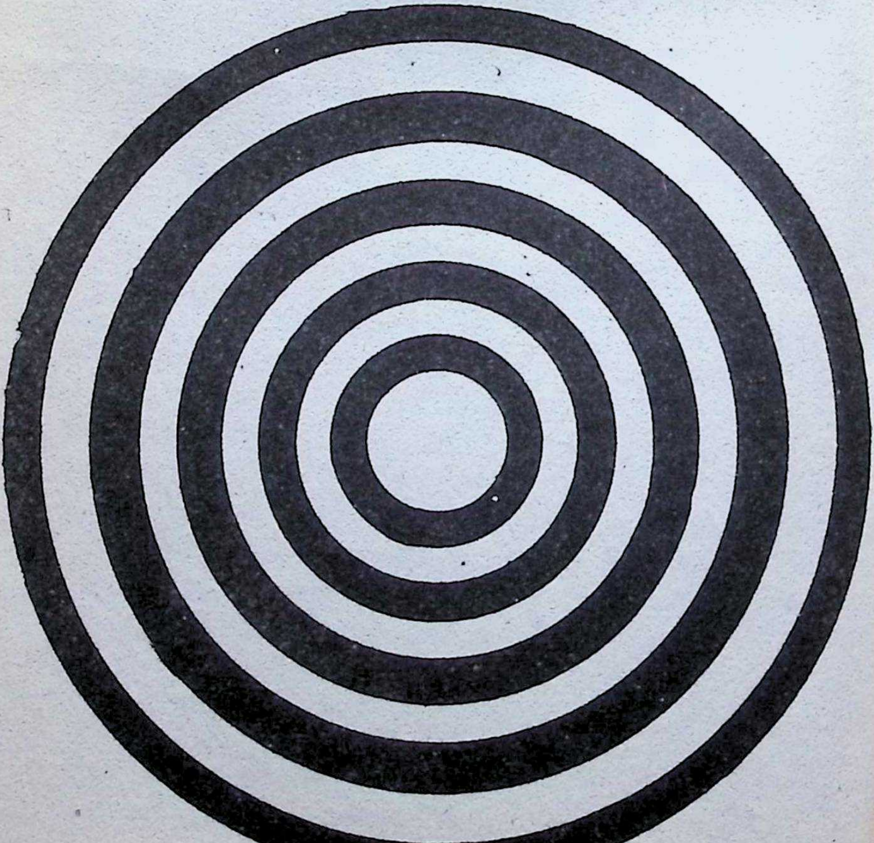

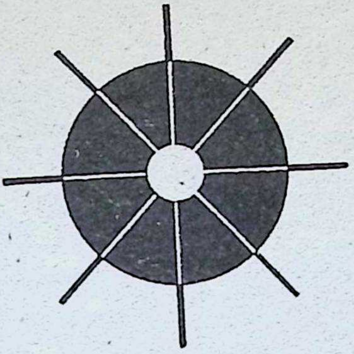

(1) दृष्टिवेधक शक्ति स्पंदन चक्र (सौम्य)

(2) दृष्टिवेधक शक्ति स्पंदन चक्र (चपला)

(3) दृष्टिवेधक शक्ति चक्र (दिव्य)

(4) दृष्टिवेधक शक्ति चक्र (स्पंदन)

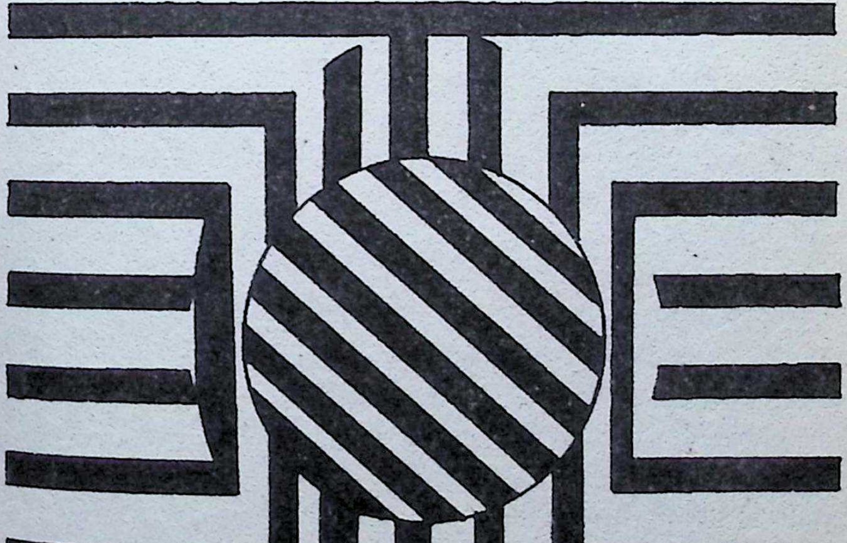

मन, शरीर और मनुष्य का विज्ञान

मनुष्य जैसे सोचता-विचारता है वैसा ही होता है। तंत्र कहता है–इस सृष्टि में कहीं अन्धेरा नहीं है और जो अंधेरा दिखता है वह भ्रम के सिवा और कुछ नहीं है। प्रश्न उठता है कि हर कोई अच्छा स्वास्थ्य और खुशी चाहता है लेकिन वह रोगी और दुःखी हो जाता है– क्यों? तंत्र कहता है–रोगी और दुखी व्यक्ति अपनी अज्ञानता और भ्रम के कारण होता है। जब तक उसकी अज्ञानता दूर नहीं होती और भ्रम नहीं टूटता तब तक वह रोगी और दुखी बना रहता है। हमें प्रकृति ने पाँच शक्तियां दी हैं जिनसे हम स्वस्थ, सफल, आकर्षक और आह्लादित व्यक्तित्व पा सकते हैं और सदा निरोग और सुखी रह सकते हैं लेकिन अपनी अज्ञानता के चलते अपनी उन अनमोल प्राकृतिक देन को न पूरी तरह विकसित कर पाते हैं और न उनका प्रयोग ही कर पाते हैं। पिछले परिच्छेद में बड़ी विस्तार से चर्चा की गई है। ये शक्तियां ही हमारे मन की शक्तियां हैं जो हर भयावनी परिस्थिति से लड़ने के लिए हमें प्रोत्साहित ही नहीं करतीं बल्कि शक्तिशाली भी बनाती हैं। इन शक्तियों के समुचित प्रयोग और विकास के लिए हमें मन, शरीर और मनुष्य के विज्ञान को अच्छी तरह जानना और समझना होगा। इस मानवीय विज्ञान को पूरी तरह न समझने के कारण ही हम विभिन्न रोगों के शिकार होते हैं, दुखी होते और दुश्चिन्तक बनते हैं। मानव शरीर का विकास मन और आत्मा से होता है। तंत्र ने कहा है–व्यक्ति का बचपन में चित्त पूरी तरह शारीरिक संवेदनाओं से बनता है और उसकी आत्मिक शक्तियां उसके विकास में पूरी तरह मदद करती हैं। शिशु की अभिव्यक्ति पूरी संवेदनशील होती है या पूरी तरह आत्मिक। इसे ही हम बचपना या बालपन कहते हैं। थोड़ा सज्ञान होते ही मन का प्रादुर्भाव उसमें हो जाता है जो चित्त और आत्मा का सम्मिलित रूप होता है। इसके बाद व्यक्ति के शरीर में न पूरी तरह से संवेदना नाम की कोई चीज रह जाती है और न पूरी तरह आत्मा नाम की अभिव्यक्ति रहती है। चित्त और आत्मा का मिश्रित रूप बच्चे के मन पर हावी होना शुरू हो जाता है और उसकी जवानी, और बुढ़ापा तक उसके शरीर पर राज्य करता है। मन के साथ-साथ उसकी मदद के लिए प्रकृति बुद्धि और स्मृति का विकास मन के संतुलित र्निणय लेने, अपने अनुभवों से फायदा उठाने और आत्मीय शक्तियों को विकसित करने, उसे उपयोग में लाने के लिए करती रहती है। आत्मा व्यक्ति के शिशु अवस्था पार करने के बाद ही अपनी पांच शक्तियां, मन-शक्ति, भावना-शक्ति, क्रिया-शक्ति, कल्पनाशक्ति और बौद्धिक शक्ति के रूप में उसके युवावस्था और वृद्धावस्था तक उसको शक्तिशाली बनाए रखती है और उसे सुखी और निरोग रखने का प्रयत्न करती है।

इसलिए यह बात साफ हो गई कि बिना मन और आत्मिक शक्तियों का सहारा लिए हम न स्वस्थ रह सकते हैं और न सुखी ही। ये आत्मिक शक्तियां हमारे विचारों और भावनाओं के माध्यम से बोलती हैं, बुद्धि के माध्यम से अच्छे-बुरे का निर्णय करती हैं और कल्पना के माध्यम से किसी काम की योजना बनाती

और क्रियाशक्ति के रूप में व्यक्ति में उमंग और उत्सुकता भरकर उसे करने के लिए आत्मविश्वास पैदा करती हैं और ये पांचशक्तियां सम्मिलित शक्ति के रूप में इच्छा का रूप लेकर व्यक्ति को शक्तिशाली बनाती हैं। इन शक्तियों का प्रेरणा स्रोत है हमारा सकारात्मक और शुभ विचार। अपनी पांचों शक्तियों को क्रियाशील करने के लिए यही एक रास्ता है। याद रहे, बिना शुभ विचार और सकारात्मक चिन्तन के न व्यक्ति स्वस्थ रह सकता है और न सुखी।

हमारे शरीर के सम्बन्ध में नकारात्मक विचार हमें रोगी बनाते हैं और किसी काम के बारे में नकारात्मक विचार और बुरा चिन्तन हमें अपने कामों में चाहे वह छोटा पेशा ही क्यों न हो, हमें असफल बनाकर दुखी और दुश्चिन्तक बना देते हैं। नकारात्मक विचार और भावना हमारे उपर्युक्त जीवनी शक्ति या आत्मिक शक्ति को क्षीण ही नहीं करते बल्कि व्यर्थ बरबाद भी करते हैं। हमारी शक्ति का सबसे अधिक अपव्यय नकारात्मक चिन्तन से होता है और सकारात्मक चिन्तन से हमारी जीवनीशक्ति को विकसित और मजबूत करती है। नकारात्मक विचारों और अशुभ भावनाओं को नियंत्रित कर और उसे सही दिशा में निर्देशत कर शारीरिक और मानसिक रोगों को असानी से दूर किया जा सकता है और उसे सुखी बनाया जा सकता है। तंत्र में रोग को ताप कहा गया है। गर्मी दुखदायी भी होती है और ज्वाला से उसे दूर करते ही धीरे-धीरे वह ठंडी हो जाती है। उसी प्रकार मानसिक रोग को दैविक ताप कहा गया है। शक्ति, देवी (आत्मिक) ज्वाला है और रोग मानसिक ज्वाला। विष को विष ही शमन करता है इसलिए मानसिक ज्वाला का शमन भी केवल देवी या आत्मिक शक्तियों के उपयोग से ही दूर हो सकता है।

एक बात हमें यहां अच्छी तरह से समझ लेनी चाहिए कि प्रकृति में जो है वह सब मनुष्य शरीर में मौजूद है। यह प्रकृति, शक्ति, संतुलन पर ही टिकी है, मनुष्य शरीर की भी वही हालत है। शरीर में शक्ति-असंतुलन ही रोग और दुख का कारण बनता है। प्रकृति सृजन, वृद्धि और विनाश के नियम में बंधी है। हमारे शरीर पर भी यह नियम लागू होता है। जब हम किसी शारीरिक उत्पादन का प्रयोग करना बंद कर देते हैं और उसकी आपूर्ति बाहर से करने लगते हैं तब शरीर उसका उत्पादन धीरे-धीरे कम करते-करते पूरी तरह बन्द कर देता है। वैज्ञानिकों ने इस नियम को प्रमाणित किया है। मधुमेह के रोगी जब बाहर से इनसूलीन लेना शुरू कर देता है तब कुछ दिनों के बाद लीवर इन्सूलिन बनाना ही बन्द कर देता है। और मधुमेह के रोगी पूरी तरह बाहरी इनसूलीन पर आश्रित हो जाता है। इस शारीरिक क्रिया के बंद होने से अन्य शारीरिक क्रियाओं पर भी बुरा असर पड़ता है और अंत में रोगी अंधापन, शारीरिक गलन आदि का शिकार हो अल्प आयु में इस दुनिया से चल बसता है। स्वसम्मोहन व्यक्तिगत चुम्बकीयता, विचार प्रत्यारोपण और प्राणिक शक्ति की सम्मिलित चिकित्सा से मधुमेह के कई रोगियों को मैंने ठीक किया है।

हमारा मन एक कपड़ा बुनाई के कारखाने के समान है जहां विभिन्न प्रकार

के विचार रूपी वस्त्रों की बुनाई का काम रातों-दिन चलता रहता है। इस काम में कुशल मजदूर की तरह हमारा चेतन और अचेतन मन दोनों पूरी तन्मयता से लगे रहते हैं चेतन मन का सम्पर्क हमेशा वास्तविक संसार और परिस्थिति की वास्तविकता से होता है जबकि अचेतन मन का सर्म्पक हमारी मूल प्रवृत्तियों, बीते खट्टे-मिठे अनुभवों, दमित इच्छाओं और इन्द्रिय आनन्दों की तरफ होता है। इस प्रकार ये दोनों अपने पेशे में कुशल, कारीगरों के चलते वस्त्र इन दोनों के पसंद के मुताबिक बनते हैं। ये दोनों एक दूसरे को अपनी तरह से प्रभावित भी करते रहते हैं। इसलिए जैसा विचार रूपी सूत होगा भावना रूपी वस्त्र वैसा ही बनेगा और अगर ऐसे पहनावे वस्त्र को पहन कर हम बेढंगा, रोगी और दुःखी दिखते हैं तो मस्तिष्क रूपी कारखाने सकारात्मक और सुभावनात्मक सूत से वस्त्र बनाने होंगे। जैसे हमारा अपना विचार होता है और जैसी हमारी भावना होती है वैसा ही तो हम दिखते हैं। हमारा पूरा व्यक्तित्व हमारी भावना और विचार की ही देन है।

जिस ढंग से हम सोचते-विचारते हैं उसी प्रकार विचारों और भावनाअें का हम स्वागत भी करते हैं। ठीक वैसी ही हमारी जीवन-शैली होती है। आज प्रचलित सारे रोग-दुख हमारी जीवन-शैली की ही देन हैं। हमारी जीवन-शैली हमारे वंशानुक्रम और वातावरण से अच्छी-बुरी, बनती-बिगड़ती है। हमें स्वस्थ रहने के लिए सकारात्मक चिन्तक और रचनात्मक कार्यपालक बनना होगा। अपने रोग और दुःखों से छुटकारा पाने के लिए हमें स्व सम्मोहन, व्यक्तिगत चुम्बकीयता, विचार प्रत्यारोपण और प्राणिक शक्ति का ही सहारा लेना होगा। बाहरी दबावों से पूरी तरह नहीं तो आंशिक नाता तो तोड़ना ही होगा। दुख और दुश्चिन्ता हमारे मन और शरीर को तोड़-मरोड़ कर हमें बेहद कमजोर बना देता है। और हमारी जीवनीशक्ति का स्रोत ही सुखा देता है।

सम्मोहन, व्यक्तिगत चुम्बकीयता, विचार प्रत्यारोपण और प्राणिक शक्ति चिकित्सा का मनोविज्ञान–यह सभी जानते हैं कि भारतीय चिन्तन-शैली आत्मचिन्तन और बाहरी अभियोजन की रही है जिसे संश्लेषणात्मक चिन्तन कहते हैं। दोनों चिन्तन शैलियों के अपने-अपने गुण-दोष हैं। स्वसम्मोहन, व्यक्तिगत चुम्बकीयता, विचार प्रत्यारोपण और प्राणिक ऊर्जा प्रक्षेपण व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक विकास के लिए भारतीय चिन्तक ऋषि महर्षियों ने दिया जिसका अनुसरण और पालन, भारत के पौराणिक युग ने महान हस्तियों को जन्म दिया, और स्थायी संस्कृति का सृजन किया जो दुनिया में बेमिसाल है आज का विश्लेषणात्मक चिन्तन ही वैज्ञानिक चिन्तन है जो भारतीय संश्लेषणात्मकचिन्तन की देन को प्रमाणित और उपयोगी सिद्ध करता जा रहा है। उसमें से ही हिप्नोटिज्म, मैगनेटिज्म और सजेशन चिकित्सा विधि है।

इन विधियों के जन्मदाता न पेशेवर चिकित्सक थे न आज के वैज्ञानिक, मनोवैज्ञानिक और शरीर वैज्ञानिक। इनका विकास पारम्परिक रीति से आम लोगों

और चिन्तकों द्वारा हुआ और आज के वैज्ञानिक उपकरणों पर वे ठीक और सुव्यवस्थित साबित होते जा रहे हैं। पहले अध्याय में हमने इसे ही दिखाने की कोशिश की है। मनुष्य के पास भौतिक शरीर, मानसिक मन और आध्यात्मिक आत्मा है और तीनों का मिश्रित रूप ही मनुष्य है। इसलिए प्रकृति की दूसरी शक्तियों से भिन्न सम्मोहन, व्यक्तिगत चुम्बकीयता, विचार प्रत्यारोपण और आत्मशक्ति चिकित्सा की शक्ति है। प्राकृतिक नियम पंचतत्त्वों के नियम के सदृश्य हैं। इसे विज्ञान मानने के लिए इस शक्ति द्वारा पैदा हुई घटनाओं का करीबी निरीक्षण ही सम्भव है जिसका पता अभी आधुनिक विज्ञान के पास नहीं है। यह हम जो भी लिख रहे हैं, वह उपलब्ध तांत्रिक पुस्तकों के ऊपर ही आधारित है।

सम्मोहन, व्यक्तिगत चुम्बकीयता, विचार प्रत्यारोपण और प्राणिक ऊर्जा का सिद्धान्त प्रकृति और विश्व-ब्रह्माण्ड में दो प्रकार के तत्त्व पाये जाते हैं जो एक-दूसरे से गुणों और सामग्री में भिन्न हैं। वे तत्त्व हैं–चेतन, मन और जड़ तत्त्व और दोनों एक-दूसरे पर अपना प्रभाव डालते रहते हैं। लेकिन इन दोनों की क्रियाओं को नियंत्रित करने के नियम अलग-अलग हैं। जड़ तत्त्वों के नियमों को देखा, परखा जा सकता है और गणित विधि से निश्चित किया जा सकता है तथा प्रयोग किया जा सकता है। इसी तरह के नियम हैं–गति का नियम, गर्मी और बिजली के अट्रैक्शन और ट्रान्समिशन का नियम। लेकिन मनुष्य मन का अध्ययन जड़ वस्तु के नियम से बिलकुल भिन्न है। मन के अस्तित्व को प्रदर्शित तो किया जा सकता है। इसके गुण-दोष को देखकर हम पता लगा सकते हैं लेकिन आत्मा का स्वभाव तो अभी भी अस्पष्ट और अनजान है। इसका कारण है–शरीर रूपी पांच जड़ तत्त्वों से उसका मिश्रण। हमारा शरीर पांच जड़ तत्त्वों (हवा, पानी, अग्नि, आदि) से ही बना है और आत्मा इनके माध्यम से ही प्रकाशित होती और जानी जाती है, जो परम चैतन्य (परमात्मा) का अंश है। इसी कारण से बहुत से ऐसे मनोवैज्ञानिक और आध्यात्मिक नियम जिसके मुताबिक मन और आत्मा का प्रभाव शरीर पर पड़ता है उन्हीं नियमों के अनुसार ही पड़ता है। मन, आत्मा और शरीर एक-दूसरे को अपने-अपने नियम के मुताबिक प्रभावित करते रहते हैं।

इन तीनों शरीर, मन और आत्मा को चलाने वाले सिद्धान्त ही हैं सम्मोहन ,व्यक्तिगत चुम्बकीयता, विचार प्रक्षेपण और प्राणिक ऊर्जा। इसलिए इसके सम्बन्ध में प्रकृति या मनोवैज्ञानिक या आध्यात्मिक सिद्धान्त अकेला उपयुक्त नहीं होगा। आपके मन को ही पता होता है अपने आत्मिक, मनोवैज्ञानिक और शारीरिक शक्ति का इसलिए सम्मोहन व्यक्तिगत चुम्बकत्व विचार प्रत्यारोपण और प्राणिक शक्ति का आपके मन को ही पूरी तरह पता होता है। इसलिए चिकित्सा में पूरी तरह आत्म विश्वास का होना आवश्यक है और रोगी को भी पूरा फायदा उठाने के लिए चिकित्सक में पूरा विश्वास होना जरूरी है। साथ-साथ उसके प्रयोग में लाने की विधियों का अच्छी तरह ज्ञान होना एक सफल चिकित्सक के लिए जरूरी है।

कोई भी व्यक्ति जिसका स्वास्थ्य अच्छा है, सामान्य बुद्धि है और तांत्रिक अभ्यासों से अपनी शक्ति बढ़ाने का अभ्यास करता है वह सम्मोहन, व्यक्तिगत चुम्बकीयता,

विचार प्रत्यारोपण और प्राणिक चिकित्सा सफलता पूर्वक कर सकता है। उसमें केवल आत्मविश्वास, दूसरों का भला करने की तमन्ना होनी चाहिए। चार पद्धतियां एक दूसरे पर अर्जित, सम्बन्धित और समन्वित विधियां हैं। इसलिये चारों विधियों का पूर्ण ज्ञान होना भी आवश्यक है। ध्यान रहे, बुरे उद्देश्य से इस विधि का प्रयोग चिकित्सक के लिए घातक भी हो सकता है।

विचार प्रक्षेपण (टेलीपैथी), मानसिक पठन

विचारों को प्रक्षेपण (ट्रान्समिशन) या आदान-प्रदान (Communication) और प्राणिक ऊर्जा प्रेक्षपण मनुष्य का जन्मजात गुण है जो शारीरिक इन्द्रियों से पूरी तरह स्वतंत्र होता है। इसे टेलीपैथी, मानसिक पठन कहते हैं। इसे ही विचार आदान-प्रदान (Thought Transferance) मानसिक विचार प्रत्यारोपण (Mental suggestion) विचार अदला-बदली, प्राणिक शक्ति चिकित्सा आदि कहते हैं। उसे अतीन्द्रिय शक्ति भी कहा जा सकता है। यह आत्मिक और मानसिक शक्तियों का करिश्मा और चमत्कार है। इसे यह अच्छी तरह मालूम है कि हमारी आत्मिक और मानसिक शक्ति हमारी इन्द्रियों द्वारा अभिव्यक्त और प्रकट होती है और यही इन्द्रियां बाहरी ज्ञान को भी भीतर पहुँचाती हैं। हमारी ज्ञान इन्द्रियां ही हमारे विचारों, इच्छाओं और विभिन्न संवेगों तथा आत्मा की आवाज को मनुष्य के मन को एक-दूसरे पर जाहिर करती हैं। प्रकट करती हैं। ये इन्द्रियां बिना शारीरिक इन्द्रियों का सहारा लिए भी विचार प्रक्षेपण में मन के माध्यम से बोलती-सुनती और देखती हैं। आत्मिक और मानसिक शक्तियों, तांत्रिक नियमों के मुताबिक काम करती हैं। तंत्र कहता है–मनुष्य का वास्तविक स्थितत्व आत्मिक शक्तियों के अपने संगठनात्मक ढांचे में है न कि शारीरिक ढांचे में। इस प्रकार हमारे भौतिक शरीर के स्थूल शरीर, मानसिक शक्तियों के संगठनात्मक ढांचे के कारण शरीर और आत्मिशक्ति के ढांचे के कारण सूक्ष्म या आध्यात्मिक शरीर कहा गया है। इस प्रकार हमारे स्थूल शरीर के कारण शरीर और आध्यात्मिक शरीर के रूप में तंत्र में दर्शाया गया है और तीन शरीर का प्रतिनिधित्व चित्त, मन, आत्मा क्रमशः करता है। मानसिक और आत्मिक शक्तियों का सम्बन्ध ठीक उसी प्रकार है जैसा हमारे विचार और उसकी अभिव्यक्ति का है। अगर इन शक्तियों का-व्यवहार किसी व्यक्ति पर किया जाता है तो उसमें समय और स्थान की सीमा वाधा नहीं पहुंचाती। यह आत्मिक सम्बन्धों पर पूर्णरूप से आधारित होता है और उस समय सार्वदेशिक और सार्वकालिक रूप उसका हो जाता है और देखने को मिलता है।

इस क्रिया में भौतिक शक्तियां भी सहयोग करती हैं। मानसिक और आत्मिक शक्तियों का प्रायः एक-दूसरे के मन पर, बिना समय और दूरी की प्रवाह किए, पड़ता है। मानसिक स्वाभाव की होती आध्यात्मिक घटनाएं पूरी तरह आध्यात्मिक शक्ति का खेल होती हैं जो अपने प्रभाव डालने की क्रिया में अचूक होती हैं। इस प्रकार हम अब समझाते हैं–मानसिक और अध्यात्मिक शक्ति प्रयोग में व्यक्ति

का शरीर और शारीरिक इन्द्रियां पूरी तरह सम्मोहित होकर समाधि (Trance) की स्थिति में चली जाती हैं और मानसिक क्रिया एक मन से दूसरे मन पर अपना काम करना शुरू करती है चाहे वह टेलीपैथी हो, मानसिक विचार प्रेक्षपण हो या प्राणिक चिकित्सा हो। यह क्रिया वास्तव में मन-ही-मन पर नहीं होती बल्कि मन से पूरी तरह स्वतंत्र क्रिया होती है। केवल मन की भूमिका व्यक्ति में इस काम के लिए आत्मविश्वास जगाने की होती है। सामान्य स्वास्थ्य के व्यक्ति में ये शक्तियां चमत्कारिक ढंग से काम करती हैं।

मानवीय आत्मा आध्यात्मिक गुणों का संगठनात्मक रूप है और चित्त शारीरिक गुणों का संगठनात्मक रूप। मन शारीरिक और आत्मिक गुणों का मिश्रित संगठनात्मक रूप है इसलिए इसमें शरीर और आत्मा दोनों को प्रभावित करने के गुण मौजूद हैं। इस प्रकार मनुष्य का मन और आत्मा पूरी तरह रासायनिक और यांत्रिक परीक्षण की सीमा से पूरी तरह बाहर है। इसलिए यह भौतिक नियमों से परे है। इसी प्रकार इसपर "शारीरिक मृत्यु और मनोवैज्ञानिक संगठन" का नियम भी लागू नहीं होता। यह तो "अपने आप सृजन, दृष्ट और प्रेक्षपण नियम" से नियंत्रित होता है। अब प्रश्न उठता है कि मृत्यु के बाद आत्मा का क्या होता है? गीता में कहा गया है–"वासांसि जिर्णानि यथा विहाय।" जिस प्रकार पुराने वस्त्र को छोड़कर हम नए वस्त्र को धारण करते हैं उसी प्रकार आत्मा भी जीर्ण-शीर्ण शरीर को छोड़कर नए शरीर को धारण करता है। इस प्रकार मरने के बाद आत्मा "विकासात्मक हालांत के नियम" (Law of Conditions to evolutions) से नियंत्रित और निर्देशित होता है। आत्मा अपने सूक्ष्म शरीर में मरने के बाद भी सक्रिय रहता है और जो भी भौतिक जगत में घटनाएं होती हैं,उसे वह देखता, सुनता और गवाह बना रहता है। व्यक्ति की मृत्यु उसकी आत्मा के अस्तित्व के हालात में परिवर्तन है। इससे उसकी आत्मा का अस्तित्व प्रभावित नहीं होता। इस प्रकार व्यक्ति के मरने के बाद भी उसकी आत्मा का अस्तित्व बना रहता है और वह परम चेतना के बहुत करीब हो जाता है। इस हालत में परम चेतनता की शक्तियां उसमें काम करती हैं। पॉल ने कहा है कि यद्यपि मृत्यु से शरीर मर जाता है, लेकिन आत्मा परम चेतनता की शक्ति से दिनों-दिन अपने सूक्ष्म शरीर में नवीन और विकसित होता रहता है।

प्राकृतिक नियमों के चलते आत्मा शरीर में बना रहता है। लेकिन इसकी आत्मिक क्रियाएं पूरी तरह प्राकृतिक नियमों के प्रतिकूल और स्वतंत्र होती हैं और इसी शारीरिक ज्ञानेन्द्रियों को दरकिनार कर अपना सुझाव और निर्देशन अतीन्द्रिय माध्यम से भेजती या पाती रहती है। आत्मा का सम्बन्ध मृत्यु के बाद भी अपने पूर्व शरीर से बना रहता है और उसके अनुभवों से प्रभावित रहता है। भारतीय शास्त्रों में उसी का नाम 'पूर्व संस्कार' दिया गया है और गीता में इसका बड़ा ही रोचक वर्णन है। हमारे धार्मिक ग्रन्थों में भी आत्मा के पुनर्जन्म लेने, अपने पुराने शरीर में लौट आने और अपने प्रिय लोगों को सुझाव और निर्देशन देने की अनेक घटनाओं का वर्णन है।

अपनी आत्मा की अवाज को विस्तारित करने और एक-दूसरे व्यक्ति तक पहुँचाने की विशेष आवश्यकता नहीं पड़ती केवल इस क्षमता को तांत्रिक अभ्यासों के द्वारा करके विकसित करना होता है जिसे इस पुस्तक में दिया गया है। वास्तव में स्वसम्मोहन, व्यक्तिगत चुम्बकीयता और विचारप्रेक्षपण की विधियां ही प्राणिक शक्तिप्रेक्षपण और टेलीपैथी की क्षमता को विकसित करने की विधियाँ हैं। अन्तर त्राटक, दूर त्राटक और नजदीक त्राटक की क्रियाएं आत्मिक शक्ति को विकसित करने के लिए उपयुक्त विधियां हैं। मैंने स्वयं दूर त्राटक अभ्यास अपने जेल-जीवन में किया था जब देश के आपातकालीन स्थिति में दो साल के लिए मीसा में हजारीबाग केन्द्रीय कारागार में बन्द था। जेल से छूटने के बाद मैं ने एक दिन अचानक हमारे स्कूल जीवन के एक साथी को सशरीर अपनी आँखों के सामने देखा जिसे 20 वर्षों में पूरी तरह भूल चूका था। वह हंसते हुए हमारा स्वागत कर रहा था। 20 मिनट के बाद उस बचपन के साथी को बड़ी आत्मीयता से अपने पास आते हुए देखा और हंसकर कहा—यार अभी कुछ मिनट पहले तो तुम्हें हमने याद ही नहीं किया था बल्कि सशरीर देखा था और बचपन की याद ताजी हो गई थी। उसने कहा—आज कुछ देर पहले यह जानकर कि आप जेल से आ गए हैं आपसे मिलने की बड़ी इच्छा हुई और आप ही के सम्बन्ध में सोच रहा था।

टेलीपैथी या प्राणिक शक्ति प्रेक्षपण की क्षमता हर व्यक्ति में जन्मजात होती है। केवल उसे विकसित करने की आवश्यकता पड़ती है। आप भी अपनी इस शक्ति का प्रयोग आए दिन निम्न प्रकार से कर सकते हैं।

किसी मंदिर, मस्जिद या गिरिजाघर में जाइए या ट्रेन, बस या हवाई जहाज से सफर कीजिए और सबसे आगे बैठे हुए व्यक्ति के ऊपर अपना ध्यान केन्द्रित कर उसे एक-टक गहरी निगाह से देखिए। वह अचेत रूप से आप की नजर से थोड़ा हिले-डुलेगा और आप की ओर देखने लगेगा। इस प्रकार अपना चेतन रूप (अपनी इच्छाशक्ति) से उसे अपनी ओर देखने के लिए मजबूर किया। अगर हम किसी नावागंतुक मेहमान से पहली बार हाथ मिलाते या गले मिलते हैं, तो दोनों के चेहरे पर एक-दूसरे के भावों के प्रभाव को आसानी से हम देख, समझ सकते हैं और महसूस कर सकते हैं। अगर आप अपनी मां, पत्नी या बहन के बगल में धीरे से जाकर खड़े हो जाते हैं तो सोते हुए भी आपकी उपस्थिति का ज्ञान उसे हो जाता है और वह जग जाती है।

सकारात्मक चिन्तक अगर आप हैं और थोड़ा भी तांत्रिक अभ्यासों को आपने किया है तो आप अवश्य अपने विचारों को अपनी इच्छाशक्ति से दूसरे के पास भेज सकते हैं या उसके विचारों को जान सकते हैं। आत्म सम्मोहन और विचार प्रत्यारोपण, प्राणिक ऊर्जा, व्यक्तिगत आकर्षण और टेलीपैथी का एक सशक्त माध्यम है। इसके द्वारा दूसरे के चरित्र में सुधार और परिवर्तन लाया जा सकता है। तंत्र में इसे भावतीत ध्यान कहते हैं।

"हमारे अगर-मगर, किन्तु-परन्तु, सम्भवतः, शायद आदि शब्द हर व्यक्तिगत सफलता में बाधक होते हैं। यह शक और सन्देह व्यक्त करने वाले शब्द हैं और

दृढ़ और निश्चय इच्छाशक्ति के भंजक (तोड़नेवाले) इसलिए तंत्र में इन असम्भवसूचक शब्दों का प्रयोग पूरी तरह वर्जित है।”

“विभिन्न सम्प्रदाय कहते हैं और साथ-ही-साथ वेद की भी वाणी है कि अपना कर्म करते जाओ भगवान की कृपा से सफलता अवश्य मिलेगी। तंत्र कहता है –परिस्थति में प्रविष्ट हो जाओ, कदम बढ़ा दो, सफलता तुम्हारे कदम चूमेगी। इसमें भगवान का कुछ लेना देना नहीं है। इसीलिए तांत्रिक साधनाओं को करने वाले को वीराचारी कहते हैं।”

सूफी सम्प्रदाय भी तांत्रिक मार्ग है। उनका कहना है, “हिम्मते मर्दां मददे खुदा।” “हिम्मत हो तो कदम बढ़ाओ, जो चाहोगे वह पाओगे ही।”

भावातीत ध्यान या अपनी शक्तियों का काल्पनिक दृष्टिपात

सभी धर्म अपनी देव प्रतिमाओं की इज्जत करते हैं एवं उन्हें सृजनात्मक, विकासात्मक और संहारात्मक शक्ति का प्रतिनिधि मानते हैं और वे इन शक्तियों के संतुलन कर्ता या स्वरूप भी होते हैं। हिन्दु जैन, बौद्ध आदि सभी धर्मों का यही मत है। ऐसे देवताओं के ही अंग हम हैं और इस प्रकार हम उनमें से हैं। वह परमात्मा सभी जगह है। चाहे वह चन्द्र-सूर्य हों या खण्ड्ग-खम्भ नौदुर्गा ऐसी नौदेवियों की आराधना करते हैं कि हमारे जीवन में वे पांचों शक्तियां भर दें। हमें ऋद्धि-सिद्धि और समृद्धि पाने में हमारी मदद करें।

"या देवी सर्व भूतेषु विद्या रूपेण संस्थिता ... शक्ति रूपेण संस्थिता। नमस्तस्यै, नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोस्तुते। रूपं देहि, जय देहि, यशो देहि, शक्ति देहि द्विजो जहि" आदि और तांत्रिक पूजा, शक्ति पूजा में किसी माध्यम की सहायता नहीं ली जाती स्वयं की जाती है।

भावातीत ध्यान की साधारण विधि–आप रात में चन्द्रमा की ओर मुँह करके खड़े हो जाएं, या किसी ध्यानासन में बैठ जाएं या शवासन में लेट जाएं और उसे एक टक निहारें और साथ-ही-साथ महसूस करें कि वह सारे शरीर को शान्त कर खुशियों से भर रहा है और वैसी ही अपनी मुखाकृति और आंखों की भंगिमा को भी बनाएं या अपने कमरे में ही बैठकर या लेटकर अन्तर त्राटक करते हुए अपने को स्व सम्मोहित कर लें और यह कल्पना करके उस मानसिक दृष्टि से देखने का प्रयत्न करें कि पूर्णिमा का चाँद आपके सिर पर चमक रहा है और उसकी सुखद और मोहिनी चाँदनी से आप सराबोर हो कर शान्त और प्रसन्न हो रहे हैं। आप यह महसूस करें कि आपकी आत्मिक शक्तियों से मिश्रित हो वह आप में एकाकार हो रही है। और मानसिक दृष्टि से 10 मिनट प्रति दिन ठीक समय यह क्रिया दोहराते रहें। "या देवी सर्व भूतेषु शक्ति रूपेण संस्थिता नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोस्तुते। रूपं देहि, जय देहि, यशो देहि शक्ति देहि द्विजोजयी।"

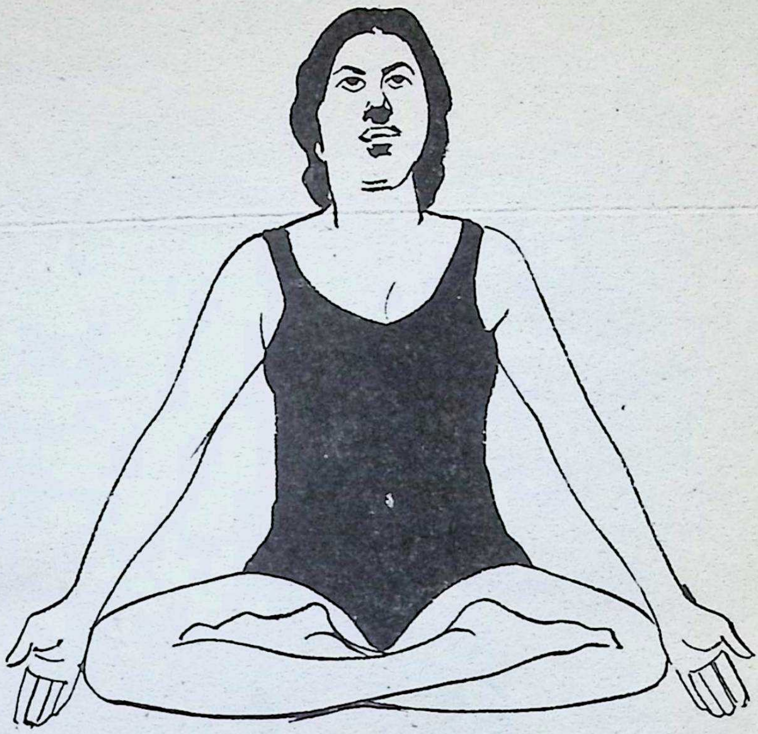

प्रतिदिन स्नान करने के बाद हाथों की मुद्रा के साथ प्रतिदिन 2 मिनट के लिए पितृ तर्पण भी करें।

पितृ पुरुषो भ्यो नमः ऋषि देवो भ्यो नमः।
ब्रह्मापर्णम, ब्रह्माहर्वि, ब्रह्ममाग्नौ
ब्रह्माहूतम। ब्रह्ममैव येन गन्तव्यम्
ब्रह्म कर्म समाधिना।

पितृतर्पण स्नान के बाद बिना बदन का पानी पोंछे हलकी रोशनी में नंगे ही बाथरूप में यह क्रिया करनी चाहिए। और प्राणिक शक्ति से भरते हुए भावातीत ध्यान करना चाहिए।

इसके बाद अपने इष्ट या देवी की प्रतिमा के पास बैठ जायं। प्रतिमा की बाएं तरफ हरा और दाईं तरफ लाल बल्ब जलाइए क्यों कि हरा रंग जिन्दगी और लाल रंग मृत्यु से सम्बन्धित है। प्रतिमा के सामने पीला या सोने के रंग का बल्ब परम चेतनता और चांदी की तरह उजला बल्ब प्रेम-चेतना की शक्ति के लिए जलाएं। इन बल्बों के सामने बीचों-बीच अगरबत्ती जलाएं या हवन करें और खड़े होकर पहले देवी को लवंग के छाक (पानी) से स्नान कराएं फल-फूल जो भी उसे अर्पण करें करें एवं हमारी पूजा को आप ग्रहण करें और हममें वह अतीन्द्रिय शक्ति दें जिससे हम तुम्हारी शक्तियों को अपने और प्रकृति में देखें।

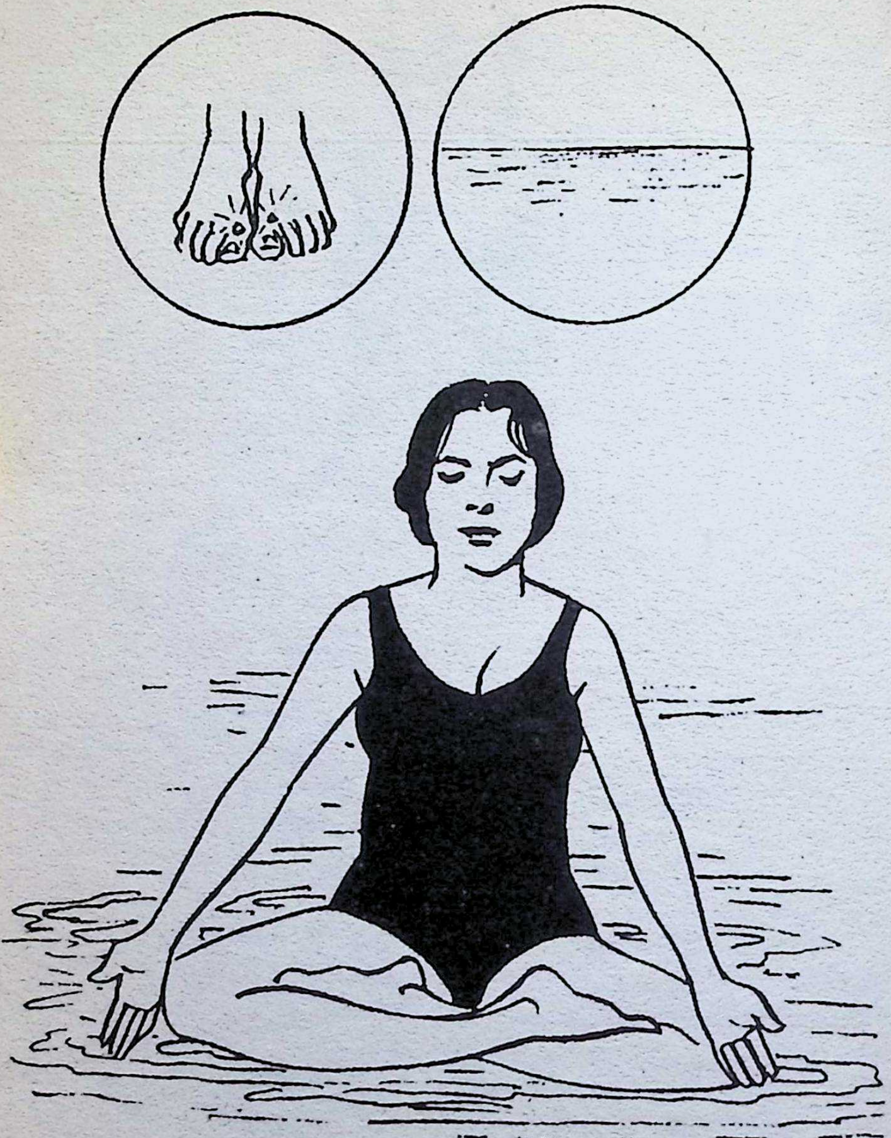

शक्ति के तीन प्रमुख स्रोत हैं। पृथ्वी, देवता या दैवी शक्ति और व्यक्तिगत शक्ति हम इन तीनों स्रोतों से शक्ति पाते हैं। पृथ्वी की शक्ति के रूप में हवा, पानी, साग-सब्जियां दैवी शक्तियों को समर्पण, श्रद्धा और भक्ति से पाते हैं। वास्तव में पृथ्वी की शक्ति और व्यक्तिगत शक्ति ही दैवी शक्ति के रूप में श्रद्धा, विश्वास ,प्रार्थना

और समर्पण के माध्यम से परिवर्तित हो जाती है। तंत्र का कहना है कि शून्य शक्ति का प्रतिनिधित्व करता है जिसका एक किनारा शक्ति और दूसरा शिव है और उसमें संकोचन, प्रसारण होता रहता है। शक्ति अंतर्मुखी व बहिर्मुखी शक्ति का रूप ले लेती है। विश्वास, श्रद्धा, पूजा, समर्पण आदि अपनी शक्ति को शिव बनाकर संसार का भला करने के लिए मूर्त रूप देता है। जिस प्रकार विद्युतीय शक्ति बल्ब के रूप में प्रकाशित होती है। शक्ति का अन्तर्मुखी रूप ही सृजनात्मक, रचनात्मक और उपचारात्मक शक्ति है। इसलिए हम पूजा-अर्चना में अपनी विरासत में मिली शक्ति को अंतर्मुखी करते हैं ताकि वह शिव स्वरूप हो जायें। भावातीत ध्यान की क्षमता सभी में है। शक्ति का काल्पनिक दृष्टिपात या भावातीत ध्यान अपनी शक्तियों को प्रयोग में लाने का एक जादुई उपकरण है। शक्ति का काल्पनिक दृष्टिपात करके अपनी सम्मोहन, विचार प्रत्यारोपण, व्यक्तिगत चुम्बकीय शक्ति और प्राणिक शक्ति को हम अपने शरीर में विकसित करते हैं और उसे चिकित्सा में प्रयोग कर लोगों में खुशियां बांटते हैं।

तंत्र में भूत-शुद्धि, शरीर-शुद्धि और मन-शुद्धि की विधि भावातीत ध्यान की विधि या काल्पनिक शक्ति दृष्टिपात की ही विधि है।

किसी कम्बल या दरी बिछे फर्श पर किसी ध्यानासन में बैठ जायें या शवासन में लेट जायें और अपने को किसी असीम अथाह समुद्र में पड़ा हुआ या बैठा हुआ देखें। देखें कि आपके चारों और जल-सा दिखाई पड़ रहा है और क्षितिज नजर आ रहा है जहां जल और आकाश मिल गए हैं। यही है भूत-शुद्धि और उसी स्थिति में अपने पैर के दोनों अंगूठों में एक चमकीली बिन्दु को काल्पनिक दृष्टि से देखें जो धीरे-धीरे दोनों अंगूठों से प्रवेश कर ऊपर की ओर टखने में पहुंचा फिर रीढ़ की हड्डि में प्रवेश कर गया और ऊपर की ओर मूलाधार चक्र, स्वाधिष्ठान चक्र, मणिपुर-अनाहत्चक्र से होते हुए आज्ञा चक्र में स्थित हो गया। यह है शरीर-शुद्धि और उस बिन्दु के विस्तार को देखते हुए अपने श्वास के गमनागमन पर बिना स्वाभाविक श्वास-प्रश्वास की स्थिति में बाधा पहुँचाए देखते रहें। कुछ देर में मन की, बन्दर की तरह उछल-कूद बन्द हो जाएगी। यही शुद्धि ही भावातीत ध्यान की प्रक्रिया तंत्र में होती है। और इसी स्थिति में हममें विभिन्न प्राणिक शक्तियों का सम्पात होता है।

शक्ति का खेल क्रिया—किसी आसन में बैठ जाएं और पेट से गहरी श्वांस धीरे-धीरे कुछ क्षण लें और शरीर को पूरा ढीला रखें। इसके बाद अपनी दोनों हथेलियों को आपस में पूरी तरह 20 सेकंड तेजी से रगड़ें और फिर दोनों हाथ को उलटा उसके कम्पन और स्पंदन को पूरे शरीर पर महसूस करें और फिर अपने चारों ओर की वस्तुओं और दरो दिशा को महसूस करें। यह वह व्यक्तिगत

चुम्बकीयता है जो हम चिकित्सा में प्रयोग करते हैं या सम्मोहन, विचार प्रत्यारोपण या प्राणिक चिकित्सा में व्यवहार करते हैं या टेलीपैथी या अतीन्द्रिय चमत्कार के रूप में दिखता है। यह वही शक्ति है जो कामोत्तेजना, भयभीत होने की अवस्था और अत्यधिक खुशी की हालत में हममें पैदा होती है। अगर इस शक्ति को काल्पनिक दृष्टि से देखेंगे, महसूस करेंगे और अपने चारों ओर इनका नृत्य देखेंगे, तो ये शक्तियां विकसित और प्रतिस्फुटित होंगी।

चोवा कोक सूई ने कहा है—"आज के अधिकांश वैज्ञानिक यह मानते हैं कि जीवन केवल शरीर में ही होता है। वे अपने यान को ग्रहों पर जीवन के स्तित्व को जानने के लिए भेज रहे हैं। लेकिन अतीन्द्रय ज्ञान की खोज के आधार पर यह मानना होगा कि जीवन की शक्ति और इथर के रूप में भी अस्तित्व है।"

प्राणिक या दैवी शक्ति या इच्छाशक्ति चिकित्सा

प्राणिक चिकित्सा, दैवी चिकित्सा या इच्छाशक्ति चिकित्सा का पता हमेशा ऋषि-महर्षि, योगी, मुनि और तांत्रिक भिक्षुक को प्रारंभिक युग से ही था। प्राण शक्ति ही, इच्छाशक्ति के रूप में व्यक्ति में प्रकट होती है और उसी से रोगी का रोग दूर किया जाता है और दुःख को खुशी में बदला जाता है। यही विधि शुभभावना विधि, आशीर्वाद प्रदान विधि या इच्छाशक्ति का करिश्मा विधि है जिसके द्वारा भारत में सदियों से रोग दूर किया जाता रहा है। अपने से बड़ों से आशीर्वाद और वरदान लेने, उसकी शुभभावना बटोरने की तीन विधियां आज भी प्रचलित हैं अभिनन्दनात्मक प्रणाम, गुरु या श्रेष्ठ प्रणाम और शाष्टांग प्रणाम। इन तीन प्रणाम विधियों से हम अपने देव प्रतिमाओं से भी विभिन्न शक्तियों को बड़ी आसानी से पा लेते हैं। इस दिशा में फिलीपीन्स के रासायनिक अभियंता श्री चोवा कोक सूई का नाम बड़े ही आदर के साथ लिया जाता है जिन्होंने प्राणिक शक्ति के चिकित्सा क्षेत्र में प्रभावों पर कई महत्वपूर्ण प्रयोग किये और पाया कि व्यक्ति की प्राणिक शक्ति ही, चाहे वह सम्मोहन हो या आत्मसम्माहेन, व्यक्तिगत चुम्बकीयता हो या किसी व्यक्ति विशेष का व्यक्तित्व आकर्षण, या इच्छा शक्ति हो या प्राणिक शक्ति अपने और दूसरे व्यक्तियों का रोग, दुःख को दूर करने में अहम् भूमिका निभाती है। ऐसे व्यक्ति को जो अपने प्राणिक शक्ति को विकसित करना चाहते हों और उसे स्वयं स्वस्थ और सुखी रहने के लिये या दूसरों के रोग-दुःख को दूर करना चाहते हैं उन्हें साधारण लेकिन एक निश्चित जीवन-शैली को अपनाना होगा। मैंने स्वयं भारतीय तीनों प्रणामों के आधार पर इष्ट प्रणाम को विकसित किया जिसे विभिन्न आसनों, मुद्रा और भंगिमाओं के जोड़ प्राणिक शक्ति विकसित करने के लिए उपयुक्त तकनीक के रूप में निम्न प्रकार से विकसित किया है।

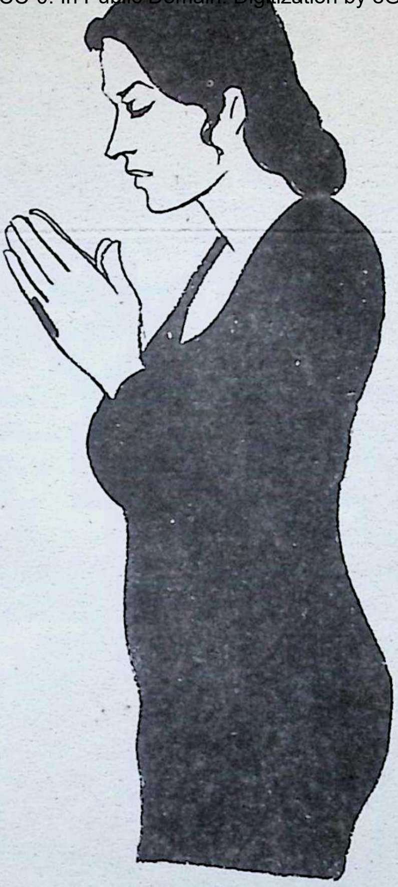

अभिनन्दनात्मक प्रणाम

प्राणिक चिकित्सा एक कला और विज्ञान दोनों है और इसे भावातीत ध्यान या मानसिक दृष्टिपात द्वारा विकसित और प्रक्षेपित या क्षरण कर रोगी को आत्मिक शक्ति से अभिभूत किया जा सकता है और उसके रोग दुःख को दूर किया जा सकता है। इसका आधारभूत तकनीक इष्ट प्रणाम, भावातीत धारणा और विचार प्रत्यारोपण है।

प्राणिक चिकित्सा विधि—रोगी को पहले आराम कुर्सी पर बैठा देना चाहिए या आरामदायक बिस्तर पर लिटा देना चाहिए। चिकित्सक को इष्ट प्रणाम करने के बाद ही रोगी के सामने आना चाहिए। इसके बाद चिकित्सक को रोगी के सिर के ताल पर अपने बाएं हाथ की पांचों अंगुलियां रखकर उसकी आंखों में आंखें डाल देनी चाहिए और उसकी आँखों में एक टक देखते हुए दाहिने हाथ से मुद्राशक्ति प्रहार करना चाहिए और साथ-ही-साथ उसके रोगों के सम्बन्ध में भी जानकारी हासिल करनी चाहिए। मुद्राशक्ति प्रहार वात पित्त की अवस्था में ललाट से नाभि तक हाथेली को कंपकंपाते हुए करते रहना चाहिए। इसी बीच रोगी अपनी बात बताते हुए अपनी आंख खोलने में पलकों का भारीपन महसूस करेगा और उसकी

बातें भी धीरे-धीरे और अटूट होने लगेंगी। चिकित्सक को ऐसी हालत में रोगी की आंखें अपनी तलहटी से बन्द कर देनी चाहिएं। लेकिन बातों का सिलसिला जारी रहना चाहिए। लेकिन चिकित्सक को समझ लेना चाहिए कि रोगी उसकी प्राणिक या इच्छाशक्ति से प्रभावित हो चुका है।

रोगी वात, पित्त, कमर और कमर से नीचे का रोग, जैसे यौन रोग, प्रजनन सम्बन्धी रोग, अर्श रोग, हाइड्रोशील, हर्निया मूत्रालय के रोग किडनी सम्बन्धी शिकायत कमर दर्द आदि की शिकायत करता है तो चिकित्सक को पीले सोने की तरह चमकते रंग के चतुर्भुज की कल्पना मन में करनी चाहिए और रोग के स्थान पर उसे मानसिक दृष्टि से देखना चाहिए और हथेली के नीचे की ओर करके पहले घड़ी की विपरीत दिशा में 7 बार घुमाने के बाद घड़ी की दिशा में गोल-गोल हथेली को बाँह को कंपकंपाते हुए घुमाना चाहिए। इसी प्रकार उदर-सम्बन्धी रोग, जैसे अपच, कोष्ठबद्धता, संग्रहणी, अतिसार, जौंडिस आदि रोगों पर लाल रंग की शक्ति प्रहार, हृदय और फेफड़ा सम्बन्धी रोगों में नीले रंग की शक्ति का प्रहार, गला-सम्बन्धी रोगों में इन्द्रधनुषी रंगों का शक्ति प्रहार और मानसिक रोगों में ललाट पर चमकती ज्योति का शक्ति प्रहार करना चाहिए। यह प्रहार प्रति दिन दो मिनट से 5 मिनट तक चिकित्सक को रोग की गम्भीरता को देखते हुए करना चाहिए। इसके बाद उसी पर पैर से सिर तक हथेली को ऊपर उठाकर घड़ी की दिशा में हाथ को गोल-गोल कंपकंपाते हुए प्राणशक्ति या दैवीशक्ति का प्रेक्षण रोगी के शरीर में दो मिनट से पांच मिनट तक प्रतिदिन करना चाहिए।

रोगी चिकित्सा के समय पूरी तरह सम्मोहित हो शक्ति को प्राप्त करता है। उसके रोग दूर होने लगते हैं। इसके बाद आधारभूत सोने के आकार का रंग, जो आधारभूत रंग स्वच्छ चांदनी की तरह का उजला अर्ध चन्द्रमा के आकार का रंग मैथुन रंग है, लाल रंग त्रिभुजाकार का, नीला रंग वृत के आकार का इसके बाद इन्द्रधनुषाकार का सातों रंग और अंत में प्रकाश पुंज को रोगी पर बारी-बारी से उसकी स्नायु मण्डलों को क्रियाशील करने के लिए डालना चाहिए।

इसके बाद विचार प्रत्यारोपण क्रिया द्वारा रोगी को प्रतिदिन नियमित समय पर अपने नित्य क्रिया को निबटाने और करने के अलावा व्यायाम सीख कर करने और आदर्श दैनिक कार्यक्रम का पालन करने का निर्देश देना चाहिए। रोगी को यह भी कहना नहीं भूलना चाहिए कि वह सदा प्रसन्न रहे क्यों!के उसका रोग अब दूर हो रहा है और बहुत जल्द वह अच्छा हो जाएगा। रोगी के ललाट को स्पर्श कर चिकित्सक को कहना चाहिए–"वत्स! अब उठो और पूरी तरह अंगड़ाई लो।" रोगी जैसे ही उठे उसे अभयमुद्रा दिखाना चाहिए।

रोगी को चिकित्सा देने के वाद चिकित्सक आंखों पर छींटा मारे और हाथ-पांव को पानी से अच्छी तरह धो ले इससे रोगी के नकारात्मक तत्त्व से चिकित्सक को छुटकारा मिल जाता है। चिकित्सक को इसके बाद अन्तर त्राटक भी कर लेना चाहिए। चिकित्सक को इस पेशे में जल्द परिणाम को पाने के लिए अधिक उतावलापन नहीं दिखाना चाहिए और न देर से नतीजा मिलने पर निराश ही होना चाहिए। क्योंकि चिकित्सक और शक्तियों के विकास की मात्रा पर ही उसकी सफलता और असफलता निर्भर करती है। संदेह और निराशा चिकित्सक के योजनात्मक प्राणिशक्ति प्रहार में सबसे अधिक बाधा पहुंचाते हैं और आत्मविश्वास से भरा व्यक्ति ही

एक अच्छा चिकित्सक बन सकता है। चिकित्सक को प्राणिक चिकित्सा खेचरी मुद्रा में करनी चाहिए। जिससे अनुकूल नतीजा निकले। खेचरी मुद्रा प्रसन्नाकृति में अच्छी बनती है। या खेचरी मुद्रा में व्यक्ति की प्रसन्नाकृति अच्छी होती है जो रोगों को दूर करने के लिए आवश्यक होता है। खेचरी मुद्रा में अपनी जीभ के अग्र भाग से कंठ को छूना होता है। इस विधि से रोगी का इलाज दूर से भी किया जा सकता है। फिटकरी के टुकड़े पर रोगी के कारण शरीर कला की सूक्ष्म शरीर से चिकित्सा की जा सकती है।

शारीरिक धेचक्र और उसकी प्राणिक क्रियाएंः–

हमारे शरीर के धेचक्र प्रमुख स्नायु केन्द्र हैं और तंत्र और योग में इनका बहुत बड़ा महत्त्व है। ये प्राणिक शक्ति केन्द्र भी हैं और विभिन्न अंगों में शक्ति संतुलन बनाए रखने के प्रमुख यंत्र भी हैं। इसीलिए चक्रशोधन भेदन क्रिया और प्राणायाम को तंत्र में विशिष्ट स्थान प्राप्त है। ये हमारे शरीर के विभिन्न अंगों को शक्तिशाली बनाते हैं। साथ-ही-साथ हमारे मानसिक और आत्मिक या आध्यात्मिक शक्तियों को नियंत्रित करते हैं। इसलिए एक स्वसम्मोहक व्यक्तिगत चुम्बकीय चिकित्सक का विचार प्रत्यारोपक और प्राण शक्ति प्रेक्षक को इन चक्रों का पूर्ण ज्ञान होना भी बहुत जरूरी होता है। ये चार चक्र हैं–मूलाधारचक्र, स्वाधिष्ठान चक्र, मणिपुर चक्र, अनाहत चक्र, विशुद्ध चक्र और आज्ञा चक्र।

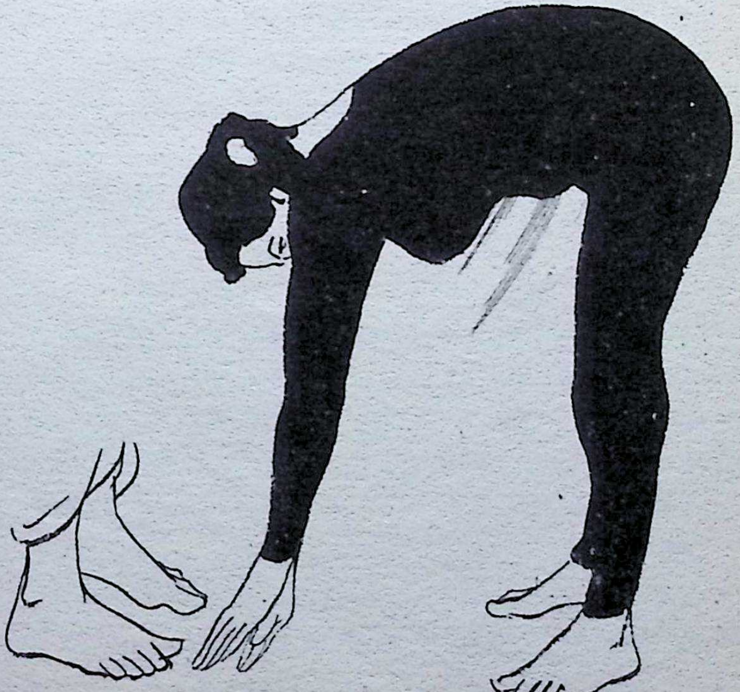

गुरु प्रणाम

इन चक्रों के आकार, प्रकार, रंग और बीजमंत्र और प्रभाव को आसानी से निम्न तांत्रिक श्लोक के माध्यम से समझा जा सकता है।

"लं बीजं धरणी ध्यायेत, चर्तुषां सुपिता भामं।"
सुगंधम स्वर्ण वर्णत्व अरोग्यमं देहलाधवर्णं।

मूलाधार चक्र का बीज मंत्र 'लं' है आकार चतुर्भुज के समान, रंग सोने की तरह चमचमाता हुआ पर गंध-सुगंध और प्रभाव निरोग करने वाला और शरीर को सुपुष्ट बनाने वाला होता है। इसका केन्द्र रीढ़ की हड्डी के पूछास्थि में स्थित है।

'वं' बीजं वरुणंध्यायेत अर्ध चन्द्रमशशि प्रभा,
"क्षुत पिपासा सहिश्रुणुत्व जल मध्ये शुभज्जनम।"

स्वाधिष्ठान चक्र का बीज मंत्र 'वं' है, आकार अर्ध चन्द्रमा के समान, रंग चांदनी की तरह उज्ज्वल और शान्ति दायिनी, इसका प्रभाव शरीर के जलांश या तरल तत्त्वों पर पड़ता है और शरीर में जलीय पदार्थों पर नियंत्रण की क्षमता प्रदान करता है। इसका केन्द्र पूछास्थि के अंत और रीढ़क के प्रथम मेटेवरा में स्थित है।

'रं' बीजं शिरर्वाणमध्यायेत त्रिकोणम्अरुणम प्रभम।
वहवन्न प्राण भोकृत्वम् आत्माग्नि सहिश्रुतम।

मणिपुर का बीज मंत्र "रं" है। आकार त्रिभुजाकार, और रंग लाल है। यह शरीर की रासायनिक और यांत्रिक क्रियाओं को नियंत्रित करता है और इसका प्रभाव शरीर के ताप को नियंत्रित करना होता है। इसका केन्द्र नाभि के सामान्तर मेटेवरा में स्थिति है।

'यं' बीज वह्नि ध्यायेत् वर्तुलम श्यामल प्रभम्
आकाश गमनाध्यं च पक्षिवत् गमन यथा ।।

अनाहत् चक्र का बीज मंत्र 'वं' है। इसका आकार वृत्त की तरह और रंग धुएं के रंग के समान है। इसका प्रभाव क्षेत्र रक्तसंचार श्वास प्रश्वास क्रिया है। और इसका केन्द्र हृदय के समानान्तर रीढ़ की मेटेवरा में स्थिति है। यह हमारे प्राण शक्ति को पक्षी की तरह एक दूसरे पर पहुंचाने का काम करता है।

बीजं गगनं ध्यायेत, निराकारम वहु प्रभम्।
ज्ञानं त्रिकाल विषयम् ऐश्वर्यम् मणि मादकम् ।।

इसका केन्द्र विन्दु लघु मस्तिष्क में त्रिकुटी के समानान्तर स्थित है। इसका वीज मंत्र 'हं' आकार शून्य या निराकार और रंग 'अधिक प्रकाश' के समान है। इसका प्रभाव विभिन्न ज्ञान को बढ़ाने, तीनों कालों (भूत, भविष्य और वर्तमान)

को जानने, ऋद्धि-सिद्धि और समृद्धि को दिलाने वाला होता है।

वीरासन में बैठकर चक्रशोधन क्रिया इन चक्रों में स्थित दैवी शक्तियों के विकास के लिए किया जाता है।

चक्रभेदन क्रिया भूत-शुद्धि, शरीर-शुद्धि और मनः-शुद्धि के बाद ही शवासन में किया जाता है।

तंत्रोपैथी

सर्वांगीण स्वास्थ्य

भाग-3

विषय सूची

प्रथम परिच्छेद

1. प्रगति और विकास अभियोजन में है 265
2. व्यक्तिगत आकर्षण बढ़ाने का अभ्यास 265
3. आंखों की आकर्षण-शक्ति बढ़ाने का अभ्यास 266
4. आंखों द्वारा विभिन्न मुद्राएं बनाने का अभ्यास 267
5. चेहरे पर समय की मार से आई झुर्रियों को मिटाने का अभ्यास 267
6. आंखों द्वारा मूड और भाव परिवर्तन का अभ्यास 269
7. मस्तिष्क की चुम्बकीय शक्ति को विकसित करने का अभ्यास 269
8. इच्छाशक्ति को बढ़ाने का अभ्यास 271
9. मांसपेशियों और भाव या मन को अधिकृत करने का अभ्यास 274
10. सिर की खोपड़ी और मस्तिष्क मन का एक यंत्र 274
11. शक्ति सम्पात कराने का नियम 276
12. तांत्रिक पूजा आत्मदर्शन की विधि 279
13. मुक्ति होती है बंधन के कारणों के प्रयोग से ही 279
14. अणुजीवत सिद्धांत 281
15. तांत्रिक योग्य रासायनिक ग्रन्थियों को संतुलित करने में सक्षम 283
16. तांत्रिक शोधन-भेदन विधियां मन और शरीर दोनों को प्रभावित करती हैं 284
17. सक्रिय ध्यान स्वचालित शारीरिक क्रियाओं को संतुलित करते हैं 285
18. नागराज ध्यान मुद्रा 287
19. आध्यात्मिक दृष्टि से बीमार व्यक्ति ही मानसिक और शारीरिक दृष्टि से पूर्ण विराम 287
20. महा मुक्तेश्वर मुद्रा 289
21. तांत्रिक आहार अमृत 294
22. मृत्युंजय मुद्रा 294

23. छाती पेट और कटिप्रदेश की बीमारियां और दूर करने की तांत्रिक विधियां 297
24. अवम्ल और अमाशय की कमजोरी और कब्ज दूर करने की तांत्रिकी मुद्राएं 298

द्वितीय प्ररिच्छेद

25. स्वास्थ्य क्या है? 299
26. स्वास्थ्य और मन का केन्द्रीकरण 310
27. स्वास्थ्य और सफलता 318
28. स्वास्थ्य और आकर्षण 325
39. स्वास्थ्य और आह्लाद 336
30. स्वास्थ्य और भय 341

तृतीय परिच्छेद

31. तंत्र शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक शक्ति और जीवन ऊर्जा की कुंजी 355
32. तंत्र योग नहीं 357
33. तांत्रिक धारणा और अनुपेक्षित चिन्तन 358
34. तांत्रिक मुद्राएं, मंत्र और यंत्र 360
35. मुद्राएं 361
36. मंत्र 363
37. उद्दीपन, नियंत्रण और प्रवाहीकरण 366
38. यंत्र 368
39. तांत्रिकी नियंत्रण 370
40. तांत्रिकी प्रवाहीकरण 371
41. मानवीय विषय शक्तियां और स्वास्थ्य 373
42. अनुप्रेक्षचिन्तन मंत्र–इष्ट मंत्र और गुरु मंत्र 376
43. अनुप्रेक्षित चिन्तन मुद्रा और आसन 377
44. थकान मानसिक अभिव्यक्ति है वास्तविकता नहीं 377
45. अभिमंत्रित मंत्र व शक्ति सचेत 378
46. अहम को बचाने में जीवनी शक्ति का अपव्यय 379
47. मन, अचेतन मन, सकारात्मक थकान और स्वास्थ्य 398
48. ऋद्धि-सिद्धि की समृद्धि और अभिव्यक्ति 405
49. अन्य वीमारियों के लिए प्रमुख मुद्राएं 412

प्रथम परिच्छेद

तंत्रोपैथी चिकित्सा की आध्यात्मिक, शारीरिक, मानसिक, रासायनिक और प्राकृतिक विधियों की समन्वित इलाज की पद्वति है। यह भारत की पौराणिक स्वास्थ्य विज्ञान तंत्र का क्रांतिकारी स्पष्टीकरण है। मनुष्य के लिए यह एक बेशकीमती उपहार है। यह हमारे सामान्य स्वास्थ्य की देखभाल और स्वस्थ रहने की एक व्यावहारिक पद्धति के साथ-साथ आधुनिक संसार के खान-पान, रहन-सहन तथा चिन्तन मनन की विसंगतियों और हमारे व्यक्तिगत जीवन में संतुलन बनाए रखने का विज्ञान और कला दोनों हैं।

तनावग्रस्त मांस-पेशियों को शान्त करना गतिहीनता है जो आज की अत्यधिक प्रतियोगिता और मुद्रास्फीति के चलते जीवनयापन और सम्मान जनक रोजगार की तलाश के लिए पूर्णतः भाग-दौड़ की देन है और इस तनाव से, प्रतिदिन शाम को 10 मिनट के लिए गति हीनता की स्थिति लाकर ही स्वस्थ जीवन जिया जा सकता है। तंत्रोपैथी में इसके लिए अनेक आसन, मुद्राओं और शैया को करने का सुझाव दिया गया है। हमारे विचार रूपी पतंग कभी भूतकाल के खट्टे-मीठे अनुभवों, वर्तमान भाग दौड़ दुःचिन्ताओं और भविष्य की अनिश्चित योजनाओं की डोर पकड़कर असीम मानसिक जगत में उड़ते रहते हैं। तंत्र के अनुसार विषय परिवर्तन की कला प्रकृति ने हमें स्वाभाविक रूप से सिखायी है जिससे अनजाने में ही हम चिन्तन के विषय को परिवर्तन कर सामान्यस्थिति बनाए रखते हैं। अत्यधिक दुःखद या सुखद स्थिति और आलस्य में हम इस प्रकृति प्रदत्त कला को भूल जाते हैं और विचार रूपी पतंग की तरह अनियंत्रित हो एक ही दिशा में उड़ने लगते हैं। इसी स्थिति में लोग नींद की गोली खाने और नशापान करने या सेडियाटिव लेने के आदी बन जाते हैं। मानसिक असंतुलन या पागलपन इसी अवस्था का दूसरा रूप है। चिन्तन हीनता कला को सीखना ही इसका इलाज है और तंत्रोपैथी में इसके लिए विभिन्न मुद्राओं की खोज की गई है।

बिना उपयुक्त मुद्राओं के विशिष्ट आसन भी अधिक लाभदायक नहीं हो सकते। पितृयज्ञ का आसन है ताड़ासन और विशिष्ट अंजलि अर्पणात्मक मुद्राओं द्वारा ही पितृयज्ञ सम्पन्न करने की व्यवस्था तंत्र ने दी है। आसन शरीर की विशेष स्थिति और मुद्रा विशिष्ट शारीरिक क्रियाओं को कहा गया है। सांप का फन उठाये पूंछ पर खड़ा होना भुजंग का एक विशिष्ट आसन हुआ। फन उठाए पूंछ के बल पर दौड़ना या फन को दाएं बाएं घुमाना इस आसन की विशिष्ट मुद्राएं हुईं।

हमारे लिए बदन को एक स्थिति में रखना जितना स्वस्थकर है इससे अधिक उसी स्थिति में विभिन्न मुद्राओं द्वारा शरीर के विशिष्ट भाग की मांसपेशियों का संकोचन-प्रसारण करना, स्नायुओं की हलकी मालिश करना और उससे सम्बन्धित स्नायु केन्द्रों का शोधन भेदन करना, किसी विशिष्ट रोग को दूर करने और स्वस्थ रहने में अहम भूमिका अदा करता है। मुद्रा के लिए विशिष्ट आसन, जिससे खास रोगग्रस्त अंग को ध्यान में रखते हुए किया जाता है, उस अंग विशेष को उस विशिष्ट आसन में विभिन्न दिशाओं में लयात्मक ढंग से चलाना, उसके विशिष्ट स्नायु केन्द्र की मांसपेशियों का संकोचन-प्रसारण तत्सम्बंधी स्नायुओं की हल्की मालिश और स्नायु केन्द्र का शोधन-भेदन हो जाता है। इसी कारण तंत्रोपैथी में आसनों के महत्त्व को कबूल करते हुए उन आसनों पर आधारित मुद्राओं का उपचारात्मक दृष्टिकोण से विशिष्ट महत्त्व दिया जाता है। इस दृष्टि से इसे तंत्र-योगापैथी भी कहा जा सकता है।

तंत्रोपैथी में द्रव्यगुणों की महत्ता को स्वीकार किया गया है और वैसे पौधों के द्रव्यगुणों को उपचार के रूप में लिया गया है जो आसानी से उपलब्ध होते हैं और जिनका विशिष्ट रोगों, देव अर्चनाओं और अन्य कार्यों में प्रयोग करने की तांत्रिक परम्परा रही है। विश्व के विभिन्न सम्प्रदायों में प्रचलित साधना विधियां-तांत्रिक विधियां हैं। तांत्रिक विधियां सारभौम हैं, उन्हें किसी सम्प्रदाय की चाहार दीवारी में नहीं बांधा जा सकता। ये साधना विधियां आध्यात्मिक विकास के साथ-साथ शारीरिक और मानसिक व्याधाओं को दूर करने में भी पूर्ण सक्षम हैं।

मुंह का बनना-बिगड़ना एक मानसिक प्रक्रिया है और एकाग्रता के लिए जितना अधिक परिवेश महत्त्वपूर्ण है, उतना ही विशिष्ट तांत्रिक क्रियाएं भी आवश्यक हैं। इसमें विशिष्ट मुद्राओं का प्रतिदिन कुछ मिनट का अभ्यास व्यक्ति को आसानी से एकाग्र होने की कला सिखा देता है। सारे दिन के मान-अपमान और सफलता-असफलता से प्रभावित हमारे अड़ियल स्नायुओं को शान्त करने की कला ही एकाग्रता है। तंत्रोपैथी में मुद्रओं और धारणाओं पर विशेष जोर दिया गया है। इसका मतलब यह नहीं कि आसन और ध्यान के प्रति उपेक्षा की गयी है। वास्तव में आसन और मुद्रा तथा ध्यान और धारणा एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। बिना उपयुक्त आसनों के मुद्रायें पूर्ण लाभदायक नहीं हो सकता और धारणा के अभ्यास के बिना ध्यान व्यक्ति को थकान और उबानेवाला ही सिद्ध हो सकता है।

तंत्रोपैथी भरपूर जीवन जीने की एक नयी पद्धति, सर्वांगीण स्वास्थ्य (शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक) का आधार है, सर्वोच्च व्यक्तित्व (सफल आकर्षक और आह्लादित व्यक्तित्व) पाने की विधि तथा स्वस्थ जीवन की कला और विज्ञान है। तंत्र की मान्यता है कि जैसा भाव होगा वैसी मुद्रा होगी और जैसी मुद्रा बनेगी वैसा भाव होगा। तंत्रोपैथी में मुद्रा प्रदर्शन से भाव (आवेग-संवेग के नियंत्रण तथा भाव प्रदर्शन द्वारा विभिन्न मुद्राओं के नियंत्रण का प्रशिक्षण दिया जाता है। निष्क्रिय मस्तिष्क को सक्रिय करने और गिरे मन को ऊपर उठाने के लिए "चक्षु चालन जामवंत मुद्राओं" तथा "कर्ण भेदन हस्ति मुद्राओं" का तंत्रोपैथी

में बड़ा महत्त्व है। क्योंकि निष्क्रिय मस्तिष्क और गिरे मन से, विभिन्न प्रकार की बीमारियों का आक्रमण होता है। या बीमारियों के आक्रमण होने से भी मस्तिष्क निष्क्रिय हो जाता है और मन गिर जाता है।

हर व्यक्तित्व के तीन पक्ष होते हैं शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक और बीमार व्यक्ति तीनों दृष्टियों से बीमार होता है। इसलिए हर रोगी की चिकित्सा तीनों स्तर पर होनी चाहिए। आध्यात्मिकता, आशावादिता, सकारात्मक चिन्तन और मन की लयात्मकता है लेकिन आज यह विभिन्न संप्रदायों के घरौंदों में बंद रूढ़िवादिता, अंधविश्वास और अहमन्यता बन कर रह गया है। तंत्रोपैथी आशावादी और सकारात्मक रुझान के लिए व्यक्ति में शौक, व्यसनांग और हाबी विकसित करने का रुझान पैदा करता है तथा प्रकाश-अंधकार आंख मिचौनी चिन्तन शैली द्वारा सफल, आकर्षक और आहलादित व्यक्तित्व का निर्माण करता है।

मानव शरीर एक रासायनिक कारखाना है। तंत्रोपैथी शरीर की मांसपेशियों का संकोचन-प्रसारण, मर्दन-मंथन तथा स्नायु शोधन-भेदन द्वारा शारीरिक, रासायनिक संतुलन को बनाए रखने पर जोर देता है। क्योंकि हमारा शारीरिक रासायनिक असंतुलन ही विभिन्न प्रकार की बीमारियों का कारण होता है। कटिबंधना गड़ाई का इस सम्बन्ध में विशिष्ट स्थान है। तंत्रोपैथी व्यक्ति की जीवनी शक्ति के उद्दीपन, नियंत्रण और प्रवाहीकरण के माध्यम से संयम और उपचार विधियां प्रस्तुत करता है। हमारी ध्वनि, भाव, क्रिया-कलाप तथा श्वास प्रश्वास हमें, हमारे परिवार और समाज को अत्यधिक प्रभावित करते हैं। ये ही जीवनी शक्ति के प्रमुख स्रोत हैं और शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक दृष्टि से स्वस्थ रहने का माध्यम भी।

तंत्र के बिम्ब-प्रतिबिम्ब न्याय (ला ऑफ इमेज एण्ड रिफलेक्शन) की चिकित्सा जगत में बड़े महत्त्वपूर्ण योगदान की आशा है।

विशेषकर मानसिक रोगियों के लिए तंत्रोपैथी में बिम्ब-प्रतिबिम्ब न्याय का विशिष्ट स्थान है। अपने प्रति जैसा भी बिम्ब का सृजन आप करते आ रहे हैं, उसी के प्रतिबिम्ब आप हैं। आपने अपने प्रतिबिम्ब को सारी शक्ति प्रदान कर दी है इसलिए प्रतिबिम्ब शक्तिमान बन कर आप पर हावी है। व्यक्ति में बिम्ब के परिवर्तन होते हीं पूर्व प्रतिबिम्ब विलीन होने लगता है।

विश्व ब्रह्माण्ड के सारे खाली स्थान इथर और अणुजीवत् (माइक्रोवाइटा) से भरा पड़ा है। एडमंड शफटेंसवरी ने इसे यूनिवर्सल इथर कहा है और तंत्र ने योनि नाम दिया है तथा सूक्ष्म अतिसूक्ष्म और सूक्ष्मातिसूक्ष्म तीन श्रेणी में इसको बांटा है।

सूक्ष्मातिसूक्ष्म योनि को देव योनि कहा गया है। ये ही सूर्य से रोशनी और जीवन को हम तक लाते हैं। प्रकाश के बिना जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती है। स्पंदन इथेरियल होता है और ध्वनि मेटिरियल प्रकाश, जीवन और विचार एक सदृश है। प्रकाश जिस माध्यम से सफर करता है उसी माध्यम से

हमारा विचार भी तेजी से यात्रा करता है। लेकिन यह सम्भव है कि हमारे विचार के रास्ते में विभिन्न तरह की बाधाओं के चलते साफ और स्पष्ट नहीं भी हो सकते हैं जैसे शारीरिक रोग, मानसिक असंतुलन, मस्तिष्क की खराबी आदि। यही इथर आकाश से गर्मी, विद्युत प्रक्रिया तथा प्रकाश का माध्यम है। अणुजीवन (माइक्रोवाइटा), इथर या देव योनि उन एटमों के बीच फैलाव कर अपना रास्ता बना लेता है जिससे स्थूल चीजें बनी हैं। इसी कारण हमारे विचार गति प्रकाश की गति या विद्युत की गति से भी तेज होती है। और ये हमारे शरीर के पंजर और मस्तिष्क में उसी गति से प्रवेश करते हैं। यही कारण है कि हमारे शुभ-अशुभ विचारों की प्रतिक्रिया तत्क्षण दूसरे पर होती है और स्वयं भी उससे अपाद मस्तक प्रभावित होते हैं।

विचार अभिव्यक्ति के चार माध्यम मस्तिष्क, आंखें, गला और मांसपेशियां–

हमारे विचार और भाव अभिव्यक्ति के चार माध्यम हैं–मस्तिष्क, आखें, गला और मांसपेशियां। हमारे मस्तिष्क में विचार आते हीं पहले आंखों में झलक जाता है और फिर गला (आवाज) और मांसपेशियों द्वारा उसकी अभिव्यक्ति होती है। जैसे क्रोध में पहले आंखों का लाल होना, भौहों का वक्र हो जाना, फिर चीखना-चिल्लाना और अन्त में हाथा-पायी पर उतर आना अकसर देखा जाता है। भाव अभिव्यक्ति का यह स्रोत तंत्रोपैथी में बड़ा महत्त्वपूर्ण है। तंत्र ने कहा है जैसा भाव होता है वैसी मुद्रा होगी और जैसी मुद्रा होगी वैसा भाव बनेगा। अधिकांश अभिनेता और अभिनेत्रियों का पारिवारिक जीवन इसीलिए सफल नहीं होता क्योंकि अभिनयकाल में विभिन्न मुद्राओं के वे अभ्यस्त हो जाते हैं और जो रुपान्तरित भाव पैदा कर पारिवारिक जीवन में बाधा डालते रहते हैं। मुद्राओं द्वारा विभिन्न तरह के भावों को पैदा कर शारीरिक रासायनिक प्रक्रिया में–परिवर्तन परिवर्धन और संतुलन लाया जा सकता है।

प्रकाश, विद्युत और विचार तीनों की चाल या गति एक जैसी है। ये एक दूसरे से संयुक्त हैं। मनुष्य इस शक्ति का पुंज है। इस सिस्टम का मनुष्य एक हिस्सा है। विश्व के सारे भौतिक और आध्यात्मिक नियम के यही स्रोत हैं। हमारे विचार प्रेक्षण के तीन रास्ते हैं।

(क) **स्पर्श इन्द्रिय**–द्वारा स्पर्श से हम अपने विचार को दूसरे तक पहुंचा सकते हैं। बशर्ते उस वक्त और कोई दूसरा माध्यम प्रयोग किया जाये। इस माध्यम से विचार त्वचा से त्वचा को पहुंचाया जाता है।

(ख) **बोलकर**–इसका माध्यम वायुं है।

(ग) **विचार से**–इसका माध्यम इथर, माइक्रोवाइटा देव योनि या अणु एक जैसी है।

(घ) **देखकर**–इसका माध्यम है गति। आंखों की जाति में आंख के गोलक, पुतलियां, भौहें और पलकें आती हैं।

रोग निवारण के लिए तंत्रोपैथी में इन तीनों माध्यमों का प्रयोग किया जाता है। रोगी और डॉक्टर तीनों को इन माध्यमों का सहारा लेना पड़ता है।

हम पर प्रत्येक प्रभाव के संदेश का कोई न कोई माध्यम होता है। इसके अभाव में डॉक्टर मरीज का इलाज प्रभावी ढंग से नहीं कर सकता।

इसके लिए व्यक्ति में स्वस्थ और सक्रिय मस्तिष्क, रचनात्मक कार्यक्रम, इच्छाशक्ति, नियंत्रित मन तथा सुप्रतिष्ठित, उत्तम तथा उत्साहित जीवन का होना जरूरी है।

प्रगति और विकास अभियोजन में है, द्वन्द्व में नहीं

स्थिरता, परिवर्तन तथा विरोध व्यक्ति में आकर्षण पैदा करता है। प्रगति और विकास का नियम बतलाता है कि प्रगति या विकास द्वन्द्व में नहीं अभियोजन में है। जीवन एक जनपथ है और उसके सभी रास्ते कहीं न कहीं ले जाते हैं। वह व्यक्ति जो चौराहे पर प्रगति अर्निणायक हो कर खड़ा रहता है वह जिन्दा ही दफन हो गया है। भले ही उसका अस्तित्व और हो लेकिन वह मुर्दा की तरह है। जीवन की योजनाएं विभिन्न परिवर्तनों और खट्टे-मीठे अनुभवों के साथ सम्पन्न होती हैं। इसका अर्थ यह नहीं कि आवेशों में आकर किसी के विचारों या अपेक्षाओं के लिए जीवन को ही पूर्णरूप से दान कर दिया जाये। जीवन में लक्ष्य का निर्धारण आवश्यक है लेकिन छोटी-मोटी इच्छाओं और द्वन्द्व में मान-मर्यादाओं को भी चुनना और उसे तन्मयता से पूरा करना चाहिए। यह परिवर्तन नहीं व्यक्ति के आकर्षण को द्विगुणित कर देना है। एक आकर्षक व्यक्ति के लिए शारीरिक और मानसिक दृष्टि, से सक्रिय, आशावादी और सकारात्मक चिन्तक होना आवश्यक है। एक व्यक्ति की आखों में चमक और पुतलियों के संकोचन-प्रसारण उसके आकर्षण का प्रमाण प्रस्तुत करता है। जब अपने भीतर प्रकाश का सृजन होता है तो आंखें चमक उठती हैं।

व्यक्तिगत आकर्षण बढ़ाने का अभ्यास–

आकर्षक आंखों को बनाने का एक सरल व्यायाम, जिसके एक माह के अभ्यास से ही आशातीत परिवर्तन व्यक्ति में दिखेगा।

(क) सुबह उठने के बाद नित्यक्रिया से निवृत हो कर एक ऐसे कमरे में जाएं जहां घटाटोप अंधेरा हो और कमरे की कोई भी वस्तु न दीखती हो। चाहे तो आप 12 बजे रात में भी इस क्रिया को कर सकते हैं अगर ऐसा अंधेरा कमरा उपलब्ध न हो।

(ख) कमरे में धीरे-धीरे स्थिर और शान्त भाव से आंखों को खोलने के साथ हीं साथ शरीर में तनाव लाते हुए अंगड़ाई लें।

(ग) इसके बाद तुरन्त आंखें धीरे-धीरे बन्द करें और शरीर को सामान्य स्थिति में लाएं। इस अभ्यास को प्रतिदिन, तब तक पुनरावृत्ति करें, जब तक

आनन्दाय प्रकाशपुंज और सम्वेदना प्राप्त न होती हो।

(घ) अगर आप में आकर्षण शक्ति विकसित हुई है तो आपको प्रकाश पुंज और चमक मस्तिष्क के सामने दिखाई पड़ेगी।

(च) कुछ तांत्रिक इस प्रकाश पुंज को बाहर हवा में छोड़ कर रोग निवारण और दूसरों को आकर्षित करने के काम में लाते हैं, कुछ अपने नेत्र गोलक में देखते हैं चाहे आंखें बन्द या खुली हों और कुछ अपने मस्तिष्क में देखते हैं। इन प्रकाश पुंजों को किसी भी प्रकार से देखना विशिष्ट फलदायी होता है।

इस अभ्यास के करने के बाद दो घंटा अवश्य आराम करें। तंत्र में व्यवस्था है कि आकर्षण व्यक्ति में अभ्यास के बाद आराम से ही आता है।

आंखों की आकर्षण शक्ति लाने का अभ्यास–

आंखों की आकर्षण शक्ति को नियमित अभ्यास से बढ़ाया जा सकता है। और अपने में रोग निवारण क्षमता की वृद्धि की जा सकती है। तंत्र का सिद्धान्त है–बिना कुछ-से-कुछ बनाया नहीं जा सकता। (समथिंग कैनोट बी मेड आउट ऑफ नथिंग, आंखों के गोलक या पुतालियों में देखते हैं या मस्तिष्क में हैं या अभ्यास के कर्म में जो कुछ अपने मस्तिष्क में देखते हैं, वह वहां है। उसे अभ्यास से विकसित किया जा सकता है। आंख की आकर्षण शक्ति को अभ्यास के द्वारा बढ़ाया जा सकता है।

अभ्यास-1 (क) आंखें बन्द कर सिर, गर्दन, मस्तिष्क और सारे शरीर में तनाव लाइए और इस तनाव की स्थिति में कुछ सेकण्ड शरीर को रखिए।

(ख) आंख बन्द किए ही आंखों के गोलक को यथा शक्ति एक दूसरे के नजदीक ले जाइए और फिर दूर हटाइये।

(ग) फिर आंखें खोलिए और आंख की मांसपेशियों की हलकी मालिश कीजिए। तंत्र के अनुक्रम (परम्परा) नियम के अनुसार विचारों का शारीरिक प्रभाव मांसपेशियों पर सबसे अन्त में पड़ता है। पहले विचार आंख की पुतलियों में चमकता है और पूरे चहरे को आच्छादित कर देता है। मात्र एक सेकण्ड इस प्रक्रिया में लगता है। विचारों का संकेत आंख को मिलने के कई सेकण्ड के बाद गले से शब्दों का उच्चारण हो पाता है।

(घ) मस्तिष्क को उत्तेजित करने के लिए आंख के गोलकों को एक तरफ से घुमाइये। यह अभ्यास मस्तिष्क के चलाने की क्रिया जैसा है।

(च) आंख की पलकें अभ्यास के दौरान गिरने न पाएं। आंखें पूर्णरूप से खुली रहें। जामवंत मुद्रा के नाम से इस अभ्यास को तंत्रोपैथी में अभिव्यक्त किया गया है। याद रहे उत्तेजित आंखें, क्रमिक तथा लयात्मक गति से अधिक उपयुक्त, मस्तिष्क की आकर्षण शक्ति को विकसित करने का और कोई तरीका नहीं हो सकता। इस अभ्यास में आंख की पुतलियों सहित चेहरे की सभी मांसपेशियां, आंख के गोलक को नियंत्रण करनेवाली अंदर की मांसपेशियां तथा स्वयं आंखों के गोलक का व्यायाम हो जाता है।

ऊपरी पलक की गति से आंखों की विभिन्न मुद्राएं बनती हैं जिससे मस्तिष्क तो क्रियाशील होता ही है साथ-ही-साथ आंखों की कमजोरी या अन्य बीमारियां भी दूर हो जाती हैं। इससे आंखों से सम्बन्धित मांस पेशियां मजबूत होती हैं और आंखों में फासफोरस की मात्रा बढ़ जाती है। आंखों के चारों ओर की झुर्रियां मिट जाती हैं। अभ्यास के साथ चेहरा पूरा खुला हुआ रहता है इसलिए चेहरे में चमक और आब आ जाती है। चेहरे पर से बुढ़ापे की छाया कोसों दूर भाग जाती है। हंसने से पूरा चेहरा खुल जाता है और रोने या उदास रहने से चेहरा वन्द हो जाता है। अभ्यास करते वक्त चेहरा पूरा खुला रहता है। हास्याकृति और प्रसन्नाकृति का पहले अभ्यास कर लेना चाहिए।

आंखों द्वारा विभिन्न मुद्राएं बनाने का अभ्यास–

अभ्यास-2 (क) खिड़की के सामने आइना रखकर आप अपनी आंखों की पलकों के बालों को अधखुली आंखों से देखें, ऐसा करने से आंखों की शान्ति मुद्रा बनेगी।

(ख) आंखों की पुतली को ऊपर कर ऊपर की पलकों की भौंहों की बालों को देखें इससे आंखों की उदासीन मुद्रा बनेगी।

(ग) पुतली के ऊपर आंख की पलकों को निश्चित करें इससे आंख की कौतुकली मुद्रा बनेगी।

(घ) पुतली के आधे में आंख की ऊपरी पलकों को रखें इससे आंखों की गहन विचार मुद्रा बनेगी।

(च) पुतली के ऊपर पलकों को इस प्रकार रखें कि ऊपरी परत की पुतली ऊपर दिखाई पड़े। यह आंखों की उत्तेजनात्मक मुद्रा बनेगी।

(छ) पुतली के ऊपर पलकों को इस प्रकार रखें कि उजले परत का अधिक से अधिक हिस्सा दिखाई पड़े तो वह आंखों की नियंत्रित उत्तेजक मुद्रा बनेगी। अभ्यास के वक्त भौंहें और नीचे की पलकें सामान्य रहेंगी।

(ज) ऊपर की पलकों को पुतली के ऊपर रखें जिससे अधिक से अधिक आंख का उजला भाग दिखाई पड़े और नीचे की पलकों को पुतली के किनारे के पास रखें। यह आंखों की खोज परख मुद्रा होगी।

चेहरे पर समय की मार से आई झुर्रियों को मिटाने का अभ्यास–

गरीबी, दुःख-तकलीफ और बढ़ती उम्र अपनी छाप व्यक्ति के चेहरे पर छोड़ जाती है। दुःचिन्ता और तनाव दबाव भी चेहरे पर झुर्रियों के रूप में अपना चिह्न अंकित कर देता है। लेकिन तांत्रिक क्रियाएं इसे मिटा देती हैं। इसे हम प्रसन्नाकृति और हास्याकृति से चेहरे को खोलकर दूर कर सकते हैं।

अभ्यास-3 (क) भौहों का संकोचन प्रसारण उतना अधिक करें, जितना कर सकते

हैं फिर उसे ढीला करें। हमेशा चेहरे और मन को खुला रखें, जब तक इसकी आदत न बन जायें।

(ख) खुला चेहरा साम्वेगिक स्थिरता और प्रधानता को अभिव्यक्त करता है जबकि बन्द चेहरा सांवेगिक अस्थिरता और कल्पनाशीलता का अभाव दर्शाता है।

(ग) आंखों की संतुलित गति से आंखों की कमजोरी दूर की जा सकती है। अपनी आंख के गोलक को स्वयं देखने का अभ्यास करें और उपर्युक्त अभ्यासों से आंख की आकर्षण शक्ति को बढ़ावें। हमारी आंखें ही हमारे व्यक्तित्व का दर्पण हैं। मानसिक चिन्तन और अनुभव से हमारी आंखों में गति होती है और आंखों की नियंत्रित गति मस्तिष्क को उत्तेजित करती है। निम्न अभ्यासों से पता चलेगा कि अपनी आंखों पर हमारा कितना कम नियंत्रण है।

नियंत्रित आंखों की गति मस्तिष्क चुम्बकत्व का सृजन करती है। आंखों को दृष्टि रोग से बचाती है, आंखों से सम्बन्धित मांसपेशियों को मजबूत और लचीला वनाती है और चेहरे में अद्वितीय सुन्दरता प्रदान करती है। हमारी आंखों के प्रमुख तीन भाग हैं–भौंहें, पपनी और गोलक। भौंहों का अभ्यास चेहरे की झुर्री मिटाने के परिपेक्ष्य में बताया जा चुका है। यहां आंखों की पलकों और गोलकों के अभ्यास की चर्चा करेंगे।

(क) आंख के ऊपर और नीचे की पलकों को जितना अधिक खोल सकते हों खोलें और उसे तनावयुक्त स्थिति में रखें, जितना रख सकते हों। फिर उसे ढीला कर धीरे-धीरे आंखें बंद करें।

(ख) आंख की भौहों को अभ्यास के दौरान उठाएं और उसे सामान्य स्थिति में ही रहने दें।

(ग) इस अभ्यास को कम-से-कम दुहराएं।

(घ) मेरुदण्ड को सीधाकर आइने के सामने ऊपर नीचे की पलकों को पूरी तरह खोलकर एकटक आंखें तरेर कर देखिए। बिना पलक झपकाए आंख के गोलकों को 8 बार दाएं से बाएं और 8 बार बाएं से दाएं तथा इसी प्रकार उन्हें ऊपर से नीचे और नीचे से ऊपर बिना सिर को हिलाए घुमाएं और फिर सामान्य स्थिति में आ जाएं।

(च) आंखें पूरी तरह खोल कर तनावयुक्त करें। पलकों को स्थिर रखें। सिर को थोड़ा पीछे मोड़कर गोलक को बाहर की ओर जितना फेंक सकते हों फेंकें। इसके बाद सिर को नीचे की ओर मोड़ें और पूर्ववत् स्थिति में पूरी आंखें खोलकर फर्श को देखें।

(छ) उपर्युक्त आंखों की मुद्रा में आंख के गोलक को वृताकार घुमाएं। उपर्युक्त अभ्यास जब तक आंखों से आंसू न निकलें, करें और इसके बाद बन्द कर दें।

आंखों को चमकीला बनाने, दूर और नजदीक की वस्तुओं को साफ नजर आने, देखने की द्रुतगति तथा सुन्दर अभिव्यक्ति के इससे अच्छा अभ्यास सम्भव नहीं।

आंखों द्वारा मूड और भाव परिवर्तन का अभ्यास–

आकर्षण शारीरिक, मानसिक, साम्वेगीय या आध्यात्मिक हो सकता है। आंख की ऊपर की पलकें हमारे मूड, भाव उत्तेजना को व्यक्त करती हैं अगर वे काले गोलक के मध्य भाग से ऊपर उठती और नीचे की पलकें जब ऊपर उठती हैं तब अन्दर को जाती हैं जब द्वेष, घृणा और जब बाहर को आती हैं तो खुशी जाहिर करती हैं। हमारी आंखों का गोलक सामने से देखने पर गोल दिखाई पड़ता है जिसका बाह्य घेरा उजला होता है, जो नीला, भूरा या मटमैला भी दिखता है। इसके बाद नीला, भूरा या काला घेरा होता है, जिसे आइरीस कहते हैं। आंख की पुतली के फैलने से इसमें कालापन आ जाता है। आंख की पुतली एक छिद्र है। जिसके अन्दर से मस्तिष्क के आकर्षण की चमक आती है। आंखों की भाषा बड़ी ही प्रभावशाली, हृदयग्राही और गुदगुदानेवाली होती है। आंखों के अभ्यास से अंधापन रोका जा सकता है।

मस्तिष्क की चुम्बकीयशक्ति को विकसित करने का अभ्यासः–

विचार एक विद्युत गतिं है। यह मस्तिष्क में या जहां कहीं भूरा द्रव होता है वहां संगठित होता है और वह यूनिवर्सलइथर, अणुजीवत (माइक्रोवाइटा) या योनि को सम्पादित करता है। टहलते समय दो व्यक्तियों में से किसी एक व्यक्ति के मस्तिष्क में कोई विचार उठता है और इसे दूसरा व्यक्ति हू-बहू उसी भाषा में बोलकर पहले व्यक्ति को चकित कर देता है और दोनों कह उठते हैं–हम लोगों का एक ही जैसा विचार है। तंत्रोपैथी में इसी क्षमता को बढ़ाकर चिकित्सक रोगी को स्वस्थ कर देता है। या रोगी स्वयं इस क्षमता को बढ़ाकर ठीक हो जाता है। मस्तिष्क की इस चुम्बकीय सम्पति को विकसित करना है और इसके लिए कुछ अभ्यास ऊपर दिए जा चुके हैं। और कुछ को यहां दिया जा रहा है। स्थिरता, चंचलता और परिवर्तन मस्तिष्क के चुम्बकत्व को बढ़ाता है। चुम्बकीय व्यक्तित्व वाले व्यक्ति को सदा सक्रिय रहना है और उसकी छोटी आकांक्षाओं की पूर्ति स्वतः हो जाएगी उसमें अधिक नहीं उलझना चाहिए।

अभ्यास-1 (क) अपने दोनों हाथों की हथेलियों को अपने चेहरे के दोनों ओर कनपटी के पास आंख के नजदीक रखें। अंगुलियां ललाट के ऊपरी भाग को छूएं और अगूंठा आंखों को। फिर दोनों हाथ चेहरे पर 8 बार ऊपर-नीचे करें (ख) फिर चेहरे की त्वचा को 8 बार ऊपर नीचे करें (ग) बारी बारी से भौहों को 8 बार आंख की ओर करें (घ) बारी-बारी से दोनों भौंहो को 8 बार ऊपर-नीचे करें आंखों के नीचे की त्वचा को नीचे ऊपर 8 बार करें। (च) फिर हथेलियों को पूरे चेहरे पर 8 बार घुमाएं। (छ) आंख बन्द कर आंख के गोलक को पकड़ें और उसे 8 बार हल्के हाथ से चारों ओर घुमाएं।

इस अभ्यास से आंखों में अप्रत्याशित चमक, साफ दिखना, तेज नजर तथा सुन्दर आंखें हो जाती हैं।

अभ्यास-2 (क) मंद रोशनी में एक कमरे में शान्त बैठिए और अपने से आठ दस फीट की दूरी पर बने छोटे बिन्दु पर शरीर और मस्तिष्क को तनावयुक्त कर अपनी पूर्ण रूप से खुली आंखों को स्थिर कीजिये। मस्तिष्क की मांसपेशियां तनावयुक्त बनी रहेंगी। 1 मिनट से 3 मिनट तक यह अभ्यास कर दूसरी ओर देखें।

(ख) पुनः उस बिन्दु पर आंखें केन्द्रित कर अपनी इच्छा शक्ति से एक काल्पनिक लकीर अपने मस्तिष्क के केन्द्र से लेकर बिन्दु तक खींच लें और उसे दाहिनी ओर घुमाते रहें। जैसे ही आप मस्तिष्क के तनाव को इच्छा शक्ति में परिवर्तित करने में सफल हो जायेंगे, वैसे ही आप एक नई शक्ति से भर जाएंगे। असावधानी, जल्दबाजी तथा बेमन् का अभ्यास बेकार जाएगा।

(ग) इस अभ्यास में सारी प्रक्रियाएं पूर्ववत् रहेंगी केवल काल्पनिक लकीर को अपने बायीं ओर वहां तक ही ले जाइए, जहां तक आंखें बिना सिर हिलाए-डुलाए जा सकती हैं।

(घ) पूर्ववत् स्थिति में लकीर बायीं ओर से दायीं ओर और दायीं ओर से बायीं ओर तेजी से घुमाइए और उसे तब तक घुमाते रहिए जब तक वह धीमी न पड़ जाये, बिन्दु दूर न हो जाय और मात्र एक फासफोरस लकीर बिन्दु से मस्तिष्क तक दिखाई पड़ने लगे। उपर्युक्त अभ्यास को अगर लग्न और विश्वास से मात्र एक माह तक किया जाये तो आंखें चुम्बकीय चाल चलने योग्य हो जाती हैं और मन प्रसन्नता और उमंग से भर जाता है। तथा किसी भी काम को करने में तनमयता आने लगती है।

हमारा मस्तिष्क चुम्बकीय शक्ति का इन्जिन है। अपनी इच्छा शक्ति को बढ़ाने के लिए हमारी प्रत्येक क्रिया सोच के साथ होनी चाहिए। इसलिए "देखें और सोचें, बोलें और सोचें, चलें और सोचें, करें और सोचें" अभ्यस्त हो जाने पर कोई कठिनाई नहीं होगी। बिना सोचे देखना केवल देखना है, बिना सोचे बोलना केवल बोलना है, बिना सोचे चलना केवल जाना है, और बिना सोचे कुछ करना न करने के बराबर है। इसलिए इसकी आदत डालिये। मस्तिष्क रूपी इन्जन इस ओर चल पड़ेगा और आपने व्यक्तित्व को चुम्बकीय शक्ति से भर देगा। हमारा मस्तिष्क रहस्य शक्ति का भण्डार है। यही शक्ति हमारे बौद्धिक, मानसिक, शारीरिक और आध्यात्मिक शक्ति को नियंत्रित करती है।

अभ्यास-भ्रमण चक्षुगति

इच्छा शक्ति को बढ़ाने का अभ्यास—यह अभ्याय इच्छा शक्ति को बढ़ाने और मस्तिष्क की आकर्षण शक्ति को उत्तेजित करने में बेमिसाल है।

(क) खड़े होकर आंखों को पूरी तरह खोल लें और एक सीधी रेखा में बिना सिर को घुमाए केवल आंख के गोलक को बायीं ओर करके तीन कदम चलें और फिर उसी प्रकार आंख के गोलक को दाहिनी ओर करके उसी स्थिति में तीन कदम चलें और इसी प्रकार 8 बार इस क्रम को प्रतिदिन दुहराएं। अभ्यास के वक्त मेरुदण्ड सीधा रहे और नितम्बों पर बल पड़े। धीरे चलें लेकिन तेजी से आंख को घुमाएं, चेहरे की मांसपेशियां तनावयुक्त बनी रहें।

(ख) मेरुदण्ड को सीधा कर नितम्बों पर बल देते हुए खड़े रहें और आंखों की दोनों पलकों को पूरी तरह खोलकर सामने देखें जिससे आंखों के गोलक आगे की ओर निकले हुए दिखाई पड़ें उसके बाद सीधी रेखा में तीन कदम आगे की ओर चलें और तीन कदम पीछे की ओर चलें। इस प्रकार 8 बार इस क्रम को दुहराएं। एक सप्ताह में ही इस अभ्यास के आप अभ्यस्त हो जाएंगे और एक माह के अभ्यास से ही मानसिक तनाव दबाव से मुक्त हो चमत्कारिक व्यक्तित्व को पाएंगे। सम्पात (ग) शक्ति सम्पात दृष्टि (दी पेनेट्रेटिंग ग्लास)

चिकित्सक को पहले इस अभ्यास को अपने सहयोगी के साथ कुछ दिनों तक करने के बाद ही रोगी में शक्ति समाप्त कराकर उसे रोगमुक्त करने का प्रयत्न करना चाहिए।

दो साधक सामान्य स्तर के हों तभी इस अभ्यास को करना चाहिए या पति-पत्नी भी इस अभ्यास को साथ-साथ कर सकते हैं। स्थान विशेष में मद्धिम रोशनी हो शान्त, स्वस्थ और सुन्दर वातावरण हो तथा दोनों साधक वीरासन में नितम्बों पर बल देकर बैठें तथा उनका मेरुदण्ड सीधा ठुढी सीना से लगी हो। याद रहे तंत्र साधना में शारीरिक आसन का बहुत बड़ा महत्त्व है और अच्छे फल की प्राप्ति के लिए उसकी कभी भी अवहेलना नहीं होनी चाहिए। बिम्ब प्रतिबिम्ब न्याय के अनुसार बिम्ब को जब हम शक्ति सम्पात करते हैं तो प्रतिक्रिया स्वरूप हम स्वयं भरपूर शक्ति से भरते हैं। यही कारण है कि तंत्र में प्रतिमा पूजन की परम्परा है।

साधक आमने-सामने बैठें और दोनों पलकों को धीरे-धीरे पूरी तरह खोल कर एक दूसरे की आंखों की पुतलियों को देखें। बरौनी और पलकों तथा आखों के गोलक में कोई कम्पन्न न हो। इसी बीच यह भावना करते रहें कि हम एक

दूसरे को शक्ति सम्पात करा रहे हैं। मानसिक दृष्टि से बोलते भी रहें। मैं आपके अन्तःकरण को देख सकता हूं। जरूर उसे देखूंगा। ऐसी स्थिति में अगर शाक्ति का अनुभव करें तो दोनों मुट्ठी को बंद कर और अपने में तनाव लावें। कुछ दिनों के अभ्यास के बाद आप में दूसरों को प्रभावित कर लेने और रोगी में शक्ति सम्पात कराकर उसे रोग मुक्त करने में सहायता मिलेगी।

हमारा व्यक्तिगत स्नायुमण्डल एक दूसरे से इथर या यूनिवर्सल इथर या माइक्रोवाटा या योनि द्वारा जुड़ा हुआ है। यह सांवेगिक स्वभाव का केन्द्र है। सांवेगिक स्वभाव तभी प्रभावित होता है जब दूसरे के पास आकर्षण शक्ति (चुम्बकीय शक्ति) हो। यह शक्ति हर मनुष्य में प्रकृति ने उदारता से दी है और इसका विकास उपर्युक्त अभ्यासों से संतुलित रूप में किया जा सकता है। निम्न बातों को ध्यान में रखकर अपने में आकर्षण शक्ति को विकसित किया जा सकता है।

(क) कभी किसी के सामने अपना मुंह न खोलें, जब तक अपना स्पष्ट उद्देश्य न हो।

(ख) जब तक सक्रिय इच्छा न हो, किसी से बात न करें।

(ग) तब तक कभी किसी को स्पर्श न करें जब तक यह न विश्वास हो कि वह मान जाएगा।

(घ) कभी किसी की आंखों में न देखें जब तक उससे अपनी बातें मनवाने के योग्य उसे न समझते हों।

(च) मन में बिना कोई भाव लिए किसी को देखना केवल देखना मात्र है।

(छ) जिसकी शक्ति से डरते हैं उसकी आंखों में न देखें।

(ज) जब दूसरे की आंखों में देखते हुए दूसरा कुछ कहता है और तुम्हारा दिमाग चुप सुनता है तब समझ लेना चाहिए कि तुम उसकी शक्ति से प्रभावित हो गए हो।

(झ) जिसकी शक्ति से प्रभावित हो रहे हो, उसकी आंखों में देखते हुए मानसिक दृष्टि से निम्न वाक्य को दुहराते रहें। मेरी इच्छा शक्ति आप से शक्तिशाली है।

(ट) इच्छा शक्ति युक्त व्यक्ति को देखते ही दूसरे की बातें करें और विशेष स्पष्ट उद्देश्य के निरर्थक बातें किसी से न करें।

यूनिवर्सल इथर, माइक्रोवाइटा या योनि विद्युतीय अणुओं से बना है। विश्व ब्रह्माण्ड की प्रत्येक वस्तु की बनावट में परमाणु का संगठन है। परमाणु के तीन गुण होते हैं। प्रमाणु का एक छोर आकर्षण (एटेरेक्शन) दूसरा छोर विकर्षण (रिपल्सन) और मध्य आन्दोलित (रिवोल्यूशन) यह प्रत्येक रासायनिक शक्ति और वस्तु पर लागू होता है।

इच्छा शक्ति की मजबूती मांसपेशियों से आती है। शारीरिक शक्ति धवलाग्नि (व्हाइट फायर ऑफ फोर्स) है। वह मानसिक और स्नायु-शक्ति का स्रोत है।

अभ्यास में पूर्ण रूप से मांसपेशियों का संलग्न रहना आवश्यक है। हर अभ्यास में हमारी मानसिक और स्नायु शक्ति काम करती है। लेकिन अभ्यस्त (आदत बनने) होने पर वह लघु मस्तिष्क के नियंत्रण में आ जाती है और स्वचालित क्रिया (रिफ्लेक्शन) का रूप ले लेती है। वह अभ्यास इच्छा शक्ति से संयुक्त हो, शक्ति सम्पात करता है।

इच्छा शक्ति हमारी विचार शक्ति है। हमारी विचार शक्ति यूनिवर्सल इथर या देव योनि के माध्यम से एक दूसरे तक सफर करती है और इस क्रम में कोई स्थूल वस्तु बाधा नहीं डाल पाती। अणु का सूक्ष्मातिसूक्ष्म कण ही तो देव योनि या यूनिवर्सल इथर है। हमारी इच्छा शक्ति भी दो तरह की है। निष्क्रिय इच्छा शक्ति और सक्रिय इच्छा शक्ति। निष्क्रिय इच्छा शक्ति सार्वजनिक स्वभाव की होती है। इसलिए वह देव योनि क्षेत्र इथेरियल एरिया को स्पंदित नहीं कर पाती और निष्क्रिय बन जाती है। सक्रिय इच्छा शक्ति आशावादिता सकारात्मक चिन्तन और अदम्यशीलता का मूर्त रूप होती है। और विचारों में उत्साह उमंग की लहर से देव योनि (इथेरियल बाडी) को संपादित कर व्यक्ति या समूह को प्रभावित कर देती है।

हमारी मानसिक शक्ति निलाग्नि (ब्लू फायर) है जो हमारे विचारों पर प्राभ डालती है, जिससे इच्छा शक्ति रूपी नवज्योति (नयी रोशनी) फैल जाती है। विचारों की तीव्रता से हमारी मानसिक और शारीरिक शक्ति की लहर या तरंग निश्चित होती है। और उसी मात्रा में निलाग्नि और धवलाग्नि का समिश्रण हो इच्छा शक्ति एक दूसरे में सम्प्रेशित होती है।

हम जो बोलते हैं वही विचार नहीं है या हम जो विचारते हैं वही नहीं बोलते। विचारना और बोलना दोनों अलग-अलग प्रक्रिया है।

हम आदतन बोलने के लिए ही बोलते हैं और विचारते हैं। बहुत कुछ करने के लिए विचारना एक मानसिक प्रक्रिया है और बोलना शारीरिक, यांत्रिक क्रिया। जब हम विचार कर बोलते या विचारते हुए कुछ करते हैं तब उसमें हमारी इच्छा शक्ति समाहित होती है और देव योनि के माध्यम से अपने इर्द-गिर्द ही नहीं दूर-दूर तक प्रभाव डालती है और वह प्रभाव स्थायी होता है। दूसरा क्या कहता है उसमें जितनी अधिक दिलचस्पी लेंगे, अपने को संलग्न करेंगे या महसूस करेंगे, उतना ही अधिक आप एक दूसरे के दिमाग में स्थान पाएंगे और बिना बोले ही कम बोलने पर भी आपकी आवाज दूर-दूर तक हजारों लोगों के कानों तक पहुंच जाएगी। सोचवाणी (टू थिंक इन द वायरस) वक्तृता की एक अच्छी विधि है।

स्नायु शक्ति व्यसन की रक्ताग्नि फेंकती है (दी नर्वस एनर्जी थ्रोज रेड फायर ऑफ पैसन)

स्नायु शक्ति का कार्य शारीरिक शक्ति पर निर्भर करता है। एक व्यक्ति किसी चीज का स्पर्श पाते ही उछल जाता है या छोटी-मोटी आलोचना सुनते ही

उसके हृदय की गति बढ़ जाती है। इसे "नरवसनेस" कहा जाता है। यह बीमार व्यक्ति में स्नायु-शक्ति की कमी के कारण नहीं, वल्कि लघु मस्तिष्क के उस भाग का अनियंत्रित होना है। वस्तुतः स्नायु शक्ति शारीरिक विद्युत शक्ति का इकट्ठी-करण है। वह शारीरिक शक्ति धवलाग्नि और मानसिक शक्ति निलाग्नि से भिन्न है। यह मूड और आवेग-सम्वेग का स्रोत है।

मांसपेशियों और भाव पर मन को अधिकृत करने का अभ्यासः–

हमारे जीवन के तीन विभाग हैं–मांसपशियां, मन और भाव (मसल्ल, माइन्ड एण्ड फीलिंग) जब मांसपेशियां, मन और भाव पर हावी हो जातीं हैं तब आदमी जानवर बन जाता है। जब भाव, मांसपेशियों और मन पर राज करता है, तब मनुष्य शैतान बन जाता है। दोनों स्थितियों में व्यक्ति शारीरिक और मानसिक रोगों से घिरा रहता है। जब मन, मांसपेशियों और भाव पर अधिकार कर लेता है तब वह सफल आकर्षक और आह्लादित व्यक्तित्व को पाता है।

मुद्रा और आसन मांसपेशियों पर नियंत्रण करता है, प्राणायाम और धारणा भावों पर आधिपत्य जमाता है और भूत सिद्धि शरीर शुद्धि स्नायु शक्ति में वृद्धि कर तीनों को समन्वित करके रोग से मुक्ति दिलाती है। स्वाभिमान हमारा सक्रिय उमंग और उद्वेग है। जबकि घमंड निष्क्रिय उत्तेजना मात्र है जो अपनी परिकल्पना में व्यक्त करता है। वही उसका चरित्र होता है। एक अभिनेता कभी भी अपने अभिनय में सफल नहीं होता जब तक अपनी परिकल्पना में इस चरित्र को उतार नहीं लेता या आत्मसात नहीं कर लेता।

अभ्यास–किसी से बातें करते वक्त कमरे का बल्ब आपके पीठ की ओर हो अगर ऐसा सम्भव नहीं तो खड़े-खड़े बात कीजिए और अपने आकर्षण का प्रयोग आंखों के माध्यम से कीजिए। रोशनी का सामना करने से हमेशा बचिए और दूसरे को रोशनी की ओर कर दीजिए। दूसरे को एकटक देखना असंस्कृति है। इसलिए अपनी आंखों को एक स्थिति में रखिए। इस प्रकार आपके आकर्षण का प्रयोग सफल रहेगा।

सिर की खोपड़ी और मस्तिष्क मन का एक यंत्र

मस्तिष्क मन के हाथों का एक यंत्र है, औजार है। विचार करने की क्रिया मस्तिष्क में होती है लेकिन विचारों को निर्देशित करने का काम मन करता है जो मस्तिष्क की नाड़ियों (मिम्बरेन) में होता है। मस्तिष्क विचारों, अनुभवों और ज्ञान का भण्डार है। सिर की खोपड़ी के ठीक नीचे मस्तिष्क से सटी ऊपर तीन प्रकार की नाड़ियां (मिम्बरेन) होती हैं जो मस्तिष्क को घेरे रहती हैं। ऋषियों का विश्वास है कि पियूष ग्रन्थि इन्हीं नाड़ियों में है और मन का निवास स्थान भी यहीं कहीं है। इन नाड़ियों के बीमार होने से मस्तिष्क भी बीमार हो जाता है।

अधिक भोजन करने, कन्सटिपेशन आदि से मेमबरेन बीमार हो जाता है। अधिक शराब पीने से रक्त अधिक गर्म हो जाता है और उसका प्रवाह भी बढ़ जाता है, जिससे मेमबरेन की तीनों लाइन प्रभावित होती हैं। इसी कारण नशे की हालत में विचार, सोचावट और अभिव्यक्ति में एकरूपता, तारतम्यता और सम्बद्धता छिन्न-भिन्न हो जाती है, मन अपने शरीर पर से नियंत्रण खो बैठता है और दूसरों के सामने हम हास्यास्पद बन जाते हैं। अत्यधिक गुस्से से भी मेम्बरेन विषाक्त हो जाता है और मन से नियंत्रण खो बैठता है। मियादी बुखार, अतिसार, अत्यधिक मैथुन आदि से भी मेम्बरेन बुरी तरह आन्दोलित हो जाता है और इससे कभी-कभी रोगी मर भी जाते हैं। मेम्बरेन में सूजन से "मैनीनजाइज" बीमारी होती है। मेम्बरेन में सूजन, सिर की हड्डी बढ़ने आदि से मस्तिष्क पर दबाव पड़ता है। जिससे रोगी असामान्य, अपराधी प्रवृत्ति या पागल हो जाता है।

सिर (खोपड़ी) के ठीक नीचे तीन प्रकार के मेम्बरेन हैं 1-सख्त मां डूरानैमैटर 2-कोमल मां (पी मैटर) तथा 3-मकड़जाल (ऐरेकेन्व्याड)

ये तीनों मेम्बरेन जीवन के चिन्तन अंग को घेरे रहते हैं। इनके बीच तरल पदार्थ भरा पड़ा रहता है। इनका सम्बन्ध हमारे शरीर में फैले सारे मेम्बेरनों (मास्कूलर मेम्बरेन) से होता है। यह तरल पदार्थ मेम्बरेनों के माध्यम से बहता रहता है। अगर इनके प्रवाह में कोई रुकावट आ जाये तो हम सोच-विचार नहीं सकते। रक्त दूषित होने से विचारों में इसी कारण परिवर्तन आता है। गहरी नींद में यह तरल पदार्थ बहना बंद हो जाता है और मस्तिष्क उस स्थिति में केवल मरम्मत का काम करता है। सोचने विचारने का काम पूर्ण रूप से ठप रहता है। इसीलिए गहरी नींद का आना प्रत्येक व्यक्ति को स्वस्थ रहने के लिए आवश्यक है।

मेम्बरेनों के मरम्मत की क्रिया से स्नायु, स्नायु चेत तत्त्व (नर्व वाइटालिटी) कोशिकाओं (टिशूज) में रक्त निर्माण का कार्य तेजी से होने लगता है। इसमें असामान्य तरल पदार्थ का बहाव होने से शरीर की अन्य क्रियाएं रुक जाती हैं या गति धीमी हो जाती है। यह परीक्षण से पता चला है।

ऋषियों और तांत्रिकों ने इसी कारण इसे सहस्रार चक्र तथा उसमें स्थित ग्रन्थि को पीयूष ग्रन्थि और पूरे क्षेत्र को आनन्द लोक नाम दिया है। यही विभिन्न विभूतियों और चमत्कारों का खजाना है और जिसके लिए तंत्र-योग साधना की व्यवस्था उन्होंने की है। तंत्रों में भूत शुद्धि, शरीर शुद्धि और मनः शुद्धि इस क्षेत्र को मजबूत करने और उसकी उपलब्धियों से स्वयं को परिपूर्ण धन्य करने के लिए जोर दिया जाता है। अष्टांग योग में यम-नियम, आहार-विहार नियंत्रण के लिए और प्रत्याहार ध्यान और धारणा मेम्बरेन के तरल द्रव को नियंत्रित करने, उसे संतुलित करने के लिए, पतंजलि ऋषि ने व्यवस्था की है। समाधि आनन्दलोक में विचरण की एक प्रक्रिया है। स्वस्थ रहने और भरपूर जीवन जीने के लिए निम्न अभ्यास जरूरी है।

(क) गहरी नींद के लिए इष्ट शैया में सोना।

(ख) मांसपेशियों के समुचित संकोचन, प्रसारण और मालिश के रोज बाद इष्ट प्रणाम करना (ग) देव योनि (यूनिवर्सल इथर) को माध्यम बनाने के लिए प्रतिदिन स्नान के बाद पितृयज्ञ उपयुक्त अर्पणात्मक मुद्राओं द्वारा सम्पन्न करना आवश्यक है। यह एक आध्यात्मिक प्रक्रिया है और आध्यात्मिक प्रक्रिया समाज के साथ व्यक्ति के मानसिक और शारीरिक स्वस्थ के लिए उपयोगी है।

(घ) प्रतिदिन भूत शुद्धि के लिए 15-20 मिनट स्नान के बाद सुखासन में बठें आंखें बन्द रहें और वातावरण शान्त। मन में विचारों के प्रवाह को आने दें, उसे छेड़ें नहीं, केवल पहचाने, वे स्वतः आना बंद हो जाएंगे और इसके बाद भूत शुद्धि करें।

तंत्रोपैथी रोगनिवारण की एक व्यावहारिक पद्धति जो अपने विभिन्न अभ्यासों और मुद्राओं से शारीरिक ऊर्जा को मानसिक ऊर्जा और मानसिक ऊर्जा को अध्यात्मिक ऊर्जा में परिवर्तन कर रोगी को सफल आकर्षक और आह्लादित व्यक्तित्व वाला व्यक्ति बना देता है।

शक्ति सम्पात कराने के नियम

(क) एकान्त मनन–स्वयं कम बोलना, दूसरों की बातों को दत्तचित्त होकर सुनना और समझना, एक अच्छा श्रोता बनकर गुण विवेचन करना ही एकान्त मनन है।

(ख) गुप्तभेद विश्लेषण–विचार करते वक्त या सोचते वक्त मन को दो भागों में बांटना कर्ता और दृष्टा ही गुप्त भेद विश्लेषण है।

(ग) उमंग संचारण–हास्याकृति और प्रसन्नाकृति का पूर्ण अभ्यास कर मुस्कुराते हुए दूसरों का स्वागत और समस्याओं का समाधान सुझाना उमंग संचारण है।

(घ) एकाग्रता–एक ही दिशा में अपने मनोभावों का संचारण करना और उसकी तरंगों को इच्छित विषय की ओर प्रेरित करना एकाग्रता है।

(च) सांकेतिक शक्ति–सकारात्मक और आशायुक्त सुन्दर मधुर और उत्तम वाणी का समयानुकूल प्रयोग ही सांकेतिक शक्ति है।

उपर्युक्त बातों को ध्यान में रखते हुए पूर्ण आत्मविश्वास, दृढ़ निश्चय और कठोर श्रम से हम स्वयं शक्ति सम्पन्न हो सकते हैं और दूसरों में शक्ति सम्पात करा सकते हैं।

"मैं पूर्ण ब्रह्म हूं। ब्रह्म ही मेरे अन्दर और चारों ओर बाहर में हैं। मैं उन्हीं की शक्तिशाली गोद में बैठा हूं। वही मेरे भीतर बोल रहा है। मैं जीवन में पूर्ण सुखी और प्रसन्न चित्त हूं। मेरी इच्छा शक्ति प्रबल है। मैं निर्भय और निर्लिप्त होकर सभी काम कर सकता हूं। मैं झूठ, धोखा, द्वेष, घृणा और बुरी आदतों से घृणा करता हूं। मेरी आत्म-शक्ति प्रबल है और वह सबके अवचेतन मन को संचालित कर सकती है।"

उपर्युक्त सांकेतिक शक्ति का एक सुन्दर नमूना है। इसे रोज सोते वक्त, शान्त भाव से, रोशनी में बैटें और आठ बार दुहराएं और सो जायें। एक महीने में ही आप में सांकेतिक शक्ति (सजेस्टिव पावर) का संचरण हो जाएगा।

भारत ही एक ऐसा देश है, जहां पौराणिक परम्परा के अनुसार, रासायनिक दवाओं के बिना, सफल चिकित्सा की जाती है। तंत्र और योग पद्धतियों की भूमिका इस दिशा में अद्वितीय रही है। तंत्र में स्वास्थ्य लाभ और दीर्घायु जीवन के लिए द्रव्यगुणों की चर्चा साधना पद्धतियों के साथ की गई है, लेकिन आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के चमक-दमक के चलते वे अपना महत्त्व खोती गई। आज रासायनिक दवाओं के अत्यधिक प्रयोग, मिलावटों और बुरे परिणामों के चलते पाश्चात्य मुल्क, पुनः भारतीय पारम्परिक तंत्र योगपैथी की ओर आशा भरी दृष्टि से देख रहे हैं।

मनुष्य का व्यक्तित्व शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक त्रिकोण है इसलिए उसके स्वास्थ का अध्ययन और उसके रोगों की चिकित्सा भी तीनों स्तर पर होनी चाहिए। व्यक्तित्व के ये तीनों पक्ष एक दूसरे से सम्बन्धित, सम्मिलित और समाहित हैं। एक व्यक्ति जब शारीरिक दृष्टि से बीमार होता है तब उसे तरह-तरह के दुःख चिन्ताएं सताने लगती हैं, और अपने इष्ट-मित्रों की उपस्थिति में वह बर्ताव नहीं कर पाता जैसा कि सामान्य हालत में किया करता था। बीमार व्यक्ति का सम्पूर्ण व्यक्तित्त्व बीमार होता है। उसके पूर्ण स्वास्थ्य लाभ के लिए उसके पूरे व्यक्तित्व को ध्यान में रख कर करने की पद्धति ही तंत्रोपैथी है। यही होलेस्टिक ट्रीटमेंट है।

तंत्रोपैथी संयम और उपचार के क्षेत्र में पूरे व्यक्तित्व को ध्यान में रखते हुए स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता पैदा करने का आन्दोलन है। इस प्रतियोगितामय संसार में महंगाई, दरिद्रता, प्रदूषण और मिलावट ने व्यक्ति को तनाव, दबाव और अभाव ने जीना दुर्लभ कर दिया है। और जिसके परिणाम स्वरूप विभिन्न प्रकार की जानलेवा बीमारियों की भरमार हो गई है। जितनी नयी-नयी रासायनिक दवाएं बाजार में बीमारियों की रोक-थाम और इलाज के लिए गहन खोज और आविष्कार के बाद आती हैं, उतनी ही भयंकर बीमारियों का प्रकोप बढ़ता जा रहा है। इन दबावों के चलते हम बीमार होकर जीने के लिए बाध्य हैं और जीवन और मृत्यु के बीच त्रिशंकु की तरह बीच में ही लटके हुए हैं। पूर्ण स्वास्थ्य तो आज हमसे कोसों दूर है।

तंत्रोपैथी वह स्वास्थ्य विज्ञान है जो रासायनिक दवाओं के बिना पूर्ण स्वस्थ होने के लिए संयम और उपचार से रोगी को मदद पंहुचाती और उन्हें विश्वास दिलाती है कि निरोग होने में चिकित्सक से अधिक स्वंय रोगी की भूमिका प्रमुख होती है। चिकित्सक का काम उपयुक्त रास्ता दिखाना, उस पर चलाना हो सकता है लेकिन चलना तो रोगी को ही पड़ेगा। आज रोगी को चिकित्सक नकारात्मक चिन्ता से भर देता है और रोगी भय से भीगी बिल्ली बना अपने रोग को कई गुना बढ़ा लेता है। आज के प्रदूषित वातावरण, खाद्य पदार्थों में मिलावट और

महंगाई के चलते, जाने-अनजाने, विभिन्न रोगों की चपेट में तो हम आएंगे ही चाहे जितनी भी हमें सीख दी जाय। तंत्रोपैथी हमें किसी भी परिस्थिति में भरपूर जीवन जीने और सफल आकर्षक और आह्लादित व्यक्तित्व पाने की कुंजी हाथ में दे देती है। इसे हम शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक, स्वप्रभाव (ऑटो प्रेशार) चिकित्सा पद्धति भी कह सकते हैं। तंत्रोपैथिक मुद्राएं एक तरफ हमारी शारीरिक रासायनिक क्रियाओं को संतुलित और समयोजित करती हैं, तो दूसरी ओर विभिन्न तांत्रिक शोधन-भेदन विधियां मानसिक संतुलन को बनाए रखकर हमारे स्वरोग निवारण क्षमता को बढ़ाती हैं।

"सांध्य दर्शन" सारे भारतीय चिकित्सा पद्धतियों को सैद्धान्तिक आधार प्रस्तुत करता है। जिसमें आयुर्वेद भी सम्मिलित है। इस दर्शन में कहा गया है कि पूरा विश्व पांच तत्त्वों से बना है। क्षति, जल, अग्नि, आकाश और हवा। ये तत्त्व होइड्रोजन और हेलियन की तरह नहीं हैं, बल्कि ये पदार्थ के स्थिति तत्त्व हैं। विश्व ब्रह्माण्ड के सभी पदार्थ जो ठोस हैं, उनमें पृथ्वी तत्त्व की प्रधानता होती है। जल तत्व तरल, वायु तत्त्व गैस, आकाश तत्त्व इथर है। जिसमें घटनाएं घटती रहती हैं। और अग्नि तत्व शक्ति है जो तरल पदार्थ को ठोस में और ठोस पदार्थ को तरल में बदलती है। इन पांच तत्त्वों से ही मनुष्य भी बना है। इन तत्त्वों की शुद्धि की तांत्रिक क्रिया को भूत शुद्धि कहा जाता है।

शरीर के पृथ्वी जल, इथर, अग्नि और हवा तथ्य की अशुद्धि से विभिन्न रोग होते हैं और इनकी शुद्धि होते ही रोगी निरोग हो जाता है। तंत्रोपैथी में भूतशुद्धि की कई क्रियाएं बताई गई हैं। जिसे करने से ही बिना रासायनिक दवाओं के रोगी निरोग हो जाता है धूनी के पास बैठकर, होम करके, दीप चलाकर भूत शुद्धि करने से रोगी का स्वास्थ्य सुधरने लगता है भले ही उसके रोग को चिकित्सक जो भी नाम देते हों।

सांख्य दर्शन के अनुसार चेतना का तीन तरह का स्वभाव है–सत्त्व, रज और तम जो मन के माध्यम से अभिव्यक्ति होती है। सत्त्व की अभिव्यक्ति संतुलन, राजस की अभिव्यक्ति क्रियाशीलता और तामस की अभिव्यक्ति आलस्य और अज्ञानता में होती है। तामसिक प्रकृति से अनावश्यक विवाद, और कुतर्क का जन्म होता है, जिसकी परिणति होती है सांवेगिक अस्थिरता में और परिणाम-क्रोध, घृणा, ईर्ष्या, आपसी संघर्ष तथा तत्सम्बंधी बीमारियों में होता है। राजसिक प्रवृत्ति से सेक्स, सक्रियता और लालसा में परिणति होती है। राजसिक प्रवृत्ति तामसिक प्रवृत्ति से इस दृष्टि से अच्छी है कि इसमें दो का मिलन प्यार और आनन्द के लिए होता है और इन्हें तामसिक प्रवृत्ती वाले व्यक्तियों से कम बीमारियां भी होती हैं। कुछ पाने की लालसा से इनकी सक्रियता, स्वतः रोग निवारण क्षमता की भी इनमें वृद्धि होती है। सात्विक प्रवृत्ति की परिणति शान्ति और सुव्यवस्था में परिणति होती है। ये बहुत कम बीमार होते हैं और प्रायः दीर्घायु होते हैं।

तांत्रिक पूजा आत्मदर्शन विधि है

आधुनिक मनोविज्ञान यह प्रमाणित कर चुका है कि तरह-तरह की रंगीन रोशनी हापोथैलमस, पिट्यूटरी और पीनियल ग्लैण्डस को उत्तेजित कर शरीर और मन पर विभिन्न तरह से प्रभाव डालती है। इसीलिए जो "होम" करते हैं, उन्हें रक्षाबन्धन बांधना आवश्यक होता है। होम करना भूताग्नि है और जठराग्नि आदि विभिन्न शारीरिक अग्नि के नियंत्रण और समन्वीकरण के लिए भूताग्नि की व्यवस्था ऋषियों ने दी है। जठराग्नि शारीरिक पाचन क्रिया को नियंत्रित करता है और भूताग्नि मानसिक क्रिया नारियल तोड़ने की परम्परा पूजा स्थल पर है। नारियल पूजा करने वाले के सिर और तीन आंखों का प्रतिनिधित्व करता है। और भीतर का जल सेरेब्रो स्पाइनल फ्लूड और विभिन्न तरह के ग्रन्थिस्राव को। नारियल तोड़ना पूर्वाग्रहों से मुक्ति पाना और नारियल का जल और प्रसाद खाना स्वास्थ्य और सफलता को सुनिश्चित करना है। तंत्र में पूजा, आत्म-दर्शन को कहा गया है। पूजा आत्म-दर्शन की विधि भी है और प्रभाव भी। पूजा में अपने ही बिम्ब को प्रतिमा का रूप देते हैं। अपनी सारी शक्ति उसे अर्पित करते हैं और प्रणति होते हैं। तांत्रिक पूजा में रंग-बिरंगे फूल सेक्स का प्रतीक है और वह इथर (आक्रोश) तत्त्व का प्रतिनिधित्व करता है। सुंगन्धित धूप मांस का प्रतीक है और वायु तत्त्व का प्रतिनिधित्व करता है। दीप मदिरा का प्रतीक है और अग्नि तत्त्व का प्रतिनिधित्व करता है। अन्न मुद्रा का प्रतीक है। और क्षिति तत्त्व का प्रतिनिधित्व करता है तथा मत्स्य चंदन का बुरादा का प्रतीक है और जल तत्त्व का प्रतिनिधित्व करता है। पूजा में धूप दीप, नैवेद्य आदि अपनी-अपनी बिम्बात्मक प्रतिमा को अपने स्थित्व के पांचों तत्त्वों को अर्पण कर सारी शक्ति प्रदान कर देते हैं और बिम्ब प्रतिबिम्ब न्याय के अनुसार प्रतिबिम्बरूप में स्वयं शक्ति सम्पन्न हो जाते हैं। हमारी अधिकांश बीमारियां शारीरिक पंचमतत्त्वों के असंतुलन से होती हैं। और पूजा उन्हें संतुलित करती है। इसलिए जिस घर में श्रद्धा भक्ति के साथ पूजा होती है उस घर के लोग या तो हल्के-फुल्के बीमार होते हैं या जल्द निरोग हो जाते हैं।

मुक्ति होती है बंधन के कारणों के प्रयोग से ही

'मुक्ति होती है बंधन के कारणों के प्रयोग से ही' यह एक तांत्रिक घोषणा है। शायद इसी सूत्र को ध्यान में रखते हुए "हलिमैन" ने भी कहा है कि रोग के कारणों के प्रयोग से रोग की मुक्ति होती है। सांप काटने पर सांप के जहर से रोगी का इलाज होता है। स्वमूत्र चिकित्सा तथा एलर्जी के रोगी को उसके रक्त की सूई लगाने के पीछे यह प्रमाणिक सूत्र ही है। तंत्रोपैथी में रोगग्रस्त अंगों के शोधन-भेदन विधि का प्रयोग किया जाता है। निष्क्रियता रोग का कारण है इसलिए रोग होने पर उस अंग को या रोगी को ही पूर्ण विश्राम की राय आधुनिक चिकित्सक देते हैं। तंत्रोपैथी में रोगी को सक्रिय रखने का विधान है।

पूजा के पश्चात पंचामृत बांटने की परम्परा है। दूध, घी, दही, शहद और गंगाजल के मिश्रण को पंचामृत कहते हैं। दही से आधा दूध, दूंध से आधा शहद, शहद से आधा घी और घी से आधा गंगाजल मिश्रण करने का प्रावधान है। यह मिश्रण एक अच्छा हेल्थ टानिक है। और रोगी को दो चम्मच प्रतिदिन खाली पेट लेना चाहिए। इससे रोग निवारण क्षमता की वृद्धि बड़ी तेजी से होती है।

लौंग घिसकर देवी को अर्पण देने की क्रिया को "छाक चढ़ाना" कहते हैं। इस प्रकार लौंग शक्ति का प्रतीक बन गया। जायफल और जान्तरी फल भी शक्तिदायक और कफ नाशक है। और पूजा में इसीलिए प्रयोग किया जाता है। नीम्बू और लाल मिर्च का भी अपनी निरोगात्मकतत्त्व के कारण बाह्य प्रयोग के लिए तंत्र में चर्चा की गयी है। ओड़हुल का फूल काली पूजन के प्रयोग में लाया जाना उसके स्वास्थ्य वर्धक तत्त्व की ओर ही इशारा है। धतूरे का फूल वेलपत्र का शिवपूजन में प्रयुक्त होना उसके शारीरिक ऊर्जा और शान्ति का प्रतिक है। आज इन पौधों पर गहन खोजवीन की आवश्यकता है।

तंत्र के अनुसार हमारी स्तृति दो प्रकार की होती है–चेतन स्मृति और अचेतनस्मृति। हमारी चेतन स्मृति अत्यधिक चंचल तथा सांसारिक वस्तुओं की ओर (यश, मान, मर्यादा, व्यसन और उसमें प्रयुक्त सामग्री आदि) आकर्षित रहती है। जबकि हमारी अचेतन स्मृति स्थिर और स्थायी होती है। इसमें हमारे भूत,वर्तमान के खट्टे-मीठे अनुभव और इसी आधार पर हमारे भविष्य निर्माण का ताना-वाना तथा पूर्व जन्म के कर्मों का लेखा-जोखा भी सम्मिलित रहता है। वास्तव में अचेतन स्मृति ही हमारी चेतन स्मृति है। अगर हम यह कहते हैं–मैं ने जो कुछ भी किया वह परिस्थिति के दवाव में आकार किया तो इसका अर्थ है कि हम उस दवाव को स्मरण करने के लिए पूर्ण सचेत नहीं थे, जो हमारे अचेतन मन के कर्मों के आगे अनजाने झुककर वह काम कर डाला। यही है अचेतन स्मृति के कर्मों का फल, जिसे चेतन स्मृति बावला की तरह कहता रहता–"परिस्थिति के दवाव में यह काम कर दिया।" तंत्रोपैथी में अचेतन स्मृति को पूर्ण अचेतन में और चेतन स्मृति को पूर्ण चेतन स्मृति में रहने देने की विधि "भूतशुद्धि" है शारीरिक और मानसिक रोगियों पर यह विधि अधिक उपयोगी सिद्ध हुई है।

तंत्र कहता है–एक ही का स्तीत्व सव में है। हम सभी मिलकर उसकी प्रमाणिकता सिद्ध करते हैं। एकता और अनेकता, एक साथ ही स्तीत्व में है। इसलिए स्व की पहचान ही प्रभु की पहचान है। स्व की पूजा ही प्रभु की पूजा है। स्व की पहचान का अर्थ है अपने शरीर के अंग-प्रत्यंग और अणु-अणु की पहचान और पूर्ण पहचान उसका संचालन कर या उसे स्पर्श किया जा सकता है। हमारे प्रभु शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक दृष्टि से स्वस्थ, आकर्षक और आनन्दमय हैं। इसलिए अपने स्वरूप की पहचान के साथ ही हमारा शरीर सर्वोत्तम स्वास्थ्य वनाए रखने के लिए सतर्क हो जाता है। और मन संतुलन में काम करने लगता है। तंत्रोपैथी में अध-उर्ध्व कर्माकर्म विधि के साथ-साथ

अंगो-पांग शोधन भेदन विधि स्वपहचान और स्वस्थ रहने की कुंजी है।

शक्ति की शारीरिक अभिव्यक्ति प्राण है। यही हमारी जीवनी शक्ति है, जो हमारे शरीर, मन और आत्मा को एक जीव के रूप में एक होकर काम कराती है। शरीर के हर अंग को प्राण की आवश्यकता है। प्राण की कमी से वह बीमार और उसके अभाव में निष्क्रियता या मृतक के समान हो जाता है। इसलिए शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक स्वास्थ्य के लिए स्व पहचान, जिस तंत्र ने अहंकार कहा है, जरूरी है स्व पहचान से प्राण शरीर के अणु-अणु में भर जाता है। सब कुछ जीवन्त हो जाता है और स्वस्थ हो जाता है। आध्यात्मिक स्वास्थ्य को बरकरार रखने के लिए भी अहंकार की अहम भूमिका होती है। आशावादिता, सकारात्मक चिन्तन और उद्यमशीलता से अर्विभूत व्यक्ति ही दयालु-कृपालु और सर्वहितकारी हो सकता है। और अपने इस गुण पर गर्व कर सकता है। इसे स्वाभिमान कहीं सकते हैं। अहंकार और स्वाभिमान एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। एक के बिना दूसरे का स्तीत्व नहीं। जन साधारण में स्व पहचान (अहंकार) शरीर के सीमित व्यक्तित्व से होती है प्रमुख रूप से अपने शरीर से और उसकी सारी क्रियाओं से और इन्ह कारणों से वह मानसिक बीमारी से त्रस्त रहता है। मनुष्य उस पेड़-पौधे के समान है, जिसे धूप और वर्षा दोनों की जरूरत होती है। धूप और वर्षा अहंकार और स्वाभिमान।

जो इच्छा हम करेंगे उसकी अवश्य पूर्ति होगी। यह एक प्राकृतिक नियम है। स्वस्थ होने की प्रबल इच्छा रोगी को स्वस्थ बनाती है। हमारी प्रबल इच्छा मन को पूरी तरह आर्विभूत कर लेती है। और मन स्वतः रोग निवारण क्षमता द्वारा उस अंग विशेष या रोग विशेष पर केन्द्रित हो जाता है और रोगी स्वस्थ होने लगता है। अधःउर्ध्व क्रमाक्रम विधि के साथ अपने स्वस्थ फोटो से रोगी को तंत्रोपैथी में स्व पहचान कराई जाती है। कर्मज्ञान उद्‌बोधन विधि की भी सहायता ली जाती है।

अणुजीवत् का सिद्धांत

हमारा शरीर तीन प्रकार का है–स्थूल शरीर, सूक्ष्मशरीर और कारण शरीर। स्थूल शरीर हाड़ मांस-रक्त-मज्जा से बना है और यह खान-पान और आहार-विहार पर निर्भर है। कारण शरीर हमारे चिन्तन-मनन पर निर्भर रहता है। स्थूल शरीर सूक्ष्म शरीर के चेतन आवरण का काम करता है। बिना कारण शरीर का व्यक्ति बिना विचार विहीन हो जाएगा और ऐसी स्थिति में स्थूल और सूक्ष्म शरीर, दोनों नहीं रह पाएगा। इस कारण शरीर ही हमारी असाध्य बीमारियों का कारण बनता है। जब हमारा विचार नकारात्मक और निराशावादी हो जाता है और हम आलस्य का शिकार होते हैं तब ही बीमार पड़ते हैं या बीमारी धर दबोचती है। आध्यात्मिक विचार हमारे सकारात्मक चिन्तन और आशावादी विचार ही हैं तथा कारण शरीर को स्वस्थ रखने की एक मात्र औषधि है। कारण शरीर को स्वस्थ्य पहले करना होता है। स्थूल शरीर को स्वस्थ करने के लिए तंत्रोपैथी

में शुभ विचार और शुभ मन विधियां हैं।

ऋषियों ने अधि दैविक संसार को देव योनि या इथेरियल बॉडी संसार कहा है और श्री पी.आर. सरकार ने अपने थियरी ऑफ माइक्रोवाइटा में अणुजीवत् संसार कहा है। इनकी सात श्रेणियां हैं–यक्ष, किनर, विद्याधर, गंधर्व, विदेहलीन सीध और.........। इनमें से कुछ मित्रवत् और कुछ शत्रुवत हैं। मित्रवत् अणुजीवत् को सुर और शत्रुवत को असुर कहते हैं। इन्हें मानवीय मन को अविभूत करने और उसे अपने नियंत्रण में लेने की खूब कला आती है। देव योनि के अणुजीवत विचारों के माध्यम से सफर करते हैं। जैसी हमारी भावना और विचार होता है हम वैसे ही बनते हैं, क्योंकि अशुभ विचार शत्रुवत अणुजीवत को या शुभ असुर को और विचार मित्रवत अणुजीवत को या सुर को आमंत्रित करते हैं। इस कारण से भी हमारे स्वस्थ या अस्वस्थ होने में हमारे विचारों की अहम् भूमिका होती है।

ऋषि इसे एक कहानी के माध्यम से समझाते हैं–

देव, मनुष्य और दानव (असुर) अपने पिता प्रजापति के पास गए और बोले "पिताजी! हमें आदेश दीजिए।"

देव को प्रजापति ने आदेश दिया "दा" और पूछा–"क्या समझे" देव ने जवाब दिया–"पिताजी! "दा" के माध्यम से "दाम" नियंत्रित रहने का आदेश दिया है।" प्रजापति ने संतुष्ट हो कर कहा-ऐसा ही कहा है।

मनुष्य को भी प्रजापति ने आदेश दिया "दा" और पूछा "क्या समझे"– मनुष्य ने जवाब दिया पिताजी आपने दा के माध्यम से "दा" देने का आदेश दिया है। इसी प्रकार असुर को भी प्रजापति ने आदेश दिया "दा" और पूछा–असुर ने जवाब दिया–पिताजी आपने दा के माध्यम से दया करने का आदेश दिया है।

इस कहानी के माध्यम से यह सुझाव दिया गया है कि देव, दानव और मनुष्य तीनों नियंत्रण दान और दया की प्रवृत्ति विकसित कर ही मानव, दानव और देव में संतुलन स्थापित कर स्वस्थ और भरपूर जीवन जी सकते हैं।

तंत्रोपैथी में शरीर के विशिष्ट कोशिका क्षेत्र को जो रोगग्रस्त हैं, ध्यान कर स्वचालित (संकोचन-प्रसारण) कर चिकित्सा की जाती है। रोगी को पहले एक लीटर नीबू पानी पिलाया जाता है और इसके बाद विभिन्न पशु मुद्राओं और देवमुद्राओं द्वारा इस विशिष्ट कोशिका क्षेत्र को स्वचालित कराया जाता है। इसे तंत्रोपैथी में शोधन-भेदन विधि कहते हैं। हमारे शरीर के अधिकांश असाध्य रोग मात्र एक रसायन की कमी के कारण हो जाते हैं। मधुमेह बीमारी को ही लें। पित्ताशय की कोशिकाओं के निष्क्रिय होने से इंसूलिन रसायन की कमी शरीर में होती है। और रक्त में हेमालियाक नामक तत्त्व की कमी हो जाती है। इससे रक्त समुचित रूप से "थाक" नहीं बन पाता और व्यक्ति को मधुमेह की बीमारी हो जाती है। इससे शरीर शक्तिहीन बन जाता है। इसी प्रकार मांसपेशियों पर नियंत्रण न कर

पाने के कारण "पारकिसन" नाम की बीमारी होती है। मांसपेशियों का अनियंत्रित होना डोपामइन की जो एक नियरो ट्रांसमीटर है, मस्तिष्क में कमी पायी गई है। किसी भी बीमारी के, हर हालत में या तो रसायन बनाने बनने की क्षमता का खो देना है या कोशिका का समुचित रूप से वह काम न करना होता है! इससे मनोवैज्ञानिक व्यक्ति में विनाश का सूत्रपात होता है और हमें मृत्यु की ओर ढकेलता जाता है। 15 दिन कें तंत्रोपैथीक अभ्यास से ही रोगी में परिवर्तन दिखने लगता है। और सुरक्षात्मक मिल्ली (मेम्बरेन) में प्रतिक्रिया होने लगती है। मिर्गी और एड्स के रोगियों का भी इस पद्धति से सफल इलाज हो सकता है।

मैंने स्वयं इस विधि द्वारा दर्जनों मधुमेह, पारकिसन रोग, मिर्गी, दमा, रक्तचाप और पेट के अलसर का इलाज किया है। इसका कोई साईड इफेक्ट नहीं देखा गया। स्थायी लाभ के लिए इस पद्धति के विभिन्न मुद्राओं को 15 से 20 मिनट प्रतिदिन सुबह-शाम नियमित रूप से करना होता है।

तांत्रिक धारण से रासायानिक उत्पादक ग्रन्थियां उत्तेजित हो कर संतुलित उत्पादन करने लगती हैं और रक्तचाप नियंत्रित होने लगता है। यह वैज्ञानिक दृष्टि से साबित हो चुका है कि हमारा मन शारीरिक क्रियाओं को प्रभावित करता है। हम अपने स्वतः रोग-निवारण पद्धति -(इम्यून सिस्टम) को भी इससे उन्नत करा देते हैं।

तांत्रिक धारणा रासायनिक ग्रथियों को संतुलित करने में सक्षम–

तांत्रिक धारणा के अभ्यास से रोगी को पूर्ण मानसिक और शारीरिक विश्राम मिलता है। एक असाध्य रोग से ग्रसित रोगी दुःचिन्ता से अर्धविक्षिप्तावस्था में होता है। तांत्रिक धारणा (भूतशुद्धि) और शरीर शुद्धि से सारा शरीर और मन शान्त हो कर अपने शरीर के सभी स्वचालित क्रियाओं के उन्नत होने की परिकल्पना करता है तथा उससे उत्पन्न तकलीफों का अनुभव भी नहीं के बराबर होता है। धारणा किसी पदार्थ पर, या शरीर पर मन का प्रभावी प्रयोग की एक प्रक्रिया है, जिससे सारे शरीर की क्रियाएं समानुपातिक ढंग से गतिशील हो जाती हैं। इससे नारियों के स्तन बढ़ने की प्रक्रिया में भी कमी आने लगती है।

एक रोगी रोग की समस्या (सेबजेक्टिव प्रोबलेम) से अधिक बाह्य समस्याओं (आब्जेक्टिव प्रोब्लेम) से अधिक पेरशान रहता है और वह चीखता, चिल्लाता और रोता रहता है। वे बाह्य समस्याएं हैं–भय, चुप्पी, सहानुभूति की चाह आदि। धारणा इन समस्याओं को, सकारात्मक शारीरिक परिकल्पना से दूर कर देता है, रोग अपने आप प्रभावहीन हो जाता है। इस विधि से दमा, एजर्जी, खुजली, नरवसनेस, अनावश्यक भय आदि दूर हो जाती है।

धारणा की प्रक्रिया निम्न प्रकार है-

(क) जमीन पर एक कम्बल डालिए और शवासन में लेट जाइए। आंखें खुली रहें और आज्ञा चक्र की ओर देखती रहें। अपने श्वास की ओर बिना उसे कम-बेशी किए मात्र देखते रहिए और श्वास के आने के वक्त "हं" और छोड़ने के वक्त "सों" का मानसिक उच्चारण 5 मिनट कीजिये।

(ख) इसके बाद आप कल्पना कीजिये कि आप एक अति सुन्दर स्थान पर लेटे हुए हैं, जो कभी आपको बहुत पंसद था या समुद्र के जल पर आप लेटे हुए हैं जहां से नीला-नीला आकाश चारों ओर दिखाई पड़ता है और इसके बाद क्षितिज जहां आकाश और जल आपस में मिल रहे हैं, दिखता है।

(ग) शरीर चमकता हुआ इथर है और सूर्य की रोशनी से चमक आ रही है समुद्र की लहरों के साथ लोट-पोट कर रहा है और उसी के साथ शरीर की छाया भी और साथ-ही-साथ रोगयुक्त अंग स्वस्थ हो रहे हैं।

(घ) बिना आंखें खोले हीं उठ खड़े होइए और धीरे-धीरे गिनते हुए दोनों हाथ उठाकर एक भरपूर अंगड़ाई लीजिए और आंख खोलकर अपने शरीर के हर अंग पर एक प्रशंसात्मक नजर डालिए।

तांत्रिक शोधन भेदन की क्रिया मन और शरीर दोनों को प्रभावित करती है।

मांस-पेशियों का संकोचन-प्रसारण अगर प्रतिदिन नियमित रूप से लयात्मक हो तो उनमें लचीलापन आता है, उसकी आवश्यकता से अधिक चर्बी घटती है और देर तक काम करने और अधिक भार उठाने की क्षमता उसमें आ जाती है और यही कारण है कि हम जो खाते-पीते हैं उसका समानुपातिक वितरण सारे शरीर के अंगों में होने लगता है। हमारा दायां हाथ अधिक मजबूत होता है बाएं हाथ से अगर हम दाहिने हाथ से काम करते हैं और जो बाएं हाथ से काम करते हैं, उनका बायां हाथ दाहिने हाथ से मजबूत होता है। यह भी देखा गया है कि सक्रिय अंग कम रोग ग्रस्त होते हैं। बनिस्बत निष्क्रिय अंग के और अगर वह अंग रोग ग्रस्त हुआ भी तो जल्द ठीक हो जाता है। सक्रियता ही निरोग है और निष्क्रियता रोग।

शारीरिक क्रिया शारीरिक रासायनिक प्रक्रिया में तेजी लाती है और इससे भोजन पचकर जीवित पदार्थ में बदल जाता है। इस क्रम में चर्बी जलती है। व्यक्ति का शरीर पुष्ट, सुन्दर और स्वस्थ दीखने लगता है। व्यायामों में शरीर कड़ा कर और झटके देकर करने वाले आधुनिक व्यायाम छोटे और कोमल धमनियों को तोड़ मरोड़कर जगह-जगह मांसपेशियों को उभाड़ देते हैं जो उम्र गिरने के साथ शारीरिक समस्या पैदा करता है।

तंत्रोपैथी की मुद्राएं और शोधन-भेदन विधियां मन और शरीर दोनों को

प्रभावित करती हैं। भोजन को रासायानिक क्रिया से पचाकर उसे जीवित तत्त्व में बदलने की प्रक्रिया (मोटावोलिज्म) शारीरिक और मानसिक दोनों हैं। तंत्रोपैथी के आधे घंटे के अभ्यास में शरीर और मन पूरे शरीर में लवलीन रहता है। साथ-ही-साथ मन इस दौरान अभ्यस्त (कन्डीशंड) भी होता रहता है। अभ्यास लयात्मक और क्रमिक होने के कारण मन ऊबता नहीं। अभ्यास के बाद सारा दिन व्यक्ति का मन सक्रिय और प्रसन्न रहता है।

ध्यान पर एक वैज्ञानिक दृष्टि तंत्रोपैथी में डाली गयी है। अपने चारों तरफ हम शोर-गुल और उपद्रवग्रस्त वातावरण की दुनिया पाते हैं। जीवन में सबसे आगे निकल जाने, सब कुछ स्वयं हथिया लेने और जैसे-तैसे जी लेने की धमा-चौकड़ी में ही हम शारीरिक और मानसिक दृष्टि से बुरी तरह टूट चूके होते हैं। ध्यान अपने भीतर ही शान्ति और मौन का विजय द्वीप और सर्वदुख-हरण संजीवनी की खोज है। तथा सफल, स्वस्थ, आकर्षक और अह्लादित व्यक्तित्व प्राप्त करने का सरल और सुगम मार्ग है। ध्यान की दो अवस्थाएं हैं ऊपरी और भीतरी अवस्था।

हम जब बोलते हैं, तब हमारे भीतर कौन-कौन विचार चलते हैं यह है ध्यान की ऊपरी अवस्था। हम इसी ऊपरी परत पर जीते हैं। बोलने की दुनिया के नीचे भी एक सोचने की दुनिया है, जिसका हमें कुछ पता नहीं होता। ध्यान विज्ञान ने इस भीतरी अवस्था को तीन तल में विभक्त किया है–वैखरी, मध्यमा और पश्यन्ति। पहला तल बोलने, दूसरा तल विचारने और तीसरा तल देखने का है। पहले तल से हम संसार के सारे कार्य कर लेते हैं। सोचते हैं कि इस दुनिया में ही जीते हैं। विचार के निचले तल में मध्यमा और पश्यन्ति स्तर पर संघर्ष, रोमांच और चमत्कार का खजाना है। ध्यान के अभ्यास के बिना व्यक्तित्व की इन दोनों परतों का हमें ज्ञान ही नहीं हो पाता। तीसरे तल पर हम विचारों को देख सकते हैं। इसलिए इसे पश्यन्ति कहा गया है। ऋषियों ने इसी स्तर पर वेद की ऋचाओं को देखा। मुहम्मद साहब ने कहा–"हमने ज्ञान को देखा" मूसा कहते हैं–"मेरे सामने टेन कमान्डेन्ट प्रकट हुए।" विचार का एक और तल है, जहां विचारों को अनुभव किया जाता है।

सक्रिय ध्यान का अभ्यास स्वचालित शारीरिक क्रियाओं को संतुलित करता है।

आज की सारी शिक्षा दूसरे से सम्बन्धित होने पर एक अच्छा सामाजिक प्राणी होने की शिक्षा तो देता है लेकिन अपने आप से सम्बन्धित हुए बिना हम समाज से कितना सम्बन्धित हो पाए हैं, आज के समाज को देखने से पता चलता है। हम बिना अपने आप से सम्बन्धित हुए दूसरों से सम्बन्धित हो हीं नहीं सकते। मध्यमा और पश्यन्ति स्तर पर जाकर ही एक अच्छे समाज का निर्माण कर सकते हैं। ध्यान अपने भीतर झांकने का विज्ञान है और हमारी शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक समस्याओं का समाधान भी। ध्यान के अभाव में मन एक आवारा पशु की तरह कहां-कहां उठा ले जाये और किस गहरी खाई में उठा फेंके।

(क) कर्ताभाव ही मन का भोजन है और साक्षी भाव मन का विसर्जन। साक्षी भाव के अभ्यास से ही मन का विसर्जन कुछ क्षण के लिए होगा और हम शान्त हो पाएंगे। विचारों को देखने के अभ्यास मात्र से हममें साक्षी भाव उत्पन्न हो जाता है।

(ख) सक्रिय ध्यान के अभ्यास से हमारी दूषित आवेगों, कुंठाओं और तनावों का रेचन होता है और हम शारीरिक ऊर्जा, प्राण ऊर्जा और आत्मिक ऊर्जा के साथ जुड़ कर तरो ताजा और सक्रिय हो जाते हैं। इसके तीन चरण हैं:–

1. मल निष्कासन रेचन क्रियाः–पेट की विभिन्न प्रकार की बीमारियों में मलरेचन क्रिया मल विसर्जन का भारतीय आसन तांत्रिक और पूर्ण वैज्ञानिक है। मल विसर्जन आसन पर बैठकर धीरे-धीरे श्वांस लेते हुए सीना तानकर गर्दन को पीछे की ओर झुकाइए और श्वांस को रोक कर गर्दन और छाती को इस प्रकार झुकाइए कि पेट पर भार पड़े। यह क्रिया श्वांस रोके हुए कीजिए और थोड़ी देर तक करने के बाद उसी मुद्रा में पेट पर बल देते हुए जोर से श्वांस छोड़िए। इस क्रम को आठ बार दुहराइए। रुका हुआ सूखा मल बाहर निकल आएगा और आप तरो ताजा महसूस करेंगे। हमारे मल निष्कासन स्वचालित क्रिया को इस क्रिया से, अंतड़ियों में संकोचन प्रसारण की स्वचालित क्रिया में बड़ी सहायता मिलती है। अगर इस क्रम में बाजीकरण मुद्रा भी करते रहें तो कुछ दिनों में ही कटि गह्वर के किडनी, मूत्राशय मल निष्कासन मार्ग (जेनिटल यूरिनरी एनट्रैल्ट) की सारी बीमारियों में बड़ी आंत के कैन्सर और नामर्दी बीमारियां भी दूर हो जाती हैं।

2. तनाव निष्कासन रेचन क्रिया–नित्य क्रिया से निवृत होने के बाद एक ग्लास नींबू नमक मिला पानी लीजिये और जमीन पर कम्बल डालकर ताड़ासन में शान्त हो खड़े होकर "इष्ट प्रणाम" कीजिये और इसके बाद श्वांस धीरे-धीरे लेकर जोर से छोड़िये। श्वांस पेट से लीजिए। यह क्रिया मात्र आठ बार दुहराइए। श्वांस लेकर गर्दन सीधी कर जोर से छोड़िए। इस क्रिया को भी आठ बार दुहराइए। इससे मन के तनाव में तत्काल आराम मिलेगा। मस्तिष्क के न्यूरोन काफी सक्रिय हो जायेंगे और पिटिट्यूरी और पिनियग्रन्थि पूर्ण रूप से सक्रिय हो जायेगी।

3. इसके बाद हास्याकृति और प्रसन्नाकृति बनाकर मुस्कुराएं, जोर से हंसें "हो हो हो, हा हा हा,ही ही ही, हू हू हू" और उसके साथ-साथ सारे शरीर को तनावमुक्त कर पूरे शरीर के रोम-रोम को उत्फुल कर दें। यह क्रिया भी आठ बार दुहरायें। शीघ्र हीं दूषित ग्रन्थियों का कच्चा घड़ा फूट जाएगा और आप सामान्य होकर अपना काम पूरी ईमानदारी और तत्परता से कर लेंगे।

4. इसके बाद आप शवासन में चित्त या पेट जैसे भी चाहें लेट जायें और पेट से गहरी स्वास लें और उसे साक्षी भाव से देखते रहें। इस क्रिया को 5 मिनट करने के बाद आप नाश्ता वगैरह लें और काम पर जाएं।

नागराज ध्यान मुद्रा

नागराज ध्यान–यह ध्यान वह प्रक्रिया है, जिससे कुण्डलिनी की ऊर्जा पूरे शरीर को अविभूत कर व्यक्ति को स्वस्थ बनाने और आकर्षक सुन्दर व्यक्तित्व प्रदान करने में मदद करती है। इससे हम मस्तिष्क से हृदय में उतर आते हैं। यह ध्यान प्रक्रिया 15 से 20 मिनट तक चलनी चाहिए। इस ध्यान प्रक्रिया के लिए शाम का वक्त अच्छा रहता है।

(क) इस ध्यान पद्धति में व्यक्ति की मुद्राओं को बीन बाजा के सुर पर सांप के थिरकते हुए नाच पर स्थित है। जिस प्रकार बीना की आवाज के साथ सांप अपनी कुण्डली को तोड़कर धीरे-धीरे पूंछ पर खड़ा हो जाता है। उसी प्रकार शरीर को ढीला छोड़कर पूरे शरीर को खड़े होकर कंप-कपाएं, हिलाएं और झकझोरें और अनुभव करें ऊर्जा पांव से बढ़कर ऊपर की ओर बढ़ रही है।

15 से 20 मिनट तक इस क्रिया को करें।

(ख) इसके बाद शरीर ढीला कर 5 मिनट के लिए श्वासन में लेट जायं आंखें बन्द रखें।

वे अभ्यास जिसमें तारतम्यता, लयबद्धता और एकता हो, वह अभ्यास शरीर और मन दोनों पर अनुकूल प्रभाव डालता है। इसीलिए तंत्र में सभी तांत्रिक अभ्यासों को साधना कहते हैं। यह अभ्यास आध्यात्मिक हो इसलिए साधक अपने को सुप्रीम कन्शशनेश का एक हिस्सा मानकर परम पुरुष की विभिन्न रूपों में परिकल्पना करता है। और उसके समक्ष प्रणति होता है। ऐसे तंत्रोपैथी के अभ्यासों को प्रतिदिन 20-25 मिनट करके भी साधक अपने को स्वस्थ और पुष्ट रख सकता है तथा शारीरिक और मानसिक बीमारियों से छुटकारा पा सकता है।

तंत्रोपैथी में दिए गए अभ्यासों के लिए किसी बाह्य सामानों और यंत्रों की आवश्यकता नहीं पड़ती। इन अभ्यासों को करने के लिए न अधिक जगह की जरूरत पड़ती है न विशेष समय की। शुरू में थोड़ा समय लगता है लेकिन रोज-रोज करने से व्यक्ति अभ्यस्त हो जाता है और 15-20 मिनट में पूरे शरीर की मांसपेशियों का भरपूर संकोचन-प्रसारण तथा पूरे शरीर को ऊर्जा से परिपूर्ण कर देता है।

अध्यात्मिक दृष्टि से बीमार व्यक्ति पूर्ण रूप से शारीरिक और मानसिक दृष्टि से बीमार

अध्यात्मिक दृष्टि से बीमार व्यक्ति शारीरिक और मानसिक दृष्टि से भी बीमार होता है। आध्यात्मिकता हमारी समाजिकता है। अध्यात्मिक विहीन परिवार और समाज शारीरिक और मानसिक रोगियों का परिवार और समाज है।

असामाजिक व्यक्ति न दीर्घायु होते हैं और न मानसिक दृष्टि से संतुलित। स्नेह और प्यार सामाजिकता के दो पहलू हैं। ये मात्र सम्वेदनशीलता नहीं, बल्कि मानवजाति को जीवित रखने का सरवाइवल कीट है। स्नेह और प्यार का लेन-देन ही जीवन है। वे बच्चे, जिन्हें बचपन में प्यार और स्नेह नहीं मिल पाता वे युवावस्था में मानसिक और शारीरिक दृष्टि से बीमार होते हैं। अकारण भयाक्रान्त रहते हैं। और कभी-कभी ये बड़े खतरनाक बन जाते हैं। वे युवा जो अपने को समाज से काट लेते हैं, वे अकसर जवानी में ही मरते हैं। स्नेह, प्यार का लेन-देन ही सामाजिकता है। और सामाजिक व्यक्ति ही अध्यात्मिक होता है। मानवेतर प्राणियों में भी स्नेह प्रेम का लेन-देन होता है जो समूह में रहते हैं। न्यूयार्क एकाडेमी ऑफ साइन्सेस ने "इन्टेगरेटेड न्यूरोवायालाजी ऑफ ए फिलिएशन" नाम से एक कान्फरेंस इसी वर्ष वाशिंगटन में बुलायी थी और उसके शोध प्रबंध ने आध्यात्मिकता पर से कई अदृश्य परदे उठाए। स्वस्थ और खुश रहने के लिए मांसाहारी प्राणी को मांस चाहिए, भ्रमणकारी प्राणी के लिए गति और सामाजिक प्राणी के लिए सामाजिकता या आध्यात्मिकता।

इस सम्बन्ध में सम्मेलन ने विस्तृत प्रकरण अपनाया। बन्दर, वनमानुष आदि पशु एक दूसरे से बुरी तरह लड़ते हैं लेकिन एक दूसरे से हाथ मिलाकर, एक दूसरे से लिपट कर या एक दूसरे का चुम्बन लेकर अपने समूह के सम्बन्ध को टूटने से बचा लेते हैं। मनुष्येतर प्राणियों में लड़ने, भिड़ने और झगड़ने की स्वाभाविक तथा हारमोनल विभिन्नता के कारण होता है। मनुष्य का स्वाभाविक तथा हार्मोबल प्रभाव, स्नेह और प्रेम को प्रेरित करता है। स्कीजोफ्रेनिया और आटोइज्म न्यूरोसाइक्रियाट्रिक डिजार्डर स्नेह और प्रेम के लेन-देन में चूक के कारण होता है। ये जीवन में स्नेह-प्यार करने और दूसरों से सम्बन्ध स्थापित करने में पिछड़े होते हैं।

गुण विवेचन तथा बर्दाश्त करने की क्षमता स्नेह और प्रेम का ही प्रतिउत्पाद है। आशावादिता और सकारात्मक चिन्तन इसकी उपलब्धि है। मनुष्य में कारटीसोल और इपीने फ्रीनिरे हारमोन "डटे रहो या भाग जाओ" प्रवृत्ति को बढ़ाता है। क्योंकि इन हारमोनों के चलते हृदय गति बढ़ ज्ाती है, रक्त चाप बढ़ जाता है, रक्त मधु अधिक हो जाता है जिससे वे सारे गैस्ट्रोइनटेस्टाइनल क्रिया जिससे मांसपेशियों की शक्ति परिवर्तन की प्रक्रिया रुक जाती है और जिसके फलस्वरूप विभिन्न पेट की बीमारियां हो जाती हैं।

आध्यात्मिकता हमारी सृजनीशीलता (क्रियेटीविटी) हैं। सृजनशीलता की पहली चाह ही अपने को परमात्मा होने का पहला एहसास है। यह विश्व ब्रह्माण्ड एक शक्ति पुंज है और यह विश्व ब्रह्माण्ड लगातार प्रसारण होती प्रक्रिया।

शक्ति की उपस्थिति ही उसे विस्तृत करती है। उसे ही तंत्र में शिव कहा गया है। विश्वब्रह्माण्ड को शिव शक्यात्मक रूपा कहा गया है। शक्ति का स्रोत है प्रकृति। प्रकृति के साथ तादाम्य सम्बन्ध स्थापित करना हमारी व्यक्तिगत प्रकृति होने से ही हम शक्ति शिव सम्पन्न हो सकते हैं। शक्ति और शिव का अभाव

ही व्याधि है। इकोलानिकल अध्ययन से पता चला है कि जीव जगत और स्थूल जगत दोनों एकात्मक होकर ही संचालित होता है। एक दूसरे के अभाव में नाना प्रकार की व्याधियां आ घेरती हैं विज्ञान ने भी इसे सिद्ध कर दिया है। तंत्रोपैथी प्रकृति के साथ स्वस्थ मानव के सहस्तीत्व की पुष्टि करती हैं।

महामुक्तेश्वर मुद्रा

आज की भाग-दौड़ की दुनिया में मानसिक और शारीरिक दबाव और तनाव का होना स्वाभाविक है। और इससे तनाव से मुक्ति के लिए हम गांजा, भांग, बीड़ी शराब और सिगरेट या ड्रग्स का सहारा लेते हैं। पर क्या वास्तव में हम तनाव मुक्त हो पाते हैं? हर तरह की बीमारियों का कारण यह तनाव और दबाव ही होता है। इसके लक्षण छोटी-छोटी बीमारियों के रूप में पहले दिखाई पड़ते हैं। अंत में दमा, हृदय रोग और कैन्सर का भयावह रूप ले लेता है। मानसिक तनाव दबाव से छुटकारा पाने के लिए यहां मुक्तेंश्वर मुद्रा का प्रतिदिन 15-20 मिनट का अभ्यास ही स्वस्थ, सुन्दर और आकर्षक व्यक्तित्व के साथ जीना आसान हो जाता है। वास्तव में वेहतर जीवन जीने के लिए कुछ क्षण प्रतिदिन पूरे शरीर को खोलना, ऐंठना और मरोड़ना, मन को प्रसन्न और संतुष्ट करना तथा प्रकृति रूप से अपने को शक्ति सम्पन्न करना बहुत जरूरी हो जाता है। ऋषियों द्वारा महामुक्तेश्वर मुद्रा की खोज और आज की वैज्ञानिक दुनिया द्वारा उसकी उपयोगिता की पुष्टि एक ऐतिहासिक यथार्थता है।

महामुक्तेश्वर मुद्रा की तांत्रिक अभिव्यक्ति—महामुक्तेश्वर मुद्रा प्रमुख रूप से दो तांत्रिक सिद्धांतों पर आधारित है (क) जैसी मुद्रा होगी वैसा भाव (आवेग-सम्वेग) होगा। और जैसा आवेग-सम्वेग होगा वैसी मुद्रा होगी। (ख) परिस्थिति में प्रवेश करें, तत्सबन्धी मानसिक-शारीरिक समस्याओं से मुक्ति मिलेगी ही, मुद्राएं भी दो प्रकार की होती हैं। देव मुद्राएं और पशु मुद्राएं। यथा नाम तथा गुण की उक्ति चरितार्थ करते हुए पशु मुद्राओं को मृत्युंजय मुद्रा और देव मुद्राओं को चिन्तामणि मुद्राएं कह कर ऋषियों ने प्रतिष्ठा दी है। मृत्युंजय और चिन्तामणि मुद्राओं का समुचित समायोजन ही महामुक्तेश्वर मुद्रा कहा गया है।

मृत्युंजय मुद्रा की खोज हमारे ऋषियों ने जंगली पशुओं के विशिष्ट शारीरिक क्रियाओं को जंगल में वर्षों एकान्तवास के समय निरीक्षण किया, उन क्रियाओं से सम्बन्धित अंगों को उन्होंने पुष्ट और स्वस्थ पाया या रोग ग्रस्त होने पर उन क्रियाओं के चलते स्वस्थ होते पाया। उन्होंनें अपने पर और अपने शिष्यों पर उसका बार-बार प्रयोग कर उसकी प्रामाणिकता की जांच की और इसके बाद क्रियाओं के गुणों के अनुसार उनका नाम देकर यथा नाम तथा गुण की उक्ति चरितार्थ करते हुए आम लोगों में प्रचार-प्रसार किया।

शारीरिक तनाव में मांसपेशियां अड़ियल टट्टू की तरह अकड़ जाती हैं तथा

मानसिक तनाव में शरीर के विभिन्न स्नायु केन्द्रों (सरकिटों) को जोड़ने वाले मस्तिष्क के न्यूरोन दिग्भ्रमित हो जाते हैं।

पतंग की तरह चिंतन एक ही दिशा की उड़ने ओर लगता है। क्योंकि ऐसी दशा में मस्तिष्क चिन्तन की दिशापविर्तन की कला को भूल जाता है और नींद हराम हो जाती है। लगातार ऐसी मानसिक स्थिति बनी रहने से व्यक्ति अनिद्रा, कब्ज, सिर दर्द आदि का शिकार बन जाता है। इस हालत से उबरने के लिए मांसपेशियों का मंचल-मंथन और मर्दन, जोड़ों को खोलना, ऐंठना और मरोड़ना आदि पशु मुद्राएं हैं। तथा प्रसन्नाकृति, हास्याकृति, संतुष्टाकृति तथा शक्ति संचयाकृति बनाकर अपने में संतुष्टि, प्रसन्नता तथा शक्ति संचय करना देव मुद्राएं हैं। पशु-मुद्राओं का सम-सामूहिक आध्यात्मिक प्रयोग, मृत्युंजय मुद्रा तथा देव मुद्राओं में हाथ की पांचों-पाचों अंगुलियों को पांच तत्त्वों (आकाश, वायु, जल, पृथ्वी और वायु) का प्रतीक मान कर "अवाहह्नाकृति" का सम-सामूहिक नाम चिन्तामणि मुद्रा है।

सकारात्मक चिन्तन, चिन्तामणि मुद्रा का प्रमुख अंग है। शारीरिक-मानसिक बीमारियों की स्थिति में आन्तरिक मनन भयभीत रहता है और भय की स्थिति में व्यक्ति अपनी तकलीफों को काल्पनिक और नकारात्मक चिन्तन से अधिक बढ़ा लेता है। भय का उप-उत्पादन (बाइपोडक्ट) नकारात्मक चिन्तन, दुश्चिन्ता निष्क्रियता और उदासी तथा निर्भीकता, सक्रियता, प्रसन्नता का उत्पादन (वाईप्रोडक्ट) सकारामत्क चिन्तन है इसलिए आंखों की तथा हाथ और पेरों की अंगुलियों की विभिन्न मुद्राकृति बनना चिन्तामणि मुद्रा की प्रमुख क्रियाएं हैं। चिन्तामणि मुद्राओं का प्रतिदिन कुछ क्षण का अभ्यास व्यक्ति में रोग प्रतिरोधात्मक शक्ति तथा प्राकृतिक शारीरिक सुरक्षा कवच को अप्रत्याशित रूप से बढ़ा देता है। और रोगी एक सप्ताह में ही स्वस्थ होने लगता है। मैंने सैकड़ों लोगों पर इसका प्रयोग किया और रोग मुक्त कराया है।

कल्पनात्मक. दृष्टि (विजूअलाईजेशन) तंत्र में धारणा का बहुत महत्त्व है। वास्तव में धारणा कल्पनात्मक दृष्टि ही है। कल्पनात्मक दृष्टि या धारणा को मजबूत करने के लिए तंत्र में भूत शुद्धि, शरीर शुद्धि और मन शुद्धि की विभिन्न क्रियाओं का अभ्यास प्रति दिन करना अपने को शारीरिक, मानसिक और संविगिक दृष्टि से स्वस्थ, सुन्दर आकर्षक और अह्लादित बनाना है। एक छोटे बच्चे में काल्पनात्मक दृष्टि विकसित नहीं होती इसलिए उसे अवोध बालक कहते हैं। और इसीलिए वह किसी तकलीफ से रोते हुए तकलीफ वाले स्थान पर हाथ रखकर रोता है। अगर उसे सिर, पेट, या सीने में दर्द होता है तो वह सिर, पेट या सीने पर हाथ रखकर रोता है। लेकिन एक व्यस्क व्यक्ति अपने तकलीफ के स्थान को काल्पनिक दृष्टि से देखता और उसे महसूस करता रहता है तथा अपनी मानसिक स्थिति के अनुसार उसे घटा-बढ़ाकर हाय-तोबा मचाता रहता है। हमारी कल्पनात्मक दृष्टि हमारे मानसिक तनाव-दबाव तथा रोग से सम्बन्धित आकार-प्रकार और भयावहता पर निर्भर करती है। महामुक्तेश्वर मुद्रा के अभ्यास

से हमारे मांस-पेशियों का हौले से खोलने, मोड़ने, मरोड़ने तथा मंचन-मंथन-मर्दन करने, और सकारात्मक चिन्तन तथा कल्पनात्मक दृष्टि, तीनों को एक नई दिशा, एक नई उत्फुलता भरा निर्देश मिलता है और नित्य तनाव मुक्त होकर भरपूर जीवन जीने लगते हैं।

मुक्तेश्वर शिव का ही दूसरा नाम है। शक्ति और शिव एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। जहां शक्ति हैं वहीं शिव हैं शक्ति के अभाव में शिव बनकुसुम की तरह है और शिव के अभाव में शक्ति बन्ध्या बनी रहती है। शिव-शक्ति ही हमारी प्राकृतिक सुरक्षा कवच और स्वतः रोग निवारण क्षमता है। शिव और शक्ति में से किसी एक का अभाव हमें रोगी, दुखी, दुश्चिन्तक और भिखारी बना देता है। शिव-शक्ति का संयोग ही स्वस्थ, आकर्षक, अह्लादित और सुन्दर जीवन है। रोग-दुख और संताप का मुक्तेश्वर है। शिव लिंग के अभाव में मिट्टी और बालू के शिवलिंग बनाकर पूजन के अलावा, तंत्र में मुक्तेश्वर मुद्रा द्वारा शिव की पूजा-अर्चना कर, शिव-शक्ति सम्पन्न बनाने की सर्वोत्तम क्रिया माना गया है। आज वैज्ञानिक भी अपने प्रयोगों के आधार पर इसकी प्रामाणिकता कबूल करने लगे हैं।

चिन्तामणि मुद्राएं—सम सामयिक देव मुद्राओं का संयोजन ही चिन्तामणि, मुद्राएं हैं। ऋषियों ने कहा है—चिता, चिन्ता समाख्याता बिन्दु मात्र विशेषता। चिता दहति निर्जीव, चिन्ता दहति जिवती। चिता और चिन्ता में एक बिन्दु मात्र की विशेषता होती है। लेकिन चिता मुर्दे को जलाती है और चिन्ता जिन्दा आदमी को। यह उक्ति चिन्ता का शरीर और मन पर भयंकर प्रभाव की ओर ही इशारा करती है। आज आधुनिक वैज्ञानकिों ने भी चिन्ता के दुष्प्रभावों को अपने प्रयोगों द्वारा साबित कर दिया है। आदमी दुख से नहीं, उसकी चिन्ता की भयंकरता से मरता और पागल होता है। वैज्ञानिकों ने चिन्तित व्यक्ति के शरीर के परिवर्तनों को मापा और चिन्ता में होने वाले शारीरिक परिवर्तनों को देखकर वे आश्चर्य चकित रह गए। उन्हेंने पाया कि चिन्ता रक्तचाप, हृदय रोग मधुमेह, एलर्जी, सिरदर्द, थकान, रीढ़ और कमर का दर्द, चर्मरोग आदि जानलेवा और असाध्य बीमारियों का प्रमुख कारण है।

वास्तव में चिन्ता और सम्वेग परिस्थिति विशेष से उत्पन्न हमारे विचार हैं। हमारी चिन्ता या तत्सम्बन्धी विचार कैसे शरीर में प्रवेश कर जाते हैं और धीरे-धीरे पूरी तरह उसे प्रभावित कर, उसे रोगग्रस्त कर लेता है इसके लिए हम प्रतिदिन साधारण क्रिया प्रतिक्रिया को लें तो पाएंगे कि "किंर्तव्य मिमुढ़तावस्था" (नर्वसेनस) में पसीने का आना, भय की स्थिति में सीने का असामान्य रूप से धड़कना, किसी बुरी खबर सुनने पर पीला पड़ जाना आदि। अगर चिन्ता के कुछ क्षणों में हमारी शारीरिक रासायनिक प्रतिक्रियाएं ऐसी होती हैं तो इससे हम आसानी से अन्दाजा लगा सकते हैं कि लगातार दुश्चिन्ता में रहने वाले व्यक्ति को किस प्रकार चिन्ताएं अन्दर-ही-अन्दर जानलेवा रसायनिक द्रवों को, विशिष्ट, ग्रन्थियों द्वारा स्रावित कराकर मारती और खाती रहती हैं।

वास्तव में चिन्ता, तनाव या सांवेगिक दबाव, शरीर की रासायनिक प्रक्रिया को पूर्णतः पलट देते हैं। इसलिए जो मन में होता है उसका अनुवाद उसी वक्त शारीरिक लक्षण के रूप में दिखाई पड़ने लगता है। दुखद कल, वर्तमान या भविष्य की चिन्ता प्रायः हमें अपने चंगुल में फंसाती है। मस्तिष्क में चल रही वैचारिक घटनाएं कई प्रकार के शारीरिक रसायन और हारमोन को प्रभावित करती हैं। प्रायः हमारी जीवन शैली (स्टाईल आफ लाइफ) हमारे रहन-सहन, चाल-चलन और खान-पान से जुड़ी होती है तथा हमारी चिन्ताओं से प्रभावित होती रहती है। छात्रों में परीक्षा के वक्त और एकाउन्टेन्ट का आडिट के समय रक्त में कोलेस्ट्रटाल का स्तर अधिक पाया जाता है। यह आज के वैज्ञानिकों की नई खोज है।

चिन्ताजनक परिस्थितियां हमारे मस्तिष्क में शारीरिक एलार्म का काम करती हैं और शारीरिक अंगों और प्रत्यांगों के विभिन्न स्नायु सरकिट को बहुत अधिक उत्तेजित कर देती हैं। चिन्ता से तनाव और सांवेगिक दबाव का उद्देश्य होता है सारे शरीर को "अस्तित्व की रक्षा" की लड़ाई के लिए तैयार करना। इससे हमारे लघु मस्तिष्क का वह भाग प्रभावित होता है, जिससे हमारी भूख-प्यास और गुस्सा नियंत्रित होता है। वैज्ञानिकों ने तनाव पैदा करने वाले हारमोन्स को सामूहिक नाम दिया है–एड्रीनिल। ये चिन्ता और तनाव की स्थिति में स्रावित होकर सारे शारीरिक सिस्टम में मिल जाते हैं, जिससे रक्त धमनियां पतली हो जाती हैं। इससे शरीर में रक्त की आपूर्ति कम हो जाती है, रक्त चाप बढ़ जाता है रक्त में मधु की मात्रा बढ़ने लगती है, और श्वांस लेने की नलिकाएं सख्त होती जाती हैं जिससे हृदय गति अनियमित होकर बढ़ जाती है।

चिन्ता के कारण शारीरिक रासायनिक क्रियाएं असंतुलित होने से अनिद्रा, मधुमेह हृदय रोग, गर्भपात आदि बीमारियां होती हैं या चर्म रोग उत्पन्न करती हैं। हृदय रोग वंशानुक्रमिक और मोटापा के कारण भी होता है। इंग्लैण्ड के वैज्ञानिकों ने 400 चिन्ता से ग्रस्ति लोगों पर परीक्षण कर पाया कि दुश्चिन्ता और तनाव से ग्रसित व्यक्ति को सर्दी और जुकाम अधिक होता है और अकसर चर्मरोग से पीड़ित रहते हैं। हमारी शारीरिक सुरक्षात्मक प्रक्रिया जब चिन्ता और तनाव से समझौता कर लेती है, तव व्यक्ति का "स्वतः रोग निवारण क्षमता" बहुत कमजोर हो जाती है और व्यक्ति कैंसर जैसी भंयकर बीमारियों का शिकार बन जाता है। कोई हमें समझने की कोशिश नहीं करता। हमारा गुण विवेचन नहीं करता आदि चिन्ताओं से दमा की बीमारी हो सकती है। चिन्तामणि मुद्राएं ही इसका एक मात्र इलाज है। मृत्युंजय मुद्राओं और चिन्तामणि मुद्राओं का समसामूहिक संयोगात्मक नाम महामुक्तेश्वर मुद्रा है, जिनको तंत्रोपैथी के प्रथम खण्ड में विस्तार से पशु और देव मुद्राओं के रूप में विस्तार से विवेचना की गई है।

महामुक्तेश्वर मुद्रा की प्रक्रिया

महामुक्तेश्वर मुद्रा, मृत्युंजय मुद्रा और चिन्तामणि मुद्राओं का समसामयिक कंचनमणि सम्मिश्रण है। मुद्रा अभ्यास करने का स्थान साफ-सुथरा और सुरुचिपूर्ण हो। सर्व प्रथम एक कम्बल को जमीन पर डालकर पीठ के बल लेट जायें। तकिया का प्रयोग न करें और अपने इष्ट के नाम का उच्चारण करते हुए निम्न प्रकार अभ्यास करें।

1. रीढ़, पैर और कमर की मांसपेशियों को तनाव मुक्त करने के लिए सिर के बगल से दोनों हाथों को सिर के समानान्तर जमीन से सटे हुए ऊपर की ओर और पैरों को जमीन के समानान्तर नीचे की ओर जितना खींच सकते हैं खींचें और कमर से ऊपर बाएं तरफ नीचे के अंग के दाएं तरफ मोड़ कर "ॐ नमः शिवाय" कहते हुए प्रेम से अंगड़ाई लें। इस क्रिया को विलोमावस्था में भी 3 बार दुहराइये, बारी-बारी से।

2. इसके बाद आप गहरी श्वांस धीरे-धीरे अपने फेफड़ों के नीचे जहां से पेट शुरू होता है लें और महसूस करें कि आपका पेट जितना फूल सकता है, श्वास लेने के साथ-साथ फूल रहा है। कुछ क्षण के लिए श्वांस रोक कर धीरे-धीरे छोड़ें। ऐसा मात्र 3 बार करने से ही शरीर और मन पर बड़ा सुखद प्रभाव पड़ेगा और इसे आप तत्क्षण महसूस करेंगे। अंत में भरपूर अंगड़ाई लेना न भूलें।

3. इसके बाद लेटे-लेटे ही कल्पना दृष्टि से देखें कि सूर्य एक गेंद की तरह एक पतले धागे से हमारे सिर के ऊपरी भाग से जुड़ा हुआ है और सिर से लेकर मूलाधार तक रीढ़ की हड्डियां ऊपर की ओर उसके साथ खिंच रही हैं। मूलाधार पृथ्वी तत्व है इसलिए वह वजनी होने से एक जगह पर स्थिर है। रीढ़ और कमर की हड्डियां ही खिंच रही हैं। इसे मानसिक दृष्टि से देखते रहें। शरीर जिधर खिंचता जाता है उसे जाने दें। कुछ ही क्षण में आपका शरीर अनुकूल आसन में आ जायेगा और एक बार जहां गर्दन और रीढ़ स्वतंत्र हुआ गहरी स्वांस चलने लगेगीं और पूरा शरीर और मन तनाव मुक्त हो जायेगा। इस मुद्रा को जितना अधिक आप करेंगे उतना ही जल्दी आपका शरीर कल्पनात्मक दृष्टि से मन के साथ तादात्म्य सम्बंध स्थापति कर स्वस्थ, आकर्षक, और सुन्दर, आह्लादित व्यक्तित्व पा सकेगा।

4. लेटे-लेटे ही दोनों हाथों की अंगुलियों को जितना फैला सकते हैं फैलाएं जिसमें केहुनी के पास की मांसपेशियों पर दबाव पड़ता रहे और धीरे-धीरे मध्यम अंगुली को उसी स्थिति में मोड़कर हथेली की गहराई की ओर इस तरह मोड़ें कि आधे में शिवलिंग का आकार बन जाय। "ॐ नमः शिवाय" का मानसिक

दृष्टि से उच्चारण करते रहें। साथ-ही-साथ आप कल्पना करते रहें कि आपका हाथ गर्म हो रहा है। फिर सारा शरीर गर्म हो गया। सूर्य की किरणें शरीर पर पड़ रही हैं। और अंत में एक अंगड़ाई लें।

5. इसके बाद दोनों हाथों, अंगुलियों को एक साथ फैलाते हुए मिलाएं और दोनों की मध्यमा अंगुली को मिलाए हुए इस प्रकार मोड़ें कि आधे में शिवलिंग का आकार ले लें। साथ-ही-साथ पैरों की अंगुलियों को भी इतना फैलाएं कि टखने की हड्डियां पूरी तहर फैलें और टेहुने के नीचे की मांसपेशियों पर दबाव पड़े। मानसिक दृष्टि से "ॐ नमः शिवाय" का जाप करते रहें। दोनों क्रियाएं एक साथ कुछ क्षण के लिए चलती रहें और अंत में अंगड़ाई ले लें।

मानसिक और शारीरिक चिन्ता तनाव और संवेगिक दबाव में महामुक्तेवर मुद्रा रामबाण की तरह काम करती है। इष्ट प्रणाम और जामवंत मुद्राओं को जिसका वर्णन प्रथम खण्ड में विस्तार से किया गया है। महामुक्तेश्वर मुद्रा के साथ सम्मिलित करा लेने से एक सप्ताह में ही सुखद परिणाम सामने आने लगते हैं।

तांत्रिक आहार, अमृतान्न–तंत्र में पूजा-अर्चना तथा भोज़न में अमृतान्न की बड़ी महिमा है और आज के वैज्ञानिकों ने भी इसे अपने वैज्ञानिक प्रयोगों के आधार पर स्वास्थ्यवर्द्धक आहार घोषित किया है। अमृतान्न में अंकुरित चना, मटर, मूंग, मसूर, सोयाबीन, मुंगफली, जौ और गेहूं आता है। और तंत्र में इसे थोड़ी-थोड़ी मात्रा में नाश्ते के रूप में लेने का बड़ा महत्त्व दिया गया है। स्वस्थ रहने के लिए हम सभी को अमृतान्न नाश्ते में लेना चाहिए।

वैज्ञानिकों ने अपनी खोजों के आधार पर साबित कर दिया है कि अन्न में अकुंर निकलने की प्रक्रिया अपने में बहुत अधिक स्वास्थकर तत्त्व को समाहित किए रहती है। बीज के अन्दर इन्जाइम की वृद्धि के साथ अंकुर शुरू हो जाता है। ये इन्जाइम प्रोटीन को तोड़कर एमिनोए सिड बनाने में मदद करते हैं ये कारबोहाइड्रेट को शुगर में, फैटी तत्त्व को ऐलेमेंटल रूप में और पानी के साथ घुलने-मिलने वाला इन्जाइम का भी निर्माण करते हैं। अंकुरित में विटामीन ए ई के और बी पर्याप्त मात्रा में होता है, जो हमारे लीवर के सामान्य संचालन और रक्त की कोटिंग का काम करते हैं।

अन्न को अंकुरित करने का बड़ा आसान तरीका है। पहले अन्न को अच्छी तरह चुन-बीनकर धो लें और अन्न के वजन के दुगने पानी में रात को फूलने के लिए डाल दें। सुबह उसे निकाल कर किसी कपड़े में हल्का बांध कर रसोई घर के किसी कोने में लटका दें और प्रतिदिन दो तीन बार उस पर पानी का छींटा मारते रहें। दो दिन में अन्न अंकुरित होकर खाने के लायक बन जाएगा। इसी प्रकार हर दूसरे दिन यह सिलसिला चालू रखने से प्रतिदिन नाश्ते में आमृतान्न मिला करेगा।

मृत्युंजय मुद्रा–जैसा कि नाम से पता चलता है कि जानलेवा बीमारियों को दूर करने, स्वस्थ रहने और दीर्घायु बनाने की मुद्रा है। यंत्र में मानव शरीर को

चार गह्वर (कोटरों) में बांटा गया है–शिरो गह्वर, वक्षो गह्वर, उदरो गह्वर और कटि गह्वर। इन्हीं शारीरिक कोटरों में जीवन को संचालित करने वाले और चलाने वाले महत्त्वपूर्ण स्वचालित संयत्र लगे हुए हैं। इन्हीं गह्वरों में षट चक्र (स्नायु केन्द्र) अवस्थित है। उदरो गह्वर पेट को ही तंत्र ने अन्नमय कोष कहा है। यह कोष ही प्राणायाम कोष का आधार और स्रोत है। सिरो गह्वर को मनोमय कोष कह कर ऋषियों ने मन और प्राण तथा उदर और सिर का अटूट संबन्ध स्थापति किया है। पेट खाली, मस्तिष्क खाली, "वृक्षति किं न करोति पापम्" आदि वाक्य इसी को स्पष्ट करते हैं। उदर व्यक्ति का शक्ति पीठ और शिर शिवा पीठ है इसीलिए "शरीर शिवम् मन्दिरम" कह कर ऋषियों ने प्रतिष्ठा दी है। मणिपुर चक्र और आज्ञाचक्र, उदर और सिर, शक्ति और शिव, इच्छा और क्रिया, यही तो जीवन है। इनमें थोड़ा व्यतिक्रम हममें बीमारी लाता है और हमें रोगी तथा दुखी बना देता है। फ्रांस में रसोईघर और संस्कृति का अटूट सम्बन्ध माना जाता है। वालटेयर ने, विचारों को पूर्णरूप से पेट पर आश्रित बताया है। जापान के सम्मानीय दार्शनिक "आकाड़ा ताराजीरे" और "कनेक शोसेकी" ने मस्तिष्क का अति गौरवपूर्ण स्थान पेट को ही माना है। उदर में मानव शरीर का गुरुत्वाकर्षण का केन्द्र भी है। यही शक्ति, मर्दानगी और पुरुषार्थ का आधारभूत केन्द्र है।

आज वैज्ञानिक भी तंत्र की इस मान्यता की पुष्टि करते जा रहे हैं। वक्ष से लेकर कटि तक की विशिष्ट मांसपेशियां, जब तक शक्तिशाली, लचीली और टोनिंग नहीं होंगी, तब तक शरीर न निरोग रह सकता है और न सुन्दर, सुडौल और षौष्ठव ही बन सकता है। भले ही आप "ऐराविक स्कीविंग स्वीमिंग आदि करते हैं या टेनिस, फुटबॉल आदि खेल खेलते हैं। पूर्ण निरोग और शक्तिशाली बनने के लिए तांत्रिक मुद्राओं का अभ्यास करना ही होगा। छाती, पेट और कटि गह्वर की मांसपेशियां-ऊपर गर्दन से छाती की हड्डियां को ढकेलती हुई पेट और नितम्बों तक फैली हैं जो सीना और कटि के बीच पुल (सेतु) का काम करती हैं और मेरुदण्ड को रीढ़ की हड्डियों को सीधी रखती हैं। ये पीठ की मांसपेशियों के साथ एकाकार होकर काम करती हैं। शरीर के उदर गह्वर (मध्य भाग) में रीढ़ की हड्डी के अलावा न कोई दूसरी हड्डी होती है और न अस्थि बंधन (लिगामेंट) इसलिए इन मांसपेशियों का समुचित रख-रखाव और व्यायाम स्वस्थ रहने के लिए आवश्यक होता है। ये चार प्रकार की मांसपेशियां होती हैं जो उदर को बनाती हैं और उसमें लगे जीवन को चलाने वाले संयंत्रों को थामे रहती हैं। सबसे निचले स्तर की मांसपेशियां कमर से सीने तक समानान्तर रूप से फैली रहती हैं और निचली परत को बनाती हैं इससे ऊपरी परत की मांसपेशियों को आंतरिक 'ओब्लिक्यू' कहते हैं, जो पेट के एक कोने से सीने के दूसरे कोने तक तिरछी फैली होती हैं और उसी प्रकार बाह्य ओब्लिक्यू मांसपेशियां सीने के एक कोने से कमर के दूसरे कोने तक फैली होती हैं। इन मांसपेशियों का समूह हमें छाती को उठने गिराने और दाएं-बाएं मोड़ने में मदद पहुंचाता है। चौथी प्रकार की मांसपेशियां गुदाद्वार और जननेन्द्रिय से होकर छाती की ऊपरी हड्डी (रीब) तक फैली होती हैं। जिसे "रैक्टम शीथ" कहते हैं। ये

मांसपेशियां हमें किसी वस्तु को नीचे से ऊपर उठाने में मदद करती हैं।

भारतीय तंत्राचार्यों को इस बात का हजारों वर्ष पूर्व से ज्ञान था और उन्होंने हर काम के लिए विशिष्ट आसन की व्यवस्था दी थी। "नितम्बों पर बल देकर चलने से हम चलने की अच्छी मनः स्थिति में होते हैं।" "नितम्बों पर बल देकर खड़े होने से बोलने और व्याख्यान देने में कौशल दिखाते हैं।" "नितम्बों पर बल देकर बैठने से हम अच्छी तरह सोचते विचारते हैं।" इसका प्रमुख कारण है-इस स्थिति में हमारे मेरुदण्ड को सीधा रखने में ये मासंपेशियां उपयुक्त कार्य करती हैं। तांत्रिकों ने शरीर को स्वस्थ रखने और निरोग होने के लिए शरीर के विभिन्न अंगों में मांसपेशियों के दबाव विन्दु का भी उल्लेख किया है। वीरासन में बैठकर गर्दन को पीछे की ओर झुकाने से छाती में जहां दबाव पड़ता है वहीं सीने की मांसपेशियां का दबाव बिन्दु है और सीने के निचले भाग से धीरे-धीरे श्वांस लेकर गर्दन को आगे झुकाने से पेट की मांसपेशियों पर जोर पड़ता है वह पेट का दबाव बिन्दु है। पेट-पीठ या सीने में दर्द होने से इन बिन्दुओं को दबाने से तत्काल आराम मिल जाता है। इसी प्रकार चेहरे को खुला करने या हंसने मुस्कुराने से गर्दन और जिगर की मांसपेशियों पर दबाव पड़ता है। उस दबाव बिन्दु को दबाने से सिर का दर्द दूर हो जाता है। अकुपंचर और अकुप्रेशर में इन दबावों का उपयोग दूर करने में किया जाता है। तंत्रोपैथी में इन बिन्दुओं पर दबाव आसन और मुद्रा द्वारा स्वयं करने का प्रशिक्षण दिया जाता है।

आयुर्वेद शास्त्र में सारी बीमारियों की जड़ उदर की खरावी माना गया है। तंत्र में भी मेरुदण्ड को सीधा रखने, शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के लिए आवश्यक बताया है। इस प्रकार सीना, पेट और कटि प्रदेश के महत्त्व को तंत्र में निरोग और स्वस्थ रहने के लिए कबूल किया गया है। सीना, उदर और कटिप्रदेश को स्वस्थ रखने, उनसे सम्बंधित बीमारियों को दूर करने के लिए तंत्रोपैथी के प्रथम भाग में मरजार मुद्रा, कुकुट मुद्रा, भुजंग मुद्रा आदि की चर्चा विस्तार से की गई है। तंत्र में मेरुदण्ड, सीना, उदर और कटि प्रदेश की उपर्युक्त मांसपेशियों को ध्यान में रखते हुए ही आसनों और मुद्राओं का सृजन किया गया है। उदर एक रासायनिक कारखाना है, जहां विभिन्न रसायनों का उत्पादन, भण्डारण निकासी और उपयोग होता है। इसलिए इनका समानुपातिक रूप में उत्पादन हो, अधिक उत्पादित रसायनों का तुरंत उपभोग हो जाये या अगर भण्डारण हो तो उसका रिसाव न हो और जल्द-से-जल्द उपभोग कर लिया जाये या उसकी निकासी हो जाये।

सीने की जलन एक सामान्य अनुभव है इसका अनुभव प्रायः हर व्यक्ति को कभी-न-कभी हुआ होता है। सीने की जलन (एसिडिटि) के सम्बन्ध में यह आम विश्वास है कि मसालेदार सब्जी, छोंक लगी दाल, गरम और चटपटे मसालेदार मांस-मछली आदि खाने से यह होता है। पर आज के वैज्ञानिकों ने यह साबित कर दिया है कि बात ऐसी नहीं है। अगर यह बात होती तो मीठी चीजें (मिठाई, चाकलेट आदि) खाने से सीने में जलन का अनुभव नहीं होता। वास्तव में सीने की जलन किसी विशेष प्रकार के भोजन के चलते नहीं, बल्कि पेट का अम्ल

(एसिड) ऊपर भोजन की नली में रिसने से होता है। यह इतना शक्तिशाली अम्ल होता है कि अगर वह त्वचा पर लग जाय तो उसे जला देगा और किसी रंगीन कपड़े पर लग जाय तो रंग को उड़ा देगा। भोजन की नली और पेट के सन्धि स्थल पर एक ही ओर खुलनेवाला एक कपाट लगा होता है, जो पेट के अम्ल को ऊपर जाने से रोकता है। बेमन का भोजन करना, अधिक भोजन करना, छोटी और बदन में कसी हुई पोशाक पहनना, भारी चीजों को उठाना या थकान वाले व्यायाम करने और रोज-रोज गरिष्ट आहार करने से, यह कपाट अम्ल के छोटे दबाव से भी खुल जाता है। मोटे लोग और गर्भवती महिलाओं में अम्ल की शिकायत अधिक पायी जाती है। अधिक अलकोहल लेने, सिगरेट पीने, पान के साथ जर्दा खाने, समय पर भोजन न करने आदि से भी अम्ल की शिकायत हो सकती है।

अम्ल की रोक-थाम की तांत्रिक विधियां–

1. खाने के साथ एक-आध घूंट और खाने के बाद एक ग्लास पानी अवश्य लें। इससे पेट के अम्ल का रिसाव भोजन की नली में नहीं हो पाता और अगर अम्ल का रिसाव भोजन की नली में खाते वक्त हो गया है, तो पानी के साथ घुल-मिल कर कुछ डकार के रूप में बाहर निकल आता है और कुछ पुनः पेट में चला जाता है।

2. खाने के तुरन्त बाद वीरासन में पांच मिनट के लिए अवश्य बैठें। इससे शरीर का गुरुत्वाकर्षण पेट के अम्ल को नीचे ही रोके रखता है और उसका वेग अपने आप कम हो जाता है।

3. 10 मिनट के लिए बाएं करवट सिंह शैया में लेट जायं। सिंह-शैया में व्यक्ति को कड़े बिस्तर पर या जमीन पर कम्बल डालकर बाएं करवट लेट जाना चाहिए। सारे बदन को ढीला छोड़कर, बाएं पैर पर दाहिने पैर के टेहुने के दाहिने पैर के जंघे पर लुढ़का देना चाहिए। दाहिना पैर जमीन से सटा हुआ सीधा पड़ा रहेगा। इस प्रकार दाहिने हाथ को कमर पर लुढ़का देना चाहिए। इससे पेट का अन्न यथास्थान व्यवस्थित हो जाता है और व्यर्थ का अम्ल गुदा द्वार से अपने आप निकल जाता है। व्यक्ति 10 मिनट में ही इस शैया पर लेटने से तरो-ताजा और हल्का महसूस करने लगता है।

4. अम्ल की स्थिति में कम खाना और गम खाना तथा अधिक से अधिक पानी का पीना आवश्यक होता है।

छाती, पेट और कटिप्रदेश की अन्य बीमारियों को दूर करने की तांत्रिक विधियां–

1. सुबह बिस्तर छोड़ने के पहले एक या दो भरपूर अंगड़ाई लें। भरपूर अंगड़ाई से मतलब है, पैरों की अंगुलियों से लेकर हाथ की अंगुलियों की

मांसपेशियों और अस्थियों में पूर्णरूप से खिंचाव आ जाये और रीढ़ की हड्डी चटाक-चटाक पड़क उठे।

2. पीठ के बल लेटे हुए दोनों हाथों की अंगलियों से सीने पर लिपटा लें पैर जमीन से सटे रहें। इसके बाद केवल गर्दन को धीरे-धीरे श्वांस लते हुए ऊपर की ओर इतना उठाएं कि ठुड़ी-छाती से सटे नहीं। ऐसा करने से पीठ की मांसपेशियों पर जहां दबाव पड़े वहीं सीने का गुरुत्वाकर्षण केन्द्र बिन्दु है, वहीं गर्दन को जमीन से चार इंच ऊपर उठाकर दबा दें।

3. पीठ के बल लेटे हुए ही धीरे-धीरे स्वांस लेते हुए दोनों पैरों को टेहुना से मोड़ें और पैर की अंगुलियों को जमीन से सटा कर एड़ी को ऊपर उठाएं। ऐसा करने से टेहुने के नीचे मांसपेशियों पर जहां दबाव पड़े, वहीं पर पैर का गुरुत्वाकर्षण केन्द्र है। वहीं पर आठ बार दबाव दें।

4. इसके बाद नितम्बों को चार इंच उठाकर, और कमर में जिस भाग पर दबाव पड़ता हो, वह कमर का केन्द्र है और उस पर उसी क्रम से 8 बार दबाव दें।

इसके बाद एक लीटर पानी पी जायं, चाहे तो चाय भी ले सकते हैं और तेज कदमों से प्रसाधन गृह (पैखाने) में घुस जायं और जमीन से सटे पैन पर मल विसर्जन के लिए बैठें। क्योंकि इस पर मलविसर्जन का उपयुक्त आसन लगता है। इसलिए अंग्रेजी कमोड़ (पैन) का इस्तेमाल न करें।

अम्ल और अमाशय की कमजोरी और कन्सटिपेशन दूर करने की तांत्रिक मुद्राएं-

1. पैन पर रीढ़ की हड्डी को सीधा कर "चुकामुका" बैठ जाएं और सीने के निचले भाग से श्वांस धीरे-धीरे लेते हुए, सिर को गर्दन से पीछे की ओर धीरे-धीरे मोड़ें। सीने के निचले भाग से श्वांस लेने से पेट भी फूलता जाएगा। इसके बाद गर्दन को आगे की ओर इस प्रकार मोड़ें कि पेट की मांसपेशियों पर भार पड़े। कुछ क्षण तक श्वांस रोके रखकर तेजी से श्वांस को छोड़ें। इस क्रिया को आठ बार दुहराएं। इस क्रिया से मल विसर्जन पर्याप्त मात्रा में खुल कर होगा। याद रहे श्वांस लेने के साथ जब पूरा उदर फूल जाये तब बायीं करण मुद्रा करें इससे पेट गैस भरभराकर बादी निकल जायेगी। इसके बाद स्नान कर ही प्रसाधन गृह से निकलें और प्रतिदिन 3 मिनट ताण्डव और 5 मिनट इष्ट प्रणाम करके नाश्ता करें और तरो-ताजा हो काम पर निकल जायं। ताण्डवनृत्य और इष्ट प्रणाम की चर्चा विस्तार से हमने तंत्रोपैथी के प्रथम खण्ड में कर दी है। उपर्युक्त सभी मुद्राओं का तांत्रिकी नाम मृत्युंजय मुद्रा है। आमाशय की कमजोरी को दूर करने के लिए, वाजीकरण मुद्रा और गणेश क्रिया की चर्चा तंत्रोपैथी के प्रथम भाग में पर्याप्त मात्रा में की गई है।

द्वितीय परिच्छेद

स्वास्थ्य क्या है? स्वास्थ्य सम्बन्धित विभिन्न प्रकार की भारतीय धारणाएं हैं। प्रायः सभी में तांत्रिक दृष्टिकोण देखने को मिलेंगे। "स्वस्मिन तिष्ठति इति स्वास्थः" अपने आप में ठहरना या स्वयं में स्थित होना स्वास्थ्य है। यह स्वास्थ्य का अंतरंग पक्ष है। बाह्य पक्ष में हमारा खान-पान, वातावरण, स्थान विशेष, आदतें आदि आती हैं, जिसका प्रभाव हमारे स्वास्थ्य पर पड़ता रहता है। जैन तंत्र में मन वचन और काया की प्रसन्नता को स्वास्थ्य माना गया है। प्रसन्नता का अर्थ यहां स्वच्छता, निर्मलता और हल्कापन से है। किसी ने "स्वास्थ्य ही जीवन है" मन और स्वास्थ्य एवं जीवन को एक दूसरे का पर्यायवाची बताया। वास्तव में एक स्वस्थ व्यक्ति में जीवनी शक्ति हिलोरें लेती रहती है और वह उत्साह और उमंग से भरा हर काम में लहराता चलता है।

सर्वांगीण स्वास्थ्य शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक स्वास्थ्य से सम्बन्धित है।

किसी-किसी ऋषि ने शरीर में ठहरा हुआ विजातीय द्रव्य, विजातीय विचार और विजातीय भाव को बाहर निकलनें की कोशिश करना अस्वस्थता या रोग माना है। रोग शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक हुआ करता है। हमारा स्वास्थ्य त्रिपक्षीय होता है–शारीरिक मानसिक और आध्यात्मिक। तंत्र में सर्वांगीण स्वास्थ्य उक्त तीनों पक्षों के स्वस्थ रहने से है। शारीरिक, मानसिक या आध्यात्मिक दृष्टि से बीमार व्यक्ति सम्पूर्ण रूप से बीमार होता है और उसकी चिकित्सा मात्र शारीरिक या मानसिक या आध्यात्मिक स्तर पर नहीं की जा सकती। मन का गिरना रोग और उसे ऊपर उठाना सर्वांगीण चिकित्सा है। मन को ऊपर उठाने के लिए तंत्र में जीवनी शक्ति के उद्दीपन, नियंत्रण और विशिष्ट दिशा में उसका प्रवाहीकरण एक अनूठा और चमत्कारिक कर्मकाण्ड है।

हमारा शरीर कुछ विशेष रूप से संवेदनशील है। ज्ञान इन्द्रियों और कर्म इन्द्रियों की सम्वेदनशीलता को हम सबने अनुभव किया है। आंख, कान, नाक, जीभ और त्वचा ये ज्ञान इन्द्रियां हैं जिनके चारों ओर की मांसपेशियां ऊर्जा सृजन, रोग निवारण मस्तिष्क संचालन तथा आध्यात्मिक अनुशीलन के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। कान के चारों ओर की मांसपेशियों का संकोचन-प्रसारण, मालिश और मंथन कान की बीमारियों को तो दूर करता ही है, साथ-ही-साथ सिर दर्द, कान दर्द, बदन दर्द में भी अचूक दवा का काम करती हैं। उसी प्रकार जीभ के इर्द-गिर्द की मांसपेशियों का संकोचन-प्रसारण इन्जाइम बनाने वाली ग्रन्थियों को

संतुलित कर पेट की बीमारियों को दूर तो करता ही है, भोजन के स्वाद को भी बढ़ा देता है। नासिका और आंख की मांसपेशियां अधिकांश आपस में मिली होती हैं और उनका संकोचन-प्रसारण, मालिश और मंथन से आंख और नाक की बीमारियां तो दूर होती ही हैं, मस्तिष्क भी अधिक सक्रिय होता है। मन के भावों को बदलने के लिए मुखमुद्रा जिसमें करीब-करीब पांचों ज्ञानेन्द्रियों की मांसपेशियों का होता है, ठीक उसी तेजी से काम करता है, जिस तेजी और तत्परता से भावों के अनुसार मुख-मुद्रा बदल जाती है। मन को उठाने में मुख मुद्राओं का प्रमुख स्थान होता है। इसलिए व्यक्ति की मानसिक ऊर्जा और जीवनी शक्ति के सृजन में उनकी प्रमुख भूमिका होती है। ठीक उसी प्रकार गुदा, जननेन्द्रिय, हाथ पांव और नाभी के इर्द-गिर्द की मांसपेशियों का संकोचन-प्रसारण, मर्दन और मंथन व्यक्ति को जीवन शक्ति को बढ़ाने में बहुत बड़ा साथ होता है।

मन का उठना स्वास्थ्य है।

तंत्र के अनुसार हमारा सारा शरीर ही पूर्णरूप से सम्वेदनशील एक तांत्रिका हैं। शरीर का हर अंग ही नहीं, अणु-अणु अति सम्वेदनशील है, जरूरत है सिर्फ उसकी सम्वेदनशीलता को उदीप्त करने, उससे पूर्ण परिचित होने और उसको अधिक विकसित करने की। हमारी सम्वेदनशीलता ही शक्ति है, ऊर्जा है, जीवन है और प्राण है। किसी काम में जौहर दिखाने के लिए जाते हुए व्यक्ति का अंग-अंग फड़कता रहता है। अणु-अणु जीवन्त हो उठता है और रोम-रोम उल्लासित और उत्फुलित होता रहता है। इससे बड़ी अभिव्यक्ति स्वास्थ्य के लिए हो ही नहीं सकती। शरीर के अणु-अणु का मंथन-मर्दन और संकोचन-प्रसारण चाहे वह प्रतिदिन 20 मिनट का ही क्यों न हो सम्पूर्ण स्वास्थ्य के लिए आवश्यक हो जाता है। आदमकद आइने के समक्ष अपने पूर्ण शरीर को आपादमस्तक प्रतिदिन देखना, अपने आकर्षक चित्र को कमरे में लगाना, अपने आनन्द और उमंग की परिस्थिति और स्थितियों के चित्रों को एलबम में कैद कर रखना स्वयं स्वस्थ रहने के लिए आवश्यक है। हम जब अपने एलबम को मित्रों, परिचितों सम्बन्धियों को कुछ क्षण के लिए दिखाते हैं तब हम मानसिक दृष्टि से वही हो जाते हैं। हमारे सूक्ष्म शरीर को कुछ क्षण अपने बीते दिन में गुजारना हमारे स्थूल शरीर में शक्ति सम्पात करा देता है। हमारे स्वास्थ्य का स्रोत भूत, वर्तमान और भविष्य तीनों है। इसे हमें नहीं भूलना चाहिए।

शारीरिक, मानसिक सम्वेदनशीलता ही स्वास्थ्य है।

स्वास्थ्य हमारा स्वभाव है। हमारा सम्पूर्ण व्यक्तित्व है। हमारा स्वास्थ्य हमारे शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिकता की अभिव्यक्ति है। सम्पूर्ण व्यक्तित्व के मात्र शरीर या मन को केवल रोगी मानना या दोनों को बीमार कहना अपने को

हास्यास्पद बनाना है। तंत्र आध्यात्मिक पक्ष को मनुष्य के वीमार होने या निरोग रहने के लिए एक मात्र जिम्मेदार मानता है। आध्यात्मिकता का सम्बन्ध हमारी चिन्तन प्रक्रिया से है, सोचने के ढंग से है, न कि मन्दिर, मस्जिद और गिरिजा घर में आने-जाने या वहां कुछ कर्मकाण्ड करने से है। हम जो सोचते-विचारते हैं अगर उसमें 50% से अधिक सकारात्मक, आशावादी और गत्यात्मक (डायानोमिक) चिन्तन है तो अवश्य ही हम आध्यात्मिक दृष्टि से प्रगति कर रहे हैं और उसी मात्रा में बीमारी, बुढ़ापा और मृत्यु को जीतते जा रहे हैं तथा हममें ठीक उसी मात्रा में स्वास्थ्य, आकर्षण और खुशी भरती जा रही है। 20वीं सदी के महान तांत्रिक श्री पी. आर. सरकार ने अपने अणुजीवत सिद्धान्त (थ्यिुरी ऑफ माइक्रोभाइटा) में बताया है कि पूरा ब्रह्माण्ड अणु जीवत् से भरा पड़ा है। वे ही हमारे जीवन दाता, जीवनी वाहक, सभी प्रकार के विघ्न बाधा को दूर करने वाले हैं। ये सूक्ष्म, अति सूक्ष्म और सूक्ष्मातिसूक्ष्म तीन प्रकार के होते हैं। सूक्ष्म अणुजीवत् पंचभूत (हवा, मिट्टी, पानी, आदि) अति सूक्ष्म पंचतंत्र मात्र (स्पर्श, गंध शब्द आदि) और सूक्ष्मातिसूक्ष्म, मात्र विचारों के माध्यम से फैलते और भ्रमण करते हैं। हमारा सकारात्मक चिन्तन और आशावादिता मित्रवत् अणुजीवत् को अपनी ओर आकृष्ट कर, हमें स्वस्थ, सफल और आनन्दित करता है और नकारात्मक चिन्तन, शत्रुवत अणुजीवत् को आकृष्ट कर हमें रोगी और असफल बनाता है।

जीवन शैली ही हमारा स्वास्थ्य है।

चिन्तन हमारा स्वभाव है या जैसा हम सोचते विचारते हैं वैसा हमारा स्वभाव होता है। चिन्तन हमारी प्रशिक्षित मानसिक प्रक्रिया है और इसका शिक्षण-प्रशिक्षण हम जाने, अनजाने स्वयं संसूचन (आटो सजेशन) प्रतिष्ठा संसूचन (प्रिस्टिज सजेशन) और समूह संसूचन (मास सजेशन) तथा अपने पूरे परिवेश से लेते रहते हैं। इसे ही तंत्र ने क्रमशः स्वाध्याय, सानिध्य और सत्संग कहा है। हमारे परिवेश में माता-पिता आदि परिवार के लोग, सगे सम्बन्धी, पड़ोसी, मित्र, शिक्षक आदि आते हैं। हमारी जीवन शैली का निर्माण इन्हीं सम्बन्धों पर निर्भर करता है। जैसी हमारी जीवन शैली होती है वैसा ही हमारा चिन्तन होता है और वैसे ही हमारे चाल-चलन, बोल-चाल और जीवन के रंग-ढंग बन जाते हैं। हम अपनी जीवन शैली से ही एक-दूसरे से भिन्न दीखते हैं और यह जीवन शैली ही मृत्यु प्रयन्त हमारी विशेष पहचान बनी रहती है। जीवन शैली के चलते ही हम वर्षों बाद किसी मित्र से मिलने पर उसे पहचान जाते हैं, चाहे उसका शारीरिक परिवर्तन जितना भी हो गया हो। यही जीवन शैली हमारे सकारात्मक और नकारात्मक चिन्तन का दिशा निर्देश करती है। यही हमें सम्पूर्ण रूप से रोगी या निरोग बनाने के लिए जिम्मेदार है। सर्वांगीण स्वास्थ्य के लिए इस जीवन शैली का अध्ययन और उसमें आवश्यक परिवर्तन लाना तंत्रोपैथी का उपचार है।

शारीरिक गतिहीनता ही स्वास्थ्य है।

हमारा परिवेश चाहे वह पारिवारिक हो या सामाजिक, राजनीतिक हो या व्यावसायिक, इस बीसवीं सदी में शारीरिक-मानसिक दृष्टि से थक़ाने, उलझाने तथा मर-मर कर जीने तथा आध्यात्मिक दृष्टि से पूर्ण दिवालिया बनाने का उपक्रम कर दिया है। अत्यधिक मुद्रास्फीति और प्रतियोगिता के चलते आज का जन-जीवन निम्नतम आवश्यकताओं की पूर्ति और जीवन-यापन के लिए सम्मानजनक रोजगार की तलाशपूर्ण रूप से भाग-दौड़ बन कर रह गया है। ऐसी स्थिति में हमारे शरीर की मांसपेशियों का तनावग्रस्त होना स्वाभाविक हो गया है। गति हीनता की स्थिति में उन्हें लाकर ही स्वस्थ जीवन जीया जा सकता है। तंत्रोपैथी में इसके लिए विभिन्न देव और पशुमुद्राओं, नृत्यों और शैयाओं की खोज की गई है।

मानसिक चिन्तनहीनता ही स्वास्थ्य है।

हमारी विचार रूपी पतंग कभी भूतकाल के खट्टे-मीठे अनुभवों, कभी वर्तमान की चिन्ताओं और कभी भविष्य की योजनाओं की डोर पकड़ कर खुले मानसिक आकाश में उड़ती रहती है। प्रकृति ने स्वाभाविक रूप से हमें विषय परिर्वतन की कला सिखा दी है। इसी के चलते अनजाने में हम अपने चिन्तन के विषय को समय-समय पर परिवर्तन कर अपनी मानसिक स्थिति को सामान्य बनाए रखते हैं। अत्यधिक दुखद और सुखद स्थिति में या आलसी, काहिल, बुजदिल या डरपोक होने की स्थिति में प्रकृति द्वारा दी गई इस कला को हम भूल जाते हैं। ऐसी स्थिति में विचार रूपी पतंग अनियंत्रित हो एक ही दिशा में उड़ने लगती है और हमारा सम्पूर्ण व्यक्तित्व ही अस्त-व्यस्त हो जाता है। हम शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक दृष्टि से रोगी बनने लगते हैं। इसी स्थिति में अनिद्रा, दुःचिन्ता और अनावश्यक भय का भूत हम पर सवार हो जाता है और काल्पनिक बीमारी और अन्य तरह के प्रेत हमें सताने लगते हैं। इसी स्थिति में सेडियाटिव, नींद की गोली या नशीली दवाओं के पीछे हम भागते रहते हैं या असामान्य होकर किसी मनोचिकित्सक का दरवाजा खट-खटरते हैं या पागल बन कर किसी पागल खाने को आबाद करते हैं। यह स्थिति हर किसी के जीवन में थोड़ा-बहुत, एक-आध बार अवश्य आती है। चिन्तन हीनता की कला को सीखना इस स्थिति से बचने का एक मात्र उपाय है। इसके लिए तंत्रोपैथी में विभिन्न उहर प्राणायाम और धारणात्मक क्रियाओं की खोज और अनुसंधान किया गया है।

एकाग्रता ही स्वास्थ्य है।

किसी काम को करने के लिए दत्चित्त होकर लग जाना, योजनाओं पर गौर कर उनको व्यावहारिक रूप देना और काम के अन्तिम अंजाम देने तक उसमें

लगे रहना ही हमारी सफलता और इज्जत है। लेकिन जब हमारा कोई काम करने का मूड ही नहीं बनता, काम करने में मन ही नहीं लगता या विषय से सम्बन्धित प्रतिद्वन्द्वी विचार काम को शुरू करने में, उसे आगे बढ़ाने या खत्म करने में रोड़े अड़ाते रहते हैं तब हम झुंझला उठते हैं। मन खिन्न हो जाता है और हम अशान्त हो जाते हैं। हमारा मन किसी विषय वस्तु या काम पर एकाग्र नहीं हो पाता। एकाग्रता के अभाव में हम अनजानी वस्तु या विषय को जानने का प्रयत्न नहीं करते और जानी हुई वस्तु से अनजान बन जाते हैं। यही स्थिति हमारी अस्वस्थता, असफलता और दुःचिन्ता की होती है। इसी स्थिति में हमारे अन्दर से उद्यमशीलता खरहे की सींग की तरह कहीं गुम हो जाती है। और हम हाथ पर हाथ धरे केवल पछताते रहते हैं। मूड का बनना बिगड़ना एक मानसिक प्रक्रिया है और मन की एकाग्रता का नष्ट होना ही एक मात्र इसका कारण है। एकाग्रता के प्रशिक्षण का तंत्रोपैथी में सरल और सुगम और सबके लिए सुलभ तरीका खोज निकाला गया है। मुद्राएं, मंत्र और मानसिक यंत्रों के माध्यम से इच्छित वस्तु, विषय और काम पर एकाग्र किया जा सकता है और सर्वांगीण स्वास्थ्य और सफलता के अन्तिम सोपान तक पहुंचाया जा सकता है। एकाग्रता के महत्त्व को देखते हुए इसी पुस्तक में एकग्रता और स्वास्थ्य शीर्षक में विस्तार से हम वर्णन करेंगे।

आध्यात्मिक प्रवृत्ति स्वास्थ्य है।

हमारी अधिकतर व्यक्तिग इच्छाएं सुखात्मक सिद्धान्त पर आधारित होती हैं। भोजन, मैथुन और भय आदि क्रियाओं के इर्द-गिर्द ही हमारी इच्छाएं प्रायः चक्कर लगाती रहती हैं। यही है सुखात्म सिद्धान्त। इन्हीं इच्छाओं की पूरी होने के लिए प्रायः हम जोर मारते रहते हैं। ये ठीक उसी प्रकार तन-मन को झकझोरती रहती हैं जिस प्रकार 'जानवर' इनकी पूर्ति के लिए समर्पित हो कोई-न-कोई रास्ता ढूंढ निकलने के लिए कोशिश करता रहता है। इन इच्छाओं की पूर्ति के लिए 'जानवर' अपने समाज, सम्बन्धी और स्वजन की परवाह नहीं करता। उसे रात-दिन, घर-बाहर और गली-कूचे की भी चिन्ता नहीं होती। मनुष्य जीवन में पशुजीवन से दूरी वहीं से दीखने लगती है, जहां से हम समाज, सम्बन्धी और स्वजनों से प्रेम, दया करुणा, सहयोग और इज्जत दे कर अभियोजन करना शुरू करने लगते हैं। अभियोजन की सीमा जितनी अधिक बढ़ती जाती है हमारे जीवन में उसी मात्रा और गति से आध्यात्मिकता आने लगती है। जब हमारी व्यक्तिकता सामाजिक अभियोजन के साथ पूर्णरूप से बढ़ने लगती है या व्यक्तिगत सामाजिक अभियोजना के साथ पूर्णरूप से बढ़ने लगती है या व्यक्तिकता सामाजिक अभियोजन को आत्मसात् कर लेती है तब जैसे धरती पर ही स्वर्ग उतर आता है। व्यक्ति परमपुरुष का प्रतिमूर्ति बन जाता है। हममें सम्पूर्ण स्वास्थ्य प्रतिबिम्बित होने लगता है और हम स्वस्थ, आकर्षक, सफल और अह्लादित व्यक्तित्व का उत्तराधिकारी बन जाते हैं। इसलिए आध्यात्मिक प्रवृत्ति ही हमारा स्वास्थ्य है।

प्राकृतिक शक्तियों का शारीरिक प्रतिबिम्ब ही स्वास्थ्य है।

हम विश्वब्रह्माण्ड के ही एक अंश हैं। परम प्रकृति के ही हम छोटी, पर नन्ही सी प्रतिमूर्ति हैं। इसी कारण हम जंगल, पहाड़ सुरम्य नदी-नाले और झरने, आकाश के चाँद और तारे, समुद्र की गर्जना और फुलवारियों का निखार हमें अपनी ओर आसानी से आकृष्ट कर लेता है। चाहे घंटों इनके बीच गुजारना पड़े, हम ऊबते नहीं। लेकिन भौतिक सुखों, सुविधाओं और आनन्दों को एक सीमा तक उपयोग करने के बाद हम उससे ऊब जाते हैं। उससे पीछा छुड़ाने के लिए तरह-तरह का उपक्रम और बहाने-बाजी करने लगते हैं और नूतनता की खोज में हमारी भटकन शुरू हो जाती है। प्रकृति का छोटा भाग होने के नाते हममें वह सब कुछ है जो प्रकृति में है–विद्युत शक्ति, आकर्षण-विकर्षण शक्ति, क्षति-पूर्तित्यात्मक शक्ति स्वतः रोग निवारण शक्ति इन शक्तियों से परिपूर्ण व्यक्ति ही स्वस्थ है। हमारे स्वास्थ्य का सबसे बड़ा दुश्मन प्राकृतिक असंतुलन और वायुमण्डलीय प्रदूषण ही नहीं, बल्कि सामाजिक, आर्थिक, संस्कृतिक प्रदुषण भी है।

सक्रियता ही स्वास्थ्य है।

हमारी शारीरिक-मानसिक सक्रियता ही स्वास्थ्य और निष्क्रियता रोग और बीमारी है। एक निष्क्रिय व्यक्ति रोगी होता है। बेकारी सबसे बड़ी बीमारी है। जिस देश में बेकारी है, बेरोजगारी है, वह सम्पूर्ण राष्ट्र बीमार है। हमारा निष्क्रिय अंग रोगग्रस्त और कमजोर होता है। निष्क्रिय मन ही शैतान का घर और बीमारी का भण्डार होता है। वह अंग जो सक्रिय रहता है वह मजबूत और निरोग रहता है। सक्रिय, मस्तिष्क उमंग और उल्लास से छलछलाता रहता है। उत्साह और आनन्द उसमें लबालब भरा रहता है। उसकी इच्छा शक्ति समुद्र की तरह लहराती रहती है और किसी तरह की छोटी-मोटी बीमारी, अगर लग भी गई, तो इस लहर में पता नहीं किस गहरी गति से विलीन हो जाती है। सक्रिय बनिए और स्वस्थ रहिए यह तंत्र की सीख है। सक्रियता कहीं से 'आती नहीं उसकी आदत डाली जाती है। पूर्ण समर्पित भाव से कर्म, ज्ञान और उद्‌बोधन विधि का अभ्यास करना होता है। तंत्रोपैथी सक्रियता की कुंजी, व्यक्ति के हाथों में पकड़ा देती है और बदले में उससे शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक स्वास्थ्य की मुस्कुराहट और खिलखिलाहट को बटोरती है। सक्रियता ही रचनात्मक क्रियाशीलता है। स्वस्थ शरीर, सुखी परिवार और प्रगतिशील समाज की परिकल्पना इसके बिना की नहीं जा सकती। तंत्र कहता है–पुरुष और नारी का सामर्थ्य कभी खाली नहीं हो सकता। वह असीम है। उसकी योग्यता असीमित है और उसका शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक स्वास्थ्य क्रमशः बढ़ता ही जाता है अगर वह सक्रिय बना रहे।

स्वास्थ्य सम्पूर्ण व्यक्तित्व की संगीतपूर्ण लयबद्धता है।

एक मुर्तिकार एक पत्थर को बड़ी तनमयता से तोड़े जा रहा था और एक व्यक्ति खड़ा-खड़ा बड़े गौर से उसे देखे जा रहा था। करीव दो घंटे पत्थर के साथ मुर्तिकार के छेनी और हथौड़े की लड़ाई देखते रहने के बाद उस व्यक्ति ने मुर्तिकार से पूछा–भाई आप क्या कर रहे हैं। मैं तो मूर्ति बनाना देखने आया था और घंटों से खड़ा-खड़ा देख रहा हूं कि आप केवल पत्थर तोड़े जा रहे हैं। मूर्ति कहीं वनती नजर नहीं आ रही है। मूर्तिकार उसी तन्मयता से अपनी छेनी और हथौड़े को चलाते हुए वोला–भाई मेरे! मूर्ति तो पत्थर के भीतर छिपी पड़ी है। उसे वनाने का सवाल ही नहीं उठता। आवश्यकता है सिर्फ उसके ऊपर व्यर्थ के चिपके पत्थरों को हटा देने की। जैसे ही वे अनावश्यक चिपके पत्थर हट जाएंगे, वैसे ही मूर्ति अपने आप प्रकट हो जाएगी। मूर्ति केवल अविष्कृत है, उसे अनावृत किया जा रहा है। इसे उधाड़ा जाता है। मूर्ति बनाई नहीं जाती। उसी प्रकार मनुष्य के भीतर सम्पूर्ण स्वास्थ्य, सफलता, आकर्षण और अह्लाद छिपा पड़ा है। उसे केवल अविष्कृत अनावृति और उघाड़ने की जरूरत है। तंत्रोपैथी स्वास्थ्य की इस दिशा में ही अपना योगदान करती है। और व्यक्तित्व को संगीतपूर्ण और लयवद्ध बना देती है। वस्तुतः व्यक्ति का स्वास्थ्य सम्पूर्ण व्यक्तित्व की संगीत पूर्ण लयबद्धता है।

बीमारियों का अभाव ही स्वास्थ्य है।

वास्तव में दुनिया के विख्यात चिकित्सक और चिकित्सा वैज्ञानिक भी पूर्ण स्वास्थ्य की परिभाषा बताने से कतराते हैं। आज का आधुनिक मेडिकल साइन्स अत्याधुनिक बीमारियों के सम्बन्ध में खोजबीन करता और रोग-रोगी और उपचार के सम्बन्ध में बतलाता है। उसका विषय हमारा सम्पूर्ण स्वास्थ्य नहीं, इसलिए वह वास्तविक स्वास्थ्य को परिभाषित भी नहीं कर पाता। अगर स्वास्थ्य के सम्बन्ध में वे कुछ वताना भी चाहेंगे, तो यही कहेंगे कि जब मनुष्य को कोई बीमारी नहीं होती तो, जो होता है वही स्वास्थ्य है। बीमारी बाहर से आती है। इसलिए उसकी परिभाषा बाहर से की जाती है। स्वास्थ्य व्यक्ति के भीतर से आता है। वह शिव की तरह स्वयं भू है और प्रकृति की तरह अदृष्य शक्ति। इसलिए उसकी कोई परिभाषा नहीं हो सकती। इसीलिए आधुनिक चिकित्सक की दृष्टि में–बीमारियों का अभाव ही स्वास्थ्य है। भारतीय तंत्र और उस पर आधारित तंत्रोपैथी ही स्वास्थ्य को परिभाषित करने और उसे सर्वांगीण रूप से संवारने और सजाने की दिशा में प्रयत्नशील है।

सफलता, आकर्षण और आनन्द का त्रिकोण ही स्वास्थ्य है

"उमंग और उल्लास से उछलता, शक्ति से और रचनात्मक क्रियाशीलता से लबालब भरा व्यक्तित्व ही स्वास्थ्य है, सफलता है, आकषर्ण है और अह्लाद है।" तंत्रोपैथी विश्व के प्रत्येक नर-नारी, बाल-वृद्ध तथा नवयुवक और नवयुवती में ऐसा सम्पूर्ण स्वास्थ्य लाने और देखने के लिए प्रयन्नशील है। सफलता, आकर्षण और आनन्द का संतुलित त्रिकोण ही प्रभा की स्थिति है, सर्वांगीण स्वास्थ्य की स्थिति है। ऋद्धि-सिद्धि और समृद्धि ही सम्पूर्ण स्वास्थ का त्रिकोण है 'प्रभा'- की स्थिति ही समग्र स्वास्थ्य है। सफलता, आकर्षण और आनन्द जहां है वह स्वास्थ्य है। हमने इसीलिए स्वास्थ्य और सफलता, स्वास्थ्य और आकर्षण तथा स्वास्थ्य और आनन्द की चर्चा अलग-अलग करना उचित समझा है। ऋद्धि-सिद्धि और समृद्धि की भी अलग से हम इसी पुस्तक में चर्चा करेंगे।

शरीरधारी चाहे वह पशु-पक्षी हो या मनुष्य उसमें कुछ अधिक विशिष्ट गुण होता है, प्रवृत्तियां होती हैं। जानवर में ये प्रवृत्तियां शारीरिक होती हैं क्योंकि उनमें वृहद मस्तिष्क विकसित नहीं होता है। इसलिए प्रकृति उसे स्वयं नियंत्रित करती है। पानी और आग में भी बहाने और जलाने का गुण-धर्म होता है। मनुष्य में ये गुण धर्म या प्रवृत्तियां मनो-शारीरिक होती हैं क्योंकि उसमें वृहद पूर्ण विकसित होता है इसलिए उन प्रवृत्तियों को प्रकृति नहीं विवेक खुद नियंत्रण करता है। ब्रह्माण्ड में हर चीज गतिशील है। और जड़ सगंम, पशु-पक्षी, लता, गुल्म, तथा नर-नारी सब इसकी गत्यात्मक अभिव्यक्ति हो रही है। कोई वस्तु स्थिर नहीं यह गति अबाध रूप से शारीरिक और मानसिक दोनों स्तरों पर हो रही है। मानसिक जगत में यह गति वृत्तियों भावप्रवीणता (सेन्टीमेन्ट) अन्धविश्वास और मान्यताओं के चलते होती है। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति की मानसिक गति कभी सामान्य, कभी असामान्य और कभी निष्क्रिय होती रहती है। और यह स्वाभाविक भी है।

मस्तिष्क की निष्क्रियता से बीमारी का आमंत्रण मिलता है।

मानसिक गति जब अगति की ओर हो, जब मन भौतिक जगत से अपना तादात्म्य सम्बन्ध स्थापित कर लेता है और बार-बार अभ्यास करते रहने से वह अस्थित (कंडीशनिंग) होकर भौतिक वस्तु बन कर रह जाता है। वह इस स्थिति में अपने स्तीत्व को ही खो देता है। कंजूस, मक्खीचूस आदि मन की इसी स्थिति का नाम है। यह स्थिति अगर बहुत दिनों तक रही हो तो मस्तिष्क निष्क्रिय हो जाता है और यही स्थिति व्यक्ति की बीमारी और रोग है। यह कितनी खतरनाक स्थिति है। इसी स्थिति में हमारी रोग निवारण क्षमता, प्रतिरोधक शक्ति और आत्म निरोध ऊर्जा (आत्मविश्वास) मारी जाती है और इसी स्थिति में हम संक्रमक और असाध्य रोगों के शिकार होते हैं। मानसिक गति को तीव्र करना, जीवनी शक्ति को उदीप्त करना है। और जीवनी शक्ति के उदीप्त होने से स्वमेव

हममें रोगनिवारण क्षमता, प्रतिशोधक शक्ति और आत्मनिरोध ऊर्जा का संचार तीव्र गति से होने लगता है और विना दवा, दुआ, और दया से हम पूर्ण स्वस्थ्य हो जाते हैं। तंत्रोपैथी में मन की गति को तीव्र करने, मस्तिष्क को सक्रिय रखने और जीवनी शक्ति को बढ़ाने के लिए उद्दीपन, नियंत्रण और प्रवाहीकरण क्रियाएं बताई गई हैं जो मुद्रा मंत्र और यंत्र के माध्यम से करायी जाती हैं। स्वास्थ्य, सफलता और अह्लाद के प्रत्याशी को 15 दिन 3 माह या एक साल का प्रशिक्षण तांत्रिकी संयम और उपचार संस्थान में ले लेना चाहिए।

मानव जीवन के तीन स्तर होते हैं–शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक इन तीनों स्तरों पर जो हमारी उपलब्धि होती है उसे ऋद्धि, सिद्धि और समृद्धि कहा गया है। भौतिक शारीरिक उपलब्धि ऋद्धि, शारीरिक, मानसिक उपलब्धि सिद्धि और मानसिक आध्यात्मिक उपलब्धि को समृद्धि कहा गया है। शरीर के इन तीनों स्तरों और उपलब्धियों में प्रभा का होना ही पूर्ण संतुलन या प्रभा त्रिकोण है। मनुष्य का शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य पूर्ण रूप से आध्यात्मिक स्वास्थ्य पर निर्भर होता है जब व्यक्ति भौतिक शारीरिक स्तर पर अत्यधिक सफलता पा लेता है तब उसके शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक स्तर पर पूर्ण संतुलन और अभियोजन की आवश्यकता होती है। जिससे उसका सर्वांगीण स्वास्थ्य और सामाजिक उन्नति हो सके। इसे ही समृद्धि या पुरुषार्थ कहा गया है।

ऋद्धि-सिद्धी और समृद्धि ही हमारा सर्वांगीण स्वास्थ्य है।

व्यक्ति शारीरिक, मानसिक और बौधिक दृष्टि से समुन्नत तो हो जाता है लेकिन भौतिक और आध्यात्मिक दृष्टि से पिछड़ा रहता है। ऐसी स्थिति में वह प्रमादी द्ररिद्र, भिखारी, अपराधी का जीवन बिताने के लिए मजबूर हो जाता है। यही स्थिति हमारे बीमार होने, तरह-तरह की बीमारियों से घिर जाने, और हतोत्साहित हो बिस्तर पकड़ लेने की होती है। ऋद्धि में 'प्रभा' होने या "प्रभात्रीकोण" त्रिभुज का अर्थ है, मानसिक और बौद्धिक दृष्टि से समुन्नत होने के बाद भौतिक और आध्यात्मिक प्रगति के साथ संतुलन स्थापित करते रहना। ऐसे व्यक्ति को ही तंत्र में अग्रबुद्धि रखने वाला व्यक्ति कहा गया है। इसी प्रकार मनो-आध्यात्मिक स्तर पर व्यक्ति ने अगर उन्नति कर ली है तो उसे आध्यात्मिक विकास के साथ-साथ शरीरो-भौतिक, शरीरो-मानसिक और सामाजिक स्तर पर उन्नत होने और संतुलन बनाए रखना सिद्धी है। शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक स्तर पर जब संतुलित प्रगति व्यक्ति करता है, तब उसे भौतिक स्तर पर भी उन्नति के साथ अभियोजन रखना समृद्धि है। इस प्रकार ऋद्धि सिद्धि और समृद्धि ही हमारा सर्वांगीण स्वास्थ्य है।

सर्वांगीण स्वास्थ्य के लिए पुरानी तांत्रिक विधियां वैज्ञानिक दृष्टि से पूर्ण समर्थ और उपयोगी–

स्वास्थ्य की पुरानी तांत्रिक विधियां और उस पर आधुनिक वैज्ञानिक खोजों, ने उसकी उपादेयता और उपयोगिता को स्वीकार किया है। योगनिद्रा और तन्द्रा की अवस्था में, असाध्य रोगों का सफलतापूर्ण इलाज करने की विधि तांत्रिकों, ओझाओं और गुणियों के पास है और वे अदृष्य जगत, परिस्थिति और वस्तु का संदेश भी लोगों तक पहुंचा सकते हैं। इसका वैज्ञानिक प्रमाण उपलब्द्ध हो चुका है। हमारे मस्तिष्क में कुछ प्राकृतिक रसायनें होती हैं उन रसायनों के असंतुलन से तरह-तरह की बीमारियों का शिकार हम हुआ करते हैं। मस्तिष्क के इन प्राकृतिक रसायनों के स्तर में परिवर्तन लाकर या उसे बदल कर रोगों का इलाज करना होता है। ओझा, गुनी और तांत्रिक विना दवा के अपने तरीके से इसमें परिवर्तन लाते हैं और रोग दूर कर देते हैं। पाश्चात्य देशों में आजकल विभिन्न आवेग-सम्वेगों के कारण मस्तिष्क और पूरे शरीर में मौजूद विभिन्न रसायनों के स्तर में परिवर्तन का अध्ययन अत्याधुनिक प्रयोगशालाओं में भी होने लगा है।

तन्द्रा की स्थिति डरने की स्थिति नहीं। तन्द्रा में ओझाओं गुणियों, और तांत्रिकों के वाद्ययंत्र, गायन और, पवित्र परिवेश वहुत मदद पहुंचाते हैं। ढोल, मृदंग, मजीरा आदि के साथ विभिन्न देवी-दुर्गा, लहुरादेव, आनुषदेव आदि के गीत तन्द्रा लाने में सरलता के साथ उपयोग किये जाते हैं। प्रति सेकण्ड चार थापों का लय तन्द्रा लाने में अधिक प्रभावशाली होता है। वाद्य यन्त्रों के साथ सामूहिक गानों की ध्वनि तरंगें मन और शरीर को प्रभावित करने लगती हैं। इससे बदन ढीला, एवं आंखों की पुतलियां स्थिर होने लगती हैं और मुख खुल जाता है। ऐसा लगता है जैसे छाती में हवा भर रहा है। वाद्य यंत्रों की थापों और समृद्धि स्वर लहरी बढ़ने के साथ-साथ छाती में कोई हवा भरने का वेग भी बढ़ने लगता है। छाती सहलाने की कोशिश में बदन हिलने लगता है और कुछ ही क्षणों में व्यक्ति तन्द्रा में चला जाता है। वास्तव में पंचतत्त्व (हवा, मिट्टी, पानी धूप, आकाश) से सारी सृष्टि वनी है और हमारा शरीर भी। विश्वब्रह्माण्ड का एक अंश होने के नाते जो ब्रह्माण्ड में है, वही हमारे शरीर में भी है। हमारी इच्छाएं, विचार, और भाव अंर्तरावायु है और इन्हें अधिक दवाए जाने पर उस गेंद की तरह होती है जिसे जितना जोर से दवाया जाता है उतना ही जोर से उछलता है। वात व्याधि का यही कारण है। इस अन्तरवायु को मन से बाहर निकाल देने से वात व्याधि दूर हो जाती है।

इस तांत्रिक विधि से रोगों का चिकित्सा में उपयोगी होने के रहस्य को वैज्ञानिकों ने खोलना शुरू कर दिया है। वैज्ञानिकों ने पता लगाया है कि अत्यधिक भय, पीड़ा, तनाव और दवाव की स्थिति में "एन्डारफिस" नाम का रसायन हमारे

मस्तिष्क में बनता है। इसकी उत्पति अंधविश्वास, भयावह, व्यक्ति, परिस्थिति और वस्तु से भी हो सकती है। इस रसायन का तेजी से उत्पन्न होना व्यक्ति में उतनी अधिक भयवृत्ति का आना है। परीक्षण से पता चला है कि गर्भवती महिलाओं में इस रसायन की उत्पति आखिरी के तीन महीने में तेजी से बढ़ती है और प्रसव के समय अपनी चरम सीमा पर पहुंच जाती है। इसका प्रतिरोध रसायन "लिब्रियम" या "वैलियम" है, जिसे मस्तिष्क उत्पन्न करता है और इसे उत्पन्न करने का उपर्युक्त तांत्रिक विधि एक विश्वसनीय और बेमिसाल तरीका है। इससे शारीरिक और मानसिक दोनों तरह की बीमारियों की चिकित्सा होती है। तांत्रिकी संयम और उपचार संस्थान में इस विधि से उपचार के लिए पूर्ण व्यवस्था है। तंत्रोपैथी के उपचारक उपयुक्त वाद्य यंत्रों और गीतों का चयन अच्छी तरह से जानते हैं और उसका प्रयोग बड़ी सतर्कता से करते हैं। अंधविश्वास से भी वेलियम नाम का रसायन ओझा और गुणी उत्पादित करते हैं और रोगों को दूर करते हैं। मनौती मानना उसी का एक अंग है। लेकिन तंत्रोपैथी इसकी मान्यता नहीं देता। वैज्ञानिकों ने अब यह मान लिया है कि उपर्युक्त तरीके से पैदा किया गया वेलियम नाम रसायन ठीक उसी प्रकार काम करता है जिस प्रकार दवाएं और मादक द्रव्य। डॉ. मैक गिल के शब्दों में चिकित्सक या मनोचिकित्सक इस तांत्रिक विधि को महत्त्व नहीं देता, क्योंकि वह बासी हो चुकी है।

स्वास्थ्य और मन का केन्द्रीकरण

मन का केन्द्रीकरण

मन के केन्द्रीकरण से निपुणता आती है।

मन को किसी विशिष्ट वस्तु, व्यक्ति या परिस्थिति पर केन्द्रित करना उसमें निपुणता पा लेना है, उसका विशेष बन जाना है। वस्तु, विषय या परिस्थिति पर मन को केन्द्रित करना धारणा, उस पर देर तक मन को टिकाए रखना ध्यान और कुछ क्षण के लिए अपने अस्तित्व को ही ध्येय वस्तु, विषय और परिस्थिति में विलीन कर देना समाधि है। मैंने स्वयं एक विख्यात शल्य चिकित्सक को, जो हमारे "न्यू एज डायगेनिस्टक केअर, क्लिनिक एण्ड रिसर्च सेन्टर" में एक रोगी के मस्तिष्क की शल्य चिकित्सा के लिए बुलाए गए थे, चीड़फाड़ करते हुए देखा था। ऑपरेशन से पहले वे थोड़ा घबराए हुए थे, क्योंकि थोड़ी भूल-चूक से रोगी या तो मर सकता था या लकवा का शिकार हो सकता था। लेकिन जैसे-जैसे ऑपरेशन टेबुल पर रोगी को बेहोश किया जा रहा था वैसे-वैसे रोगी और रोग पर डॉक्टर का मन केन्द्रीभूत होता जा रहा था। उनके चेहरे पर आश्चर्यजनक शान्ति छाती जा रही थी। रोगी उधर बेहोश हुआ और इधर डॉक्टर के चेहरे पर अविश्वसनीय शान्ति, आंखों में कुछ करने की ललक और हाथों में गजब की फुर्ती आ गई। और पूरे विश्वास के साथ उनके हाथ मशीन की तरह चलने लगे। करीब एक घंटे तक अपने अस्तित्त्व से बेखबर डॉक्टर के अस्त्र लिए हाथ पूर्ण तत्परता से काम करते रहे। अंत में डॉक्टर के होंठों पर स्वाभिमान की मुस्कुराहट थी और अदृश्य सत्ता के प्रति कृतज्ञता।

ध्येय पर पकड़ मजबूत होती है।

जव व्यक्ति के जीवन में ऐसी ही एकाग्रता आती है तब ध्येय वस्तु, विषय और परिस्थिति के ऊपर उसकी पकड़ मजबूत हो जाती है। उसमें उसका अस्तित्व ही विलीन हो जाता है। और बदले में उसे सर्वांगीण स्वास्थ्य, अद्वितीय सफलता और अतुलनीय आनन्द मिलता है। हमारी अस्वस्थता और बीमारी का कारण, अकारण घवराहट, पूर्वाग्रह और पक्षपात से ग्रसित होना है। हम व्यायाम तो करते हैं लेकिन उससे सम्वन्धित अंगों पर केंन्द्रिभूत नहीं हो पाते, हम काम तो करते हैं, लेकिन वे मन से और किसी परिस्थिति की ललकार का प्रतिवाद तो करते

हैं लेकिन आधेमन से और असफलता, बीमारी और बेइज्जती हाथ लगती है। इसका एक मात्र कारण है मन का केन्द्रीकरण न होना। मन का घबराहट से चलते भटकते रहना। मन के केन्द्रीकरण की आवश्यकता, व्यक्ति के जीवन के हर क्षेत्र में होती है और तभी वह महान बनता है।

मस्तिष्क का पूर्ण उपयोग मन केन्द्रीकरण से

20वीं सदी पर्यावरण, असंतुलन, पूर्वाग्रह, पक्षपात और ध्यान विकेन्द्रीकरण का युग है। आज मानव जाति के लिए उसके सर्वांगीण स्वास्थ्य और आनन्द के लिए मन के केन्द्रीकरण की आवश्यकता है, जितना कभी-कभी किसी युग में नहीं था। अपने स्वास्थ्य सफलता, आकर्षण और आनन्द के लिए विषय वस्तु या परिवेश उतना महत्वपूर्ण नहीं है जितना धारणा, ध्यान और समाधि का अभ्यास। मन केन्द्रीकरण से हम दुनियादारी में सफल नहीं होते, बल्कि हमारा आन्तरिक जीवन समृद्धशाली बनता है और जब आंतरिक जीवन समृद्धशाली होगा तो हममें आत्मविश्वास हिलोरें लेने लगेगा और हम स्वास्थ्य, सफलता और अह्लाद पाने की सम्भावनाओं से उमंगित हो उठते हैं। मन मयूर नाच उठता है। हृदय कोयल की कूक की तरह ताने भरने लगता है। अंग-प्रत्यंग भौरों की गुंजार करने लगता है और मस्तिष्क हिरण की तरह चौकड़ी भरने लगता है। हमारा मन एक अत्याधुनिक कम्प्यूटर यंत्र बन कर खुशियों से झोली भर देता है। विद्वान, योग्य और जन साधारण के पास एक ही प्रकार का मस्तिष्क होता है। इस यंत्र का हम कितना और कैसे प्रयोग करते हैं, इस पर हमारा स्वास्थ्य और सफलता निर्भर करती है। तंत्रोपैथी में "निमिभेषण वर्जन विधि" "जामवंत मुद्राएं" "थेइया नृत्य" आदि मन केन्द्रीकरण के सरल उपयोगी अभ्यास बताए गए हैं।

मन पसंद चित्रों पर ध्यान केन्द्रित होता है। इसी प्रकार ध्यान केन्द्रीकरण के अभ्यास से किसी वस्तु, विषय और परिस्थित को मन पंसद बनाया जाता है। जहां मन केन्द्रित नहीं होता, वहां बोरियत होती है। ध्यान केन्द्रीकरण का अभ्यास बोरियत बीमारी का उपचार है। मन केन्द्रीकरण से उस विषय, वस्तु और परिस्थिति में दिलचस्पी-सी आने लगती है, बोरियत का साम्राज्य नष्ट होने लगता है। इसके लिए कुछ अभ्यास नीचे दिए जा रहे हैं। आज से ही उसे करना शुरू कीजिए और अपनी प्रक्रिया हमें लिख भेजना न भूलिए। जो आप इन अभ्यासों से पाएंगे, आपके पत्र में उसकी दो शब्दों की अभिव्यक्ति ही मेरा पारितोषिक होगा। हर काम में अपने मन को लगाइए, भिड़ाइए चाहे वह छोटा हो या बड़ा और उसके रहस्य को विस्तार से जानने और उसमें निपुण होने का प्रयत्न कीजिए। मन लगे या न लगे पर लगे रहिए। उससे सम्बन्धित कष्टों और परेशानियों का चिन्तन और मंनन करना बन्द कर, उसके गुणों और उपलब्धियों की चर्चा कीजिए और सोचिए। किसी काम को करने से मना न कीजिए भले ही उसके सम्बन्ध में पूर्ण जानकारी न हो या बिलकुल नया हो। मन केन्द्रीकरण के लिए परिवेश पहले बनाइए फिर उपयुक्त मुद्रा के साथ काम सम्बन्धी योजनाओं

का मानसिक बिम्बप्रतिमा (यंत्र) मस्तिष्क में उतारिए! सफलता हमारा अधिकार है इस मंत्र का सुवह शाम सुखासन में बैठकर 10 बार जाप कीजिए, इस तरह के एक सप्ताह के अभ्यास से ही मन केन्द्रीभूत होने लगेगा।

मन केन्द्रीकरण के अभ्यास

हमारे अन्दर अतुलनीय शक्ति का भण्डार भरा पड़ा है जो मन के चंचल होने के कारण ध्यान विकेन्द्रीकरण के माध्यम से अपव्यय होता रहता है या भय, दुःचिन्ता, असुरक्षा आदि के चलते उसका उपयोग न होने से अपने आप नष्ट हो जाता है। ध्यान केन्द्रीकरण से उस शक्ति का नियंत्रण और लक्ष्य की प्राप्ति की दिशा में प्रवाहीकरण किया जाता है। "हम सफल होंगे ही" शक्ति के प्रवाहीकरण का अभियंत्रित वाक्य है। तंत्र में इसे उद्‌दीपन, नियंत्रण और प्रवाहीकरण कहा गया है। मन केन्द्रीकरण की योग्यता प्रायः सभी व्यक्तियों में समान रूप से पायी जाती है। क्योंकि हमारे सोचने-समझने और रचनात्मक काम करने के संयंत्र, हम सभी में एक तरह के और एक जैसे ही प्रकृति ने लगाये हैं। इसके व्यवहार करने के तरीकों के चलते इसमें फर्क आता है। विख्यात मनोवैज्ञानिक जेम्स ने मस्तिष्क की सक्रियता को मन के केन्द्रीकरण के लिए आसान तरीका बताया है। निष्क्रिय मस्तिष्क को सक्रिय करने के लिए उपयुक्त आसन, और विषय की आवश्यकता पर तंत्रोपैथी में जोर दिया गया है। इससे मन अपने आप खिंचकर सम्बन्धित विषय वस्तु या परिस्थिति पर लगना शुरू हो जाता है। "चक्षुचालन" मस्तिष्क को सक्रिय करने के लिए उपयुक्त क्रिया है जिसको विस्तार के साथ तंत्रोपैथी के प्रथम भाग में दिया गया है। एक काम को ही एक समय में करें और एक विषय पर एक समय में सोचने की आदत डालें। मन केन्द्रीकरण स्वयं शक्ति नहीं, मानसिक शक्ति का नियंत्रण है।

मनकेन्द्रीकरण मानसिक शक्ति नियन्त्राण है

मनोवैज्ञानिक अरनोल्ड वैनेट के शब्दों में ध्यान का केन्द्रीकरण मस्तिष्क को किसी विशेष विषय के लिए आज्ञा देना और उसे कर देने की उसकी शक्ति को सुनिश्चित करना है। अर्थात् मन केन्द्रीकरण से मस्तिष्क मन का आज्ञाकारी और भक्त वन जाता है और अन्तर्दृष्टि तीव्र होती है। मन की वर्हिर्दृष्टि से अन्तर्दृष्टि पूर्ण भिन्न है। मन की वर्हिदृष्टि ज्ञान इन्द्रियों और कर्म इन्द्रियों पर पूर्ण रूप से आश्रित होती है, जवकि मन की अर्न्दृष्टि मनुष्य की वह योग्यता है, जिससे वह दूसरे व्यक्ति की सोच, मनोभाव और काम को करने के पहले ही जान लेता है। यह सम्मोहिनी कला है। हम जितनी अच्छी तरह दूसरों की योग्यता, व्यवहार और मानसिक रुझान को जान लेते हैं, उतना ही अधिक उसकी दिलचस्पी की वस्तु, विषय और परिस्थिति को उपलब्ध कराकर उसमें आत्मविश्वास भर देते हैं और उसके मनोनुकूल आचरण कर उसे अपना वना लेते हैं। फिर स्वभावतः ऐसा

ही आचरण वह हमारे प्रति भी एक मित्र, सहयोगी और मददगार के रूप में करने लगता है। एक समाज सेवी, व्यवसायी, डॉक्टर, इन्जिनियर, वकील आदि स्वयंसेवी को सफल आकर्षक और अह्लादित व्यक्तित्व पाने के लिए उसकी अर्न्दृष्टि तीव्र होनी ही चाहिए।

मन के केन्द्रीकरण का पुरस्कार सम्वेदनशीलता

मन के केन्द्रीकरण से हमारी सम्वेदनशीलता बढ़ती है। सम्वेदनशीलता के अभाव में ही हम दूसरों से झगड़ जाते हैं, हमसे अनजाने में दूसरों की उपेक्षा हो जाती है या दूसरे के प्रति हमारा व्यवहार अशोभनीय और अपमान जनक हो जाता है। हममें संवेदनशीलता का बढ़ना, दूसरों की सम्वेदना को समझने-बूझने और उसके अनुकूल व्यवहार करने की अन्तर्दृष्टि देता है। सम्वेदनशीलता के अभाव का ही परिणाम है कि आजकल लोग उपयोगिता मूल्य (यूटीलिटी वेल्यू) को महत्त्व देने लगे हैं और अस्तित्व मूल्य उपेक्षा, एसविझस्ट्रेंस वेल्यू की बड़े-बूढ़ों की उपेक्षा और अनादर, हममें सम्वेदनशीलता के अभाव का ही परिणाम है। किसी की सम्वेदना को न समझना सम्वेदनहीनता है। अधिकतर भावना पर अगर हम अधिक जोर देते हैं और कर्तव्य भावना की उपेक्षा करते हैं, तो निश्चय ही हम सम्वेदन विहीन हैं। एक सम्वेदन विहीन व्यक्ति का केवल, स्वार्थ भावना, किसी काम को करने में, सम्वन्ध स्थापित करने में या किसी विषय को चुनने में काम करती है। दूसरों के साथ वह अभियोजित हो ही नहीं सकता। ऐसे व्यक्ति ही रोगी, दुखी और असफल रहते हैं और जीवन भर भाग्य, मौका और अवसर को दोष दिया करते हैं।

संवेदनशीलता को बढ़ाने का अभ्यास

1. एक सम्वेदन विहीन व्यक्ति अपने को प्रधानता पहले देगा, व्यक्ति या सम्बन्ध को नहीं। हम सदा सोचते रहते हैं कि मिलने वाले हमारे पसंद के हैं या नहीं। उनसे हमें क्या-क्या फायदा हो सकता है। उनकी योग्यता हमारे लिए कितनी काम की है। हम सम्वेदनशील हों, तब न यह जानने की कोशिश करें कि दूसरा अपने सम्बन्ध में क्या सोचता है? क्यों ऐसा सोचता है? और उसको हमारी कितनी आवश्यकता है। निम्न अभ्यास से अपनी संवेदनशीलता को हम बढ़ा सकते हैं। साथ में काम करनेवाले या रहनेवाले व्यक्ति के साथ कभी-कभी कुछ क्षण एकान्त में गुजारें और उसके व्यक्तिगत तथ्यों को जानने का प्रयत्न करें।

2. सवसे प्यार से मिलें, ध्यान से उसकी बातें सुनें और व्यवहार को देखें। याद रहे स्वभाव से ही मनुष्य में अपने विचारों और भावनाओं को छिपाने की प्रवृत्ति रही है। वास्तव में हमें अपनी सारी बातें, अपनों से बतलाने में कठिनाई होती है। वैसे वह बतलाकर नहीं, अपने व्यवहार से अपने भावों को व्यक्त कर देता है। मनोवैज्ञानिकों ने इसे "शान्त सिगनल" कहा है। अच्छे जज, वकील,

डॉक्टर, और समाजसेवी इस शान्त सिग्नल के पारखी होते हैं।

3. किसी के सम्बन्ध में भले ही अच्छी-बुरी-बातें हम सुन चुके हों पर पूर्वाग्रह या कोई विचार न बनाएं। उड़ती बातों और आंधी में उड़ते पत्रों की कोई पहचान नहीं होती। अपना कान टटोले बिना, कौवे के पीछे दौड़ न लगाएं।

4. जो मुस्कुराते हैं वे अधिक ईमानदार, दयालु और मजाकिया समझे जाते हैं और चश्मा पहननेवाले अधिक बुद्धिमान, ईमानदार, विश्वसनीय और अध्ययनशील माने जाते हैं। यह सब पूर्वाग्रह है। इससे दूर रहें।

5. स्वयं पूरित भविष्यवाणी–अपने अच्छे स्वास्थ्य और लक्ष्य विशेष की सफलता की भविष्यवाणी को मानसिक दृष्टि से पूर्ण होते देखें। जैसा हमारे ऊपर दूसरे विश्वास और भरोसा करते हैं, या कहा करते हैं, अपने सम्बन्ध में की गई भविष्यवाणी को उसी भरोसे और विश्वास के साथ पूरा करते हैं।

शरीर, मन और मस्तिष्क का सेतु श्वांस

मनुष्य का मन वह यंत्र है जिसके जरिए वह सभी भौतिक वस्तुओं के साथ सम्वन्ध स्थापित करता है, और उसे विभिन्न परिस्थितियों के साथ जोड़ता है और आध्यात्मिकता की उच्च्व शिखर पर भी ला खड़ा करता है। मानव जीवन एक चमत्कारिक लेकिन जटिल प्रकृति-प्रदत्त उपहार है। इसकी कीमत को हम बहुत कम समझ पाते हैं। मन को मारना अपने आप को मारना है। मन का गिरना शारीरिक, मानसिक वीमारियों का शिकार होना है। मन, शरीर और मस्तिष्क के वीच श्वांस सेतु का काम करता है। स्वांस के सथ ही शरीर और मन सक्रिय होता है। मन का श्वांस के साथ गहरा सम्बन्ध है। मन को मारने और गिराने से श्वांस की गति अधिक तेज और व्यक्तिक्रम हो जाती है। मन के केन्द्रीकरण में श्वांस प्रश्वांस का दीर्घ और लयवद्ध होना अधिक जरूरी है। श्वांस-प्रश्वांस के सही तरीके से लेने और छोड़ने, दीर्घ और लयवद्ध वनाने से, शरीर और मस्तिष्क स्वस्थ रहता है। इससे मन प्रसन्न बना रहता है। ध्यान केन्द्रीकरण के अभ्यास के लिए श्वांस का अभ्यास करना भी जरूरी होता है।

मन केन्द्रीकरण के लिए प्राणायाम जरूरी है

प्राणायाम, श्वांस को नियमित, दीर्घ और लयबद्ध करने के लिए ऋषियों ने राय दी है। प्राणायाम प्राण का व्यायाम है। प्राण और मन एक दूसरे से भिन्न होते हुए भी एक के बिना दूसरे का अस्तित्व सम्भव नहीं। प्राण अगर शक्ति है तो मन का केन्द्रीकरण उसकी चपलता और चंचलता को नियंत्रित करना और उसे लक्ष्य की ओर प्रवाहित करना है। प्राणायाम का अभ्यास मन को नियंत्रित और उसकी शक्ति को लक्ष्य की ओर प्रवाहित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। तंत्रोपैथी के प्रथम भाग में वीरासनारूढ़ गहर प्राणायाम की चर्चा विस्तार से की गई है। मन एक शेर की तरह है और उसे वस में करने के लिए धैर्य और

सावधानी की बड़ी आवश्यकता होती है। प्राणायाम से मन की शक्ति का विकास होता है, स्मृति तेज होती है और शरीर का विषैला तत्त्व दूर होता है। प्राणायाम खुले स्थान पर खाली पेट सुबह-शाम तीन मिनट से अधिक नहीं करना चाहिए। वौध धर्म के विपसना और जैन धर्म का अनुप्रेक्षा का अभ्यास भी एक तरह का प्राणायाम के नाम से जानते हैं। मनुष्य मननशील प्राणी है। उसे विकसित मन प्रकृति ने दिया है।

शरीर की बाहरी टूट-फूट की मरम्मत तथा अशान्त उद्विग्न और गिरे हुए मन की दवा नींद है। नींद की अच्छाई लम्बाई से नहीं गहराई से नापी जाती है। गहरी नींद से ही शान्त, प्रसन्न और शरीर की थकावट दूर होती है। नींद मनुष्य के लिए वह वरदान है, जो व्यक्ति को विना किसी कठिनाई के शान्त और शिथिल बनाकर उसके मानसिक तनाव को दूर कर देती है। मन के केन्द्रीकरण में नींद की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। 1974 में पापैन हीमर नाम के एक वैज्ञानिक ने पता लगाया कि शरीर में फैक्टर-5 नाम का पदार्थ व्यक्ति के शरीर में इकट्ठा होता रहता है और वही प्राणियों में नींद है। मस्तिष्क वृत्त (ब्रिन स्टेन) और मस्तिष्क के अधःभाग में दो ऐसे अलग-अलग क्षेत्र होते हैं जिसके सक्रिय होने पर हम जागते और सोते हैं। अधः, चेतक का एक केन्द्र सामान्य और दूसरी गहरी नींद लाने का काम करता है। अति जागरण, ध्यान केन्द्रीकरण के लिए हानिकारक है। गहरी नींद के लिए तंत्रोपैथी में "बाबा शैया" की खोज की गई है और सबके लिए वह उपयोगी है। कायोत्सर्ग भी गहरी नींद लाने का एक सरल और सुगम तरीका है। सचेतन निद्रा या योग निद्रा का प्रयोग नीचे दिया जाता है। जब सोने की नीयत से बिस्तर पर लेटें तब श्वांस लेते वक्त पूरे शरीर को पूरी तरह से तनाव करें और छोड़ते वक्त पूरे शरीर को पूरी तरह से शिथिल कर दें। इस क्रिया को केवल तीन वार दुहरायें। अपने आप नींद आ जाएगी। या पेट के बल लेट जायं और शरीर और शरीर का पूरा भार बिस्तर पर शरीर ढीला करते वक्त देते जायें, नींद आ जाएगी।

योगनिद्रा मन केन्द्रीकरण का आसान तरीका

योगनिद्रा—चिन्ता की एकाग्रता, इच्छा शक्ति और वेधक दृष्टि से सम्मिलित विधि, प्रयोग और उपलब्धि को तंत्र में योग निद्रा कहा गया है। योग निद्रा भौतिक और आध्यात्मिक विकास की प्रथम कड़ी और अन्तिम सोपान है। इसके अभ्यास से भौतिक और अध्यात्मिक उपलब्धियों को पाने के योग्य हम अपने आपको बना लेते हैं। जैसे-जैसे हमारा अभ्यास इस दिशा में बढ़ने लगता है वैसे-वैसे कुछ ही दिनों में हम इस लायक हो जाते हैं कि अपने व्यक्तित्व को आकर्षक बनाने के साथ-साथ दूसरों का भला करने, उनकी बीमारियों को दूर करने, बुरी आदतों को छुड़ाने और हिम्मत और उत्साह को बढ़ाकर उसे स्वस्थ, सफल आकर्षक और

अहलादित व्यक्तित्व प्रदान करने के योग्य बन जाते हैं। हममें आकर्षण, विद्युतीय गंध और विद्युतीय प्रकाश की क्षमता बढ़ जाती है। क्योंकि इस विश्वब्रह्माण्ड की सभी वस्तुओं, पशु-पक्षियों, लता-गुल्मों और व्यक्तियों में स्वाभाविक रूप से प्रकृति में आकर्षण विद्युतीय गंध और विद्युतीय प्रकाश पाया जाता है। मनुष्य ही केवल अपने अभ्यास के द्वारा इसे बढ़ा सकता है। योगनिद्रा इसके लिए सर्वोत्तम विधि है।

योगनिद्रा के अभ्यासी को, बाह्य आंतरिक सफाई तथा सुन्दर और सुरुचिपूर्ण परिवेश में सुखासन, वीरासन, वज्रासन या भोजनासन में, सिद्धी "रीढ़ की हड्डी" करके ठुढी को सीना के समानान्तर रखते हुए दोनों हाथों को ब्रह्म मुद्रा में जांघों पर रखना चाहिए। इसे खुले आकाश या कमरे में किया जा सकता है। दूर भेधक दृष्टि के अभ्यार्थी को रात्रि के प्रथम पहर या अन्तिम प्रहर में दूर आकाश के किसी एक तारे पर पूरी खुली आंखें से एक टक देखना चाहिए। शुरू-शुरू में आंखों में जलन या पानी आने के बाद इस अभ्यास को बंद कर देना चाहिए। अभ्यास के अन्त में आंखों में छींटा मार-मार कर धो लेना चाहिए। अभ्यास की अवधि धीरे-धीरे बढ़ाकर 15 मिनट करनी चाहिए। दूर भेधक दृष्टि का अभ्यास वस और रेल के सफर में भी खिड़की से सुदूर सबसे बड़े पेड़ की फुनगी पर ध्यान केन्द्रित करते-करते रहना चाहिए। नजदीक भेधक दृष्टि के अभ्यास के लिए आदम कद आइने में एक उजली चमकती बिन्दी लगाकर, जो आइने के तीन फीट की दूरी पर बैठने के वाद ठीक आंखों की भौंहों के बीच पड़े, पर अनुकूल परिवेश में करना चाहिए। उसी आसन और परिवेश में अधखुली आंखों से भौहों के बीच ध्यान को केन्द्रित करने का अभ्यास करना चाहिए। अभ्यास के साथ इच्छा शक्ति को सम्मिलित करने के लिए भावशून्यता की स्थिति में आना चाहिए और इसके लिए श्रद्धा और विश्वास के साथ अभ्यास में जुट जाना चाहिए। विभिन्न विचारों को रोकने के वजाय उसे मानसिक रूप से देखने का प्रयत्न करना चाहिए। एक महीने के अभ्यास के बाद ही आशातीत सफलता मिलेगी। अभ्यास के दिनों में हल्का और सुपाच्य आहार ही लेना और अधिक पानी पीना चाहिए। योग निद्रा के अभ्यास के पहले "शवासन" में "विपसना" का अभ्यास कर लेना चाहिए। इससे शारीरिक और मानसिक तनाव दूर हो जाता है। योगनिद्रा के अभ्यास में सफलता की जितनी अधिक तीव्र इच्छा होगी उतनी जल्दी सफलता मिलेगी।

तांत्रिक धारणा मन केन्द्रीकरण का सर्वोत्तम योग है

योग को तंत्रयोग के नाम से भी पुकारा जाता है क्योंकि तंत्र योग से भिन्न होते हुए भी तंत्र के कुछ सिद्धान्त योग के साथ मिला दिए गए हैं। योग में

शरीर और मन को अलग-अलग करके देखा जाता है। जबकि तंत्र में शरीर और मन को एक करने की प्रवृत्ति होती है। इसीलिए तंत्र यौगिक ध्यान केन्द्रीकरण प्रक्रिया को एक दमनात्मक, निष्क्रिय और व्यर्थ की थकानेवाली मानता है। तंत्र में केन्द्रीकरण नहीं धारणा पर जोर दिया जाता है। मन को विचारहीन (विचार शून्य) करना और फिर उसे नए विचारों से भरना यौगिक ध्यान की प्रमुख क्रिया है जबकि तंत्र अपने शारीरिक अंग-प्रत्यगों को मानसिक कल्पनाशीलता के स्तर पर उद्दीपन, नियंत्रण और प्रवाहीकरण की एक प्रक्रिया है जिसे मानसिक धारणात्मक केन्द्रीकरण प्रक्रिया कह सकते हैं। यह प्रक्रिया सफल आकर्षक, स्वस्थ और अह्लादित व्यक्तित्व पाने की सुगम और सरल पद्धति है।

धारणा का अर्थ होता है धारण करना, अपनाना या आम्मसात् करना। हमारी पांच कर्मेन्द्रियां और पांच ज्ञान-इन्द्रियां धारणा के माध्यम हैं।

स्वास्थ्य और सफलता

सफलता की उपलब्धि नहीं कार्य सिद्धि की आशा ही सर्वांगीण स्वास्थ्य है।

स्वास्थ्य और सफलता में चोली दामन का सम्बंध है। एक प्रचलित कहावत है सफलता जैसी कोई सफलता नहीं और असफलता जैसी कोई असफलता नहीं। यही सफलता की उपयुक्त परिभाषा भी है। किसी काम में सफल होने की प्रेरणा से हम काम में शारीरिक और मानसिक दृष्टि से जुट जाते हैं। जब तक उस काम में हम सफल नहीं हो जाते, तब तक हर विपरीत परिस्थिति से लड़ने-भिड़ने की शारीरिक शक्ति और मानसिक उमंग हममें आती रहती है। दूसरे शब्दों में सफलता की चाह हमें उमंगित, उल्लासित और शक्ति सम्पात कराती रहती है। जब तक हम शक्ति सम्पन्न रहते हैं शारीरिक-मानसिक दृष्टि से सक्रिय बने रहते हैं। और पूर्ण स्वस्थ भी रहते हैं। हमारी सफलता, स्वास्थ्य और आनन्द का दायरा उतना ही बड़ा या छोटा होगा जितनी बड़ी या छोटी हमारी चाह होगी या लक्ष्य होगा। चाह का बड़ा-छोटा होना किसी भौतिक उपलब्धि से जुड़ा हुआ नहीं है। व्यक्ति की रचनात्मक क्रियाशीलता ही चाह की बड़ाई-छोटाई का पैमाना है। यही अध्यात्म है। रचनात्मक क्रियाशीलता में स्वयं व्यक्ति और उसका परिवार पीछे चला जाता है और समाज तथा मानवता आगे आ आती है। रचनात्मक क्रियाशीलता समाज और मानवता की तारतम्यता, स्पंदन और सम्वेदनशीलता को बनाए रखते हुए प्रगति के लिए किया गया प्रयत्न है। सफलता ही सफलता की उपलब्धि नहीं, कार्य सिद्धि की आशा है। सकारात्मक चिन्तन और उसी दिशा में उद्यमशीलता ही हमारा सर्वांगीण स्वास्थ्य है। बार-बार की असफलता को सफलता में परिणत करने की एकमात्र कुंजी यही है।

सम्पूर्ण स्वास्थ्य परिपेक्ष्य में दवा, दुआ और दया तीनों बेकार हैं।

असफलता को कबूल कर लेना ही हमारी पूर्ण हार है। एक असफल व्यक्ति नकारात्मक चिन्तक, निराशावादी और निकम्मा होता है। असफलता को कबूल करने वाला व्यक्ति सफलता के लिए कभी कोई प्रयत्न नहीं करता। उसकी उमंग

मर जाती है और शक्ति या तो अपव्यय होती रहती है या उसका प्रयोग न होने के कारण नष्ट हो जाती है या उसका बनना ही बन्द हो जाता है। इसी स्थिति में व्यक्ति तरह-तरह की बीमारियों के शिकार होने का या तो वहम पाल लेता है, या वास्तविक रोगी बन जाता है। एक असफल व्यक्ति सबसे पहले आध्यात्मिक दृष्टि से बीमार होता है और बाद में शारीरिक, मानसिक बीमारियों का शिकार बनता है। आध्यात्मिक दृष्टि से बीमार व्यक्ति बुरी-बुरी आदतों का शिकार बनता है, फिर असामाजिक और अपराधपूर्ण व्यवहार करने लगता है और अपनी नजर में वह स्वयं गिर जाता है। निराश, उपेक्षित और अपमानित व्यक्ति ही रोगी और अस्वस्थ होता है। इस प्रकार हमारे स्वास्थ्य और सफलता में गहरा सम्वंध है। स्वास्थ्य और सफलता के लिए दवा, दुआ और दया तीनों में से कोई काम नहीं आता। वास्तव में समग्र स्वास्थ्य के परिपेक्ष में अच्छी-से-अच्छी दवाएं केवल प्राथमिक चिकित्सा, दुआ, रोगी मन के लिए क्षणिक तुष्टि और दया कंगाल को मुंह चिढ़ाने के सदृष्य है।

स्वस्थ और सफल जीवन के स्पष्ट मार्ग चिह्न।

सफलता और स्वास्थ्य पाने के लिए संकल्पित इच्छा, सफल होने की पद्धति की जानकारी और सफल तथा स्वस्थ होने के लिए निरंतर प्रयत्नशील रहने की दृढ़ता आवश्यक है। स्वास्थ्य और सफलता का यह रास्ता थोड़ा कठिन अवश्य लगता है लेकिन शुरू करने के कुछ दिनों के बाद ही धीरे-धीरे कठिनाई आसान होने लगेगी। स्वास्थ्य निखरने लगेगा, सफलता दिखाई पड़ने लगेगी और जिन्दगी की खिलखिलाहट, लहलहाहट, जगमगाहट और तरुणई लौटने लगेगी। यही है स्वस्थ और सफल जीवन के स्पष्ट मार्ग चिह्न और दिशा-निर्देश स्तम्भ। आज लोगों को जीने के लिए अत्यधिक प्रतियोगिता का सामना करना पड़ता है। आवास, शिक्षा, चिकित्सा भोजन और वस्त्र जैसी निम्नतम आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए व्यक्ति की सारी जिन्दगी भाग-दौड़ में बीत जाती है। वास्तव में स्वास्थ्य और सफलता की ओर हमारा ध्यान तब जाता है जव पानी नाक के ऊपर बहने लगता है। असफलता, नैराश्य, दुःचिन्ता, तनाव और रोग से हारे-थके और टूट चुके व्यक्ति को ही पूर्ण स्वास्थ्य, सफलता और आनन्द का दिशानिर्देश तंत्रोपैथी करती है और सरल, सुगम और सुलभ अभ्यासों द्वारा उन्हें सम्पूर्ण स्वास्थ्य पाने की प्रेरणा देती है। प्रभु ने मनुष्य जीवन को एक सुनियोजित उद्देश्य की पूर्ति के लिए सृजन किया है। विश्व विख्यात चिन्तक और दार्शनकि श्री पी.आर. सरकार ने बोकारो (विहार) के हवाई पट्टी पर हजारों लोगों की भीड़ के बीच बोला था, जो उनके स्वागत के लिए उमड़ पड़ी थी, कि जानवर इस पृथ्वी पर खाने के लिए आता है और खाते-खाते मरता है और मनुष्य काम करने के लिए आता है और काम करते-करते मरता है। तुम लोग भी स्वास्थ्य और सफलता के लिए खूब काम करो। तात्पर्य यह कि सक्रियता ही स्वास्थ्य और सफलता है। तथा निष्क्रियता रोग और असफलता।

सफलता और स्वास्थ्य का दुश्मन नकारात्मक चिन्तन और निराशा।

आज हमारी अवस्था ठीक उन शराबियों की तरह हो गयी है, जो गंतव्य स्थान पर जाने के लिए पूरी रात नाव तो खेते हैं और थक कर चूर-चूर हो जाते हैं लेकिन वे देखते हैं कि जहां से चले थे वहीं हैं। क्योंकि नशे में नाव का लंगर उठाना भूल गये थे और नाव किनारे बंधी-की-बंधी रह गई थी। हम भी उन्हीं नाविकों की तरह स्वास्थ्य और सफलता तो पाना चाहते हैं लेकिन उससे सम्बन्धित योजनाओं, नियमों और अभ्यासों को भूल जाते हैं। ऐसी स्थिति में खूब हाथ-पांव मारने के बावजूद भी बीमारी और असफलता ही हाथ लगती है। हममें से 55% व्यक्ति ऐसे ही हैं। यात्रा के दौरान आप अपने सहयात्रियों के चेहरे को देखें, उनकी बरौनियों और आंखों पर गौर करें, और तब आप पाएंगे। कि उनमें निराशा दुःचिन्ता और आंशका की काली छाया से मुरझाया और लटका हुआ मुखमण्डल उत्साह और उमंग की जगह आंखों से झांकता हुआ बेबसी की छाया और बातों में द्वेष, कलह और ईर्ष्या की गंध भरी पड़ी है। ऐसे व्यक्ति ही प्रायः श्वास विकार, रक्त-विकार, उदर-विकार, और स्नायु रोग से पीड़ित रहते हैं और अपनी छोटी-से-छोटी बीमारी को भी अपने नकारात्मक और निराशावादी चिन्तन से असाध्य बना लेते हैं। ऐसे व्यक्ति आधुनिक दवाओं का सेवन कर न जीते हैं और न मरते हैं। रोगी बनकर अपने जीवन को घसीटे लिए चलते हैं तथा जिन्दगी और मृत्यु के बीच त्रिशंकु की तरह बीच में ही लटके रहते हैं।

२स्वस्थ और सफल होने के लिए हमें पहले अपनी अनगिनत इच्छाओं में किसी एक को संकल्पित कर, लक्ष्य बनाना होगा तथा निश्चित और उपयुक्त योजना बना कर जीवन में आगे की ओर बढ़ना होगा। उसी योजना के मुताबिक हमें आज-कल से लेकर हफ्तों-महीनों और वर्षों का कार्य क्रम तैयार करना होगा। उस योजना में स्वास्थ्य सम्बंधी कार्यक्रम करें नित्यक्रिया या रोजमर्रा के रूप में स्थान देना होगा। हमारे श्वांस का स्नायुतंत्र, स्वचालित ग्रन्थितंत्र, रक्त संचार तंत्र, पाचन क्रिया और त्वचातंत्र से गहरा सम्बंध है। गुस्सा होने पर श्वांस प्रश्वांस क्रिया का बढ़ना उसी रफ्तार से रक्त संचार का भी बढ़ना और तेजी से, ग्रन्थि श्रावितंत्र और पाचन तंत्र का अस्त-व्यस्त होना तथा मुखमण्डल की त्वचा का लाल और तनावग्रस्त होना आदि इस बात का प्रमाण है। तंत्रोपैथी में विभिन्न मुद्राएं यंत्र और मंत्र के सहारे शरीर के अंग-प्रत्यंग का संकोचन-प्रसारण और मर्दन-मंथन करता है और उद्दीपन नियंत्रण और प्रवाहीकरण के सहारे स्वास्थ्य और सफलता के लिए जीवनी शक्ति को बढ़ा देता है।

हमारी सफलता और स्वास्थ्य व्यक्ति, परिवार और समाज को संतुलित करती है।

भारतीय ऋषियों और मनीषियों ने हमारी इच्छाओं को तीन श्रेणियों में बांटा

है। अपने सम्बंधी इच्छाएं, परिवार संबंधी इच्छाएं और समाज सम्बंधी इच्छाएं। इन इच्छाओं की पूर्ति को उन्होंने कर्तव्य और दायित्व के रूप में मानने का निर्देश दिया है। भारतीय दर्शन में उसे "ऋण" सिद्धान्त कहा जाता है। यह सकारात्मक चिन्तन सिद्धान्त है। हमारी इच्छाएं स्वयं तथा परिवार और समाज के प्रति जिम्मेदारी सम्बंधी होनी चाहिएं। हमारे सारे कर्तव्य दायित्व को तंत्र ने धार्मिक कर्मकाण्ड के रूप में पूरा करने की व्यवस्था दी है। कर्तव्य समझकर किसी काम को करने में सफलता निश्चित रूप से मिलेगी। ऋण सिद्धान्त व्यक्ति परिवार, और समाज में प्रमा (संतुलन) स्थापित करने का सिद्धान्त है। हमारी वे इच्छा या लक्ष्य ही सफल हो पाते हैं जिसमें व्यक्ति, परिवार और समाज की प्रगति और स्वास्थ्य की परिकल्पना हो। एक स्वार्थी व्यक्ति अपनी चारों ओर एक ऐसी काल्पनिक दीवार खड़ी कर लेता है जिसके बाहर वह न निकल पाता है और न दूसरों को उसके अन्दर झांकने की इजाजत ही देता है। ऐसा व्यक्ति न किसी काम में सफल हो पाता है और न स्वस्थ ही रहता है। सफलता व्यक्तिगत ही नहीं, परिवारिक और सामाजिक हुआ करती है। स्थायी सफलता के लिए अपने स्व को पर और परम तक बढ़ाना ही होगा।

असफलता ही सफलता की कुंजी

प्रायः असफलता छिपे रुस्तम व्यक्ति के जीवन में वरदान के रूप में आती हैं। हम सबने अपने साथ जीवन में ऐसा अनुभव किया है कि जितनी बड़ी असफलता होती है अपने साथ उतनी वड़ी सफलता का बीज भी लाती है। एक असफल व्यक्ति, व्यक्तिगत, आर्थिक और सामाजिक तीनों स्तरों पर असफल होता है। वह व्यक्तिगत स्तर पर अपने स्वास्थ्य को खोता है, आर्थिक स्तर पर दिवालिया होता है और सामाजिक स्तर पर वेइज्जती और उपहास उसे मिलता है। सफलता भी शारीरिक, मानसिक स्वास्थ्य, भौतिक समृद्धि तथा सामाजिक प्रतिक्रिया की दृष्टि से देखी जाती है। असफलता व्यक्ति को उस निर्धारित चिन्तन की ओर मोड़ देती है जिसके चलते वह असफल हुआ, वर्बाद हुआ और वेइज्जती उटानी पड़ी। इससे हमें सौभाग्य और अवसर का नया-नया रास्ता मिल जाता है तथा जीवन की वास्वविकता का ज्ञान भी हो जाता है। अफसलता हमें वे नये-नये रास्ते सुझात है जिस पर हमने कभी सोचा-विचारा तक नहीं था। एक रोगी व्यक्ति बीमारी के कारण अपने स्वास्थ्य की ओर विशिष्ट रूप से ध्यान देना शुरू कर देता है। दवा के साथ विटामिन और दवाएं तो लेता ही है साथ-ही-साथ स्वस्थ होते ही व्यायाम की ओर भी उसकी प्रवृत्ति हो जाती है। और पहले से भी अधिक स्वस्थ हो जाता है। हमारी सफलता का मूल्य भौतिकता, व्यक्तिकता और सामाजिकता को संतुलित त्रिकोण से आंका जाता है।

अच्छों में अच्छा बनने की चाह सफलता की राह

अच्छों में भी सबसे अच्छा बनने की चाह ही सफलता की सुगम राह (रास्ता) है। हम जानते हैं कि हममें से प्रत्येक व्यक्ति को अच्छा, बड़ा स्वस्थ और सफल बनने के लिए दूसरों से प्रेरणा लेने और देने की आवश्यकता किसी-न-किसी परिस्थिति विशेष में पड़ती ही रहती है। अपने चाहने से न कोई बड़ा बनता है, न सफल होता है और न स्वस्थ ही रह सकता है। इसके लिए हमें अपने से सर्वाधिक आशा करनी होगी, हित, मित्रों पर भरोसा करते हुए उन्हें पसन्द करना होगा और सहयोगियों को अच्छी भावना से देखना होगा सहयोगी, सम्बंधी और मित्रों से बदले में अत्यधिक तो प्यार पाएंगे ही साथ ही साथ स्वयं इस तरह के साकारात्मक चिन्तन से, स्वस्थ, सफल, आकर्षक और खुश रहेंगे। शंकालु और दुश्चिन्तक व्यक्ति न दूसरों पर भरोसा करता है और न औरों के लिए भरोसेमंद ही बन जाता है। साथ-ही-साथ स्वयं वह भयभीत, लालची और लोभी बन विभिन्न रोगों और हर क्षेत्र में असफलताओं को आमंत्रित करता रहता है। वी. एच. यू. के अध्ययन से पता चला है कि वे शिक्षक जो पढ़ाने में दिलचस्पी और आकांक्षा रखते थे, वे स्वयं अच्छे शिक्षक बनने के लिए अध्ययन-अध्यापन में बहुत मेहनत करते थे। वे छात्रों के प्रेरणा स्रोत होते थे, जिनके छात्र भी तेज निकलते थे। वे छात्र बहुत खुश, नई चीज जानने के लिए उत्सुक तथा बड़ों की इज्जत करते थे। ऐसे शिक्षकों में कुछ को राष्ट्रीय सम्मान भी प्राप्त हुआ।

एक स्वस्य और सफलता को चाहने वाले को अपने सहयोगियों, मित्रों और सहकर्मियों की आवश्यकताओं की जानकारी आवश्यक हो जाती है—चाहे वह नेता, अभिनेता, व्यवसायी, अधिकारी या संगठनकर्ता हो। उनकी पंसद-नापसंद, इच्छा-अनिच्छा, घृणा-द्वेष, विश्वास-मान्यताओं आदि को अपनत्व की भावना से जानना चाहिए और उसके मानसिक रुझान को जानकर सहानुभूति प्रकट करते हुए उसे दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए। ऐसी स्थिति में ही वह आपका अंग बनकर आपकी सफलता के लिए सक्रिय सहयोग दे सकेगा। एक सम्मानित नेता, ऑफिसर और व्यवसायी अपनी व्यक्तिकता और व्यक्तिगत जीवन स्तर को बनाए रखने के लिए अपने कर्मचारी, मित्र और सहयोगी की बातें गौर से सुनता और उनकी समस्याएं और उनकी व्यक्तिगत परेशानियों के स्रोत को जान कर उसे दूर करने का प्रयत्न करता है। सभी व्यक्तियों में थोड़ा-बहुत अपना गुण विवेचन सुनने, दुख-सुख में अपनों की तरह मदद चाहने और सहयोग पाने, तथा अपनी सामाजिक प्रतिष्टा और आर्थिक स्रोत बढ़ाने की प्रवृत्ति होती है। हमें उसे साहनुभुति पूर्वक सुनकर यथाशक्ति उसे दूर करने का प्रयास करना चाहिए। लेकिन काम के स्तर को ऊंचा रखने के लिए हमेशा सतर्क रहें। प्रगति और प्राप्ति में संतुलन रखकर, असफलता को आत्महत्या का प्रतीक न माने और आवश्यकता पड़ने पर अपनी रुझान को बदलने, अपनी 'भविष्य की योजना बनाने, अपने स्वास्थ्य का अधिक ध्यान रखने, समझौता के लिए सदा तैयार, रहने, "चाहे जितना अच्छा करें, विरोध होगा ही" ऐसा मानकर चलने से असफलता, सफलता में बदलेगी ही और आप सर्वांगीण स्वास्थ के उत्तराधिकारी अवश्य बनेंगे।

वास्वतिक व्यावसायिकता ही सफलता और स्वास्थ्य है।

वास्तविक व्यावसायिकतां की प्रवृत्ति ही सफलता और स्वास्थ्य का मार्ग है। चाहे कलाकार हो, व्यवसायी नेता हो या अभिनेता, सबमें अपने इर्द-गिर्द भीड़ इकट्ठी करने की चांह होती है। पर इसके लिए हमें अपने आप की पूर्ण जानकारी रखने वाले सहयोगी और मित्रों का होना जरूरी है। अध कचरों को लेकर अपनी इच्छा की पूर्ति करना सम्भव नहीं। इसके लिए योग्यता ही सब कुछ नहीं होता। इसके साथ-साथ अपने व्यवसाय और पेशा की कला को जानना भी जरूरी हो जाता है। किसी कला में निपुणता पाने के लिए लगातार अभ्यास की आवश्यकता होती है। "आपके स्तर के लोगों से मैं ऐसी आशा नहीं करता था" यह वाक्य अपनी कला में निपुण योग्य अधिकारी व्यापारी या नेता का ही हो सकता है। इस वाक्य में व्यक्ति के कद, योग्यता, अनुभव, रहन-सहन के स्तर की पहचान की ओर एक इशारा है और उससे सतर्क तो दूसरी ओर भूल और अक्षमता की ओर इशारा करता है। इतना करने के बावजूद भी ऐसा हीं होगा यह वाक्य अच्छे कार्य की विवेचना तथा भूल और असफलता पर अफसोस जाहिर करता है। ये सारगर्भित दो वाक्य सुनने और बोलने में अच्छे तो लगते ही हैं साथ-ही-साथ व्यावसायिक दृष्टि से उत्साह बढ़ाने वाले हैं। रोगी को उसके पुराने स्वस्थ फोटो को दिखाते हुए डॉक्टर निम्न वाक्य उससे बोलकर उसकी आधी बीमारी को दूर कर सकता है। "कितने स्वस्थ और सुन्दर थे आप। कोई बात नहीं, फिर वैसे ही हो जायेंगे।"

प्रेरणादायक और प्यार भरी झिड़की से बोझिल वाक्य और शब्द हमें स्वस्थ रहने और सफल बनाने के लिए काफी महंगी दवाओं और कीमती उपकरणें से भी कीमती होते हैं। इसलिए हमारी योग्यता बेकार है, अगर वह अनुभव और निपुणता के साथ न जुड़ी हो। किसी काम में लगे रहने, भूल-चूक से सीखने और उस काम में नीपुण लोगों के सान्निध्य लाभ करने से उसमें निपुणता प्राप्त होती है। हमारा वहीं अंग मजबूत और स्वस्थ रहता है जिसकी मांसपेशियों का संकोचन प्रसारण, काम करने में अधिक होता है। वही व्यक्ति निपुण होता है जो अपने काम में लगा रहता है। उलझन आने पर झुझंलाता नहीं, और बार-बार भूल होने पर भी लगा रहता है, बोर नहीं होता और काम के वक्त स्वयं काम बन जाता है। ईमानदारी, चाहे व्यक्ति, व्यवसाय और पेशा हो या हित, मित्र और सहयोगी, से काम करने पर उस वस्तु और व्यक्ति का प्रतिबिम्ब मानस पर बनता है और यह मानसिक बिम्ब ही हमें, उस काम में निपुण बनाता है। अगर किताबी ज्ञान हमें योग्य बनाता है तो व्यांवहारिक अनुभव हमें उस क्षेत्र में निपुण।

सकारात्मक रुझान ही सफलता की कुंजी है।

अपना रास्ता ही सफलता का सरल रास्ता, सफलता और स्वास्थ्य के लिए सरल एंव सुगम रास्ता है। देखा-देखी किसी काम को करना खतरे को मोल लेना

होता है। हम किसी के अनुभव से फायदा उठा सकते हैं, अनुभवी व्यक्ति को साथ ले सकते हैं, लेकिन अपना रास्ता तो हमें अपने ही आप बनाना होगा। दूसरों को अपना बनाने, उनके हृदय को जीतने, समय को पहचानने और किसी से मदद लेने के तरीके तो हर किसी के अपने-अपने होते हैं। वैसी परिस्थिति में हम अधिक सफल हो सकते हैं जिस परिस्थिति में हमने दूसरों की मदद की है या प्रेरित किया है। हृदयग्राही बातें करके ही यह सब सम्भव है। बातचीत की तकनीक जानकर ही हम हृदयग्राही बातें कर सकते हैं। हृदय ग्राह्यता, चतुराई नहीं है। और चतुराई के रूप में हृदयग्राह्यता को जो अपनाता है वह जीवन में कभी सफल हो ही नहीं सकता। महत्त्वपूर्ण बातें अपने क्षेत्र में ही करनी चाहिए। घरेलू वातावरण दूसरों को अधिक प्रभावित करता है आप स्वयं अच्छे परिवेश में रहें और अच्छा दिखें। हृदयग्राही वातावरण के लिए और सुन्दर वातावरण हो तथा स्वयं अच्छे और आकर्षक पोषाक में हों, तो अच्छा होता है। श्रोता को अपना बनाने के लिए उनके साथ तादात्म्य सम्बंध स्थापति कर लें और इसके लिए श्रोता के और कार्यालय दोनों स्थान पर वार्ता कर परिचित हो लें। बातें अच्छे-श्रोता वनकर सुनें और अपनी बातें श्रोता के गुण विवेचन के साथ बताएं न कि उनकी बातों को काटकर अपने पक्ष को हर तरफ से मजबूत बनाएं और उससे सम्बन्धित तथ्यों की तालाश कर लें। बातों में कहानी, मुहावरा और लोकोक्तियों का सहारा लेना चित्ताकर्षक होता है।

आशा, विश्वास और इच्छाओं का कुल जोड़ ही सकारात्मक मानसिक रुझान है। खुशी की रुकावटों और व्यवधानों को तोड़ने का एक मात्र हथियार है सकारात्मक मानसिक रूझान! आपनी सफलता से बड़ी कोई खुशी नहीं और उसके लिए सकरात्मक चिन्तन से बड़ा हितैषी कोई दोस्त नहीं। सकारात्मक मानसिक रुझान होने से व्यक्ति कठिन और कष्टसाध्य कार्य को भी खुशी-खुशी कर लेता है और प्रतिफल पाने (सफल होने) पर उसमें इसी तरह के दूसरे काम को करने के लिए आत्मविश्वास जगता है। एक मुर्गीफार्म में मुर्गियों के खाने के दानों को उसके एक कर्मचारी ने धूल में विखेर कर अच्छी तरह मिला दिया और अंत में पुआल से ढक दिया। जव मैंने इसका कारण जानना चाहा तो उसने बतांया कि इससे मुर्गियों का चारा चुगने में अच्छा-खासा व्यायाम हो जाएगा, जो उनको स्वस्थ रहने के लिए जरूरी है और वे जव दाने ढूंढ कर निकालेंगी तब उनमें आत्मविश्वास जगेगा कि वे कितनी चंचल (एसमार्ट) हैं। सफलता और स्वास्थ्य के लिए भला इससे बड़ी दवा और क्या हो सकती है।

सफलता हमें अपने आप से लेनी है।

हमारी सफलता चाहे व्यवसाय में हो या प्रतिष्ठान में या स्व-रोजगार में, मित्र वनाने में वह मूलतः हमारी अपनी कल्पना या मानसिक विम्ब पर निर्भर करता है। जो आत्मविश्वास से भरा होता है, वही स्वस्थ, सफल और आकर्षक व्यक्तित्व को पाता है। उसी की गोद में अच्छी चीजें और खुशियां वरावर पड़ती हैं तथा उसकी योजनाएं सफल, सम्वंध, स्थायी और शरीर, स्वस्थ रहता है। जो व्यक्ति

स्वाभिमान और आत्मप्रतिष्ठा के प्रति थोड़ा भी सजग है तो उसका जीवन कभी भी दुखी नहीं हो सकता। हमें अपने नकारात्मक विचारों, निराशावादी चिन्तनों और काहिलपन को अपने से दूर भगाना होगा। क्योंकि ऐसे व्यक्ति अपनी सीमा पर अधिक ध्यान देते हैं और हर बात में कहा करते हैं–यह हमसे नहीं होगा, वह हमारे वश की बात नहीं है, हमें अपनी सीमा मालूम है, अधिक कहने से क्या फायदा आदि-आदि। हमें जीवन में सफल होने के लिए अपने पुरुषत्व और क्षमता पर भरोसा करना होगा और उसका अध्ययन करना होगा अपनी सीमाओं का नहीं। जिसे हम अच्छी तरह कर सकते हैं, वही करें और मानसिक दृष्टि से अपने को सदा सफल होते देखें। तंत्र की मान्यता है कि उस व्यक्ति से अधिक असुरक्षित कोई हो ही नहीं सकता, जो अपने भय से आतंकित रहता है और उसे भयोत्पादक सपने आते हैं। हम जैसा सपना देखते हैं और कल्पना करते हैं, हमारे जीवन में वैसी घटनाएं घटती हैं और हम वैसा ही बनते हैं।

अपने अनुमोदन से मित्रों, सहयोगियों, सम्बंधियों और सहकर्मियों को अपनी चाल बना लें अपनी आकांक्षा उनकी इच्छा बना दें, उनकी आकांक्षा की सीमा बांधें और अपने आत्मविश्वास को जगाएं। प्रसन्नता और उल्लास की तरह ही आत्म विश्वास भी फिसलने वाला और मेढक की तरह फुदकने वाला है। जब हम आत्मविश्वास को पकड़ना चाहते हैं, तब वह मेढक की तरह फुदकने लगता है, चिड़िया की तरह फुदक जाता है। जब किसी काम में असफलता मिल जाती है या नौकरी छूट जाती है या किसी जटिल समस्या का सामना करना पड़ जाता है तब अचानक एक दिन हम महसूस करते हैं कि आत्म विश्वास कहीं से आ गया और हम खुश होकर फिर जीवन को संवारने सजाने में लग जाते हैं।

आत्मविश्वास को जगाने के लिए "कर्म-ज्ञान" उद्‌बोधन विधि का अभ्यास जरूरी है और जिसकी चर्चा हमने विस्तार से तंत्रोपैथी भाग-1 में कर दी है।

स्वास्थ्य और आकर्षण

शिव और शक्ति की तरह ही व्यक्ति आकर्षक

"शरीरं शिवस्य मंदिरम", "शिवोहम" ऋषियों और तांत्रिकों के सूत्र इस बात की ओर इशारा करते हैं कि हम शरीर को शिव के मन्दिर की तरह साफ-सुथरा रखें। उसे सजाएं-संवारें तथा मन, वचन और कर्म से इस शरीर में निवास कर रही आत्मा को शिव समझें। वीसवीं सदी के महान चिन्तक श्री पी. आर. सरकार ने कहा है कि जिसका अपना रहन-सहन, साज-सामान, खान-पान और परिवेश अव्यस्थित उसका मन और शरीर अव्यस्थित। अर्थात जो व्यक्ति देखने में साफ-सुथरा, सजा-संवरा और आकर्षक होता है वह अपने आचार-व्यवहार में भी ऐसा ही होता है। जो अपने को दीनं-हीन समझता, अपने प्रति किसी तरह की हीन भावना रखता या अपराध भावना पाल लेता है वह निश्चय ही अपना

आकर्षण खो देता है। "शिवोहम" सूत्र इस बात का हमें निर्देश देता है कि अपनी नजर में हम जितने बड़े होंगे, अपने प्रति जितनी हमारी उच्च और शुभ भावना होगी और जितना बड़ा हम सपना देखेंगे, हम उतना ही बड़ा बनेंगे। "यथानामः तथा गुणः" सूत्र इस बात की ओर इशारा करता है जैसा हमारा नाम होता है या जिस नाम से सभी लोग हमें पुकारते हैं स्वयं संसूचन (आटो सजेशन) से हम वैसा ही बन जाते हैं। इसीलिए भारतीय संस्कृति में सार्थक और उच्च नाम देने की परिपाटी है। पाश्चात संस्कृति में यह बात हम नहीं पाएंगे।

सदा शिव हमारे सर्वोच्च आध्यात्मिकता के प्रतीक हैं। ऐतिहासिक, पारम्परिक सांस्कृतिक और मानवीय मूल्यों के वे स्रष्टा हैं। वे आध्यात्मिक विभूतियों के धरोहर हैं। व्यक्तिरूपी रस्सी का एक छोर शिव है और दूसरा छोर शक्ति। शक्ति और शिव एक सिक्के के दो पहलू हैं। जहां शिव हैं, वहीं शक्ति है। हम वही हैं जो वे हैं। हम वैसा ही बनेंगे जैसा हम सोचेंगे-विचारेंगे, अपने परिवेश को रखेंगे और काम को करेंगे। हमारा विचार मन की अभिव्यक्ति है। "मन एकं मनुष्याणां कारणं वंध्यमोक्षयोः" मनुष्य मन ही उसके बंधन और आजादी के कारण हैं। हमारे अन्दर विराजमान शिव और शक्ति भी प्रायः मन के बंधन में पड़ जाते हैं। मन सुखात्म भाव (आहार, निद्रा, भय और मैथुन), भूत के खट्टे-मीठे अनुभव, वर्तमान की रोटी-रोजी के लिए बेतहाशा भाग-दौड़ और असुरक्षा और भविष्य की योजनाओं के सफल होने की आशंका, भय, दुःचिन्ता और निराशा के कारण अपने में स्थित शिव और शक्ति को भूल जाता है। या उन्हें बन्धक बना लेता है ऐसी स्थिति में वह, बीमार, असफल, अनाकर्षक और दुखी होता है।

मनुष्य देव आकर्षण की प्रतिमूर्ति

प्रकृति ने अपने कुशल हाथों से मनुष्य को गढ़ा है। उसे स्वस्थ, आकर्षक, और आनन्दित बनाया है। उसे सफलता, आकर्षण और स्वास्थ्य के अनुरूप और सारी कलाओं से पूर्ण, शरीर रूपी यंत्र को उपहार के रूप में दिया है। आहार, निद्रा, भय और मैथुन आदि पशु वृत्तियों को देने के साथ-साथ ही प्रकृति की मर्जी पर उनका प्रयोग न छोड़कर, उद्दीपन, नियंत्रण और मनोनुकूल शक्ति के प्रवाहीकरण की बुद्धि (विवेक) देने की कृपा भी की है। उसने हमें पशु से ऊपर उठाकर आधा मानव और आधा देव बना दिया है। व्यक्ति ही मनुष्यदेव है। जब हम धन-दौलत मान-मर्यादा, और झूठी शान-शौकत पाने की भागदौड़ में असफल अनाकर्षक दुखी और बीमार हो जाते हैं तथा अपनी दीन-हीन मलीन काया पर सिर धुन-धुन कर पछताते और रोते हैं तब वह व्यंग्य में मुस्कुरा देती है। एक तरह प्रकृति को "मनुष्यदेव" बनाकर अपार खुशी और गर्व होता है। तो दूसरी ओर अपनी शारीरिक, मानसिक, और आध्यात्मिक शक्तियों के उद्दीपन, नियंत्रण और प्रवाहीकरण की विवेकपूर्ण तांत्रिकी कला को भुला देने पर अपार दुख।

हमारे व्यक्तित्व में आकर्षण की अभिव्यक्ति

जो आकर्षक व्यक्तित्व का व्यक्ति होगा वह स्वस्थ होगा, क्योंकि सर्वांगीण स्वास्थ्य का एक प्रमुख तत्त्व व्यक्तित्व का आकर्षण भी है। स्वास्थ्य और आकर्षण एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। एक की, दूसरे के बिना कल्पना ही नहीं की जा सकती। बाह्य आकर्षण और आन्तरिक आकर्षण ही हमारे व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति है। बाह्य आकर्षण में हमारा शारीरिक स्वास्थ्य, परिवेश, शिक्षा, वेष-भूषा, पहनावा खान-पान आदि आता है और आन्तरिक आकर्षण में हमारा मानसिक संतुलन बात-व्यवहार, कार्य करने की शैली और सफलता, और मानसिक चिन्तन आता है। व्यक्ति के चिन्तन की दो धारणाएं होती हैं। नकारात्मक (निराशावादी और निष्क्रियता) तथा सकारात्मक (आशावादी और गत्यात्मकता) आकर्षण और स्वच्छता दोनों का तादात्म्य सम्बंध है। सफाई दो प्रकार की होती है–बाह्य सफाई और आन्तरिक सफाई। बाह्य सफाई में शरीर की सफाई और सर्वांग व्यायाम, वस्त्र को ढंग से कटा-छटा सिलाई और साफ-सुथरा तथा भोजन-आवास का भी स्वस्थकर, सुखद और प्रिय होना, आता है। आन्तरिक सफाई के लिए धारण किसी वस्तु, विषय और व्यक्ति पर मन को केन्द्रित करने (ध्यान) उस पर गहन मनन-चिन्तन करना और समाधि (सुध-बुध खोकर उसमें लीन हो जाना) का प्रतिदिन अभ्यास करना आवश्यक है। स्वास्थ्य और आकर्षण के लिए एक नित्य क्रिया में बाध्य और आन्तरिक सफाई अति आवश्यक है और प्रतिदिन एक घंटा उसके लिए देना ही होगा।

अनाकर्षक और अस्वस्थ व्यक्तित्व की पहचान

सफाई से रहने के लिए विशेष पूंजी की आवश्यकता नहीं पड़ती। न कोई व्यक्ति इतना गरीब ही होता है कि वह साफ-सुथरा और ठाट-बाट से न रह सके। सस्ते कपड़े भी ढंग से कटे, छटे, सिले और साफ होने से सुन्दर और आकर्षक दीखते हैं। हर शहर में ऐसी नारियां मिलेंगी जो कीमती कपड़ों में लिपटी, आधुनिक शृंगार प्रसाधनों से लिपी-पुती एवं रत्न जड़ित सुनहरे गहनों से लदी होने पर भी, उन्हें देखते हंसी आ जाएगी। जीवन के काल्पनिक बोझ से झुकी कमर और कंधा, अनावश्यक भार से अटक-अटककर लड़खड़ाती जुबान, नैराश्य, दुश्चिन्ता और आत्महीनता से झुकी-झुकी शर्माती अस्थिर आंखें (नजरें) धूप और गंदगी से सने जूते और पोशाक तथा तन झांकते शरीर वाले व्यक्ति को आकर्षण और स्वास्थ्य कहां मिलेगा। उन्हें आत्मसम्मान कौन देगा? गरीबी, फूहड़पन और नंगई को आत्मसम्मान का वाहन नहीं बनाया जा सकता। ऐसे जोकर और कार्टून को मांगने से दया, भीख और उपहास ही मिल सकता है, स्वास्थ्य और आकर्षण नहीं। ऐसे फूहड़, कुवेशधारी, पागल और बीमार व्यक्ति को न कोई काम ही मिलता है, न कोई व्यवसाय ही कर पाता और न उसे इज्जत की दो रोटियां ही नसीब हो पाती हैं।

हममें से 55% (प्रतिशत) व्यक्ति ऐसे मिलेंगे जो निराशावादी, नकारात्मक, चिन्तक, निष्क्रिय और विना कुछ किये ही सब कुछ पा लेने की इच्छा रखते हैं। ऐसे व्यक्ति का मुख-मण्डल आशंका और निराशा से मुरझाया और लटका हुआ, आंखों में झांकती हुई बेबसी की काली छाया तथा बातों में द्वेष कलह और ईर्ष्या की गंध पांएगे। वे बोलेंगे कि मैंने सालों जी-जान से कोशिश की, रातों-दिन लगा रहा, पूरी उम्र गंवा दी लेकिन वैसा कुछ कर न सका जिस पर हमें गर्व हो। सारे सम्बन्धी, हित-मित्र, छोटे-बड़े सबने वादा किया और मौके पर मुकर गए। किसी ने कुछ किया भी तो प्रतिदिन के रूप में, दान से अधिक पाने या सब कुछ ले लेने और अपने अधीन (मातहत) रखने की पूर्ति न होते देख धोखा, बेइमानी और बेइज्जती करने पर उतारू हो गये। आज हमारा वर्तमान अंधकारमय है और जिन्हें हम प्यार करते हैं उनके लिए हमारे पास कुछ नहीं बचा है। शरीर तरह-तरह की बीमारियों से जर-जर हो गया और मन पूरी तरह टूट चुका है। सफलता और स्वास्थ्य को चौकड़ी भर रहा हूं लेकिन कभी किनारा भी मिलेगा, इसकी आशा नहीं दिखती। आदि-आदि इससे बड़ा अनाकर्षण का नमूना और क्या हो सकता है!

चंचलता व्यक्तिगत आकर्षण के लिए जरूरी

स्वास्थ्य और आकर्षण के लिए छोटी-छोटी बातें भी अधिक महत्त्वपूर्ण होती हैं। व्यक्ति का व्यक्तित्व उसके रहन-सहन, बात-विचार, चाल-चलन और चपलता-(एसमार्टनेस) के माध्यम से अभिव्यक्त होता है। चपलता का ही दूसरा नाम सक्रियता, रचनात्मक क्रियाशीलता और उद्यमशीलता आध्यात्मिक दिशा निर्देशन है। मौसम और मूड हमारी नित्य क्रिया में कोई बाधा नहीं डाल सकता, अगर हमने कुछ दिनों तक ही इसका अभ्यास कर लिया है। मल विसर्जन से लेकर भोजन और रात्रि विश्राम हम आदतन करते हैं। तंत्र में इसे पूजा कहा गया है और बड़ी तत्परता और भक्ति से इसे करने का निर्देश दिया है। सुबह उठकर नित्यक्रिया से निवृत होने। नाश्ता और भोजन, नियत समय पर करना, नियत समय पर व्यायाम करने और सो जाने की हमें आदत डालनी होगी। यह सब हम अपने स्वास्थ्य और आकर्षण के लिए करते हैं। इससे हम आत्मनुशासित होते हैं और हमारा सम्मान बढ़ता है। इसमें थोड़ी भी लापरवाही सब कुछ गुड़-गोबर कर देती है।

अनुभवहीतना क्षम्य है पर लापरवाही अक्षम्य

आत्मसम्मान और आत्मविश्वास दोनों सहचर हैं। एक आत्मसम्मानी व्यक्ति में विश्वास कूट-कूट कर भरा होता है और आत्मविश्वासी व्यक्ति ही स्वस्थ और आकर्षक व्यक्तित्व को पाकर दूसरों से आत्मसम्मान पाता है। शारीरिक स्वच्छता और व्यस्थित परिवेश से मस्तिष्क को संतुलित रखने में बड़ी मदद मिलती है

इससे अनजानी सहायता भी उसे मिलती रहती है। श्री श्री आनन्द मूर्ति जी के शब्दों में जिसका सामान अस्तव्यस्त उसका मस्तिष्क अस्तव्यस्त। उच्च आदर्श और स्वस्थ जीवन में कोई मेल नहीं। जो व्यक्ति नित्यक्रिया और सफाई से उदासीन है वह मानसिक स्वास्थ्य की ओर भी ध्यान नहीं देता होगा, इसकी आशा की ही नहीं जा सकती। जो व्यक्ति बात-व्यवहार, रहन-सहन और सार-सफाई में लापरवाह है वह कभी स्वस्थ और आकर्षक हो ही नहीं सकता। स्वच्छता, स्वस्थ शरीर और संतुलित मन में गहरा संबंध है। इनमें से एक की कमी-बेशी होने के प्रभाव से दूसरे की कमी बेशी होना स्वाभाविक है। अकसर पतन की शुरुआत शरीर के प्रति उदासीनता से शुरू होती है। जो व्यक्ति किसी कारणवश जीवन के प्रति निरुत्साहित हो जाता है वह अपने में दिलचस्पी लेना छोड़ देता है। सबसे पहले उसकी नित्यक्रियाओं में व्यक्तिक्रम होता है। इसके बाद अपने मित्र, शिष्टाचार और अंत में अपने चरित्र के प्रति भी उदासीन हो जाता है। जीवन में सफलता और व्यक्तित्व में आकर्षण लाने के लिए अभी से स्वास्थ्य के तांत्रिकी नियमों का पालन शुरू कर देना चाहिए। तंत्रोपैथी में उल्लिखित विभिन्न क्रियाओं और विधियों का अभ्यास नियमित रूप से नित्य प्रति करने से इसकी आदत पड़ जाएगी। अनुभवहीनता, स्वास्थ्य और आकर्षण के लिए क्षम्य है लेकिन लापरवाही अपने प्रति घोर अपराध। गुरुत्वकर्षण नियम के मुताबिक लापरवाही का परिणाम अनिवार्य अक्षम्य और तत्काल होता है।

स्वास्थ्य और आकर्षण के लिए समग्र दृष्टि और संश्लेषणात्मक अभिव्यक्ति आवश्यक है

स्वच्छता और शालीनता हमारे सौंदर्य बोध की मानसिकता की बाह्य अभिव्यक्ति है और आध्यात्मिक आचरण अन्तः प्रकाशन। व्यक्तित्व में आकर्षण लाने और स्वस्थ रहने के लिए समग्र दृष्टि और संश्लेषणात्मक अभिव्यक्ति का अभ्यास आवश्यक है। इस सृष्टि का संश्लेषणात्मक रूप ही स्रष्टा, ईश्वर और प्रभु है। और सौंदर्य साधना उसका मूर्त रूप। स्वच्छता और सौंदर्य साधना ही शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक शक्तियों का चरम उत्कर्ष। यह स्फूर्ति, योग्यता और प्रति उत्पन्न मति (प्रजेन्स ऑफ माइन्ड) का एक मात्र विश्वसनीय स्रोत है। यही परम पुरुषार्थ (तंत्र में वर्णित), इष्ट दर्शन (उपनिषदों में अभिव्यक्त) भौतिक और आध्यात्मिक उपलब्धियों (श्रेयस और प्रेयस) की प्राप्ति का सरल, सुलभ और सुगम मार्ग है। यही हमारा प्रर्यायवाची शब्द है। जहां स्वच्छता नहीं, वहां पवित्रता नहीं और जो अपवित्र है, वह रोगी, असफल, अनाकर्षक और घृणा का पात्र होगा ही। वह जीवन में दुखी, उपेक्षित और पापी कहलाएगा ही।

आलस्य और लापरवाही से हमें चिढ़ होनी ही चाहिए, गरीबी से नहीं। असफलता, अनाकर्षण और बीमारी, आलस्य और लापरवाही की ही देन है,

गरीबी की नहीं। इस संसार में सफाई और सिक्का (रुपया) का विनियम धड़ल्ले से होता है और इसका चलन सारे संसार में है, लेकिन अध्यात्म में केवल सफाई का सिक्का ही चलता है और उसे ही उपयुक्त माना जाता है। एक साक्षात्कार में साक्षात्कार कर्ता ने नौकरी के प्रत्याशी एक लापरवाह और आलसी व्यक्ति से पूछा–तुम कौन-सा काम कर सकते हो?

प्रत्याशी ने जवाब दिया–"कोई भी काम कर सकता हूं।"

"झाड़ू पोंछा कर सकते हो?"

"जी हां।"

"फिर अपनी धोती, कुर्त्ता, जूता का ही झाड़ू-पोंछा क्यों नहीं कर डालते?"

नवयुवक प्रत्याशी चुप रहा।

चमड़े की चीजों पर 'पालिश कर सकते हो?

प्रत्याशी ने, "जी हां यह काम तो बखूबी कर सकता हूं।" बड़ी आशा से उसने जवाब दिया।

"भाई मेरे! तब तो तुमने आलस्य और लापरवाही से चलते अपनी धोती कुर्ता और जूतों को साफ नहीं किया, यही बात है न?"

प्रत्याशी ने आत्मग्लानि और अपमान से आंखें नीची कर लीं।

"जी हुजूर" दीनता और दया का प्रतिमूर्ति वह बन गया।

वेटे, पहले अपने बदन को ही रगड़-रगड़ कर रोज नहाया करें। आलस और लापरवाही के शिकारी को अपमान, भाग-दौड़, और दरिद्रता रूपी भूखे भेड़िये का ही शिकार होना पड़ता है। यह साक्षात्कार एक प्रत्याशी का है, शिकार का नहीं।

प्रत्याशी को नौकरी तो नहीं मिली लेकिन साक्षात्कार कर्ता की कड़वी, चुभती और नग्नवास्तविकता से भरी बातों ने उसे अवश्य सफाई का प्रथम पाठ पढ़ा दिया होगा।

आलस और लापरवाही से स्वास्थ्य और आकर्षण का सबसे बड़ा खतरा

किसी व्यक्ति की स्नेहशीलता, समवेदनशीलता, उदारता, भद्रता दूसरों की सहायता, कल्याण और सहयोग करने की तत्परता तथा उसकी हार्दिक इच्छा ही, उसके व्यक्तित्व का सम्मोहन और आकर्षण है। तंत्रोपैथी में दूर-नजदीक और अन्तर निमिमेषवर्जन विधि का कुछ दिन का ही अभ्यास व्यक्तिगत आकर्षण और सम्मोहन को बढ़ा देता है। विस्तार से इसकी चर्चा तंत्रोपैथी भाग-1 में की गयी है। हमारे व्यक्तित्व का आकर्षण ही हमें किसी कार्य में सफल बनाता है, हमें खुश रखता है और स्वस्थ बनाता है। हमारे व्यक्तित्व की अगर बाहरी अभिव्यक्ति शारीरिक शौष्ठव, ढंग का पहनावा और उत्तम स्वास्थ्य है तो दूसरों को सहयोग सहायता और कल्याण की भावना आध्यात्मिक प्रकटीकरण दोनों का समन्वित रूप ही व्यक्तित्व का आकर्षण है। एक आकर्षक व्यक्ति के मित्र होते

हैं। वह दुश्मन से भी दोस्त की तरह व्यवहार करता है। और दूसरों को खुश करके स्वयं आनन्दित होता है। वह अपने सारे शुभकामों, प्रयत्नों और सफलताओं का श्रेय परमात्मा को देता है और अशुभ कर्मों की जिम्मेदारी प्रभु इच्छा समझकर अपने पर ले लेता है। आज हमारी मुस्कुराहट और हंसी, क्रियाशीलता, गुदगुदाहट पैदा करने के बजाय, कुटिलता, चापलूसी और अपमान का प्रतिरूप क्यों बन गया इस पर क्या कभी आपने सोचा है? गौर से देखें तो आप महसूस करेंगे कि हम अपनी आत्मा, जो प्रभु की प्रतिमूर्ति परम सत्ता का ही अंश है, से अलग हो रहे हैं। इस विलगाव ने ही हमारी मुस्कुराहट के प्रभाव को छीन लिया है। इसी कारण हम उस व्यक्ति की तरह हो गए हैं जो अपना भारी बक्सा लिए रेल के डब्बे में चढ़ा और सीट पर बैठ जाने के बाद भी बक्सा अपने सिर पर ही लिए रहा। इससे वह स्वयं थकता और परेशान होता रहा और दूसरों का मजाक भी बनता रहा। उसी प्रकार व्यक्ति अपने भार को परमात्मा को न्योछावर करना नहीं चाहता, क्योंकि इसके सिवा और कोई उस बोझ को ढो ही नहीं सकता। वह पागलपन और भ्रमरूपी भूल का शिकार हो चुका है। ऐसी स्थिति में उसका व्यक्तित्व आकर्षक कैसे हो सकता है?

आकर्षक व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति उसकी बातों, व्याख्यानों और व्यक्तिगत चर्चाओं के माध्यम से होती है। इसलिए वार्ता, चर्चा और व्याख्यान देने की तकनीक की जानकारी भी, एक आकर्षक व्यक्तित्व वाले व्यक्ति को होनी जरूरी है। इस संबंध में अमेरिकन वैज्ञानिकों ने काफी खोजबीन की, कुछ तथ्यात्मक बातों का पता लगाया है, जो आज के युग में सामयिक और अधिक उपयुक्त है। विषय चर्चा बातचीत और व्याख्यान को आकर्षक बनाने की कुछ प्रमुख बातें नीचे दी जाती हैं। इन तांत्रिकी अभ्यास से कोई भी व्यक्ति आकर्षक बन सकता है।

व्यक्तिगत आकर्षण के आन्तरिक नियम

1.प्रतिदिन नित्यक्रिया से निवृत होने के बाद ही स्नान, व्यायाम, धारणा, और बिम्ब-प्रतिबिम्बात्मक प्रसन्नाकृति का अभ्यास करें और अंत में इष्ट प्रणाम से इसका समापन करें।

2.विषय चर्चा, व्यक्तिगत या व्यावसायिक बात-चीत या व्याख्यान के लिए उपयुक्त और सही एक विषय को चुनिए। सभी की यह चाह होती है कि इससे हमें क्या मिला या मिलेगा। विषय को चुनते वक्त इसका ध्यान अवश्य रखिए और सरल भाषा में लोकोक्ति, मुहावरा और उदाहरण देते हुए, प्रसन्नाकृति मुखमुद्रा में धीरे-धीरे बोलिए। विषय-चर्चा, बात-चीत और व्याख्यान में भाव, भाषा और मुद्रा प्रभा (सतुंलन) बनाए रखिए।

3.बात-चीत, व्याख्यान और चर्चा के विषय सम्बन्धी बिन्दुओं और सूत्रों को तर्क संगत बनाइए और भाव और मुख मुद्रा से सजाइए। इसके बाद समस्या का विस्तार से वर्णन कर, प्रमुख मुद्दों पर अपना सुझाव दीजिये। अंत में आपने

जो कुछ कहा उसका सारांश बोल जाइए।

4.श्रोता के सामने जो बोलना चाहते हैं, उसे वातचीत, व्याख्यान या चर्चा करने के पहले, उसे लिखकर, बोलकर औंर मानसिक दृष्टि से श्रोता को ध्यान से सुनते हुए और संतुष्ट होते हुए देखकर, अभ्यास कर लीजिए।

5.श्रोता से व्यक्तिगत चर्चा कर दोस्त बनाइए, छोटे वाक्यों और मीठे शब्दों में अपनी बात कहिए तथा श्रोता की आंखों में आंखें डालकर बातें कीजिए और भूलकर भी बातचीत, व्याख्यान और विषय चर्चा के पहले मजाक न कीजिए लेकिन बीच-बीच में शिष्ट हास-परिहास होना आवश्यक है।

6.अपनी वात कम-से-कम शब्दों में कहिए। श्रोता को कुछ कहने और पूछने का मौका दीजिए। उनकी वातों को सुनने में एक अच्छे श्रोता बनिए। बीच में अन्यमनसकता, उतावलेपन और गुस्सा के बजाय वातों के बोलने और सुनने में उत्सुकता और उल्लास जाहिर कीजिए।

विश्वास कीजिए, अगर उपर्युक्त बातें याद रहें तो आपके आकर्षक व्यक्तित्व का जादू अवश्य चल जाएगा।

समसामयिक आकर्षण के आन्तरिक नियम

सम सामायिक आकर्षण के आन्तरिक नियम (इन्टरनल ला ऑफ हारमोनियस अट्रैक्शन) के अनुसार हमारा विचार अपने स्वभाव के मुताविक एक ही तरह के (सम) अनुकूल (सामयिक), वस्तु,विषय और परिस्थिति से सजाता, संवारता और सहलाता रहता है। सकारात्मक रुझान वैसा ही विचार है और इसकी आदत वन जाने से व्यक्ति सारी समस्या को पहले तौलता है और निर्णय लेता है कि किसे वह नियंत्रित कर सकता है और कौन नियंत्रण से बाहर है। सकारात्मक रुझान वाला व्यक्ति नियंत्रित होने वाली समस्या से ही अधिक संवंध रखता है। वह अनियंत्रित परिस्थिति से प्रभावित होता है और न कभी उस पर सोचता-विचारता ही है। ऐस व्यक्ति दूसरों को उसकी कमजोरी और निकम्मेपन से छुटकारा पाने में मदद करता है। उसके नकारात्मक चिन्तन से न' वह प्रभावित होता है और न विचलित। एक आकर्षक व्यक्तित्व का व्यक्ति, सकारात्मक रुझान का अभ्यार्थी होता है। और वह आदतन लक्ष्य की प्राप्ति के लिए अपने को दृढ़ बनाता है। वह खुशी-खुशी जितना पाता है। उससे अधिक करने की कोशिश करता है। और किसी की प्रशंसा और बुराई किए और सुने बिना आगे की ओर बढ़ता जाता है। और औरों का गुण विवेचना करता हुआ प्रतिकूल परिस्थिति से कभी विचलित नहीं होता। वह जीवन में खुशी और दुःख से अत्यधिक प्रभावित हुए बिना, अनुशासित इच्छा शक्ति से, पूरी परिस्थिति, विषय और व्यक्ति का विवेचन करता है। इससे असाध्य रोगों से छुटकरा तो पाया ही जा सकता है। बुरी आदतों को भी छोड़ा जा सकता है। सकारात्मक रुझान वह आदत है जिससे असुरक्षा, दरिद्रता, आलोचना, शारीरिक कष्ट, बुढ़ापा, मृत्यु और प्यार खो जाने के भूतों को मार भगाता है और यह आदत संक्रामक होने के कारण बिना इशारा किए

या बोले टेलीपैथी द्वारा दूसरों तक पहुंचायी जा सकती है। सकरात्मक रुझान वाले व्यक्ति की आपसी बातचीत, विषय चर्चा और व्याख्यान कम-से-कम शब्दों में बोले जाने पर भी अधिक प्रभावोत्पादक होता है। किसी रोगी की बीमारी का पता लगाने और उसका उपचार करने में व्यक्ति सकारात्मक और नकारात्मक रुझानों को जानना एक डॉक्टर के लिए बहुत जरूरी होता है। क्योंकि नकारात्मक रुझान वाले व्यक्ति प्रायः पेट की बीमारी से पीड़ित होते हैं।

हमारी सृष्टि में प्रत्येक वस्तु और प्राणी में आकर्षण शक्ति पायी जाती है। इसी कारण से वृक्ष लताओं को, चन्द्रमा, समुद्र को और वसंत ऋतु हर प्राणी को अपनी ओर आकृष्ट करता है। मनुष्य में तो अद्वितीय आकर्षण शक्ति पायी जाती है और उसे विकसित करने के लिए थोड़ा मौका निकालकर अभ्यास करने और उसकी आदत डालने की आवश्यकता है। व्यक्ति की आकर्षण-शक्ति की अभिव्यक्ति उसकी विद्युतीय प्रकाश और गंध के माध्यम से होती है।

व्यक्ति का आकर्षण! उसके विद्युतीय गंध और विद्युतीय प्रकाश से अभिव्यक्त होता है।

विद्युतीय गंधः–प्रत्येक व्यक्ति के शरीर से एक प्रकार की विद्युतीय गंध निकलती रहती है। उसके सकारात्मक और नकारात्मक चिन्तनों और विचारों पर उसकी सुगन्धि और दुर्गंधि निर्भर करती है। यह गंध व्यक्ति के व्यवहार में आनेवाली वस्तुओं और आभूषणों में भी आ जाती है। प्रत्येक व्यक्ति की यह गंध अलग-अलग, तथा तीव्र और धीमी हुआ करती है। व्यक्ति जब बोलता-चालता है या सोया रहता है, तब यह विद्युतीय गंध उसके इर्द-गिर्द वातावरण में फैल जाती है। और करीब बैठे सोये या चलते व्यक्ति को अपनी ओर आकृष्ट करती रहती है। आध्यात्मिक दृष्टि से विकसित व्यक्ति और गुरु का सान्निध्य इसीलिए बहुत प्यारा, चित्ताकर्षक और शान्तिदायक होता है। इसी गंध के सहारे आधुनिक पुलिस, अपराधी के व्यवहार में आयी वस्तुओं की खोजी कुत्तों को सुंघा कर पता लगा लेती है।

विद्युत प्रकाशः–विद्युतीय गंध की तरह ही विद्युत प्रकाश भी व्यक्ति में पाया जाता है। यह प्रकाश भी दायरे में छोटा-बड़ा व्यक्ति की विभिन्नता के उसके आचार-विचार और आध्यात्मिक प्रगति के अनुकूल पाया जाता है। इसे ही अंग्रेजी में औरा कहते हैं। आज इसे विभिन्न वैज्ञानिक यंत्रों द्वारा देखा जा सकता है। सामान्यतः यह हमारे शरीर की परिधि के दो इन्च दूरी तक प्रकाश आवरण के रूप में पाया जाता है। इसकी कमी बेशी व्यक्ति की आध्यात्मिक साधना पर निर्भर करती है। साधक की अंगुलियों के एक फुट की दूरी तक यह प्रकाश फैला हुआ रहता है। डॉ० मेस्मर ने इसे "रीढ़ाकर्षण" (पेनियल मैगनेटिज्म) कहा है। इस विद्युत प्रकाश को विकसित कर, एक अच्छे चिकित्सक की तरह रोगों का इलाज भी किया जा सकता है। तंत्र की योगनिद्रा से अपने विद्युत प्रकाश को

बढ़ाया जा सकता है। तंत्र में वर्णित योग निद्रा भौतिक और आध्यात्मिक विकास की प्रथम कड़ी और अन्तिम विकास है। योग निद्रा का वर्णन और विधि स्वास्थ्य और मन केन्द्रीकरण शीर्षक में विस्तार से किया गया है।

आकर्षक व्यक्तित्व पाने के लिए पांच प्रमुख बातें

आकर्षक व्यक्तित्व को पाने के लिए निम्न पांच गुप्त बातों को अवश्य याद रखें।

1.जीने के लिए काम करें, काम करने के लिए न जिएं। वे जो काम के लिए जीते हैं वे जल्द ही तरक्की करते हैं लेकिन उतनी ही तेजी से उनका शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक अद्योपतन भी होता है। क्योंकि ऐसे व्यक्ति काम के साथ अपना तादात्म्य संबंध स्थापित कर लेते हैं और काम के प्रतिरूप और प्रतीक बनकर रह जाते हैं। उनका न कोई निजी, न पारिवारिक और न सामाजिक जीवन ही रह जाता है। ऐसे लोगों की आयु भी कम होती है। जो जीने के लिए काम करते हैं उनके लिए काम एक "हॉबी" होता है। उनका व्यक्तिगत, पारिवारिक और सामाजिक जीवन होता है। और वे सर्वोत्तम जीवन जीते हैं। वे काम के वक्त काम करते और रात को पूर्ण विश्राम करते हैं। ऐसे व्यक्ति विश्राम भी अपने-अपने ढंग से करते हैं और इष्ट मित्रों, सहयोगियों और सहकर्मियों को खुश रखते हैं।

2.ऐसा जीवन वृत्ति चुनें जिस, पर स्वयं ध्यान दे सकें। क्योंकि दुभाषिए से न प्यार किया जाता है और न दूसरों के भरोसे व्यापार या व्यवसाय। काम स्वयं करने से व्यक्ति को संतुष्टि होती है। किसी बाह्य पारितोषिक की उसे चिन्ता नहीं। लेकिन अंत में उसे सफलता के रूप में पारितोषिक, व्यक्तिगत आकर्षण के रूप में मान-प्रतिष्ठा और उपलब्धि के रूप में शारीरिक स्वास्थ्य और ढेर सारी खुशियां मिलती हैं।

3.मानसिक रूप से हर ललकार भरी जिम्मेदारी का मुकाबला करने का अभ्यास प्रतिदिन करते रहें शुभ भावना, इष्ट प्रणाम और कर्मज्ञान, उद्बोधन विधि का अभ्यास इसके लिए आवश्यक है। हर ललकार भरी जिम्मेदारी को मानसिक रूप से देखें और हर सम्भव तरीके से मुकाबला करते और सफल होते हुए, एक हीरो की तरह अपने को बनाएं। बेकार और काहिल लोग अनुपयोगी दिवास्वप्न देखते रहते हैं। इस अभ्यास में भी ऐसे ही स्वप्न देखे जाते हैं। लेकिन दूसरे दिन इसका कार्यरूप भी दिया जाता है। जानबूझकर ऐसी परिस्थिति से लड़ने-भिड़ने और उबरने का सपना व्यक्ति को प्रगति की चरम सीमा पर पहुंचाता है और व्यक्तित्व को आकर्षक बनाता है।

4.हमारा उद्देश्य निपुण बनना नहीं, फल पाना होना चाहिए। एक कार्य कुशल और कर्मठ व्यक्ति इसलिए असफल और अनाकर्षक बनता है। क्योंकि वह अपना अधिक समय निपुणता लाने में खर्च कर देता है। इससे न वह काम को

आगे बढ़ा पाता है और न जल्द उत्पादित ही दे पाता है। हमेशा खतरा मोल लेने के लिए तैयार रहें और अपनी क्षमता मूल्यांकन कम न करें। व्यक्तिगत क्षमता की कोई सीमा नहीं होती। व्यक्तिगत क्षमता वह वस्तु है, जिसे हम जितना खींचा करते हैं उससे कहीं अधिक बढ़ती जाती है। व्यक्तित्व में आकर्षण लाने के लिए सीमा की दीवार तो गिरानी ही होगी।

5.श्रम की प्रतिष्ठा तथा सहयोगियों और सहकर्मियों को इज्जत देना न भूलें। कोई काम छोटा नहीं होता। और लोग छोटे काम करके ही, बड़े बने हैं। हर काम को चाहे वह छोटा हो या बड़ा उसकी अपनी प्रतिष्ठा है। और छोटे काम को करने वाले को भी भरपूर इज्जत देनी होगी। भारतीय संस्कृति में श्रम को प्रतिष्ठा देना एक धार्मिक अनुष्ठान के रूप में किया जाता है। किसी शादी-व्याह में ढोल बजाने वाले के ढोल का, नाई के लोखर, बारी के पत्तल, और दाई के एपन को पूजने और व्यक्ति को पुरस्कार देने का आज भी चलन है।

स्वास्थ्य और आह्लाद

आह्लाद स्वास्थ्य के लिए सहचर और सहयोगी

स्वास्थ्य और आह्लाद सहचर और सहयोगी दोनों हैं। एक स्वस्थ व्यक्ति ही आह्लादित और खुश रह सकता है। और एक आह्लादित व्यक्ति ही असाध्य बीमारियों का मुकाबला कर स्वस्थ रह सकता है। आह्लाद, खुशी और आनन्द को पाने के लिए उसके लिए प्रयत्नशील होने के लिए, उसे जारी रखने और उसे लक्ष्य की अन्तिम मंजिल तक पहुंचाने के लिए, एक अद्भुत मानसिक स्थिति है। आह्लाद की स्थिति में शरीर का अंग-अंग फड़कता रहता है। मन कुछ करने के लिए ललकारता रहता है और व्यक्ति ध्येय, वस्तु या विषय को पाने के लिए मार्ग में आनेवाले विघ्न बाधाओं से लड़ने-मारने-मरने के लिए उतावला बना रहता है। लक्ष्य तक पहुंचने की ललक और उसे पाने की खुशी और आनन्द ही मन की इस गति का स्रोत होता है। आह्लाद, सक्रियता और उद्यमशीलता के कदमों से चलकर आता है। रचनात्मक क्रियाशीलता के रथ पर सवार होकर शाही शानो-शौकत से सर्वोत्तम स्वास्थ्य के मोती बटोरती है और खुशियों की फुलझड़ी और पटाखे छोड़ती है। आह्लादित व्यक्ति की पहचान उसके चेहरे की प्रसन्नाकृति, हास्याकृति और ठहाकाकृति से होती है। उनके काम करने में उमंग, बातों में उल्लास और पैरों में पर निकल आते हैं। काम पिछड़ जाता है स्वयं वे आगे निकल जाते हैं।

प्रतिदिन आदमकद शीशे के सामने खड़ा होकर प्रसन्नाकृति, हास्याकृति और ठहाकाकृति जैसी मुखाकृति या मुद्रा का अभ्यास करते रहने पर हमें ऐसी मुद्रा बनाने की आदत पड़ जाती है और चेहरे की झुर्रियां और झाइयां अपने आप लापता हो जाती हैं और प्रतिदिन आह्लादित हो तन, मन और धन से काम में जुट जते हैं। तंत्र की यह मान्यता है कि मुखमुद्रा से अनुकूल भाव और समान भाव से वैसी ही मुद्रा की उत्पत्ति होती है। वैसे भी गुस्सा होते ही चेहरे में अनावश्यक तनाव, आंखें लाल और होंट सूख जाते हैं, जबकि किसी व्यक्ति को हंसते देखकर, चाहे उसकी बातें न सुनाई पड़ी हों और न समझ में आई हों हम हंसने लगते हैं। चेहरा गुलाव की तरह मुलायम होकर खिल जाता है होंट रस से सराबोर हो जाते हैं, और आंखें फैलकर चमकीली हो जाती हैं। इसी प्रकार मुखमुद्राओं से अनुकूल भाव भी पैदा होते हैं। आधुनिक नेता और अभिनेता रंगमंच पर सेक्स और अपराध का अभिनय करते-करते स्वयं व्यक्तिगत जीवन में सेक्सी और अपराधी बन जाते हैं और अभिनयजगत से लेकर राजनीतिक संगठन का भी अपराधीकारण कर बैठते हैं। भारतीय राजनीति और

अभिनय जगत की ऐसी घटनाएं अखवार की सूर्खियों में होती हैं। मुख मुद्रा के अभ्यास के पहले लक्ष्य का निर्धारण और उसे कार्यरूप देने के लिए योजना का होना आवश्यक है। इससे इच्छा शक्ति का प्रस्फुरण और मन का केन्द्रीकरण होना भी शुरू हो जाएगा।

शिष्टता, विनम्रता और मृदुभाषा, आह्लाद के प्रमुख तीन गुण होते हैं। एक आह्लादि व्यक्ति उदण्ड नहीं विनम्र होगा ही। उसके आचरण में अशिष्टता नहीं शिष्टता और बात विचारों में शिष्टाचार, तथा बोली, वचन कठोर नहीं मृदुभाषी होगा ही। आह्लादित व्यक्ति ही पुरुषार्थी होता है और शिष्टता, विनम्रता और मृदुभाषा उसका संगी साथी और अमूल्य धरोहर होती है। इसलिए वह सदा स्वस्थ, सफल और खुश रहता है और हर जगह मान-मर्यादा का उपहार पाता है। इस की दृष्टि संश्लेषणात्मक (समग्रह) होती है। इसलिए वह सौंदर्योपासक और सौंदर्यसाधक होता है। व्यक्ति शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक पक्षों की संतुलित और संश्लेष्णात्मक अभिव्यक्ति है। यह उसके समग्र व्यक्तित्व का मधु मिश्रित पराग है। आहलाद नम्रता, शिष्टाचार और आंतरिक मृदुलता का "पायस" (मिट्टी सुगन्धित और स्वादिष्ट खीर) है। आहलादित व्यक्ति इसका मूर्त रूप होता है। यही व्यक्ति का सर्वांगीण स्वास्थ्य है।

श्री कृष्ण जी का मोहिनी रूप ही आह्लाद है।

शिष्टाचार का विनियम इस संसार में खूब होता है। इसके सामने योग्यता का स्थान दूसरे नम्बर पर होता है। ऊंची योग्यता पाने के बावजूद कई लोगों को शिष्टाचार के अभाव में जिन्दगीभर असफल, अनाकर्षक और दुखी रहना पड़ता है। एक बेढंगा रूखा और अशिष्ट व्यक्ति, चाहे वह जितना भी योग्य उद्योगी और ईमानदार हो न स्वयं खुश रह सकता है और न किसी संस्था या संगठन के साथ पूर्ण अभियोजित हो भला ही कर सकता है। ऐसे व्यक्ति की संगत से लोग कतराते और दूर-दूर ही रहना पसंद करते हैं। आह्लाद व्यक्ति की एक संक्रामक मानसिक स्थिति है और चुम्बक की तरह दूसरों को अपनी ओर खीचती है। यह वह रोग है जिसकी गति उर्ध्व होती है, जवकि अन्य बीमारियों की गति अधः होती है। इसकी परिणति व्याधि मुक्ति और सफलता में होती है। यह वह पुष्पित, सुगन्धित और आकर्षक व्यक्तित्व है, जो मिलने वाले को भौरों की तरह गुनगुनाने और अपने इर्द-गिर्द मंडराने के लिए मजबूर कर देता है। यह वह वारूणी और मकरंद है, जिसे मिलने के साथ, काम करनेवाले और सहयोगी पीकर मतवाले हो जाते हैं। वे खुशी से झूमते और इठलाते हुए बड़े-से-बड़े काम को खेल-खेल में कर डालते हैं। आह्लाद ही श्रीकृष्ण का मोहिनी रूप है।

विनम्रता शिष्टाचार की तरह ही व्यक्तित्व की सबसे सस्ती पर सर्वोत्तम कुंजी है। यह मानव जीवन की पूंजी है।

विनम्रता वह वृक्ष है जिसे लगाने में और उसे बड़ा करने में नियमित अभ्यास

की जरूरत पड़ती है और थोड़ा कष्ट करना पड़ता है। लेकिन इसके फल बहुत मीठे, सुस्वाद और सुन्दर होते हैं। जैसा बोएंगे, वैसा काटेंगे की उक्ति चरितार्थ करते हुए दूसरों के प्रति विनम्र और शिष्ट व्यक्ति दूसरों को अपने प्रति शिष्ट और विनम्र बनने के लिए बाध्य कर देता है। एक अशिष्ट, अभद्र और कटु व्यक्ति भी अपने प्रति दूसरों से शिष्टता, विनम्रता और मृदुल व्यवहार की आशा करता है और गद्-गद् हो जाता है। यह व्यक्ति का एक आध्यात्मिक गुण है और आह्लादित और स्वस्थ रहने की एक मात्र दवा। विनम्रता का व्यावसायिक दृष्टि से भी अच्छा विनिमय होता है। अगर किसी भीड़-भाड़ वाले स्थान पर या बस या रेलगाड़ी में कोई धक्का मार देता है या जूते से पैर कुचल देता है तो बजाय गुस्सा होने, आंख दिखाने और दांत पीसने के आप उससे क्षमा मांग लें, जैसे सारा दोष आपका ही हो। इस विनम्रता का प्रभाव उस व्यक्ति पर तुरन्त देखने को मिलेगा। वह लज्जित होकर या तो आभार प्रदर्शित करेगा या उसकी हूकहूकी आंखें इसके लिए कृतज्ञता जाहिर करेंगी। नौकरी-चाकरी, लेन-देन और व्यवसाय-राजनीति में विनम्रता, शिष्टाचार और मृदुलता का नाटक आज हर जगह देखने को मिलता है। वास्तविकता कहीं-कहीं विनम्रता, प्रगति और उन्नति की कला, आत्मीयता का सरल मार्ग और लोकप्रियता का पासपोर्ट है। इसके अभाव में हम सुयोग, सुअवसर और सौभाग्य को खो देते हैं।

मृदुलता आह्लाद के प्रमुख गुणों में से एक है और इसका उप-उत्पादन, सहृदयता सम्वेदनशीलता और सहयोग है। अगर हम दरिद्र, असफल या दुर्भाग्य के मारे हुए हैं तो अवश्य ही हममें उपर्युक्त गुणों की कमी कहीं न कहीं है। मृदुल व्यवहार, मृदुभाषा और हृदय की मृदुलता व्यक्ति में वशीकरण क्षमता ला देती। रहीम कवि ने इसे पहचान कर ही कहा है–रहीमन मीठे वचन ते, सुख चहु ओर, बसीकरण मंत्र यह है, परिहक बचन कठोर। मृदुलता के मोह-पाश से बचना कठिन है। यह हमारी जिन्दगी को संवारता और रस-रंग से सराबोर कर देता है। मुस्कुरा कर नमस्कार या धन्यवाद, जैसे बोले गए छोटे शब्द भी आत्मीयता और प्यार से झोली भर देते हैं। आह्लाद ही मानवता की आत्मा, आत्मा का सौंदर्य और भौतिक और आध्यात्मिक उपलब्धियों का खजाना है।

खुशियां बांटना और बटोरना ही आह्लाद है।

चाहे लक्ष्य हमारा जितना भी बड़ा हो, स्वस्थ रहने के लिए खुशी को प्राथमिकता तो हमें देनी ही होगी। खुशी, आह्लाद और आनन्द में केवल डिग्री का फर्क है। शारीरिक खुशी, मानसिक आह्लाद और आध्यात्मिक आनन्द तीनों एक दूसरे के पूरक हैं। कुछ लोगों का कहना है कि अपने लक्ष्य की प्राप्ति पर नजर गड़ाए रखने, उसके लिए तन, मन और धन से लग जाने तथा साध्य और साधक का भेद मिटा देने से खुशी, आह्लाद और आनन्द मिलता है। यह कथन बहुत हद तक सही है। जहां तक मोक्ष, मुक्ति और आध्यात्मिक उपलब्धि की प्राप्ति का सवाल है। लेकिन यह स्थिति अति की स्थिति है। मनुष्य से देव बनकर

केवल पूजन की वस्तु बनाने की स्थिति है यहां फिर रुपया पैसा बनकर खजाने को भरने या मान-मर्यादा और इज्जत का तमगा पहनने या सत्ता के गलियारे में पहुंचकर रावण बनने की स्थिति है। जब आज के बड़े-बड़े नेता, अभिनेता, उद्योगपति अति सफलता की चरम सीमा पर पहुंचकर भी इस शिकायत का रोना रोते हैं कि नाम, शक्ति, और सत्ता की बेदी पर अपनी खुशी आह्लाद और आनन्द की बली चढ़ा दी है, जब वे असमय में बीमारी, बुढ़ापा और मृत्यु का शिकार होते हैं, तब यह तथ्य सामने आता है कि लक्ष्य प्राप्ति, उसको कार्यरूप देने और उसकी सफलता के लिए भाग-दौड़ करने में उन्होंने व्यक्तिगत खुशी, मानसिक आह्लाद और आध्यात्मिक आनन्द को कोई तरजीह नहीं दी। परिवार का प्यार पाने और उसे देने, मित्रों सहयोगियों और सहकर्मियों के विश्वास को जीतने और विश्वसनीय बनने तथा हंस-खेलकर खेल-खेल में बड़ा काम करने की सीख उन्होंने योगेश्वर श्री कृष्ण से नही ली। तंत्र कहता है खुशियां बांटने और बटोरने के लिए हैं, न्यौछावर करने के लिए नहीं।

हम नए-नए मित्र बनाते और जल्द खो देते हैं। हम भरा पूरा परिवार सिनेमा, क्लब और खेल में अकेला महसूस करते हैं। हमें बिस्तर कांटों की तरह चुभता है और रात करवट बदलते कट जाती है। दौलत की सेज पर दलिया और मूंग की खिचड़ी नहीं पचती, सत्ताधारी होते हुए भी भय के मारे संगीनों के पहरे में बाहर निकलना और मान प्रतिष्ठा का मानद तमगा पहने हुए भी अपने स्वजनों से मान प्रतिष्ठा पाने के लिए तरसना इस बात का एहसास कराता है कि हमने अपने सम्बंधों के बीच हंसी-खुशी का पुल (सेतु) नहीं बनाया। अपने चारों ओर हमने अपना दौलत, मान प्रतिष्ठा और राजसत्ता की दीवार खड़ी कर दी। हमें स्वस्थ और खुश रहने के लिए अपनी सफलता, मानमर्यादा और दौलत की भागीदारी करनी होगी। अप्रसन्नता, लालच, घृणा, द्वेष सन्देह और कलह के रथ पर सवार होकर आती है और हमें रोगी और दुखी बनाकर चली जाती है। उदार बनिए, खुशी और स्वास्थ्य अपने आप दौड़ा चला आएगा। हमारी पोती गुल्लू अपने विदेशी चॉकलेट को सहेलियां में बाटंकर खुशियां बटोरती, स्वस्थ रहती है और क्लास में अच्छे नम्बरों से पास होती है जबकि पोता कुक्कु अपने चाकलेट का अधिकांश भाग स्वयं गटक कर पेट की बीमारी और उदासीनता मोल लेता है।

आह्लद हमारी स्थिति नहीं प्रवृत्ति है।

प्रसन्नता, खुशी और आह्लाद का एक छोर व्यक्तिगत और दूसरा सार्वजनिक है। एक छोर पूर्ण प्रेयस और दूसरा छोर पूर्ण श्रेयस है। प्रेयस भौतिकता और श्रेयस आध्यात्मिकता है। भौतिकता और आध्यात्मिकता का संतुलित और समन्वित रूप ही आह्लाद है। अच्छे दिनों के लिए संघर्ष करने में सावधानी अवश्यक रखिए लेकिन कभी रुक्ष, असह्य और हतोत्साह न होइए। अगर लक्ष्य प्राप्ति में देर होती है या असफलता मिलती है तो दुःचिन्तक और अशान्त न बनिए। अशान्ति, दुख-दर्द और दुर्भाग्य को आमंत्रित करती है। एक आह्लादित व्यक्ति

में इच्छाओं और आकांक्षओं का ज्वार आता है, लेकिन अपनी खुशी के लिए यह प्रभु का ऋणी होता है, उन्हें इसके लिए आभार प्रदर्शित करता है और धन्यवाद देता है। कुछ और की याचना इसके बाद ही करता है। जो व्यक्ति अपनी खुशी, सफलता और प्राप्ति के लिए स्वयं श्रेय लेता है, अपनी पीठ अपने आप ठोकता है और गर्व से "वाह रे हम" "वाह रे हम" का नारा लगाता है, वह लालची, मन्द लोलुप और यश स्पृहा होता है और अंत में रक्तचाप, हृदय रोग और मधुमेह आदि बीमारियों के शिकार होते हैं, ऐसे लोग "श्वान (कुत्ता) प्रवृत्ति" के होते हैं जो अपने मुंह की रोटी की छाया जल में देखकर तालाब में छलांग लगा देते हैं और अन्त में डूबते-डूबते मरते हैं। या मरते-मरते जीते हैं। अपने हर काम में परमात्मा को सहयोगी और सहभागी बनाइए। असफलता में वह सहभागी बन आपके दुःख को बांट लेगा और सफलता में सहयोगी बन खुशियों से आपकी झोली भर देगा। सफलता देश, काल और पात्र पर निर्भर करती है। लेकिन आह्लाद और स्वास्थ्य अपने आप पर। आह्लाद, खुशी और प्रसन्नता हमारी स्थिति नहीं प्रवृत्ति है।

भय की अभिव्यक्ति विषय, वस्तु और उसके प्रति प्रतिक्रिया के अनुरूप हुआ करती है। तर्क की दरिद्रता, अपमानित होने की स्थिति, अपने अहम् पर परोक्ष या अपरोक्ष रूप से हमला या उसकी सम्भावना आदि के भय की अभिव्यक्ति गुस्सा के रूप में होती है। गुस्सा आवेग सम्वेग के मिथ्या बांध के कारण भी होता है। इसमें भय वृत्ति काम करती है। गुस्सा या क्रोध अह्लाद का सबसे बड़ा दुश्मन है। एक गुस्सैल व्यक्ति झट टीन की तरह गर्म और ठंडा होने या गुस्से में स्वयं पागल होने और दूसरों को पागल बनाने की प्रवृत्ति रखता है। गुस्से में व्यक्ति में दूसरों को मारने या स्वयं मरने की प्रवृत्ति भी पायी जाती है। गुस्सा सबसे पहले गुस्सैल व्यक्ति की आंखों में झलकता है। इसके बाद कंठ द्वारा अवचेतन मन के गंदे विचारों को भद्दी गालियों के रूप में निकलता है और अंत में मार-पीट पर उतारू होता है। एक आह्लादित व्यक्ति के लिए गुस्सा करना और झेलना दोनों, असह्य और दुःखदायी होता है।

आह्लाद का सबसे बड़ा दुश्मन क्रोध।

एक आह्लादित व्यक्ति के लिए गुस्से को दवाना और उसे प्रकट करना दोनों स्थिति, खराब होती है। स्वास्थ्य और खुशी के लिए गुस्से की अभिव्यक्ति अच्छा होता है इससे मन के तनाव, दर्द और खुजली दूर हो जाती है। दूसरे के साथ सम्वन्ध बनाने और बिगाड़ने में गुस्सा की अह्म भूमिका होती है। किसी अधीनस्थ कर्मचारी, प्रियजन या सम्बन्धी की भूल पर गुस्से की एक मीठी झिड़की एक तरफ संबंध में नया मोड़ ला देती है और दूसरी ओर भूल सुधार की दवा भी हो जाती है। इस स्थिति में गुस्सा प्यार की अभिव्यक्ति बन जाता है। "बेटे नौजवान हो तुम्हें गुस्सा तो आएगा ही" यह अभिव्यक्ति है एक आह्लादित व्यक्ति की। एक बार मैं सिवान स्टेशन पर आरा के लिए रेलवे टिकट खरीदने के लिए

पंक्ति में खड़ा था और जल्द टिकट लेने की उत्सुकता में एक बुजुर्ग को अनजाने में धक्का देता जाता था। बुजुर्ग ने पिछे मुड़कर देखा और बड़े प्यार से कहा वेटा! मैं बूढा हूं ना, यह पैसा लो और मेरा टिकट भी ले लेना मैं वहां बैठता हूं। और उन्होंने टिकट के रुपये दे दिए। मैं अपनी भूल पर पानी-पानी हो गया और उस आह्लादित व्यक्ति का आज भी कृतज्ञ हूं।

स्वास्थ्य और भय

भय ही भूत और प्रेत है

हमारे सामान्य स्वास्थ्य और भय का विपरीत सम्बंध है। जहां स्वास्थ्य है, वहां भय नहीं और जहां भय है, वहां स्वास्थ्य नहीं। भय चाहे बीमारी का हो या असफलता का, चाहे वह मृत्यु का हो या असुरक्षा का, चाहे वह अपनी कमजोरी और अक्षमता का हो या प्रिय व्यक्ति और वस्तु के खो जाने और बिछुड़ जाने का, भय मानव जाति का सबसे बड़ा शत्रु और व्यक्तिगत स्वास्थ्य सफलता और खुशी को निगलने वाला प्रेत है। भय ही भूत बाधा और प्रेत वाधा है। तंत्र कहता है परिस्थिति में प्रविष्ट हो जाइए और भय से मुक्ति मिल जाएगी। भयावह परिस्थिति से हम जितना दूर भागने की कोशिश करेंगे उतना ही अधिक भयभीत होते जाएंगे। इसी परिस्थिति में हम साधारण परिस्थिति को गम्भीर और जटिल, मामूली, बीमारी को असाध्य और लाइलाज तथा सामान्य व्यक्ति को दुश्मन बना लेते हैं। वास्तव में भय हमारे आध्यात्मिक स्रोत को ही सुखा देता है। एक भयभीत अपने का ही नहीं परिवार और पूरे समाज का शत्रु है। आज के जितने अपराधी हैं, चाहे वे राजनीति में हों या किसी व्यवसाय में, चाहे वे किसी सामाजिक और सरकारी प्रतिष्ठान में हों या स्वतंत्ररूप से अपराध करते हों, वे भयरूपी भूत बाधा से ही पीड़ित होते हैं। हमसे जाने-अनजाने भूल होने का कारण भी भय ही है। विभिन्न सम्प्रदायों और मजहबों की दीवारें भी अन्धविश्वास और भय पर टिकी हैं। और विभिन्न धर्म ग्रन्थों से अंधविश्वास को निकाल दिया जाये तो विश्व के सारे मजहब और सम्प्रदाय धराशायी हो जायेंगे।

भय की स्थिति में स्वास्थ्य की कामना दुर्लभ

अंधविश्वास, साम्प्रदायिक आवरण में छिपा भय ही है। भय का ताना-बाना बुनकर विभिन्न मजहब वालों ने मानव जाति का सबसे बड़ा अहित किया है और नुकसान पहुंचाया है। भय ने ही हमें ईर्ष्यालु, क्रोधी, घमण्डी, लालची और लोभी बनाया है। हमने हमारे सारे प्रगति के मार्ग को रोक कर हमारे सर्वांगीण स्वास्थ्य और सारे सम्बंधों की हत्या कर दी है। घमण्ड (समाज में धौंस जमाकर प्रतिष्ठा पाने और प्रतिष्ठित होने की प्रवृत्ति) लोभ (अपने प्रिय वस्तु का अभाव और न

मिलने का भय) क्रोध (तर्क का दिवालिया होने का भय) लालच, (अपनी प्रिय वस्तु का बार-बार इस्तेमाल करने का भय) ईर्ष्या (दूसरों के आगे बढ़ जाने से अपनी अयोग्यता का पर्दाफाश होने का भय) आदि मनुष्य के सर्वांगीण स्वास्थ्य का सबसे बड़ी बाधा है। ईर्ष्या से हमारी कमजोरी दूसरों के सामने प्रकट होती है और हम शक्तिहीन हो जाते हैं। लोभ हमारी प्रतिरक्षा और प्रतियोगिता की क्षमता को ध्वस्त कर देता है। क्रोध सबसे अधिक हमारी जीवनी शक्ति को बरबाद करता है। लालच हमें, और अधिक पाने के लिए सदा दुखित किए रहता है, चाहे वह वस्तु हमारे पास जितनी भी हो। अहंकार (घमंड) तो हमें एक दुखद डमरूआ बना, व्यर्थ का नाच-नचा कर थका देता है। ऐसी स्थिति में हम स्वस्थ रहने की कामना कैसे कर सकते हैं!

भय और लालच को दूर भगाकर ही स्वास्थ्य सम्भव

पूंजीवादी प्रेरकों और सलाहकारों का अपने कर्मचारियों में भय और लालच की प्रवृत्ति पैदा कर, अधिक उत्पादन और मुनाफा कमाना ही एक मात्र उद्देश्य होता है। विभिन्न प्रकार के व्यवसायी और पेशेवर, भय और लालच का सहारा लेकर अपने पेशे और व्यवसाय को चमकाते हैं। मकान खरीदने की राय लेने वाले एक मोवक्लि को वकील साहब बतलाते हैं इस जमीन का दाखिल-खारिज़ बेचने वाले के नाम से सम्भवतः हुआ है या नहीं। इसका मतलब है कि भविष्य में हमारी आवश्यकता तो तुम्हें पड़ेगी ही। इसी प्रकार एक रोगी को डॉक्टर राय देता है वैसे तो वह रोग साधारण है लेकिन बिना विशेषज्ञ से दिखाए ला-इलाज भी हो सकता है। मैं तो हूं ही आप स्वस्थ हो जाएंगे। इस प्रकार वकील और डाक्टर दोनों ने अपने मोवकिल को प्रमुख वृत्ति भय और लोभ को प्रेरित कर अपनी ओर कर लिया। आज के राजनेता, अगली-पिछड़ी जाति, सम्प्रदाय, जय श्री राम आदि का नारा एक दूसरे के मजहब और जाति का भय और अपने को भयत्राता तथा घी और मधु में स्नान कराने का लोभ दिखाकर, अपनी नेतागिरी को बरकरार रखते हैं। इसी प्रकार एक स्टॉक एक्सचेंज का दलाल "बिना खतरा उठाए मुनाफा कहां?" का खतरा और लालच का जुमला पढ़ाकर अधिक से अधिक शेयर बेच लेता है। हमें भय और लालच की मात्रा कम करके या मार-भगाकर ही स्वास्थ्य, सफलता और खुशी की आशा करनी होगी। इसे बढ़ा कर तो बीमारी, असफलता और दुःचिन्ता ही हमारे हाथ लग सकती है। डर कर लिये गये निर्णय सें प्रगति प्रभावोत्पादक ढंग से नहीं होती।

आध्यात्मिक स्वरूप का बनना स्वास्थ्य और बिगड़ना बीमारी है।

भय हमारी जन्मजात प्रवृत्ति है, प्रिय के विछोह, बीमारी, बुढ़ापा और मृत्यु का भय तथा हारने और अपमानित होने का डर और उससे सम्बन्धित दुःख और

परेशानी की दुःचिन्ता हमें शारीरिक और मानसिक दृष्टि से बीमार डाल कर है। हमारा रक्तचाप, श्वास-प्रश्वास क्रिया, हृदय गति पाचन क्रिया और चिन्तन प्रक्रिया पर भय लोभ और दुश्चिन्ता का बड़ा प्रभाव पड़ता है। इससे हमारे आध्यात्मिक स्वरूप (क्रियाशीलता, उमंग, रचनात्मक, प्रेम, सौहार्द और सहकारिता) का धागा प्रथम स्तर पर उलझता जाता है और तीसरे स्तर पर नहीं सुलझने के कारण झुंझलाकर उलझे हुए धागे तो तोड़कर फेंकने लगते हैं। इसी स्तर पर हम बीमारी, दुःचिन्तक और दुखी होते हैं। इन्हीं स्तरों पर शारीरिक, मानसिक बीमारियां घटतीं-वढ़ती रहती हैं। और अन्त में असाध्य बन जाती हैं। इसी स्तर पर क्रोध, लोभ लालच, झूठी शान आदि के शत्रुवत अणु जीवत् का आक्रमण जानलेवा होता है।

लालच लोभ में फंसना स्वास्थ्य को खोना है।

हमारे सारे सम्बन्ध अस्थायी होते हैं, चाहे वह पति-पत्नी का सम्बंध हो या माता-पिता का या साथी-सम्बंधी का, सभी को एक न एक दिन छिन्न-भिन्न होना ही है। इसी प्रकार लाभ और हानि, हार और जीत शुभ और अशुभ, दुर्दिन और सुदिन एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। बुढ़ापा और मृत्यु शारीरिक धर्म है। तो मान-अपमान, प्यार-दुलार क्षणिक मानसिक आवेग-सम्वेग। हर सम्बन्ध से चिपके रहने का चक्कर, सदा प्रिय पात्र बने रहने की ललक, इज़्ज़त-प्रतिष्ठा के तमगे को मरणोपरान्त गले में लटकाए रखने का लालच आदि एक अप्राकृतिक और अस्वाभाविक मानसिकता है। परिवर्तन दुनिया का नियम है। हर सम्बन्ध बनते-बिगड़ते रहते हैं और मान-मर्यादा आता-जाता रहता है। हार के बाद जीत और जीत के बाद हार का आना, असफलता की डोली पर सफलता का पहुंचना आदि सुनिश्चित प्राकृतिक नियम है। इनसे डरना और इनके लालच-लोभ में फंसना अपने स्वास्थ्य को गंवाना और दुख और परेशानी को आमंत्रण देना है।

भय का भूत भगाइए और स्वस्थ होइए।

हम किसी दुःख-तकलीफ को बार-बार मन में दुहराते रहने से बढ़ा लेते हैं और अंत में इससे छुटकारा पाने के लिए अकुला उठते हैं। इसी स्थिति में हम भयभीत होते हैं। इससे छुटकारा पाने के लिए आचार्य रजनीश के इस सूत्र को याद रखिए "ऐसा होता ही है" और भयरूपी भूत से पीछा छुड़ाइए। हर भयावह, दुखद, बेईज्जती, हार और ललकार भरी परिस्थिति में इस सूत्र को याद कीजिए मन-ही-मन दुहराइए और चमत्कारिक रूप से उससे सम्बन्धित भय से छुटकारा पाइए। जेठ की दुपहरी की लू-लपट की हो या पूष-माघ की कड़ाके की ठंडक, या भादों के दिन की मूसलाधार वर्षा, यह सूत्र इससे सम्बन्धित तकलीफों, परेशानियों और भय को पास फटकने नहीं देगा। चाहे अपने स्वजनों द्वारा न भूलनेवाली बेइज्जती और अपमान हो या किसी क्षेत्र में करारी हार, यह सूत्र

अपमान हार के कड़वे घूंट को पचा जाने की क्षमता रखता है। एक बार इसका प्रयोग करके तो आप देखें। स्वास्थ्य और खुशी आपके चरण चूमेगी। एक स्वस्थ, सफल और खुश मिजाज व्यक्ति ही, हंसी-खुशी का परिवार बसा सकता है। वही स्वस्थ परिवार की परिकल्पना और उसके लिए रचानात्मक कार्य की शुरुआत कर सकता है। जैसा हम हेते हैं, वैसे ही व्यक्ति और परिस्थिति को अपनी ओर आकृष्ट करते रहते हैं। प्रकृति का यही नियम है कि जैसा हम बोते हैं, वैसा ही काटते हैं। अगर हम भयभीत रहते हैं तो हमारा विचार नकारात्मक और निराशावादी होगा, हम ऐसे ही व्यक्तियों को चारों ओर इकट्ठा कर लेंगे और बीमारी और हार का शिकार हो जाएंगे।

भय वृत्तियां अर्जित और जन्मजात दोनों होती हैं

हमारी भय वृत्तियां जन्मजात और अर्जित दोनों हैं। शास्त्रों के अनुसार चौरासी लाख योनि का भ्रमण करने के वाद मनुष्य का शरीर मिला है। पशु-पक्षी, मनुष्य के नजदीकी पूर्वज हैं। वीर भोग्य वसुन्धरा का सिद्वान्त पूर्णरूप से पशु-पक्षी योनि में लागू होता है। बाज छोटे पक्षियों और शेर अपने से कमजोर जानवरों का शिकार करता है। बिल्ली अपने शिकार चूहे को किस प्रकार सता-सताकर निर्ममता से हत्या करती है। मनुष्य योनि के विकास का इतिहास निमर्म हत्या और जानलेवा भय का इतिहास है। भय हमें जन्मजात विरासत के रूप में मिला है। मान-मर्यादा और धन के लोभी नेता, अभिनेता, और व्यवसायी इसे अच्छी तरह जानते हैं और भयवृत्ति को उभाड़कर नेता, सत्ता में, अभिनेता रंगमंच पर और व्यवसायी घटिया सामान देकर ही अपनी तिजोरी भरने में सफल होते हैं। बुढ़ापा बीमारी का भय जन्मजात और प्रिय विछोह, असुरक्षा, आलोचना बेइज्जती और बीमारी का भय अर्जित भय है। अर्जित भय का सृजन भय सम्बन्धी पुस्तकें पढ़ने, सिनेमा देखने, बड़े बूढ़ों द्वारा भयभीत रखने और भयोत्पादक कथा कहानी को कहने-सुनने के कारण से होता है। यह प्रक्रिया स्वाभाविक रूप से चलता रहता है, जब तक भय का भूत हमें पूरी तरह से अपने कब्जे में नहीं कर लेता निरशावादिता, द्वंद्व नकारात्मक चिन्तन और निष्क्रियता भी भय को उत्पन्न करते हैं। दुश्चिन्ता भय की जननी होने के नाते बढ़ावा देती और मन को गिरा देती है। गिरा हुआ मन ही बीमार अपराध प्रवृति का और निराश होता है। छोटे और साधारण रोग भी असाध्य, मन की इसी स्थिति के कारण होते हैं। भय से शरीर के रक्त के लाल कण तेजी से अदृष्य होने लगते हैं और इसी कारण भयभीत का शरीर और चेहरा पीला पड़ने लगता है। बिना काम के बैठे रहने, खाली रहने या सोये रहने से भय का सृजन करते हैं। इसीलिए कहा गया है–"खाली दिमाग शैतान का"। आलसी आदमी कई तरह से भय को पालता है। यह स्वास्थ्य और सफलता खोने का सूचक है। बेकार रहने से छोटे-मोटे काम में लग जाना, कुछ न कुछ करते रहना, "बैठे से बेगार भला" की उक्ति चरितार्थ करना चाहिए।

भयभीत व्यक्ति का ध्यान बांटकर भय भगाते हैं

हम डरते हैं इसलिए भागते हैं या हम भागते हैं इसलिए डरते हैं ये दोनों बातें सही हैं। आधुनिक मनोवैज्ञानिक इसे अपनी खोजों के आधार पर सिद्ध कर चुके हैं। डरने और भागने में बहुत नजदीक का सम्बन्ध है। डरने पर जब हम भागते हैं, तब और अधिक डर जाते हैं। और डर की मात्रा भागने की गति के साथ-साथ बढ़ती जाती है। अगर हम भागे नहीं, तो डर भी धीरे-धीरे दूर हो जाता है। डर से छुटकारा पाने का एक मात्र तरीका है कि डर लगने पर अपना ध्यान और व्यक्ति वस्तु या आनन्दायक परिस्थिति की ओर कर दें। हनुमान चालीसा के पढ़ने से भले ही भय का भूत न भागता हो लेकिन हनुमान जी की विकराल मूर्ती, उनकी बहादुरी की ओर डरनेवाले व्यक्ति का ध्यान जबरन चला जाता है, भयोत्पाद विचारों से ध्यान हट जाता है और भय रूपी भूत इससे अवश्य भागता दिखाई पड़ता है। अकबर-बीरबल विनोद का ब्राह्मण "महल" की जलती बत्ती की ओर अपना ध्यान बांट कर जाड़े की रात में ठंडे पानी का भय भगा कर पूरी रात तालाब में अवश्य खड़ा रह सका होगा भले ही बत्ती की गर्मी उसे न लग पाई हो।

भय का भूत डराता ही नहीं, जान भी ले लेता है

डर जानलेवा भी होता है। बीमारी से कम उसके भय से अधिकांश लोग मरा करते हैं। भारतीय शास्त्रों में इस सम्बंध में बड़ी रोचक एक कहानी है। नारदजी इस पृथ्वी के किसी गांव में चार पापियों को मार-डालने के लिए भगवान से प्रार्थना करते हैं। और भगवान यमराज को इसके लिए आदेश देते हैं। भगवान के आदेश को कार्यान्वित करने के लिए वे कालरा, हैजा को भेजते हैं। उस गांव में हैजा फैलता है और 400 लोग मर जाते हैं। इस बात की शिकायत भगवान के पास नारदजी द्वारा किए जाने पर हैजा बड़ी विनम्रता से जवाब देता है—हुजूर हमने तो केवल चार को ही मारा था बाकी 396 तो डर के मारे मर गए। भय के कारण ही हम बीमार होते, असफल होते और मान प्रतिष्ठा खो देते हैं। असाध्य बीमारियों का मूल कारण तो भय ही है। भय रूपी प्रेत बाधा से छुटकारा पाने के लिए तंत्र का यह सूत्र याद रखना होगा—"पणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया" "प्रणितातेन" का अर्थ हुआ कि हम शारिरिक, मानसिक और आध्यात्मिक दृष्टि से जुड़े हुए हैं इसलिए अपनी प्रगति के साथ-साथ समाज के उत्थान के सारे प्रश्नों का जवाब जान लेना और उससे सम्बन्धित सारी समस्याओं का समाधान ढूंढ लेना तथा "सेवया" का अर्थ हुआ कर्तव्य भावना या यज्ञ भावना से दूसरे व्यक्ति या समाज की मदद करना ही, कार्य से सम्बन्धित भयरूपी भूत को भगाना और स्वस्थ, सफल आकर्षक और आह्लादित व्यक्तित्व को पाना है।

"प्रणिपातेन, परिप्रश्नेन सेवया" ही भय रूपी प्रेत की दवा और स्वास्थ्य है

भयरूपी प्रेत को भगाने और सर्वांगींण स्वास्थ्य को पाने के लिए तांत्रिक सूत्र की वैज्ञानिक व्याख्या सम्बन्धी पांच बातें हमेशा याद रखें।

1. **"प्रणिपातेन"** का अर्थ श्रद्धा और भक्ति के साथ लक्ष्य के प्रति समर्पित होना है। समर्पण मन केन्द्रीकरण से आता है और मन केन्द्रीकरण के लिए अभ्यास की आवश्यकता होती है। क्योंकि इस क्रिया से मन के आवरण को हटना पड़ता है। इच्छा शक्ति की भूमिका को समर्पण में नकारा नहीं जा सकता। मन की दो पहचान है। एक कर्ता और दूसरा द्रष्टा की। वर्तमान नियम, कानून, तथ्य और परिस्थिति के अनुकूल काम करने वाला सामान्य मानसिक धारणा से कर्तामन काम करता है और द्रष्टामन मस्तिष्क, इन्द्रियों, स्नायु और मांसपेशियों की मिश्रित क्षमता है जिससे हम सीखते हैं, शुरू करते और लक्ष्य की प्राप्ति करते हैं। दोनों मन का सामंजस्य ही किसी समस्या का समाधान है। इसलिए मन केन्द्रीकरण का अभ्यास लक्ष्य के प्रति श्रद्धा विश्वास के साथ समर्पण के लिए आवश्यक है।

2. **समर्पण** स्वाभिमानी और अपने पर भरोसा करने वाला व्यक्ति कर सकता है। उसमें यह भाव भरा होता है कि हम लक्ष्य की प्राप्ति कर लेंगे। असम्भव को भी सम्भव कर दिखाएंगे। वह किसी स्थिति में जिम्मेदारी से भागता नहीं और उसका जवाब होता है–मैं कर लूंगा।

3. **एक समर्पित** व्यक्ति काम को "अभी और यहीं" की मानसिकता सें प्रारम्भ कर देता है और "काम शुरू होते आधा खतम" की उक्ति को चरितार्थ करता है। इसी मानसिकता से वह काम को पूरा कर लेता है।

4. **"परिप्रश्नेन"** का अर्थ है–जीत के लिए चिन्ता न कर और अपनी क्षमता पर प्रश्न चिह्न लगाए बिना अपना सर्वांगीण विकास और समाज की प्रगति सम्बंधी सारे प्रश्नों को जान लेना और लक्ष्य सम्बंधी सारी सम्भावित समस्याओं का समाधान ढूंढ लेना है।

5. **"सेवया"** जिम्मेदारी को, कर्तव्य भावना से निभाएं। सहयोगियों और सहकर्मियों की समस्या को सहानुभूति और प्रेम से सुलझाएं और उनकी प्रगति के लिए मदद की, पुरस्कार की व्यवस्था रखें।

स्वास्थ्य के लिए क्रोध में प्रस्फुटित शक्ति का प्रयोग

गुस्सा सबको आता है। किसी-किसी परिस्थिति में जान बूझकर गुस्सा करना होता है या ऐसी परिस्थिति निर्मित हो जाती है जिससे क्रोध आ जाता या स्वयं व्यक्ति ही क्रोधी स्वभाव का होता है जो जाने अनजाने गुस्सा करता रहता है। तीनों स्थितियों में हमारी भयवृत्ति काम करती है। या दूसरे शब्दों में गुस्सा जैसा हो भय को ही अभिव्यक्त करता है। किसी को अनुशासित करने (कहीं उदंड न हो जाये का भय) प्रेमाधिक्य को प्रकट करने (प्रेम में कमी का भय) तथा अपने काम को दूसरों से छिपाने (बेइज्जती का भय) के लिए हम गुस्सा जान

बूझ कर करते हैं। किसी के जिद्द करते रहने, मन के केन्द्रीकारण में बाधा पड़ने, अपने से या औरों से भूल हो जाने, किसी वस्तु को खो जाने या स्थानान्तिरित होने से समय पर न मिलने, गैरत को ललकारने या गाली देने आदि से अपने आपको गुस्सा आ जाता है। किसी व्यक्ति में झट टीन की तरह टंडा होने और गर्म होने की नारी सुलभ प्रवृत्ति पाई जाती है। जिसे तंत्र में कहा गया है क्षणे रुष्टा क्षणे तुष्टा, रुष्टा तुष्टा क्षणे क्षणे। चाहे जिस तरह का क्रोध हो उसकी अभिव्यक्ति स्वास्थ्य के लिए अच्छा होता है। आधुनिक मनावैज्ञानिक इसे प्रमाणित कर चुके हैं। गुस्से की अभिव्यक्ति से मानसिक तनाव और खुजली मिट जाती है और दूसरे व्यक्ति के साथ सम्बंध अच्छा हो जाता है। गुस्सा के वक्त व्यक्ति दूसरे के घमण्ड को तोड़ना, फेंकना या पीटना महसूस करता है। और ऐसा महसूस कर लेने से ही उसका गुस्सा शान्त हो जाता मन का मैल निकल जाता है। वह उस व्यक्ति के प्रति अंत में अधिक उदार और स्नेहशील बन जाता है। चिल्लाने से गुस्सा बढ़ता है, कम नहीं होता इसी कारण एक छोटी घटना का विवाद बढ़ जाता है और बड़े झगड़े का रूप ले लेता है। क्रोध को दवाना जितना बुरा है, उससे भी अधिक देश-काल पात्र का खयाल किंए बिना गुस्सा की अभिव्यक्ति बुरी है इसलिए स्वस्थ जीवन जीने के लिए गुस्से की अभिव्यक्ति कब (काल) कहां, (देश) और किस पर? (पात्र) करनी होगी, इसे बड़ी सावधानी से चुनना होगा। गुस्से का प्रतिवाद गुस्सा से करने के बजाय, मुखमण्डल पर प्रसन्नाकृति लाकर, मिठी भाषा में "अब थोड़ा पानी तो पी लिजिए, इसे कल के लिए भी थोड़ा रहने दीजिए। आप के इस रूप का भी मैं कद्रदान हूं आदि आदि" बोलिए और अपने हाथ से झुककर एक गिलास पानी दीजिए। स्वयं को अगर गुस्सा आ रहा हो तो कुछ लिखने या बागान में काम करने या आईने के सामने प्रसन्नकृति बनाने की कोशिश करनी चाहिए। इससे गुस्से में जो जीवनी शक्ति का प्रस्फुरण होता, उसका सही प्रयोग हो जाता है और गुस्से से भी छुटकारा मिल जाता है।

डरपोक बनने के सुझाव

प्रायः सामाजिक दुश्चिन्ता ही हमें डरपोक, व्याख्याता, नेता या कर्मचारी भय का कारण बनती है। चाहे व्यापारी, उद्योगपति, व्याख्याता, नेता या कर्मचारी ऑफिसर, स्वरोजगारी या बेकारी का मारा हो, सभी को दुश्चिंता सताती है और भयभीत करती है। हममें से सभी को कभी न कभी, कहीं न कहीं पर और किसी न किसी से दुःचिन्ता का शिकार होना पड़ा है और ऐसी स्थिति में "कि कर्तव्य विमूढ़" (नर्वस) होकर प्रतिष्ठा जाने, पोल खुलने ओर बुरे फंसने के भय से परेशान होना पड़ा है या भाग कर जान छुड़ाना पड़ा है। ऐसी स्थिति से उबरने के लिए कुछ सुझाव नीचे दिए जाते हैं। उमंग से भरे शब्दों को नाक का सहारा लेकर बोले गए मधुमिश्रित शब्दों में नमस्कार, धन्यवाद आदि बोलकर श्रोता का ध्यान, अपनी ओर पहले आकृष्ट करें। और फिर आपके बीच अपने को पाकर

खुशी हो रही या आपने बुलाकर हमें कृतज्ञ किया या "आपका सन्निध्य लाभ हमारे लिए प्यार का स्थायी स्रोत बनेगा" आदि वाक्यों में अपनी उपस्थिति की सूचना दीजिए। सकारात्मक प्रतिक्रिया कीजिये या टेढ़े-मेढ़े, उलझे प्रश्नों का जवाव "कोई प्रतिक्रिया नहीं" कह कर टाल जाइए। यह कभी न मानकर चलिए कि आपके श्रोता, साक्षात्कार कर्ता या उच्चाधिकारी आपके प्रति सहानुभूति रखेगा, इसलिए हमारी खिंचाई, सेंकाई और धुनाई होगी ही इस विषय से सम्बन्धित दस प्रश्नों को तैयार करके जाइए। जवाब देने में उतावलापन न दिखाइए। किसी विरोधी सवाल पर विरोध जाहिर करने के बजाय चुप रहिए क्योंकि विरोधी सवालों के पूछने वाले की बातें खतम होते-होते उसका जवाब तैयार कर ले सकते हैं, बातों को ध्यान से सुनिए, अपनी नजर वक्ता पर गड़ाइए। आमने सामने रहें या जांघ, सिर हिलाकर उनकी बातों में दिलचस्पी लें इससे 50 प्रतिशत दुःचिन्ता और अकरणीय स्थिति दूर हो जाएगी।

जैसा आप सोचेंगे वैसी ही सूचना आप अज्ञात रूप से अपने श्रोताओं को देंगे। अतः श्रोता के साथ बैठने, बातचीत करने, या उठने चलने में सकारात्मक और आशावादी चिन्तन कीजिए। किसी प्रभावशाली व्यक्ति से मिलने पैरवी करने जाने, सभा-सोसाइटी में उपस्थिति होने या पारिवारिक, संगठनात्मक सामाजिक या व्यावसायिक बात करने जाने के लिए पहले तंत्रोपैथी में वर्णित "नटराज मुद्रा" इष्ट "प्रणाम" और मुंह से पांच बार सांप की तरह हिश ...हिश...का उच्चारण कर लें। इससे मस्तिष्क और शरीर का हर अंग सक्रिय और उत्फुल हो जाएगा। और आप शारीरिक और मानसिक दृष्टि से तरोताजा महसूस करेंगे। याद रहे किसी भी प्रश्न के तीन पक्ष होते हैं। अगर आपने अपने पक्ष लिए तो पूर्वाग्रही कहलाएंगे। अगर दूसरे पक्ष का साथ या विरोध किया तो चापलूस या छीद्रान्वेषी और तीसरा पक्ष जो दोनों पक्षों में से किसी भी पक्ष का साथ न देने के पक्ष में होंगे तो मूर्ख कहलाएंगे। दोनों पक्षों की बातें राजनीतिज्ञ और तीनों पक्षों की बातें आज के संन्यासी करते हैं।

केवल लज्जा को छोड़िए और जीवन को हर क्षेत्र में विजयी बनाइए।

स्वास्थ्य और लज्जाः—तंत्र ने भय के बाद लज्जा को ही स्वास्थ्य का सबसे बड़ा शत्रु माना है और उसकी घोषणा है—एक लज्जा परित्यज्य सर्वत्र विजयी भवेत। लज्जा और भय सहचर है। जहां भय होगा वहां लज्जा किसी-न-किसी रूप में खड़ी मिलेगी और जहां लज्जा होगी वहां भय चहल कदमी करता मिलेगा। हमारी अफसलता का सबसे बड़ा कारण लज्जा ही है। इसलिए यंत्र ने लेन-देन और आहार व्यवहार में लज्जा छोड़ने की राय दीया है। अहारे-व्यवहारे च त्यक्त लज्जा सुखी भवेत्। वास्तव में लज्जा आत्महीनता, अपराध भावना, नैराश्य और अक्षमता की अभिव्यक्ति है। एक लजालु व्यक्ति न अपनी बातें खुलकर कह सकता है। और न दूसरों की बातें सुन सकता है। और इसी कारण से वह सदा

बीमार और दूसरों पर आश्रित रहता है। नारियों में अधिक बीमारियों का पाया जाना और पति पर निर्भर लज्जा का ही परिणाम है। लजीले व्यक्ति की इच्छाएं न कभी पूरी होती हैं और न वह हंसी खुशी से रह सकता है। उसके भाग्य में तो जूठे पत्तल चाटने और आंसू पीने के सिवा और कुछ रह नहीं जाता। लजीला व्यक्ति ही अनाकर्षक, असफल, दुश्चिन्तक और भिखारी होता है। एक मात्र लज्जा को छोड़िए और जीवन के हर क्षेत्र में विजयी बनिए। लज्जा न शिष्टता है, न विनम्रता और न मृदुलता। लज्जा में आंखें ऊपर की ओर प्रयत्न के बावजूद भी उठती नहीं लेकिन शिष्टता, विनम्रता और मृदुलता में आंखें झुकती हैं। और मौका बे मौका ऊपर उठती रहती हैं। "लज्जा से आंखें चुराना" एक प्रचलित मुहावरा का रूप ले लिया है।

लज्जा अगर शिष्टता, मृदुलता और विनम्रता की सहचरी बन जाये तो वह मानव जीवन की आभूषण होगी। आज वह अयोग्यता, नैराश्य, आत्महीनता, गरीबी और गरीबी का पर्याय बन कर रह गयी है या बना दी गयी है। लज्जावस्था दासता की बेड़ी और बीमारी, असफलता और दुर्भाग्य का मार्ग बन जाती है भारतीय नारी ने शिष्टता, विनम्रता, सहिष्णुता और मृदलता का आभूषण पहन कर भारतीय समाज को वह गरिमा दी है जिसके लिए यूरोप और अमेरिका तरसते हैं। सीता, सावित्री , मन्दोदरी, कुन्ती और द्रौंपदी को पंच कन्याओं में गड़ा कर नारियों का उपर्युक्त आध्यात्मिक गुणों के प्रतिमूर्ति क़े रूप में स्थापित किया। सीताजी श्री राम के साथ जंगल जाकर पति की सहधर्मिणी बनीं। उसके लिए सास-ससुर और पति के विचारों का उन्हें प्रतिवाद करना पड़ा। शर्माकर अहिल्या घर में बैठी पति वियोग में आठ-आठ आंसू बहाती रही। इन्द्र द्वारा धोखे से सम्भोग किये जाने पर हत्या न कर या जिन्दगी भर अपराध भावना से पीड़ित हो, तिरस्कृत जीवन बिताने के बजाय पति द्वारा शिला तुल्य बना दिए जाने पर भी अपनी मुक्ति का मार्ग ढूंढ निकाला। सावित्री ने लोक-लाज को छोड़कर पति के जीवन के लिए यमराज से भी लोहा लिया। तारा, मन्दोदरी और कुन्ती भी लज्जा का आभूषण पहनकर दासी बनने के बजाय घर, पति और परिवार को उचित राय और समयानुकूल परामर्श देकर घर परिवार की मान-मर्यादा के लिए संघर्षरत रही। भारतीय पुरुष समाज ने इन आध्यात्मिक गुणों को, नारियों को असुरक्षा, अशिक्षा, अन्धविश्वास और दासी बनाये रखने के लोभ और लालच में भयभीत और आतंकित कर, लज्जा की बेड़ी डाल दी है। आज भारतीय समाज में लज्जा, भय का प्रतीक बन गया है, आनन्द और उल्लास का कल-कल विनोद नहीं।

लज्जा भय का प्रतिरूप और दासता की बेड़ी

आज लज्जा भारतीय नारी समाज के लिए अयोग्यता नैराश्य, आत्महीनता और उपेक्षा रूपी गले का ढोल वन गया है। लज्जा का यह वीभत्स रूप, भारतीय नारी के लिए सोने की बेड़ी बनकर रह गया है और भारतीय आध्यात्मिक विवाह

जिसकी शुरुआत आज से साढ़े तीन हजार वर्ष पहले, सदा शिव ने सशक्त परिवार की नींव और नारी प्रतिष्ठा और गरिमा को कायम करने के लिए की थी। आज दहशत, दुर्दशा और दासता का कारण बन गया है। वर्षों की गुलामी करने के बाद भारतीय समाज भी हीन भावना, अपराध बोध और नैराश्य की भावना से 1947 में स्वतंत्रता की उद्घोषणा करने के बावजूद भी आज उबर नहीं पाया है। भारतीय राजनीति का दिनों दिन अपराधीकरण होते जाना इस बात की ही पुष्टि करता है। भय से आंखें सिकुड़ती और नीची होती हैं। लज्जा में भी भय की सहधर्मिणी होने के नाते आंखें बोझिल और नीची होती जाती हैं। दूसरों से बातें करते वक्त झुकी और नीची आंखें आत्महीनता और भयाक्रान्ता दिखाती है और अपनी नजर में ही अपने आप को छोटा कर देती है। आंखों में आंखें डालकर बातें करना, आत्मविश्वास, आत्मगौरव और आत्मीयता का प्रमाणपत्र प्रस्तुत करता है। एक लजीला व्यक्ति अपना रोग छिपाता, उसे बढ़ने का मौका देता और अंत में असाध्य बनाकर दूसरों की सहानुभूति बटोरने के चक्कर में जान दे देता है। लज्जा स्वयं दुःचिन्ता, अनिद्रा, अपच, कोष्ठबद्धता, उन्माद आदि बीमारियों का कारण है।

लज्जा अपनी नजर में ही छोटा कर देती है

शिष्टता, नम्रता और मृदुलता की सकारात्मक अभिव्यक्ति ही लज्जा है और उसकी नकारात्मक अभिव्यक्ति तीखी जुबान, नुक्ताचीनी और बकवास। ऐसे व्यक्ति कभी हाथों को मलते हैं और कभी दांतों से नाखुन काटते हैं, ये उठने-बैठने में परेशानी महसूस करते और हाजिर जवाब होने का स्वांग भरते हुए ताने और व्यंग बोलते हैं। वास्तव में लजीला व्यक्ति घबराया हुआ, मन ही मन डरा हुआ और तुनक मिजाज होता है। ऐसे व्यक्ति में आत्मविश्वास की कमी होती है और वह सदा अनिश्चित स्थिति में रह कर अपने लिए परेशानी, असफलता और बीमारी को आमंत्रित करता है। काहिल, कामचोर और लापरवाह व्यक्ति लज्जा वृत्ति के ही शिकार होते हैं। लज्जा का नकारात्मक रूप, भय है। एक भयभीत व्यक्ति लजालु होगा ही। अकारण भय के कारण ही ऐसे व्यक्ति किसी बड़े अधिकारी, बड़े लोग या राजनेता के सामने पड़ने पर वास्तविक बातें चाहे जितनी भी जरूरी हों या तो कहने में लजा जाते हैं या लाज के मारे भूल जाते हैं।

काहिल, कामचोर और लापरवाह व्यक्ति लज्जा वृत्ति के शिकार होते हैं

शर्म, लज्जा की सकारात्मक अभिव्यक्ति है। शर्म में अपने प्रति स्वाभिमान और दूसरे के प्रति इज्जत का भाव रहता है। आत्म गौरव और आत्मविश्वास से भरा शर्मीला व्यक्ति बहुत प्यारा, सबकी आंखों का तारा और समाज का

दुलारा होता है। जब लज्जा शर्म का आवरण पहनकर अभिव्यक्त होता है तब नम्रता, अहमान्यता में मृदुलता, चाटुकारिता में शिष्टाचार और हास्य में बदल जाता है। यही स्थिति व्यक्ति के हृदय रोगी, रक्त रोगी, पाण्डु रोगी और स्नायु रोगी होने की होती है। स्वस्थ रहने के लिए हममें सतर्कता, चुस्ती, स्फुर्ति और प्रसन्न मुद्रा का होना जरूरी है। और यह सब केवल पुस्तकें पढ़ने से नहीं, बल्कि तंत्रोपैथी द्वारा प्रतिपादित अभ्यासों को तांत्रिकी संयम और उपचार संस्थान से सीख लें और कम-से-कम एक सप्ताह उसका वह अभ्यास करें। उसे घर में नियमित रूप से करते रहना चाहिए। इससे स्वास्थ्यकर तांत्रिक अभ्यासों को करने की आदत पड़ जाती है।

भय और लज्जा के सृजन और प्रतिष्ठित करने का जिम्मेदार आज का दर्शन

समाज में जैसा दर्शन प्रचलित होता है वैसे उसके लोग, परिवार, समाज और विभिन्न संगठन होते हैं। आज समाज में जड़वादी और आदर्शवादी दर्शन का प्रमुख रूप से प्रचलन है। साम्यवाद और पूंजीवाद एक ही सिक्के के दोनों पहलू हैं और दोनों जड़वादी दर्शन हैं। जड़वादी दर्शन में अधिकार और उपभोग पर अधिक जोर दिया जाता है। व्यक्ति की मानसिकता पहले स्तर पर "खूब काम करो, खूब कमाओ" दूसरे स्तर पर "कम काम अधिक दाम" और तीसरे स्तर पर "बिना किए ही सब कुछ पा जाओ" बन जाता है। जितना दाम उतना काम का नारा तो भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी ने पहले ही दे दिया है। इस स्थिति में व्यक्ति जैसे-तैसे पैसा कमाने और काम में निपुणता न लाने की मानसिकता का शिकार हो जाता है। और अपने आप वह अपराधवृत्ति उसमें आ जाती है। आदर्शवादी दर्शन अन्धविश्वास और ढोंग का ताना-बाना बुनकर ही अपने मजहब और सम्प्रदाय को जिन्दा रखते हैं और परोक्ष या प्रत्यक्ष रूप से जड़वादी मानसिकता को ही बढ़ा देते हैं। भय और लज्जा उनका सम्बल होता है। इसलिए अगर आज के समाज में, परिवार और व्यक्ति में भय और लज्जा का निकृष्ट रूप देखने को मिलता है, तो कोई आश्चर्य नहीं।

हमारी आंखें और कण्ठत्व ही भय और लज्जा का प्रमाण-पत्र

हमारा मनोभाव सबसे पहले हमारी आंखों में झलकता है और आंखों से झांकता है। इसलिए ही हमारी आंखें किसी से मिलते ही हमारा चारित्रिक प्रमाण पत्र दूसरों के सामने पेश कर देती हैं। हमारी बोली उन मनोभावों का और अधिक पर्दाफाश कर देती है। हमारा चाल-चलन और आचार-व्यवहार तो दूसरों के सामने हमें नंगा कर देता है। हमारे मनोभावों को अकेला, चुपके से और मन

की अंधेरी कोठरी से निकालकर सार्वजनिक करने का काम जितनी हमारी आंखें, बोली और व्यवहार पूरी विश्वसनीयता से करता है, कोई और नहीं। हम छिपाने के लाख प्रयत्न करने के बावजूद उसे छिपा नहीं पाते। आंखें और कण्ठ स्वर ही हमारे पूर्ण व्यक्तित्व का परिचय-पत्र है। अगर किसी की बोल-चाल के ढंग में परेशानी का भाव हो या डरपोकपन झलकता हो, दूसरे से बातें करते वक्त वह इस तरह घबराता हो जैसे उसने कोई संगीन अपराध कर दिया हो या अपराध करते पकड़ लिया गया हो या मानो अपने अस्तित्व पर ही वह लज्जित हो और इसके लिए क्षमाप्रार्थी हो। ऐसी स्थिति में व्यक्ति अविश्वसनीय और उपेक्षित जीवन जीता और अकारण भयभीत और लज्जित हो कर भयंकर, शारीरिक और मानसिक बीमारियों को पाल लेता है या साधारण बीमारी को असाध्य बना लेता है। बड़ी-बड़ी ब्रातें, नाटकीय घटनाएं और संकटकालीन स्थिति किसी के जीवन में बारंबार नहीं आती। इसलिए उसकी प्रतीक्षा करना बेवकूफी है। नन्हीं-नन्हीं बूंदों से और छोटी-छोटी बातों से जीवन धारा बनती है। तांत्रिकी पुस्तकों को पढ़ते रहने और अभ्यासों को करते रहने से ही व्यक्तित्व संबंधी छोटे-मोटे दोष, अटपटी दिखनेवाली आदतें, बेढंगा लगनेवाला व्यवहार और कष्टदायी बीमारियां दूर हो जाती हैं।

परिस्थित में प्रविष्ट होना उससे सम्बन्धित भय, शर्म, संकोच और लज्जा को दूर भगाना है

लज्जा और संकोच से बंद अपने कपाट को खोल दें, इच्छाओं को फैलने दें और पुरुषत्व का स्वागत करें। शून्य से परमात्मा तक के अभिनय के परदे उठते जाने दें। खूब प्रसन्न रहें और स्वयं जीएं और दूसरों को जीने दें। यही सच्ची जिन्दगी है। यही सच्चा सुख है। और यही परमानन्द है। अत्यधिक लज्जा, शर्म और संकोच मनुष्य की प्रगति, सफलता और स्वास्थ्य का बाधक है। ऐसे व्यक्ति से अपनी ही प्रतिभा और योग्यता का अच्छा उपयोग नहीं हो पाता और जीवन भर असफल और अस्वस्थ बना रहता है। संकोची और शर्मीला व्यक्ति अपने फायदे और अपनी इज्जत के बारे में स्वयं सोचता रहता है और अपने सम्बंध में दूसरों की राय जानने के लिए अधीर बना रहता है। ऐसे व्यक्ति को अभद्रता से चिढ़ होती है लेकिन स्वयं उसके व्यक्तित्व के आवरण पर अभद्रता की छाप रहती है। ऐसे व्यक्ति का व्यवहार बहुत भद्दा और गंवारू होता है और सारी प्रकृति और प्रवृत्ति उनकी दवी-दवी रहती है। वे दूसरों के सामने अभिव्यक्त करना तो चाहते हैं लेकिन शर्मीला और संकोची होने के कारण आंखें झुकाए और सिर नवाए खड़े रह जाते हैं।

मन का संकोचन प्रसारण ही भय, शर्म, संकोच और लज्जा का इलाज

एक महत्त्वाकांक्षी व्यक्ति को लज्जा और संकोच को छोड़ना ही होगा। "एक लज्जा परित्यज्य सर्वत्र विजयी भवेत" इस उक्ति में तंत्र की भी यही घोषणा है। आलोचना उनकी होगी ही, जो महत्त्वपूर्ण कार्य करना चाहते हैं या कर रहे हैं। आलोचना करनेवाले और अफवाह फैलानेवाले भी लजालु और डरपोक प्रवृत्ति के लोग होते हैं। उनमें इतना भी साहस और हिम्मत नही होती कि वे इंसे सार्वजनिक रूप से स्वीकार करें। नामर्द और कायर आलोचक तथा अफवाह फैलानेवाले व्यक्ति का जवाब देते रहना, कर्तव्य का पालन करते जाना और लक्ष्य प्राप्ति तक डटे रहना, संकोची नहीं निःसंकोची तथा शर्मीला नहीं, बेशर्म और निर्लज बन कर ही किया जा सकता है। तंत्र की मान्यता है कि जिस वस्तु, व्यक्ति, परिस्थिति या विषय से संकोच, शर्म और भय लगता है, वहां शारीरिक और मानसिक दृष्टि अपने को प्रस्तुत करते रहना उस व्यक्ति, विषय, परिस्थिति और वस्तु सम्बंधी भय, संकोच, लज्जा और शर्म से छुटकारा पा लेना है। इसे अपने से दूर भगाने का यही सरल उपाय है। संकोच और शर्मीला स्वभाव का व्यक्ति अपना दोष निकालनेवाला और आत्मभर्त्सना करने का आदी होता है।

संकोच, शर्म और लज्जा एक प्रकार की बीमारी है। इस प्रकार का रोगी एक काल्पनिक दीवार अपने चारों ओर खींच लेता है और अपनी एक सीमा निर्धारित कर लेता है। वह उस चाहरदिवारी से स्वयं बाहर न जाना चाहता है और न दूसरों को उसके अन्दर झांकने की इजाजत देता है। वह धीरे-धीरे बातें करते हुए भी आशंकित रहता है कि सारी दुनिया के कान उसी ओर उसकी बात सुनने के लिए लगे हैं। सभी उसके पहनावे और चाल-ढाल को देखकर मुंह चिढ़ा रहे हैं और सड़क पर चलनेवाले सभी लोगों और सहयात्रियों की निगाह उसी ओर लगी रहती है। हमारे विचारों का संकोचन-प्रसारण ही हमारा व्यक्तित्व है और मांसपेशियों का संकोचन प्रसारण स्वास्थ्य। स्वार्थ, मन के संकोचन का प्रारंभिक छोर है तो पुरुषार्थ उसका अंतिम छोर। यह एक तांत्रिक प्रक्रिया है। और तांत्रिकी अभ्यास से इससे उत्पन्न बीमारियों को आसानी से भगाया जा सकता है। इस बीमारी से छुटकारा पाने के लिए लोगों से बचने के बजाय सभा, सोसाइटी और सम्मेलन और गोष्ठियों में अवश्य जाना चाहिए। लोगों से खुलकर मिलिए-जुलिए और बेधड़क होकर हंसिए-खेलिए, बोलिए-चालिए। अगर हम विदूशक या जोकर नहीं हैं तो "सारी दुनियां को हमसे क्या लेना देना।" सभी को अपनी-अपनी पड़ी रहती है। किसी को किसी की ओर देखने की फुर्सत कहां? दुनिया न हमें देखती है और न घूरती है, यह हमारा केवल वहम है। इस पाखण्ड को जल्द छोड़िए। हम सर्वशक्तिमान के अंश हैं, इस गरिमा को बनाए रखिए।

किसी से मिलते वक्त सोचिए कि वह भी आपकी तरह ही साधारण और सरल व्यक्ति है। सभी लोग न निर्णायक की कुर्सी पर बैठे हैं न इसकी योग्यता रखते हैं। और न इसके लिए अधिकृत ही हैं। अगर कभी किसी ने

आलोचनात्मक बातें करने की धृष्टता भी की तो उसकी परवाह न कीजिए, उसका डटकर जवाब दीजिए और अपने रास्ते बढ़ते जाइए। हमारे सम्बंध में किसी की क्या राय है हमें इसकी क्या जरूरत हमारे सम्बंध में दूसरे क्या सोचते हैं अगर यह जानने की चिन्ता में ही अपनी सारी शक्ति और समय गंवा देंगे तो और काम करेंगे कैसे? अच्छे कामों की चर्चा अच्छी ही होती है। अगर कुछ भूल, जाने-अनजाने हुई भी है, तो कुछ समय के बाद उसे लोग अपने आप भूल जाते हैं। अपने सम्बंध में गलत अफवाह को व्यक्तिगत स्तर या मित्र और सहयोगियों के स्तर या प्रचार माध्यमों से उसका प्रतिवाद किया जा सकता है। फिर इसके लिए डरने, संकोची बनने और शर्माने की क्या जरूरत? ऐसी व्यर्थ की चिन्ताओं को छोड़कर शुभावसर से लाभ उठाइए। काम करते जाइये। प्रगति करते रहिए। कुछ दिनों के बाद आपके सर्वांगीण व्यक्तित्व के उभर आने और सर्वोत्तम स्वास्थ्य पा लेने के बाद, आलोचकों के मुंह अपने आप बन्द हो जायेंगे। वे आपकी तारीफ करने लगेंगे और आपसे अपना काम कराने और फायदा उठाने के लिए आपके सामने प्रणति होंगे और दस बार चक्कर लगाएंगे।

तंत्रोपैथी में वहुत-सी क्रियाएं और विधियां हैं जो भय, संकोच और लज्जा को एक सप्ताह के अभ्यास से दूर कर सकती हैं। ताण्डव और थेइया नृत्य, कर्म, ज्ञान और उद्‌बोधन विधि, चक्र शोधन-भेदन क्रियाएं, नित्य प्रति 20 मिनट के लिए ऐसे रोगी को करना और अभिमंत्रित मंत्रों का चिन्तन मनन आवश्यक है।

तृतीय परिच्छेद

तंत्रः शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक जीवनशक्ति और जीवनऊर्जा की कुंजी।

तंत्र आध्यात्मिकता, मानसिक-शक्ति और जीवन-ऊर्जा की कुंजी ही नहीं, बल्कि स्वास्थ्य और सफलता का प्रमुख स्रोत है। यह ऊर्जा, शक्ति और मानसिक रुझान के उद्दीपन, नियंत्रण और प्रवाहीकरण का अद्भुत चमत्कार है। तांत्रिकी कर्मकाण्ड (अभ्यास) जीवनी शक्ति, जो प्रत्येक व्यक्ति में प्रचुर मात्रा में पायी जाती है, जागृत कर व्यक्ति को पूर्ण स्वस्थ और हर क्षेत्र में सफल बनाता है। यह व्यक्ति को अपने आप में पूर्ण और समग्ररूप से परिचित कर देता है। और उसे अपने शरीर और मन का कुशल मिस्त्री बना देता है। हम प्रायः आमोद-प्रमोद, हंसी-खुशी, भ्रमण और सौन्दर्यावलोकन को व्यर्थ का शारीरिक व मानसिक ऊर्जा और शक्ति का अपव्यय समझते हैं, जबकि तंत्र इसे शारीरिक, मानसिक ऊर्जा और शक्ति के प्रस्फुरण का प्रमुख आवश्यक स्रोत मानता है और उसे सम्पूर्ण स्वास्थ्य (शारीरिक, मानसिक तंत्र आध्यात्मिक) और जीवन के हर क्षेत्र में सफलता के लिए उपयोगी बनाता है। तंत्र न कोई सम्प्रदाय है, न उपधर्म और न दार्शनिक संस्थान। यह तो पूर्वाग्रह से मुक्त व्यवहारिक और वैज्ञानिक जीवनोपयोगी योजनाओं, नियमों और अभ्यासों को प्रस्तुत करता है। तंत्र का प्रादुर्भाव पृथ्वी के जीवन के प्रारम्भ से ही शुरू हुआ। आदि गुरु सदाशिव ने उसे व्यवस्थित कर क्रमबद्ध किया और नए-नए प्रयोगों के आधार पर मानव जीवन की सफलता और स्वास्थ्य के लिए आवश्यक अंग बना दिया। योगश्वर श्री कृष्ण और श्री आनन्दमूर्ति जी ने उसे सर्वकालिक, सर्वदेशिक और सर्वोपयोगी बना दिया।

तंत्र सम्पूर्ण जीवन को आनन्दमय बनाने के लिए स्वस्थ, आकर्षक, सफल और आह्लादित व्यक्तित्व प्रदान करता है और इसके लिए वह मुद्रा, मंत्र और यंत्र का सहारा लेता है। ये ही तंत्र के आधार हैं। व्यक्ति के जीवनी शक्ति के केन्द्रों को उद्दीप्त करना, उसे नियंत्रित करना और उसका सर्वांगिण स्वास्थ्य के लिए प्रवाहित करना तांत्रिक क्रियाएं हैं। शारीरिक, मानसिक दृष्टि से सक्रियता को रचनात्मक क्रियाशीलता और उद्यमशीलता में परिवर्तन करना एक तांत्रिक प्रक्रिया है, जो स्वास्थ्य के लिए बहुत जरूरी है! तंत्र एक संस्कार निर्माण योजना है। एक क्रमबद्ध पद्धति है जिसे भारत ने हजारों वर्ष पहले धार्मिक कर्मकाण्ड (कृत्य) के रूप में अपनाया था। इसे सवाल जवाब के रूप में विकसित किया गया था, जो

गुरु शिष्य परम्परा द्वारा चला आ रहा है। यह जीव, जगत और ईश्वर में विश्वास करता है। संसार को सापेक्षित सत्य मानता है। और श्रेयस (आध्यात्मिक) उपलब्धि का मार्ग प्रेयस (सांसारिक दायित्वों का निर्वाह, स्वस्थ, सफल और आह्लादित व्यक्तित्व को पाकर ही होता है।) से होकर गुजरता है। जो व्यक्ति प्रेयस (सांसारिक दायित्वों के निर्वाह में) असफल होता है, उसे श्रेयस (परम सत्ता) की प्राप्ति नहीं हो सकती। प्रेयस से श्रेयस तक की यात्रा पुरुषार्थ पथ है। सूफियों का "हिम्मते मर्दा मददेखुदा" का क़थन इस पुरुषार्थ पथ की ओर ही इशारा करता है।

जिसने जीव, जगत और ईश्वर से तादात्म्य संबंध स्थापित नहीं किया, वही रोगी, असफल, अनाकर्षक, और दुखी है। हमारे व्यक्तित्व के तीन पक्ष होते हैं–शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक। एक अच्छे व्यक्तित्व वाले व्यक्ति का मतलब है उस व्यक्ति के सुपुष्ट, स्वस्थ और सुन्दर शरीर, संतुलित और नियंत्रित मन (टीन की तरह झट गर्म और झट ठंडा होना असंतुलित मन की पहचान है) तथा आध्यात्मिक दृष्टि से समुन्नत (सकारात्मक चिन्तन, आशावादिता, अदम्यशीलता और सहकारिता, सहयोग सहानुभूति) गुण। अतः व्यक्ति का सम्पूर्ण व्यक्तित्व, जीव, जगत और ईश्वर की 'प्रभा' की स्थिति है। तंत्र व्यक्ति के अपनी व्यक्तिगत पहचान की जड़ तक पहुंचाता है। वह शरीर के अंग-प्रत्यंग, कार्य-कलाप तथा शरीर रूपी यंत्र के गुप्त-प्रत्यक्ष भाग के अणु-अणु से पूर्ण परिचित कराकर एक अच्छा मिस्त्री (मिकानिक) बना देता है। तंत्र व्यक्ति को अपने-आपकी पहचान उस हद तक करा देता है कि उसने अपने शरीर के सम्बंध में पहले कभी अनुभव न किया था। यह सब वह सदियों से पूर्ण परिचित, प्रमाणित और विश्वसनीय शारीरिक, मानसिक, बौधिक और आध्यात्मिक अभ्यासों के माध्यम से करता है। यह शारीरिक, मानसिक ऊर्जा की शक्ति से व्यक्ति को भर देता है।

तंत्र अपने विशिष्ट धार्मिक कर्मकाण्डों के माध्यम से स्वास्थ्य, सफलता, आकर्षण और परमानन्द की प्राप्ति का मार्ग बनाता है। वह जीवन में भरपूर आनन्द लेने और दीर्घायु होकर उसे भोगने तथा आध्यात्मिकता की चरम सीमा पर पहुंच कर परमानन्द और परमपुरुष को पाने का विज्ञान है। यह जीवन के हर क्षेत्र में अत्यधिक सफल होने के लिए चेतन और अवचेतन के अतल गहराई में केन्द्रीभूत होने तथा उस पर अपनी पकड़ मजबूत करने की कला सिखाता है। तंत्र व्यक्ति को अपनी शारीरिक, मानसिक शक्तियों की उपादेयता और सदुपयोग सिखाता है। तंत्र हमें उस ताकत, ऊर्जा और शक्ति के प्रयोग, सम्पूर्ण व्यक्तित्व (स्वस्थ, आकर्षक और आह्लादित) को पाने के लिए करना सिखाता है, जिसे लोग सांसारिक आनंद (शारीरिक-मानसिक सुख) को लेने में या अनुगमन में व्यर्थ की बरबादी मानते हैं। वास्तव में जिस किसी भी शारीरिक, मानसिक सुख और आनन्द का हमें पता है, वह अपने आप में पूर्ण नहीं होता या अन्तिम नहीं होता। उस आनन्द और सुख की गुणवत्ता और विश्वसनीयता को और अधिक बढ़ाते-बढ़ाते उसे अन्तिम सीमा तक पहुंचाने और उससे अपनी शारीरिक,

मानसिक और. आध्यात्मिक शक्तियों का स्फूरण कराकर सम्पूर्ण व्यक्तित्व को प्राप्त करने की कला को तंत्र सिखाता है। वास्तव में यही पूर्णत्व का ज्ञान कराता है, जिसमें चरम सत्य और पूर्णत्व छिपा रहता है। वस्तुतः तंत्र ढोंग और दिखावटी व्यवहार को सम्पूर्ण व्यक्तित्व के खोजी और पूर्णत्व के प्रत्याशी के लिए एक व्यर्थ का संघर्ष और थकाने-हराने वाला प्रयत्न मानता है। व्यक्ति की, शारीरिक, मानसिक और आवेगिक-साम्वेगिक क्षमताओं को, अत्यधिक उग्र और उत्तेजित कर, उससे नूतन आनन्द का सृजन करना, उसे और अधिक बढ़ाते जाना और उसी सूत्र के सहारे परमानन्द में स्थित कराना ही तंत्र की उपादेयता है। सम्पूर्ण व्यक्तित्व के विकास और पूर्णत्व की प्राप्ति के लिए सांसारिक विषय वस्तु और व्यक्ति को छोड़ने की आवश्यकता नहीं, उसे माध्यम बनाने की जरूरत है।

तंत्र योग नहीं है—सहजयोग, राजयोग, क्रियायोग आदि कई यौगिक क्रियाएं हैं और सबका लक्ष्य चित्त शुद्धि द्वारा व्यक्तित्व को पाकर सच्चिदानन्द की स्थिति में आना है। हमारी सारी क्रियाएं दो प्रकार की होती हैं आन्तरिक और बाह्य। बाह्य और आन्तरिक क्रियाओं में प्रायः सामंजस्य नहीं होता क्योंकि हमारी बाह्य क्रियाएं पूर्णतः चेतन मन से और आन्तरिक क्रिया अवचेतन और अतिचेतन मन से संचालित होती है। इन दोनों क्रियाओं में आपसी ताल-मेल का न होना बीमारी का होना है तथा असमय में बुढ़ापा या अकाल मृत्यु है। योग में वर्णित यम-नियम, आसन, प्रत्याहार और प्राणायाम से हमारी बाह्य क्रियाएं और धारणा, ध्यान और समाधि से आंतरिक क्रियाएं नियंत्रित होती हैं। सत्य, अहिंसा, स्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह को यह तथा सत्य, संतोष, शौच, स्वाध्याय और ईश्वर प्राणिधान को नियम कहते हैं। श्वास-प्रस्वास के विभिन्न अभ्यास को प्राणायाम और इन्द्रियों को उनके विषय वस्तु से हटाकर किसी दूसरे विषय या वस्तु में लगा दें या रमा देने को प्रत्याहार कहते हैं। अभ्यान्तरिक क्रियाओं को अभ्यासों के सम्बंध में तंत्रोपैथी के पहले भाग में विस्तार से चर्चा की गयी है। उन्हीं अभ्यासों में कर्म-ज्ञान और उद्‌बोधन विधि है।

तंत्र में धारणा पर अधिक जोर दिया जाता है। वस्तुतः धारणा तंत्र का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। तंत्र का उद्‌दीपन, नियंत्रण और प्रवाहीकरण कर्मकाण्ड धारणा का ही अभ्यास है। उद्‌दीपन और नियंत्रण के अभ्यास में मन को अपने शरीर के ही विशिष्ट अंग पर केन्द्रित कराया जाता है। जिससे विभिन्न शारीरिक, मानसिक शक्ति और ऊर्जा का प्रस्फुरण होता है। जिसे प्रवाहीकरण विधियों द्वारा पहले सम्पूर्ण व्यक्तित्व की प्राप्ति और फिर पुरुषार्थ पथ में लगाया जाता है। योग निद्रा का अभ्यास धारण को दृढ़ करने के लिए आवश्यक हो जाता है। इच्छाशक्ति भेधक दृष्टि और एकाग्रता के संयुक्त अभ्यास का नाम योगनिद्रा है। तंत्रोपैथी के चिकित्सक को योग निद्रा का अभ्यास करना परमावश्यक होता है। चंचलता के चलते चित्र को बंदर की उपाधि दी गई है। मन चित्ती की चंचलता की साथ उछल-कूद और धमा-चौकड़ी मचाता रहता है। इससे विभिन्न प्रकार के भूत और वर्तमान की सुखात्मक और दुःखात्मक भावनाओं में व्यक्ति बह जाता है या

भविष्य की योजनाओं में उलझ जाता है। यही अवस्था हमारे शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक बीमारी का कारण होती है। महामहिम पतंजलि ऋषि ने योग की पूरी परिभाषा ही इसी कारण से चित्त के निरोध के रूप में की है। वस्तुतः चित्त को किसी वस्तु या विषय पर केन्द्रित करना धारणा कहलाता है। इससे अभ्यान्तरिक, मानसिक क्रियाएं नियंत्रित और रचानत्मक दिशा में प्रवाहित होती हैं। जिस वस्तु या विषय पर चित्त को केन्द्रित किया गया, उसी पर वह भलीभांति जमा रहे रमा रहे और इधर-उधर नहीं हटे, ध्यान का अभ्यास है। ध्येय वस्तु के ध्यान में इस प्रकार डूब जाये कि अपने अस्तित्व का ही कोई ध्यान न रहे तब उसे समाधि कहते हैं। तंत्रोपैथी में वर्णित थेइयानृत्य इन अभ्यासों का ही समन्वित रूप है।

यद्यपि तंत्र योग नहीं है फिर भी तंत्र के कुछ विचार और सिद्धान्त योग में समाहित किए गए हैं। इसी को कहीं-कहीं तंत्रयोग के नाम से पुकारा जाता है। प्रायः योग में मन और शरीर को एक दूसरे से अलग और स्वतंत्र दिखाने की कोशिश की जाती है, जंब कि तंत्र शरीर और मन को एक करने के प्रयत्न की मान्यता देता है। इसी प्रकार तंत्र यौगिक ध्यान को एक दमनात्मक और निष्क्रिय क्रिया मानता है। यद्यपि तांत्रिकी यंत्र "एक प्रकार की मानसिक कल्पनाशीलता" है। वस्तुतः यह एक अत्यधिक-सक्रिय, उग्रवादी और मानसिक केन्द्रीकरण का ढांचा है जो परम सत्य की ओर ले जाने के लिए विशिष्ट रूप से इन्द्रियों को उत्तेजित उद्दीप्त कर, उसे नियंत्रित कर और इससे उत्पादित ऊर्जा और जीवनी शक्ति को सम्पूर्ण व्यक्तित्व के निर्माण के साथ-साथ परम सत्य की ओर प्रवाहित करता है। वह प्रक्रिया योग द्वारा निष्क्रिय ध्यान द्वारा मन को विचार विहीन करने और फिर उसे नए विचारों से भरने की क्रिया से पूर्ण भिन्न है। तंत्र कहता है कि परिस्थिति में प्रविष्ट हो जाइए उससे मुक्ति मिलगी ही। तांत्रिकी यंत्रों की कल्पना करते वक्त आंखें बन्द हो जाती हैं क्योंकि उस वक्त गहरा मानसिक केन्द्रीकरण होता है। इसे हीं लोग भ्रमवश ध्यान समझते हैं, लेकिन यह ध्यान से भिन्न एक दूसरे प्रकार का "मानसिक बिन्दु संगमीकरण" है। वास्तव में तंत्र योग नहीं है, न ध्यान है। तंत्र पुरुष को पुरुषत्व और नारी को नारीत्व से आर्विभूत कर देता है। इससे वे शक्ति से लबालब भर जाते हैं बिना किसी पूर्वाग्रही के वह मन, शरीर और आवेग-सम्वेग को स्वतंत्र छोड़ देता है और इसी प्रक्रिया में वह उस पर नियंत्रण स्थापित करता है। फिर उसे प्रति उत्पादित शक्ति को केन्द्रीकरण का इच्छित दिशा की ओर आह्लादित व्यक्तित्व पाने के लिए प्रवाहित कर देता है। इसमें न ध्यान, न योग और न साम्प्रदायिक अन्धविश्वास की आवश्यकता पड़ती है स्वाभाविकताओं से साधक को इसमें आध्यात्मिकता है।

तांत्रिकी धारणा और अनुप्रेक्षित चिन्तन—धारणा का अर्थ होता है—धारण करना अपनाना या आत्मसात कर लेना। हमारी पांच कर्मेन्द्रियां और पांच ज्ञानेन्द्रियां धारणा के माध्यम हैं। सूंघकर, सुनकर, स्वाद लेकर, स्पर्श कर और देखकर ही हम कोई धारणा बनाते हैं। प्रिय-अप्रिय, सुख-दुख, अच्छा-बुरा, आदि से जुड़कर

उसी समय से हमारा मन, अप्रत्यक्ष धारणा बनाने के काम में जुट जाता है। हमारी आंखों की धरणा, बनाने में प्रमुख भूमिका होती है। देखना ओर धारणा का बनना एक साथ होता है और दोनों क्रियाओं में परस्पर सामंजस्य इतना परिपूर्ण होता है कि हम इस विभेद को जान ही नहीं पाते। साधारणरूप से देखने और धारणा में कोई अन्तर हीं नहीं दिखता। पूर्वाग्रह हम इसी क्रिया के चलते पालते हैं। धारणा के द्वारा हम वस्तु, व्यक्ति, और परिस्थिति से तादात्म्य सम्बंध स्थापित कर लेते हैं इसलिए उसका ध्यान बार-बार आता रहता है या उसका ध्यान करते रहते हैं। ध्यान की अवधि धीरे-धीरे बढ़ती रहती है और अंत में घंटों ध्यानमग्न हो कर बैठे रहते हैं। यही तो समाधि की स्थिति है।

तंत्र के अनुसार शरीर एक यांत्रिकी है। शरीर रूपी यंत्र के अंग-प्रत्यंग तथा अणु-अणु कलपुर्जे हैं। इस शरीर के अलावा हमारा सूक्ष्म शरीर मन में होता है। सूक्ष्म शरीर हमारे मन के अन्दर होता है। उसे तंत्र में काल्पनिक या मानसिक यंत्र कहा गया है। इस शरीर रूपी तंत्रिका का काल्पनिक यंत्र जितना अधिक स्पष्ट, व्यवस्थित और अंग-प्रत्यंगों के अनुरूप बिम्ब बनेगा उतनी ही असानी से हम शारीरिक, मानसिक और आवेगिक-संवेगिक बीमारियों से छुटकारा पाएंगे। मानसिक बिम्ब या यंत्र को स्पष्ट सुव्यवस्थित करने के लिए ही तंत्रोपैथी में उद्दीपन, नियंत्रण और प्रवाहीकरण विधियों का सहारा लिया जाता है। मांसपेशियों का संकोचन, प्रसारण, मंथन-मर्दन शोधन-भेदन क्रिया जीवनी शक्ति की उद्दीप्तिकरण क्रिया ही तो है। धारणा को मजबूत करने क़ी ही उपर्युक्त क्रियाएं हैं। इसी प्रकार व्यक्ति, वस्तु व्यवसाय और परिस्थिति के अनुकूल-प्रतिकूल हमारी धारणाएं बनती बिगड़ती रहती हैं। इसके कारण हम असफल या सफल, आकर्षक या अनाकर्षक, स्वस्थ या अस्वस्थ तथा सुखी या दुखी हुआ करते हैं। हमारी धारणा एक तरफ निराशावादी और नकारात्मक होकर हमें अस्वस्थ्य, अनाकर्षक, असफल और दुखी बना देती है तो दूसरी ओर सकारात्मक, और आशावादी बनाकर स्वस्थ, सफल और सुखी बनाती है।

जैन धर्म में मन मूर्च्छा को तोड़ने वाली विषयों, वस्तुओं परिस्थितियों के अनुचिन्तन को अनुप्रेक्षा कहा गया है। अनुप्रेक्षा, अनु प्रेक्षा शब्दों से बना है। जिसका अर्थ होता है अनु बार-बार अनुरूप या अनुसार और प्रेक्षा केवल देखना अच्छा-बुरा, सुख, दुःख आदि किसी भाव को न आने देना। इस प्रकार अनुप्रेक्षा किसी वस्तु, विषय, विचार और दृश्य और व्यक्ति को देखने का अभ्यास है। इसमें व्यक्ति पूर्वाग्रह से मुक्त होकर वैज्ञानिक दृष्टि से व्यक्ति, वस्तु, विषय आदि पर केन्द्रीभूत होता है। रोगी के साथ अगर चिकित्सक दुखी हो जाये तो वह न रोग के सम्बन्ध में पूरी तरह छानबीन कर सकता है, और न उसकी चिकित्सा ही अच्छी तरह कर सकता है। इसीलिए चिकित्सक रोगी पर केन्द्रीभूत रहता है।

रोगी उस समय गौण रहता है। वह रोगी को देखते वक्त अच्छा श्रोता और द्रष्टा बना रहता है।

जैसा हमारा चिन्तन चलता रहता है वैसा ही प्रभाव शरीर पर पड़ता है। और भाव भी वैसा ही बनता-बिगड़ता है। एक ही शब्द या वाक्य को बार-बार दुहराते रहने से अंतःकरण पर वैसा ही प्रभाव पड़ता है, और मन में उतनी ही मजबूत धारणा होती है। चिन्तन धारणा भाव परिवर्तन की एक प्रक्रिया भी है। अगर अनुप्रेक्षा निर्लिप्त होकर केवल देखना मात्र है तो चिन्तन धारणा अनुप्रेक्षित चिन्तन है। मंत्र पर भावना के साथ स्थितिकरण (कन्डिशनींग) भी अनुप्रेक्षित चिन्तन है। जेठ की दुपहरी को कड़ी धूप में चलते वक्त "आहः बहुत धूप है" का बार-बार दुहराना धूप से होने वाली पीड़ा को अधिक बढ़ा देता है। उसी प्रकार "ऐसा होता ही है" को दुहराना घूप से होने वाली पीड़ा को महसूस ही नहीं होने देता और सामान्य होकर यात्रा कर लेता है। अनुप्रेक्षित चिन्तन "तंत्रोपैथी में" "चिन्तन चिकित्सा" के रूप में एक प्रभावशाली क्रिया होती है। इस क्रिया को आदत छोड़ने, भय का भूत भगाने, भौगोलिक भावप्रवणता तथा सामाजिक प्रवणता के शैतान को दूर रखने के लिए कराया जाता है। वस्तुतः यह भाव परिवर्तन की क्रिया का अभ्यास है।

अनुप्रेक्षा चिन्तन किसी शब्द वाक्य, व्यवहार या वस्तु (जल, द्रव्य, वस्त्र) आदि को अभिमंत्रित करने, किसी असाध्य रोग को दूर करने की एक प्रभावशाली क्रिया है। यंत्र को मंत्र के इसी अनुप्रेक्षित चिन्तन से हीं तांत्रिकी आभिमंत्रित करते हैं, लेकिन यह याद रहे, इसका प्रयोग केवल शुभ कामों, रोग, निवारण और सेवा भाव से ही करना चाहिए। मरण-मारण और उच्चाटन के लिए इसका प्रयोग कर कुछ तांत्रिकों ने अपने आपको तो हास्यास्पद स्थिति में ला ही दिया है, तंत्र जैसे जीवनोपयोगी कर्मकाण्ड को भी वदनाम कर आमलोगों की नजर मे सन्देहास्पद कर दिया है। तंत्रोपैथी, आम लोगों के बीच तंत्र के विधेयक और सकारात्मक पक्ष को प्रस्तुत कर सर्वांगीण स्वास्थ्य और सर्वोत्तम व्यक्तित्व प्राप्ति का एक मात्र तांत्रिक कर्मकाण्ड को प्रस्तुत करता है। अगर व्यक्ति को बुरी भावना का असर होता है तो अच्छी भावनाओं का असर तो अवश्य ही होगा आयुर्वेद। में औषधियों को शुभ भावनापूर्ण करने के लिए उसे बार-बार खरल करना माना गया है। अनुप्रेक्षित चिन्तन की आवृत्ति भी उसके साथ होती रहती है। हमारी आदत अवचेतन मन का एक भाग बन जाता है। और अपने आप उसकी आवृत्ति होती रहती है। अनुप्रेक्षा चिन्तन की आवृत्ति उस आदत से मुक्ति दिला देती है। इच्छुक शक्ति को विकसित करने अनुप्रेक्षा चिन्तन का कोई दूसरी मिसाल नहीं मिलती किसी विशेष इच्छा को लक्ष्य के रूप में अनुप्रेक्षित चिन्तन ही प्रस्तुत करता है।

तांत्रिक मुद्राएं, मंत्र और तंत्र—एक मनुष्य अगर वास्तव में जीना चाहता

है तो उसे जीवन के अधिकांश क्षेत्रों में गतिशील होना होगा। गतिशीलता की गति अपने शरीर से प्रारम्भ होती है और मन की गति से सम्बंधित हो, वह आंधी की तरह आध्यात्मिकता तक का रास्ता तय करती है। इसी बीच वह स्वास्थ्य, सफलता और आह्लाद से भरता जाता है। मुद्राएं मंत्र और यंत्र जो तंत्र के प्रमुख अंग हैं, इस यात्रा में वाहन का काम करते हैं और व्यक्ति को परम सत्ता तक पहुंचाते हैं। पाप से घृणा करो पापियों से नहीं यह तंत्र का ही उद्घोष है। इसीलिए ऋषियों ने तिरस्कृत पापियों को अपना साथी बनाया, उन्हें प्यार दिया और विशिष्ट तांत्रिक यौगिक क्रियाओं द्वारा उनके जीवन में परिवर्तन लाए। आधुनिक चिकित्सक व्यक्ति की मूल प्रवृत्तियों पर यांत्रिक बौधिकता का विजयोत्सव मनाता और उसका प्रतिनिधित्व करता है। जबकि भविष्य का तंत्रोपैथी चिकित्सक बौधिकता पर आध्यात्मिक अन्तर चेतना का प्रतिनिधित्व करेगा और व्यक्ति के सर्वांगीण स्वास्थ्य प्रदान कराने का उत्तराधिकारी बनेगा। तंत्र की यह मान्यता है कि मनुष्य का भाग्य (विकास) अध्यात्म(भगवान) से जुड़ा है, शरीर, मन, और बुद्धि से नहीं। जिस प्रकार बिजली के तार बिजली उत्पन्न नहीं कर सकते उसी प्रकार न मस्तिष्क विचारों को और न शरीर आत्मा को उत्पन्न कर सकता है। हमारा शरीर, मन, मस्तिष्क और बुद्धि हमारे सूक्ष्म भावों और स्पंदनों को ले आने और ले जाने का वाहन मात्र है। मुद्रा, मंत्र, इन सूक्ष्म भावों और स्पंदन को ढोने के लिए, शरीर, मन, बुद्धि और मस्तिष्क को उपयुक्त बनाना है। और व्यक्ति को सर्वांगीण स्वास्थ्य प्रदान करता है।

मुद्राएं—आसन और मुद्राएं एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। बिना उपयुक्त आसन के मुद्राएं और बिना सामयिक मुद्राओं के आसन हमारे लिए पूर्ण लाभदायी नहीं हो पाता। आसन शरीर को एक विशिष्ट स्थिति में लाना और मुद्राएं उसी स्थिति में अंग विशेष की मांस पेशियों का किसी पशु-पक्षी या देवता विशेष की तरह संचालन करना या स्थायित्व प्रदान करना है। मुद्राएं दो प्रकार की होती हैं। पशु मुद्राएं और देव मुद्राएं। पशु मुद्राएं शरीर के एक विशेष स्थिति में अंग संचालन औद देव मुद्राएं हाथ की अंगुलियों और आंख सहित पूरे मुखमण्डल की एक विशिष्ट अभिव्यक्ति है। तंत्र के अनुसार देव मुद्राओं की संयोग से पशु मुद्राएं करने से पशुपतिनाथ की तरह फलदायी होती हैं। पितृयज्ञ का आसन है तारासन और विभिन्न अंजलि अर्पणात्म देव मुद्राओं द्वारा ही पितृयज्ञ करने के लिए 20वीं सदी के महाकौल श्री आनन्दमूर्ति जी ने व्यवस्था दी है।

(क) हमारे शरीर के प्रत्येक मांसपेशियों के अग्रभाग पर प्राप्ति-प्रसारण यंत्र (एन्टेना) लगा है। इसीलिए प्रत्येक मांस पेशियों का नियंत्रण कक्ष मस्तिष्क सम्वाद लेने और देने का कार्यक्रम अवाध गति से दिन-रात करता रहता है। यह स्वमेव (रिफलेक्स) और इच्छित (विशफुल) क्रिया द्वारा चलता रहता है। शरीर के किसी

भाग पर मच्छर या मक्खी बैठने के साथ ही उसे उड़ाने की क्रिया का होना इस बात की पुष्टि करता है। (ख) मन के भावों की अभिव्यक्ति मस्तिष्क से पहले आंखों में झलकती है फिर गले (वाणी) तथा अंत में मांसपेशियों द्वारा अभिव्यक्ति होती है। गुस्सा का भाव मस्तिष्क में तत्क्षण आंखों में झलक जाता है। उसके बाद वाणी द्वारा (गाली, गलौज, अपशब्द आदि बोलना) और अंत में मांसपेशियों द्वारा (मार-पीट करना, हाथापायी पर उतर आना) अभिव्यक्त होता है। इस प्रकार आंख, गला और मांसपेशियां मनोभावों के मस्तिष्क से भ्रमण का मार्ग है। अतः इसी रास्ते से किसी भाव को शान्त और शमन किया जा सकता है या उसमें परिवर्तन लाया जा सकता है "तंत्र में इस ही भाव से मुद्रा और मुद्रा से भाव की उत्पत्ति होती है" कहा गया है। अभिनेता बार-बार प्रेम और अपराध की मुद्राएं और भाव अभिव्यक्ति का अभिनय करने से उनके पारिवारिक जीवन में स्थायित्व और सामाजिक जीवन में उथल-पुथल होती रहती है। अभिनेता और अभिनेत्रियों की शादी बार-बार करना या उन्हें छोड़ना या उन्हें क़िसी सामाजिक अपराध में भाग लेना इसी कारण प्रायः देखने-सुनने को मिलता है। अतः यह स्वयं सिद्ध बात है कि आंख और शरीर की व्यस्थित मुद्राएं मस्तिष्क को सुव्यवस्थित और सुनियोजित ढंग से सर्वांगीण स्वास्थ्य पाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। मुद्राओं से शारीरिक मांसपेशियों का समुचित रूप से संकोचन-प्रसारण उनका मंथन और मालिश हो जाता है।

(ग) एंडार क्रिस एक जैव रसायन है, जो व्यक्ति के पीड़ा तनाव-दबाव ललकार पूर्ण स्थिति, अत्यधिक प्रतियोगिता, दुश्चिन्ता और भय की स्थिति और अनुभव के समय होता है। इसकी उत्पति अंधविश्वास, स्थान, परिस्थिति, व्यक्ति या विषय से भी हो सकतह है। गर्भवती महिलाओं के लिए शरीर में आखिरी के तीन महीने में बड़ी तेजी के साथ इस रसायन की उत्पति होती है और प्रसव के समय अपनी चरम स़ीमा पर पहुंच जाती है। मस्तिष्क, इसके शमन के लिए लिब्रियम या वैलियम जैसे शामक रसायन को उत्पन्न करता है। इन रसायनों को उत्पन्न करने का बेमिसाल तरीका है। क्रमिक, सिर से पैर तक की विभिन्न आसनारूढ़ मुद्राएं जिनका विस्तार के साथ तंत्रोपैथी के प्रथम भाग में वर्णन किया गया है। इससे शारीरिक और मानसिक व्याधियों का उपचार भी आसान हो जाता है। यही एंडारफिस रसायन, किसी बीमारी को असाध्य बनाने में सक्रिय सहयोग देता है। वैज्ञानिकों ने अब यह मान लिया है कि मुद्रा द्वारा या अन्य तांत्रिकी विधियों द्वारा उत्पन्न किया गया वैलियम नाम के रसायन से शरीर उसी प्रकार प्रभावित होता है जैसा दवाओं या मादक द्रव्यों से। मैकगिल विश्वविद्यालय में डा. रेमण्ड के शब्दों में–"जो चिकित्सक या मनोचिकित्सक इस बात की आज अहमियत नहीं देता वे बासी हो चुके हैं।"

(घ) एक स्वस्थ शरीर और स्वस्थ मन से ही आध्यात्मिक उपलब्धि की प्राप्ति होती है, चंचल चित्त और उदास मन से नहीं। शान्त चित्त और प्रसन्नचित्त सर्वांगीण स्वास्थ्य और आध्यात्मिक उपलब्धि दोनों के लिए आवश्यक है। इसी प्रकार दुनिया ठीक हमें वैसी ही दिखाई देती है जिस तरह से उसे हम देखते-समझते या देखना-समझना चाहते हैं। संसार हमारे मन का प्रतिबिम्ब है। हमारी सोच के मुताबिक ही यह दुनिया हमें अच्छी या बुरी लगती है। एक रोगी को संसार में चारों और रोग और रोगी ही दिखाई पड़ते हैं। हम अकसर एक अर्द्धविक्षिप्त की तरह सोचते रहते हैं। हम ही एक अच्छे हैं बाकी सभी बुरे हैं, जो मैं कहता हूं वही ठीक है और जो जानता हूं वही अन्तिम ज्ञान है। इस तरह की बीमारियों से छुटकारा दिलाने के लिए दया और दवा नहीं, बल्कि मुद्राएं यंत्र-मंत्र का अभ्यास कराना होगा।

(च) जीवन परिणाम से नहीं चलता वह गुणवत्ता और रसवत्ता से चलता है। इसमें कमी होते ही सारा वैभव-विलास बेमतलब और सारहीन दिखने लगता है। और दुःख और तकलीफ अभिशाप लगने लगते हैं। गुणवत्ता और रसवत्ता का ही सम्मिलित नाम उमंग और उल्लास है। इस उमंग को ही जीवन को सजाने-संवारने (सर्वांगीण स्वास्थ्य) के लिए मुद्रा, यंत्र और मंत्र के माध्यम से उद्दीपन, नियंत्रण और इच्छित दिशा में प्रवाहीकरण की क्रिया तंत्र सिखाता है। फिर किशोरावस्था, उमंग, युवावस्था, संघर्ष, उत्साह और प्यार का मीठा-मीठा दर्द, प्रौढ़ावस्था, साहचर्य, सहयोग और सौहार्द का स्वादिष्ट मीठा परिपाक तथा वृद्धावस्था शान्ति, चैन और सुख का मिश्रित पेय बन जाता है। जीवन को सार बनाने और उसमें खुशी की लहर दौड़ाने के लिए तंत्रोपैथी के विभिन्न अभ्यासों में प्रवीण होना ही होगा। जीवन में उमंग और उल्लास की कमी के कारण ही व्यक्ति रोगी होता है और असफलता अमर बेल की तरह उससे लिपटी रहती है।

(छ) षणमुखी मुद्रा, शाम्भवीमुद्रा, सर्प मुद्रा की चर्चा द्वारा शास्त्रों में जीवन के सर्वांगीण विकास के लिए आवश्यक बताया गया है। इन मुद्राओं के साथ काल्पनिक तांत्रिक यंत्रों और मंत्रों का संयोग जीवन में मणि-कंचन की प्रभा बिखेर देता है। इन मुद्राओं की चर्चा विस्तार से इसी पुस्तक में उपयुक्त स्थान पर की जाएगी। योग की खेचरी मुद्रा, जालंधर मुद्रा, महामुद्रा, अश्विनी मुद्रा, शक्ति चालिनी मुद्रा, योनि मुद्रा आदि परम्परागत मुद्राएं हैं जिनकी उपादेयता आज भी विश्वसनीय और सटीक है। देव मुद्राओं में प्रमुख अंकुश मुद्रा, प्राण अवान मुद्रा, व्यान मुद्रा, आवागहनी मुद्रा आदि की चर्चा तंत्रोपैथी के प्रथम भाग में विस्तार से की गई है।

मंत्रः—हमारे जीवन को सर्वाधिक ध्वनि प्रभावित करती है। ध्वनि ही हमारी शिक्षा, संस्कृति और व्यवहार का आधार है। ध्वनि पशु, पक्षी की बोलियों का अनुकरण है। तारे, सुर, लय आदि का आधार ध्वनियां ही हैं। व्यंजन वर्ण और

स्वर ही शब्द, वाक्य, भाषा, भाव और संस्कृति की अभिव्यक्ति है। हर भाव कुछ ध्वनि के रूप में अभिव्यक्त एक होता है जैसे हंसने के साथ-हा, हा, हा, हा ध्वनि होती है। और दुखः दर्द के साथ आहा ओफ आदि। इन ध्वनियों को अगर उसी रूप में प्रतिध्वनित किया जाय तो वह भाव आ जाता है जैसे एक हंसने वाले के साथ बिना बात के पूरी तरह समझे ही हंसने और दुखी के साथ दुखी हो जाते हैं। विशिष्ट ध्वनि के ऋषियों ने इसीलिए मंत्र कहा है। कुछ शब्द और वाक्य भी ऐसे होते हैं, जिन्हें सुनते आदमी प्रेम से सराबोर हो जाता है, उमंग से भर जाता है या गुस्सा से पागल हो जाता है। वे शब्द और वाक्य मंत्र ही तो हैं। इष्ट मंत्र, पंच तत्त्व ध्वन्यात्मक तथा गुरुमंत्र गुरुद्वारा अवस्थीकृत मंत्र हैं।

महाप्राण ध्वनि ब्रह्माण्ड ध्वनि है, प्राण ध्वनि है, तथा निर्माण विकास और सृष्टि ध्वनि है। ऋषियों ने इसे ध्यान के पूर्व भूमिका की निर्माण ध्वनि कहा है। यह मस्तिष्क के स्नायुओं को सक्रिय करने, मन की चंचलता को कम करने की ध्वनि है, तथा विचारों को शान्त और श्वांस-प्रश्वांस को गहरा करने की ध्वनि है। सुखासन या वज्रासन में मेरुदण्ड को सीधा कर स्थिरता के साथ बैठें। आंखों को बंद कर हाथों की ब्रह्म मुद्रा (नाभी के पास अंगुलियां आपस में गुत्थी हुई रहें) रखें। और ध्वनि नाक द्वारा उच्चारित करते हुए धीरे-धीरे श्वांस को भरें, चित्त को कंठ कूप के स्वरतंत्र पर केन्द्रित करते हुए मं मं मं ध्वनि को कंठ और नाक से निकालते हुए मस्तिष्क में भौंरे की ध्वनि की तरह "गूंजन" का अनुभव करें। यह भावना भी करते रहें कि गूंजित ध्वनि तरंगों का आभावलय या औरा बन रहा है। जैन तंत्र में इसे रक्षा कवच कहा गया है।

अनुप्रेक्षित चिन्तन मंत्र अभिमंत्रणा की एक प्रभावशाली क्रिया है। उसे भाव अवस्थिकरण क्रिया (कन्डीशनिंग) क्रिया भी कह सकते हैं। गुरुओं ने तांत्रिकों और ऋषियों ने भी इस विधि का सहारा लेकर किसी मंत्र विशेष को किया करते थे। और करते हैं। दिव्य शक्तियां और स्वास्थ्य में कुछ अभिमंत्रित वाक्यों को दिया गया है और उनके सम्बंध में वैज्ञानिक स्पष्टीकरण भी प्रस्तुत किया गया है। उन वाक्यों को आप स्वयं अभिमंत्रित कर शक्ति क्षय होने से बच सकते हैं। और जीवनी शक्ति सम्प्राप्त कर स्वस्थ, सफल और आकर्षक व्यक्तित्व को पा सकते हैं।

तांत्रिक मंत्रों की स्वाभाविक प्रस्फुटित ध्वनि, यंत्रों की मानसिक कल्पनाशीलता और एकाग्रता के लिए विशिष्ट कर्मकाण्ड स्वस्थ, सफल आकर्षक और आह्लादित व्यक्तित्व पाने का एक मात्र रास्ता है। एक तांत्रिक सृष्टि को समग्र रूप से देखता है। और सृष्टि की समग्रता ही तो परम सत्ता और परम धाम है। तांत्रिक मंत्र, एक विशेष प्रकार की ध्वनि है जिनका कोई अर्थ नहीं होता लेकिन किसी विशिष्ट आवेग-सम्वेग के क्षण अपने आप मुंह से बोली जाती है। इसे तांत्रिक कर्मकाण्ड में, मानसिक प्रतिमा (यंत्र) को मन के अत्यधिक उमंग और उल्लास की स्थिति

में यथाशीघ्र स्थापित किया जाता है। इस उमंग को नियंत्रित करने और उसे इच्छित दिशा में प्रवाहित करने के लिए भी किया जाता है।

पारस्परिक मंत्र ध्वनि है "ॐ" यह परम सत्ता और परम ज्ञान की ध्वनि है। यह तांत्रिकों को पता था कि हमारा भारी भरकम शरीर वास्तविक रूप में एक स्पंदनात्मक तत्त्व (एटम और मोलेक्युल्स) की गति है। मनुष्य का ही नहीं सभी प्राणियों के जीवन का आधार लयात्मक स्पंदन है। मंत्र मन के स्पंदन के साथ सुर में सुर मिलाता है, उसकी बारम्वारता को संचालित करता है। और शारीरिक चक्रों को खोलता है जिसके माध्यम से सारी मानसिक शक्तियां प्रवाहित होती हैं। मंत्र ध्वनि, मन, शरीर और आवेग-सम्वेग को ऊपर इस प्रकार प्रतिस्थापित कर लेता है कि मंत्र ध्वनि के साथ ही वह उदीप्त, नियंत्रित और निर्दिष्ट दिशा में प्रवाहित होने लगता है।

मंत्रों का व्यवहार तांत्रिकी यंत्रों के साथ-साथ किया जाता है। मंत्रों को तांत्रिक कर्मकाण्ड के वक्त मन-ही-मन या जोर से बोला जाता है। उसे यंत्रों (मानसिक बिम्बों) पर काल्पनिक दृष्टि से लिखा भी जाता है। इस प्रकार ध्वनि और दृश्य दोनों माध्यम से प्रतिस्थापना की जाती है। जिन्होंने व्यवहारिक मनोविज्ञान का अध्ययन किया है वे रसियन वैज्ञानिक पायलोव से अच्छी तरह से परिचित हैं। वे घंटी बजाकर अपने कुत्ते को खाना देते थे। उन्होंने देखा कि कुछ दिनों के बाद घंटी बजते ही कुत्ते के मुंह से लार टपकने लगी थी। यही प्रतिस्थापना की आधारशिला है—चाहे वह वस्तु विचार या भाव की प्रतिस्थापना ही क्यों ने हो। तांत्रिक प्रतिस्थपना अत्यधिक जटिल है।

वास्तव में चेतन रूप से मंत्र का यंत्र (मानसिक काल्पनिक बिम्ब) शारीरिक उद्दीपन, नियंत्रण और प्रवाहिकरण का एक विशिष्ट प्रकार संबंध स्थापित हो जाता है जो मंत्र की ध्वनि के साथ ही शारीरिक, मानसिक उद्दीपन पैदा करता है। और जो अवेचतन मन की प्रतिक्रिया का कारण बन जाता है और जो नियंत्रण करता है। वरना वह साधक को ही अपने नियंत्रण में ले ले। तांत्रिक कर्मकाण्ड में जीवनी शक्ति को मंत्र नियंत्रित करता है वरना इसके अभाव में आवेग-सम्वेग उसे ही नियंत्रित कर ले। इन मंत्रों का न कोई अर्थ होता है और न कोई छोर। प्रायः वह गले की ध्वनि यंत्र और नाक से बोला जाता है। मंत्र विशेष, किसी विशिष्ट उत्तेजना के बल निकले सरल और स्वाभाविक स्वर मात्र है–जैसे खुशी में आ हा् हा् हा् हा् अधिक टंड लगने पर हू हू हू अधिक गर्मी लगने पर ओ ह ह ह ह ह आदि। बज्रयानी तिब्बतियन तांत्रिकों के कुछ ऐसे ही मंत्र निम्न प्रकार के हैं।

उद्दीपन मंत्र –ओम्म्म्म् अहदी, ओम म्म्म्
नियंत्रण मंत्र –पा ह्ह्ह,दा ह्ह्ह्ओमाहम्म्म्
प्रवाहिकरण मंत्र –आह्ह्ह नाह्ह्ह्याह्ह्ह,तावन्न्न्

उपर्युक्त मंत्रों का स्मरण और अभ्यास शारीरिक सम्वेदनशील अंग, उसका मानसिक बिम्ब (यंत्र) के साथ करने की तांत्रिकी ने व्याख्या दी है और इसके बाद किसी विशिष्ट उद्देश्य की प्राप्ति की आशा की जा सकती है।

तंत्रोपैथी में रोग ग्रस्त अंग का और उससे सम्बन्धित चक्रों का विशिष्ट महत्त्व, उस अंग विशेष को उद्दीप्त करने और नियंत्रित करने के लिए होता है। विशिष्ट मुद्रा पर द्वार विशिष्ट चक्र की मांसपेशियों का संकोचन प्रसारण और उस चक्र विशेष के आकार और रंग का मानसिक बिम्ब (यंत्र) के साथ, मंत्रों की ध्वनि से स्वभावतः वह रोग ग्रस्त अंग उद्दीप्त हो रोग नियंत्रण और शारीरिक, मानसिक ऊर्जा और शक्ति, रोग को दूर करने की दिशा में प्रवाहित हो जाती है। निरोगावस्था में संयम और शरीर के प्रत्येक अंग को जीवन्त रखने के लिए तंत्रोपैथी क्रियाएं करनी आवश्यक हो जाती हैं। तंत्रोपैथी के संयात्मक मुद्राओं के साथ-साथ तन्मात्रिक मंत्रों का ही व्यवहार किया जाता है।

तंत्र पंचतत्त्व (पृथ्वी जल, अग्नि, वायु और आकाश) द्वारा शरीर का सृजन मानता है। समानुपातिक मात्रा में इन तत्त्वों का शरीर में रहना एक स्वस्थ शरीर, सतुंलित मन और आध्यात्मिक क्रिया-कलाप का द्योतक है। इन तत्त्वों के असंतुलन से शरीर, मन और आध्यात्मिक क्रिया-कलाप में व्यतिक्रम और असमानता आ जाती है। बीमारी और असमानता का प्रारम्भ यहीं से शुरू होता है। पंच तत्त्वों की पांच तन्मात्राएं, शरीर में पांच विशिष्ट स्थान चक्र, पांच तरह का स्वाद, पांच तरह की गति, पांच तरह का बीज मंत्र, पांच तरह के आकार, रंग स्वभाव, इन्द्रियां, प्राण से अभिव्यक्ति होती है। पंच तत्त्वों के असुंतलन को संतुलित करने के लिए इनके द्वारा बीमारी की पहचान और उपचार दोनों काम लिया जाता है। इन तत्त्वों की क्षतिपूर्ति प्रायः शारीरिक क्रियाओं द्वारा कराई जाती है। रोग की गम्भीरता की स्थिति में इनकी बाह्य आपूर्ति भी की जाती है। इनकी बाह्य (दवा) आदि पर निर्भरता की प्रवृत्ति, उसकी दुरुपयोगिता और उससे उत्पन्न बुरे प्रभावों से बचना तंत्रोपैथी का मूल उद्देश्य है दवा की बढ़ती कीमत भी आम लोगों की पंहुच से बाहर होती जा रही है। वैसी स्थिति में तंत्रोपैथी पद्वति से इलाज सरल, सुगम और लाभप्रद होगा। पंचतत्त्वों के बीज मंत्रों का उपयोग इसीलिए तंत्रोपैथी में मूल रूप से किया जाता है। वे बीज मंत्र हैं लं, वं, रं, यं और हं। निम्न तालिका से उपर्युक्त बातें अधिक स्पष्ट हो जायेंगी।

1. प्राण निद्रा में गला सुसुप्ति में हृदय और जागृत में आखों में होता है।

2. तालु के सीध में ऊपर की ओर कंठ या जीभ के मूल के सीधु में ऊपर की ओर सहस्रार चक्र होता है।

3. शक्ति स्थान मूलाधार और मणिपुर चक्र।

तत्त्व नाम	तत्त्व तन्मात्र	तत्त्व रंग	तत्त्व चिन्ह	तत्व स्वाद	तत्त्व गति	तत्त्व परिणाम	तत्त्व स्वभाव	तत्त्व स्थान	तत्त्व चक्र	तत्त्व इन्द्रिया	तत्त्व ईंग्लिश	तत्त्व वीजमंत्र नाम	तत्त्व कर्मेन्द्रिय
पृथ्वी	गंध	पीला	चौकोंण	भीण	सामने	12 अंगुल	भारी स्वास	गुख्रा से दो अंगुल	मुलाधन	नासिका	pelfi plexus	लं	मूलत्याग शक्ति
जल	रस	सफेद	अर्द्ध	कसैला	नीचे	16 अंगुल स्वास	शीतल	लिंग मूल	स्वाधिष्ठान	रसना	Hypogas Gieplayus	वं	मूत्र त्याग शक्ति
अग्नि	रूप समान वायु	लाल	त्रिकोण	चर्पण	उपर	4अंगुल स्वास	गरम	नाभी मूल	मणिपुर	आँख	Epgasfrin Sofarplaxus	रं	पैर संबंधी चालन शक्ति
वायु	स्पर्श	धूम्र या मेघाछन्न	षटकोंण गोल	धट्टा	तिरछा	8 अंगुल स्वास	चंचल	हृदय के पास	अनाहत	त्वचा	cordiae flexus	यं	हाथ संबंधी चालन शक्ति
आकाश	श्रवण	मिन्डित रंग	बूंद-बूंद जैसा	कड़वा	कई तत्वों मिन्डित गति	दोनों नासिकाओं के भीतर	कई तत्तों का मिलजुला	कंठ के विशुद्ध पास	विशुद्ध	कान	erepral plexuo	हं	वाणी
		यंत्र	लिंगाकार		दिव्य	दृष्टि	यंत्र है।	आज्ञाचक्र	भृकुटी के	fleduca भीतर	ॐ cereprad pdexur	गति नाद	
		शुभ्र पूर्णचन्द्र	सहस्र दल कमल	बिन्दु	—	प्राण	औमन	स्थिर	सहधार चक्र	तालु के उपर मस्तिष्क में जहां खोंपडी से सटत है	ceredla pfxas		

यंत्रः–तांत्रिक यंत्रों को हम दो भागों में बांट सकते हैं– बिम्बात्मक और प्रतीकात्मक। प्रतीकात्मक यंत्र ज्योमितिक और बिम्बात्मक यंत्र वस्तु, विषय और व्यक्ति का हु-बहू कल्पना में मानसिक बिम्ब और काल्पनिक प्रतिछाया होती है। यही मानसिक बिम्ब या काल्पनिक प्रतिछाया भय, प्रेम मानसिक रुझान, उमंग, उल्लास आदि की स्थिति में व्यक्ति, विषय और वस्तु का प्रेत खड़ा कर देता है। अधिक बीमारियां ऐसी ही प्रेत बाधा रूप है। मानसिक बिम्ब इन्द्रिय प्रेत या अंग विशेष के प्रेत को जगाता है और उद्दीपन यंत्र पर उद्दीपन मंत्र को मात्र काल्पनिक दृष्टि से लिख देने से और उस पर ध्यान केन्द्रित कुछ क्षण ही करने से तत् सम्बंधी बीमारी दूर होने लगती है। यही पद्धति अपने में रचनात्मक क्रियाशीलता लाने या मानसिक तनाव-दबाव दूर करने या दुःचिन्ता से छुटकारा पाने या बृहद् के तरफ मोड़ने के काम में अपनायी जाती है।

इस संसार का जो भी अस्तित्व है वह अस्तित्व हमारे मन के अन्दर है। हमारा यह भौतिक शरीर सूक्ष्म शरीर का ही विस्तार है। यही हमारी मानसिक परिकल्पना के यंत्र हैं। इस यंत्र में शारीरिक, मांसपेशियां, त्वचा, तंत्र, रक्त, प्रवाह तंत्र, पाचन तंत्र, ग्रन्थि तंत्र, मस्तिष्क तंत्र आदि शामिल हैं। हमारा सम्पूर्ण शरीर ही तांत्रिक काल्पनिक यंत्र है जो हमारे मन में है। उसका बिम्ब या प्रेत खड़ा करने के लिए अपने सम्पूर्ण शरीर से ऐसे परिचित होना पड़ेगा। निम्नलिखित अभ्यास से हम एक सप्ताह के अन्दर ही अपने पूर्ण शरीर को मानसिक यंत्र के रूप में मन में प्रतिबिम्बित कर सकते हैं।

एक आदमकद आइने के समक्ष नंगा खड़ा हो जाइए और अपने प्रतिविम्ब को समग्र रूप से पूरी आखें खोलकर देखिए। बंद कर उसका मानसिक विम्ब बनाने का प्रयत्न कीजिए कुछ क्षण के बाद आंखें खोल कर बिम्ब वनाइए। अगर विम्ब बनाने में कठिनाई होती हो तो फिर आखें खोलकर प्रतिबिम्ब को गहराई से देख लीजिए। फिर शरीर के प्रत्येक अंग का सिर के बाल से पैर के अंगूठे तक नीचे से ऊपर और ऊपर से नीचे गौर से देखते जाइए और आंख बंद कर प्रतिबिम्ब का विम्ब मन में बनाते जाइए। प्रतिदिन 15 मिनट सुबह-शाम एक सप्ताह का अभ्यास अपने शरीर का पूर्ण बिम्ब बनाने में मन सफल हो जाएगा। एक मास के अभ्यास के बाद शरीर के किसी अंग का मानसिक बिम्ब बनाकर उस अंग की मुद्राएं करने के योग्य आप बन जायेंगे और उस अंग की बीमारियों को भी दूर कर सकेंगे।

तंत्रोपैथी में शारीरिक और मानसिक रोगों के इलाज के लिए रोगी में मनपसंद एक आपाद मस्तक चित्र को हम मांगते हैं उसे देखकर उसका बिम्ब मन में बनाने के लिए उससे अभ्यास कराते हैं। दो घंटे के व्यवधान पर 5 मिनट के लिए इसका अभ्यास कराते हैं। जैसे ही रोगी अपने चित्र का मानसिक बिम्ब बनाने लगता है उसे रोग्रस्त, अंग का बिम्ब बनाने को कहते हैं साथ-ही-साथ उपयुक्त मुद्रा भी करने के लिए वतला देते हैं। अगर रोगी ने सही मानसिक बिम्ब बना लिया तो रोग 24 घंटे के अन्दर नियंत्रण में आ जाता है। किसी-किसी

अवस्था में अंग विशेष का चित्र खरीदवा कर या मंगाकर उसे दिखाते हैं और उसका बिम्ब बनाकर मुद्रा करने के लिए प्रेरित करते हैं। तत्सम्बन्धी चक्रों की मुद्राओं में तत्त्व बीज मंत्र का उच्चारण भी वांछित फल देता है। आइने के समक्ष खड़े होकर बिम्ब बनाने के अभ्यास के वक्त उद्दीपन मंत्रों का प्रयोग अवश्यमभावी हो जाता है। अंग विशेष के बिम्ब बनाते वक्त उसमें सम्वेदना का काल्पनिक अनुभव का भी अभ्यास करना चाहिए।

तंत्र एक समग्र दृष्टि है, संश्लेषणात्मक पद्धति है, शक्ति संगमीकरण या केन्द्रीकरण प्रक्रिया है। शरीर ही सुख और परमानन्द का माध्यम है। लेकिन पूर्ण सूक्ष्म शरीर यंत्र में ही स्थित रहता है। मन की कल्पना से परे शरीर का कोई अस्तित्व नहीं होता। शरीर का प्रत्येक अंग तांत्रिकी उपचार के लिए उपयुक्त है। वाद्य यंत्रों की तरह हमारा शरीर होता है। लययुक्त स्वर निकालने के लिए शरीर तंत्र के अंग प्रत्यंग को पूरी तरह जानकर वाद्य यंत्रों को ठीक-ठाक करना होगा। यांत्रिक सूक्ष्म शरीर ही वास्तविक कर्मशाला है, जहां वाद्य यंत्रों की सफाई, मरम्मत और नवीनीकरण होता है। मुद्रा और यंत्र के सहयोग से भाव की उत्पति आसानी से होती है। मुद्रा और भाव से यंत्र और यंत्र और भाव से मुद्रा की उत्पति होते, भाव से आकर रोगी उछलकूद (संकोचन-प्रसारण) मचाने लगता है।

प्रतीकात्मक यंत्र वैदिक कर्मकाण्डों और दार्शनिक अभिव्यक्तियों में काम आता है। इस प्रकार के यंत्र ज्योमेतिक आकार प्रकार के होते हैं जिसमें द्विभुज, चतुर्भुज, वृत्त आदि के माध्यम से वैदिक कर्मकाण्ड को क्रमबद्ध करने और विषय को स्मरण रखने के लिए काम में आता है। कुछ तांत्रिक यंत्र विशिष्ट इष्ट की अभिव्यक्ति के प्रतीक होते हैं और उन्हें धार्मिक स्थानों में रखने, उन्हें धारण करने और पूजने की परम्परा भी है। तंत्रोपैथी में ऐसे यंत्रों की आवश्यकता नहीं के बराबर होती है।

उद्दीपन, नियंत्रण और प्रवाहीकरण–तंत्र का आधारभूत तत्त्व है–उद्दीपन, नियंत्रण और प्रवाहीकरण। तंत्र के अनुसार पुरुष या नारी का सामर्थ्य असीमित है। वह कभी खाली नहीं हो सकता। उसकी शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक क्षमता बेमिसाल है और उसमें ऊर्जा शक्ति और आनन्द का भंडार क्रमशः बढ़ता ही जाता है अगर वह तांत्रिक अभ्यासों को आधे घंटे तक प्रतिदिन करता रहे। उम्र (बुढ़ापा) और रोग (बीमारी) इसमें कोई बाधा नहीं डाल सकती। एक तांत्रिक व्यक्ति ही निरोग और दीर्घायु हो सकता है। चमत्कारिक व्यक्तित्व एक तांत्रिक के लिए ही सम्भव है, जो हमारे सर्वांगीण व्यक्तित्व को सुन्दर, स्वस्थ, आकर्षक, सफल और आह्लादित बना देता है।

उद्दीपन–सम्वेदनशीलता को ही उद्दीपन किया जा सकता है। विषय, वस्तु व्यक्ति कोई भी सम्वेदनशील हो सकता है और सभी पर यही उद्दीपन नियंत्रण और प्रवाहिकरण सूत्र लागू होता है। किसी परिस्थिति, वस्तु या व्यक्ति का सम्वेदनशील होना समस्या नहीं है उसका उद्दीपन समस्या है। और समाधान भी। निर्णायक लड़ाई लड़ी जा सकती है। शक्ति का स्रोत, स्वयं उदीप्त विषय, वस्तु

या व्यक्ति ही बनाता है। जैसे-जैसे उदीपन होगा वैसे-वैसे योग की तीव्रता बढ़ती जाती है और उसी तीव्रता से जीवनी शक्ति-ऊर्जा का प्रस्फुरण भी होता जाता है। चोर अपने को पुलिस द्वारा पीछा करते हुए देखकर अत्यधिक उदीप्त हो जाता है। और उसमें जीवनी शक्ति लगाकर भाग जाता है, या लड़कर परास्त कर देता है, या लड़ते-लड़ते जान दे देता है। ललकार भरी परिस्थिति में ही चमत्कारिक ऊर्जा और शक्ति व्यक्ति में देखी जाती है। उद्दीपन व्यर्थ का खेल नहीं, ऊर्जा का स्रोत है।

वैसे तो व्यक्ति का पूरा शरीर ही सम्वेदनशील है लेकिन ज्ञानेन्द्रियां और कर्मेन्द्रियां अत्यधिक सम्वेदनशील हैं। रूप, रस, गंध, श्रवण और स्पर्श, विषय, वस्तु और व्यक्ति संबंधी उद्दीपन हमारी इन्द्रियों को उदीप्त करती है। उद्दीप्त इन्द्रियों के नियंत्रण से खुशी और आनन्द की मात्रा कई गुणा बढ़ जाती है और उसी मात्रा में शक्ति और ऊर्जा का प्रस्फुरण भी होता जाता है। उसी का प्रवाहीकरण कर हम सांसारिक सुख और आध्यात्मिक उपलब्धि को पाते हैं। हम लोग अपने शरीर को जानते हैं लेकिन उसके साथ प्रतिदिन रहते हुए भी, किसी न किसी कारण से उसमें व्याप्त सम्वेदना की उपेक्षा करते रहते हैं। बदले में उससे उत्पन्न उमंग और उल्लास से वंचित संवेदनात्मक तरीकों से अपने शरीर के साथ आत्मसात कर लेता है। मुस्कुराना और हंसना आत्मसात् सम्वेदना की शारीरिक अभिव्यक्ति है। हास्याकृति और प्रसन्नाकृति इसी की दो मुद्राएं हैं। इनके प्रदर्शन से प्रसन्नता का भाव मन में आ जाता है। और रोग-शोक और संताप को आधे से अधिक कम कर देता है।

आनन्द का केन्द्रबिन्दु हमारा भौतिक शरीर नहीं, बल्कि मन है। शारीरिक गुदगुदाहट को मन गहराई से महसूस करता है और प्रतिक्रिया स्वरूप उस गुदगुदाहट की तीव्रता के साथ खिल-खिला पड़ता है। सभी भौतिक शरीर एक जैसे हैं। और सुन्दर व्यवस्थित परिवेश, आत्मिक सम्वंधी, पत्नी, वेटी, मां, वहन तथा सुरुचि पूर्ण सुस्वादु आहार, उद्दीपन के तत्त्व हैं। उद्दीपन से आनन्द के प्रत्येक पाठार में पहुंचा जा सकता है। उद्दीपन को, उग्रीकरण और केन्द्रीकरण प्रक्रिया से शक्ति और ऊर्जा, शरीर में अधिक पैदा करना होता है। तंत्रौपैथी में उग्रीकरण पेटेन्ट मरहम और एन्टीबायोटिक दवाओं से भी अधिक रोगी के लिए कारगर होता है। घाव को साफ करना, रोगी को सुन्दर सुरुचिपूर्ण वातावरण में रखना, सुस्वादु और सरस भोजन करना, चिकित्सक और आत्मीयजन का स्पर्श करना, एक उग्रीकरण प्रक्रिया है जो रोगी को शीघ्र स्वस्थ होने में अहम भूमिका अदा करता है।

तांत्रिकी नियंत्रण–उद्दीपन का अभ्यान्तरिक रुकावट नियंत्रण और बाह्य रुकावट अनुशासन कहलाता है, लेकिन प्रायः लोग नियंत्रण का पर्यायवाची शब्द अनुशासन को समझते हैं और वह बुरा भी नहीं। तंत्र नियंत्रण को शक्ति सम्पात को कई गुणा अधिक बढ़ा देने का स्रोत मानता है। मंत्र के माध्यम से उद्दीपन का नियंत्रण उद्दीपन का मंत्र पर अवस्थिकरण है। अभ्यास द्वारा अगर एक बार

मंत्र के साथ उद्दीपन नियंत्रण का अवस्थापन (कंडिशनिंग) कर दिया गया तो उद्दीपन मंत्र के उच्चारण या यंत्र पर मानसिक दृष्टि से लिख देने से ही विशिष्ट तरह के उद्दीपन नियंत्रित हो जाते हैं। विभिन्न आवेग-सम्वेग को नियंत्रित करना और उससे उत्पन्न ऊर्जा और शक्ति को व्यक्ति के सम्पूर्ण स्वास्थ के लिए उसी दिशा में प्रवाहित कर देना एक तांत्रिक क्रिया है। गुस्सा, द्वेष, घृणा आदि में अत्यधिक शक्ति सम्पात होता है। जिसे दवा देने से तनाव, दवाव, दुःचिन्ता आदि का व्यक्ति शिकार हो जाता है और अभिव्यक्तिं से सामाजिक प्रतिष्ठा, झगड़ा-टंटा, मार-पीट तथा कोर्ट कचहरी में उसकी अन्तिम परिणति होने से समय-शक्ति और धन तीनों का अपव्यय और दुरुपयोग होता है। नियंत्रण आवेग सम्वेगों को न दबाना और न अभिव्यक्त करना है बल्कि मंत्र के साथ उसका प्रवाहीकरण कर स्वास्थ्य, सफलता, और आह्लाद की ओर मोड़ देना है, बहा देना है।

अनुशासन का अर्थ है—चुनाव सदा अपने लक्ष्य को चाहे वह व्यक्ति हो या विषय या वस्तु "हां" कहिए। हर पारितोषिक की कीमत चुकानी होती है और अनुशासन की कीमत "हां" है। अनुशासित जीवन ही मानव जीवन है, स्वास्थ्य, सफलता और प्रगति है। अनुशासन, जीवन के सुख और दुःख को इस तरह व्यवस्थित करता है कि वह दुःख संघर्ष और अनुभव के आधार पर खुशी को पकड़ लेता है। अनुशासन चाहे वह व्यक्तिगत, सामाजिक या संगठनात्मक हो अनुकरणीय है। अनुशासन कठोरता नहीं दृढ़ता है, अच्छी आदत डालने की योजना है। यह उद्देश्य नहीं लक्ष्य प्राप्ति का माध्यम है। यह काम करने का सुन्दर परिवेश है। और सरल, सुगम मार्ग है। वास्तविक अनुशासन न हमें आगे की ओर ढकेलता है न जीवन को खींचता है। वह तो हमें आगे बढ़ने में मदद करता है। जब हम समझ जाएंगे कि अनुशासन आत्मप्रताड़ना नहीं आत्मसाधना और आत्मानुशासन है, तब हम इसकी मान-मर्यादा करेंगे। यह खेल नहीं विशेष होने की कला है।

उद्दीपन को नियंत्रित या अनुशासित करना हमारे शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक संतुलन और आध्यात्मिक उत्थान के लिए पहुंचना जरूरी है। ऊर्जा और जीवनी शक्ति का स्रोत उद्दीपन ही है, जो हमें सर्वांगीण व्यक्तित्व प्रदान कर सकता है बशर्ते हम उसे नियंत्रित और अनुशासित करने की कला में प्रवीण हों। तंत्रोपैथी में नियंत्रण पर अधिक जोर इसीलिए दिया जाता है।

प्रवाहीकरण—नदियों का प्रवाहीकरण उपयुक्त और सामयिक न होने से कहीं, सूखा और कहीं बाढ़ की स्थिति होती है और हिन्दुस्तान में आए दिन प्रायः प्रति-वर्ष इसका सामना करना पड़ता है। उसी प्रकार मानवीय शक्ति और ऊर्जा का उपयुक्त प्रवाहीकरण न होने से व्यक्ति के रोक-शोक असफलता और संताप का कारण बनता है। तंत्र की यह मान्यता है कि हमारे शरीर में कई सम्वेदनशील केन्द्र हैं। विशेषकर हमारी इन्द्रियां तो अति सम्वेदनशील हैं इसलिए ये ऊर्जा और जीवनीशक्ति का केन्द्र भी हैं। शक्ति और ऊर्जा का विभिन्न इन्द्रियों से सम्बंधित इच्छाओं की पूर्ति और नैराश्य दोनों स्थिति की अत्यधिक स्फुरण होता है। इनके

प्रवाहीकरण की विधि न जानने के कारण वे व्यर्थ के कामों में या बरबाद हो जाता है या गलत दिशा में प्रवाहित होकर बीमारी व असमय बुढ़ापा, अकाल मृत्यु, असफलता और दुःख का कारण बनती है।

तांत्रिक प्रवाहीकरण नियंत्रित शक्तियों को इच्छित लक्ष्य की ओर ले जाने के लिए व्यावहारिक विधि को बतलाता है। यह अवचेतन मन प्रशिक्षण और मंत्र के साथ शक्ति के अवस्थीकरण (कन्डिशनिंग) की एक प्रक्रिया है। इसकी चर्चा हम विस्तार के साथ दिव्य शक्तियों का स्फुरण और स्वास्थ्य तथा अवचेतन मन और स्वास्थ्य शिर्षक में करेंगे। हम यहां मन के अवस्थिकरण के सम्बंध में आलोचना करेंगे। मन किसी अप्रिय परिस्थिति में टूटे नहीं, चाहे असफलता हो या प्रिय का विछोह या कोई हादसा। साथ ही साथ ऊर्जा और शक्ति का प्रवाहीकरण निर्देशित दिशा में कैसे किया जाये, इस विधि पर भी यहां विचार करेंगे।

विशिष्ट इच्छा को निर्धारित करके ही तांत्रिक कर्म काण्ड प्रारम्भ करना चाहिए। क्योंकि निरुदेश्य तांत्रिक क्रियाएं नहीं होतीं। इच्छाशक्ति और ऊर्जा का प्रवाहीकरण विशिष्ट उद्देश्य के लिए ही किया जाता है। अपनी इस इच्छा को दूसरे को वताना भी नहीं चाहिए। किसी उद्दीपन को नियंत्रण के वाद प्रवाहीकरण मंत्र को काल्पनिक अक्षर में मस्तिष्क पर साफ-सार्फ लिखना चाहिए। इससे इच्छाशक्ति का प्रवाह तेजी से होता रहता है। जिसे समाधान या संकल्प कहते हैं। इस अवस्था में केन्द्रीकरण की शक्ति भी बढ़ जाती है। प्रवाहीकरण मंत्र का श्वास-प्रश्वास से लगाकर जाप करते हुए सो जाना चाहिए। इसके लिए पुस्तक में दिये गए मंत्र को या किसी बीज मंत्र को अवलम्बन वनाया जा सकता है। एक महीने के अभ्यास से ही आशातीत सफलता मिलेगी।

मन को दृढ़ बनाने के लिए पूरे शरीर को इस प्रकार तैयार करें कि किसी प्रकार की परिस्थिति का मुकावला कर सकें। इसके लिए तीन दिन या 7 दिन का पूरा उपवास करें। उपवास के दो दिन पहले से ही फलों के रस और दूध को लें और प्रचुर मात्रा में लें। उपवास तरल पदार्थ से तोड़ें। फलों का रस लेना उपयुक्त होगा। शाम को हल्का सुपाच्य आहार प्रचुर मात्रा में मात्र छोंकी हुई सब्जी के साथ लें। धीरे-धीरे अपने सामान्य भोजन पर आवें।

इस उपवास का उद्देश्य आमाशय, पाचनतंत्र, स्नायुतंत्र, रक्त संचार तंत्र और ग्रन्थितंत्र को पूर्ण विश्राम देना है। उपवास से यह सावित करना है कि आपको अपने पेट पर पूर्ण नियंत्रण है। इससे शारीरिक पीड़ा के मूलभूत, भय पर विजय पा ली जाती है। उपवास के दिनों में अवचेतन मन काफी सक्रिय और सम्वेदनशील रहता है। इन दिनों नकारात्मक चिन्तन और चिन्तक से दूर रहना अच्छा होता है। इस समय चेतन मन का अवेचतन मन से सम्पर्क स्थापित करने का आसान तरीका सूक्ष्म हो जाना है। इस अवधि में निम्न वाक्यों का स्वयं संसूचन (आटो सजेशन) करते रहना चाहिए।

"मुझे अपने शरीर पर पूर्ण भरोसा है। मैं एक स्वाभिमानी, कर्तव्यनिष्ट और अपनी ....इच्छा की पूर्ति के लिए पूर्ण सक्षम हूं। मैं इच्छा करता हूं कि

अपने पर आश्रितों को पूर्ण आर्थिक सुरक्षा देने के योजनावद्ध रूप में कार्य प्रारम्भ कर दूं और साथ-साथ समाज का काम भी एक नेता के रूप में करूं इससे हमें पारिवारिक प्यार और सामाजिक प्रतिष्ठा दोनों मिलेगी।"

श्री श्री आनन्द मूर्ति जी ने उद्दीपन नियंत्रण और प्रभावीकरण के लिए मात्र इष्ट मंत्र ही उयुक्त मानने की व्यवस्था दी है। उनके द्वारा अभिमंत्रित मंत्र "बाबा नाम केवलम्" को हमने उपयुक्त पाया है बशर्ते उसे निर्दिष्ट लक्ष्य के साथ साफ-साफ सम्मिलित कर लिया जाय।

मानवी दिव्य शक्तियां और स्वास्थ्य

संस्कारित होना शक्ति सम्पन्न होना है।

मैग्नेटिक ऊर्जा या विद्युत ऊर्जा या अन्य तरह की ऊर्जाएं, जिस रूप में ब्रह्माण्ड में पायी जाती हैं, उसी मात्रा में प्रत्येक व्यक्ति में पूर्ण घनत्व के साथ पायी जाती हैं। इसी को तंत्र कहता है–जो विश्व ब्रह्माण्ड में है वह इसके पिण्ड में भी है। पिण्ड चैतन्य है इसलिए उसमें सृजन, पालन और संरक्षण की शक्ति भी, मूलरूप से प्रत्येक व्यक्ति को प्राप्त है। व्यक्ति सृजन शक्ति के सहारे ही सहयोग, समिश्रण, समन्वीकरण, अन्वेषण आदि करता रहता है और समाज, संस्कृति आदि को आगे बढ़ाकर प्रगति कराने की प्रक्रिया में स्वयं स्वस्थ सफल आकर्षक और आह्लादित व्यक्तित्व को पा लेता है। पालन शक्ति के सहारे, अपने आश्रितों को सामाजिक और आर्थिक सुरक्षा देने के क्रम में उनके द्वारा प्यार-दुलार, मान-मर्यादा, सहयोग-सौहार्द को पाकर, आध्यात्मिकता की ओर मोड़ता है और संहारक शक्ति के द्वारा बैर, द्वेष, ईर्ष्या, लोभ और अहंकार को अपने में पालकर, समाज की प्रगति की गाड़ी पीछे मोड़ने के चक्कर में वह रोग, दुःख, पश्चाताप और दीनता रूपी चार चक्रों में कुचल कर रोग, असफलता, अनाकर्षण और दुःचिन्ता का शिकार हो सिर धुन-धुन कर पछताता है।

व्यक्ति की जीवनी शक्ति ब्रह्माण्ड में पायी जाने वाली सारी ऊर्जाओं का अद्वितीय मिश्रित और समन्वित रूप है। यही शक्ति व्यक्ति में सृजनशीलता, आश्रितों को सामाजिक और आर्थिक सुरक्षा देकर पालन कर्ता और अपने आप में निराशावादिता, नकारात्मक चिन्तक, प्रमादी और आलसी बनाकर, संहारकर्ता वना देता है। इसी जीवनी शक्ति को अगर तांत्रिकी पद्धति द्वारा व्यक्ति उद्दीपन नियंत्रण और प्रवाहीकरण की क्रिया में प्रवीण हो जाता है तो आसान ढंग से सम्पूर्ण जीवन (मृत्युप्रयंत) को आनन्दमय, आकर्षक और शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक दृष्टि से स्वस्थ बना देता है। तंत्रोपैथी के यंत्र, मुद्राएं और मंत्र वैज्ञानिक अवस्थिकरण के सहारे सक्रियता, उद्यमशीलता और रचनात्मकता के स्रोत को कभी सूखने नहीं देता है।

तंत्र संस्कार निर्माण की एक योजनाबद्ध पद्धति है। आज से हजारों वर्ष पूर्व उसे भारत ने धार्मिक कर्मकाण्ड के रूप में अपनाया था जो मौखिक रूप से गुरु-शिष्य परम्परा के रूप में पुश्त दर-पुश्त से चला आ रहा है। तंत्र दर्शन नहीं व्यावहारिक जीवन पद्धति है। वह ईश्वर पर विश्वास करता है और जीव-जगत को सापेक्षित सत्य मानता है। मनुष्य के संसारिक जीवन के तीन पक्ष होते हैं-शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक जिसे तंत्र में अन्नमय कोष, मनोमय कोष और आनन्दमय कोष कहते हैं। विज्ञानमय और हिरण्यमय कोष अध्यात्म के सर्वोच्च कोष हैं जो पूर्ण अतिन्द्रिय है। श्री श्री आनन्दमूर्ति जी ने इसे शारीरिक-प्राणिक, प्राणिक-मानसिक और मानसाव्यमिक क्षेत्र कहा है। क्रिया के आधार पर वर्गीकरण किया गया है। व्यक्ति की जीवन यात्रा के ये सुगम मार्ग हैं। तंत्र ने इसे प्रेयस से होकर श्रेयस तक जाने का पथ कहा है। इसे ही पुरुषार्थ पथ कहा गया है। यही पथ जीव से प्रारम्भ होकर जगत होते हुए ईश्वर तक पहुंचता है। तंत्र कहता है, जिसने जीव जगत और ईश्वर से तादात्म्य सम्बन्ध स्थापति नहीं किया, वही अस्वस्थ, असफल, अनाकर्षक और दुखी है।

मूलरूप से तंत्र अपनी पहचान की जड़ तक पहुंचता है। वह साधक को अपने आप की पहचान उस हद तक करा देता है कि उसने पहले कभी अपने आप के सम्बंध में अनुभव किया ही नहीं था। तंत्र व्यक्ति में जीवनी शक्ति का उस सीमा तक सम्पात करा देता है कि व्यक्ति दिव्य व्यक्तित्व को प्राप्त कर लेता है और विज्ञानमय और हिरण्यमय कोष का मार्ग प्रशस्त कर देता है। यह जीवन के हर क्षेत्र में चेतन-अवचेतन मन के अधिक गहराई से केन्द्रीभूत होने की कला सीखता है जिससे मनुष्य दीर्घायु होकर जीवन का भरपूर आनन्द लेते हुए आध्यात्मिकता की चरम सीमा पर पहुंच जाता है। वास्तव में 'तंत्रोपैथी मन को कदम-कदम पर अवस्थिकरण करने की एक विधि है। जिस पद्धति की चर्चा यहां में करूंगा उससे मानव जीवन की उन विकट परिस्थितियों पर विजय पाने की दक्षता और कुशलता प्राप्त होती है। इससे व्यक्ति के अपने चिर प्रतीक्षित अभिलाषा, मन की शान्ति, आत्मबोध और आत्मविश्वास, आर्थिक समृद्धि और आपसी समझ की भी प्राप्ति होगी। इससे जीवन सार्थक और उपादेय (पेय ऑफ) बनेगा। तंत्रोपैथी आकर्षक और खुशमिजाज व्यक्तित्व को प्राप्त कराकर सफलता और सर्वांगीण स्वास्थ्य को चरम सीमा तक पहुंचाने का विज्ञान है।

"ब्रह्म सत्यं जगदपि सत्यापेक्षितम" आनन्द सूत्रम के इस सूत्र ने ब्रह्म को सापेक्षिक सत्य और प्राकृतिक और जीव को अपेक्षित सत्य कहा है। यह संसार चमत्कारित शक्ति से भरा पड़ा है। संसार की जीव, जगत और ईश्वर तीन श्रेणियां हैं और तीनों अनादि, अनन्त और बोधगम्य हैं। तीनों का कभी नाश नहीं होता। प्रकृति सत्य पर चैतन्य नहीं, पर जीव और ईश्वर चैतन्य और सत्य दोनों हैं। परम सत्ता आनन्दमयी है, इसलिए उसे सत्यं, शिवं, सुन्दरम् कह कर तंत्र ने अभिव्यक्त किया है। जीव का एक छोर शक्ति (प्रकृति) और दूसरा छोर शिव हैं। प्रकृति शक्ति रूपा है। वही अन्तर्मुखी बन शिव हो जाता है और शिव

बर्हिमुखी बन शक्ति रूप ले लेते हैं। जीव शक्ति और शिव का मूर्त अभिव्यक्ति और स्वरूप है। वह शक्ति का विस्तार कर ही सच्चिदानन्द स्वरूप बन जाता है इसलिए व्यक्ति, प्रकृति और पुरुष की दिव्य, अलौकिक और अद्भुत शक्तियों का भण्डारण है, खजाना है। ये अलौकिक शक्तियां एक ओर हमें स्वस्थ, आकर्षक सफल, आकर्षक और आह्लादित व्यक्तित्व देती है तो दूसरी ओर मोक्ष-मुक्ति प्राप्त कराती है। मनुष्य की दिव्य और अलौकिक शक्तियों पर आज पाश्चात्यमुल्कों और अमेरिका में अनेक परीक्षण और प्रयोग हो रहे हैं और कुछ पर से धीरे-धीरे पर्दा भी हटता चला जा रहा है। जिस दिन वैज्ञानिक पूर्ण रूप से भौतिक और आध्यात्मिक शक्ति पर से पर्दा हटा देंगे उस दिन भौतिकता और आध्यात्मिकता की दूरी मिट जाएगी।

अणुजीवत् मानवीय दिव्यशक्तियों के स्रोत

श्री पी. आर. सरकार ने अणुजीवत् का सिद्धान्त (थ्युरी ऑफ माइक्रोभाइटा) में अणुजीवत् को जीवन का स्रोत और उद्भव का स्रोत माना है। अणु जीवत तीन प्रकार के होते हैं। सूक्ष्म, अतिसूक्ष्म और सूक्ष्मातिसुक्ष्म। ये मित्रवत और शत्रुवत हैं। अणुजीवत् सूक्ष्म, पंचभूतों से, अतिसूक्ष्म, पंच इन्द्रियों द्वारा और सूक्ष्मातिसूक्ष्म हमारे विचारों द्वारा ही फैलते हैं और आकृष्ट होते हैं। सूक्ष्मातिसूक्ष्म अणुजीवत इस ब्रह्माण्ड में बेरोक-टोक जहां चाहें आते-जाते हैं और वे ग्रहमण्डलों को भी एक किए रहते हैं। ये ब्रह्माण्ड के स्पंदन और सम्वेदन को ग्रहण करते रहते हैं। ये स्थल, पहाड़, और हमारे खोपड़ी के बीच में से भी निकल जाते हैं और हमें पता नहीं होता। इन्हें हमारे ऋषियों और महर्षियों ने अपने अध्यात्मबल से देखा था और इसे प्रेतयोनि या देवयोनि कहा था। और इनकी 7 श्रेणियां उन्होंने निश्चित की हैं–यक्ष, किन्नर, गंधर्व, विद्याधर, विदेहलीन, सिद्ध आदि और बाम्बे हास्पिटल के गैरियाटालॉजिस्ट डॉ. रमाकान्त कैनी, जो आधुनिक चिकित्सा शास्त्र की सर्वोच्च डिग्री पाने के बावजूद अपने स्पर्श से ही रोगियों को अच्छा कर देते हैं, उन्होंने अपने ढंग से, अनुभव के आधार पर अणुजीवत की इन सात श्रेणियों या उन्हें मित्रवत् होने की बात को कबूल किया है। जीव वैज्ञानिक, प्रोफेसर, फ्रैंकब्राउन ने अपने प्रयोगों के आधार पर इन्हें भूमण्डलीय स्पंदन और सम्वेदन का संग्राहक (रिसीवर) माना है और इनका समस्त ग्रहों में व्याप्त विद्युत चुम्बकीय शक्ति के बीच किसी-न-किसी प्रकार का सम्बंध बताया है। कुछ वैज्ञानिकों ने भी परमाणु से भी सूक्ष्म कण न्यूत्रिनी का पता लगा कर उसमें घनत्व, भार, विस्फुटन आदि चुम्बकीय क्षेत्र का कोई भौतिक लक्षण नहीं पाया है। उनके अनुसार अरबों खरबों की तादाद में यह सूक्ष्म अणु प्रकाश की गति से भी तेज गति से हमारे शरीर के भीतर बाहर और सारी पृथ्वी पर चक्कर लगा रहे हैं। ये भौतिक गुण है। इसलिए इनकी गति को कोई भौतिक कण नहीं रोक सकता। कभी-कभी भौतिक कणों और न्युट्रीनी में टक्कर होने से विस्फोट होता

है जिसको वैज्ञानिक देख पाते हैं। गणितज्ञ श्री एंडिया डाब्स ने साइत्रोन अणु की कल्पना की है तथा बताया है कि साइत्रोन ही मस्तिष्क के न्यूरोन कणों से जुड़कर परा चेतना के लिए द्वार खोल देता है। अन्तरिक्ष वैज्ञानिक एक्सेलफारसाफ ने नइण्डोन नाम के कण को अवचेतन मन को ब्रह्मणीय चेतना से जुड़ने और अतिन्द्रिय ज्ञान कराने का जिम्मेदार माना है।

इस प्रकार से आज के वैज्ञानिक भी अणुजीवत् के सिद्धान्त को किसी न किसी रूप में अपने वैज्ञानिक प्रयोगों के आधार पर सिद्ध करते जा रहे हैं और उनके मित्रवत् होने की पुष्टि कर रहे हैं। तात्पर्य यह कि मनुष्य की चेतना को ब्रह्माण्ड की चेतना से अलग नहीं किया जा सकता और न उन्हें काल तथा स्थान की सीमा से बांध कर ही रखा जा सकता है और न उनकी शक्ति सीमा का ही निर्धारण किया जा सकता है। इस ब्रह्माण्ड की भू चेतना सम्पूर्ण रूप से व्यक्ति चेतना के माध्यम से प्रकट हो सकती है अगर व्यक्ति थोड़ा अभ्यास करे। यह शरीर और मन इसका माध्यम है। मन एक ओर सूक्ष्म पंचभूतों का कार्य करता रहता है और दूसरी ओर सच्चिदानन्द के प्रतिबिम्बों को भी ग्रहण करता है। शरीर और मन ही भौतिकता और आध्यात्मिकता का स्रोत तथा विभिन्न अद्‌भुत मानवीय शक्तियों का उद्दीपन, नियंत्रण और प्रवाहीकरण का यंत्र है।

यह इष्ट मंत्र, बीजमंत्र और अभिमंत्रित मंत्रों की पुष्टि और परितुष्टि करता है। अपने मन की शक्ति को तंत्रोपैथी के मंत्र और यंत्रों के सहारे सम्पूर्ण प्रकृति को अपने अनुभव की सीमा में लाया जा सकता है और उसे अधीन किया जा सकता है। उसे अनुकूल बनाकर सर्वांगीण स्वास्थ्य और सम्पूर्ण व्यक्तित्व को पाया जा सकता है।

चमत्कारिक उपयोगी शक्तियों के उद्दीपन, नियंत्रण और प्रवाहीकरण के कुछ अनुप्रेक्षित चिन्तन मंत्र

दुनिया को देखते हुए आज ऐसा लगता है कि जिसके पास दौलत है या शोहरत मान-प्रतिष्ठा है वही शक्तिशाली व्यक्ति है। शोहरत चाहे सत्ता की हो, दौलत की हो या कला, योग्यता और नेतृत्व की वह व्यक्ति आम लोगों में विशिष्ट तो हो ही जाता है। समाज का नजरिया उसके प्रति बदल ही जाता है। इसे देखते हुए आज के नवयुवक रातों-रात, जैसे-तैसे दौलत बटोरकर (कमाकर नहीं), कला और योग्यता की नकल कर तथा दुनिया को भ्रमितकर-फुसलाकर नेता बन कर (राजनीतिक अपराधिकरण), मान-प्रतिष्ठा और इज्जत पाना चाहते हैं। अपनी कार्य क्षमता और चमत्कारिक शक्तियों पर उनका भरोसा रह ही नहीं गया है।

अनुप्रेक्षा चिन्तन मंत्र—हमारी जीवनी शक्ति और ऊर्जा के दो स्रोत हैं कार्मिक और वाचिक क्रियाएं। कार्मिक क्रियाएं हैं विभिन्न मुद्राएं और यंत्र और वाचिक क्रियाएं है मंत्र। तंत्रोपैथी के प्रथम भाग में मैंने विभिन्न मुद्राओं और अन्य क्रियाओं के सम्बन्ध में विशेष चर्चा की है। इस भाग में वाचक क्रियाओं पर

विस्तार से चर्चा करूंगा। मंत्र हमारे विधेयक वाचक क्रियाएं हैं। तंत्र ने उन वाचक क्रियाओं को दो भागों में बांटा है इष्ट मंत्र और गुरु मंत्र। इष्ट मंत्र वे वाचक क्रियाएं हैं, जिनका स्पंदनात्मक प्रभाव हमारे शरीर और मन पर पड़ता है। तथा गुरु मंत्र वे वाचिक क्रियाएं है जिनका चिन्तनात्मक और जपात्मक प्रभाव मन और शरीर पर पड़ता है। हम यहां विशिष्ट गुरु मंत्रों की सर्वांगीण स्वास्थ्य के सम्बन्ध में आलोचना करेंगे। जपात्मक चिन्तनात्मक क्रिया ही अनुप्रेक्षा चिन्तन क्रिया है।

गुरुमंत्र, अनुप्रेक्षात्मक चिन्तन वाक्यों को कहते हैं। क्योंकि ये मंत्र गुरुओं के मुख से प्रस्फुटित होते हैं या उन वाक्यों का प्रभाव व्यक्ति और व्यक्ति के शरीर और मन पर गुरु दर्शन, स्पर्श और सम्भाषण की तरह पड़ता है। ये वाक्य गुरु की तरह ही मार्ग दर्शक होते हैं। कष्ट निवारक होते हैं। ये गुरु मंत्र इच्छा शक्ति को विकसित करते हैं। ये ध्वनिप्रयोग और भावनात्मक चिन्तन से अन्तरमन (अवचेतन मन) को अनुकूल बनाते हैं। मानसिक तनाव और दवाव को शान्त करते हैं। वास्तव में अनुप्रेक्षात्मक चिन्तन "चिन्तन चिकित्सा" पद्धति और संस्कार निर्माण प्रक्रिया है। चमत्कारिक और उपयोगी शक्तियों के उद्दीपन नियंत्रण और प्रवाहीकरण के कुछ ऐसे मंत्र नीचे दिये जा रहे हैं। उनका अनुप्रेक्षात्मक चिन्तन सामान्य जीवन में आनेवाले मानसिक तनाव--दबाव को दूर करने में पूर्णरूप से सक्षम सिद्ध होंगे।

अनुप्रेक्षात्मक चिन्तन मुद्रा और आसन—अनुप्रेक्षात्मक चिन्तन वीरासन में सुप्त वज्र मुद्रा करते हुए वाक्य मंत्रों को, दुहराना है। वीरासन में बैठे मेरुदण्ड सीधा रहे, ग्रीवा सीने के समानान्तर रहे दोनों हाथ घुटनों पर रहें तथा पैर के टखने खुले हुए पर अंगूठे का अग्र भाग मिला रहे। वज्र नाड़ी जनेन्द्रिय और गुदा द्वार के बीच में होती है। इस नाड़ी पर पूरा मर्दन-मंथन और संकोचन-प्रसारण हो इसके लिए वीरासन में पीठ के बल लेट जायं। इसके साथ ही श्वांस छोड़ते हुए दोनों केहुनियों को जमीन में सटाएं और धीरे-धीरे शरीर को ढीला छोड़ते हुए दोनों हाथ को जंघे पर ले जाएं। सिर इस प्रकार जमीन पर पड़े कि आंखें, नाक और मुंह शरीर के ठीक विपरीत दिशा में हो जाय। शरीर शिथिल रहे प्रसन्नाकृति रहे। इसके बाद अनुप्रेक्षात्मक चिन्तन करें।

अनुप्रेक्षात्मक चिन्तन—बैठे विरासन में बैठकर प्रसन्नाकृति के साथ होता है। यह केवल चिकित्सा पद्धति मात्र ही नहीं है। इसमें आध्यात्मिकता के बीज भी भरे पड़े हैं। सिर्फ दो मिनट का प्रति दिन का अभ्यास जीवन को मोतियों के थाल से भर देगा। तंत्रोपैथी के इष्ट प्रणाम को अनुप्रेक्षा चिन्तन या उपयुक्त आसनात्मक मुद्रा कहते हैं। उसमें सुसुप्त वज्र मुद्रा भी है।

थकान मानसिक अभिव्यक्ति है, वास्तविकता नहीं

हम सभी मनुष्य विलक्षण चमत्कारिक शक्तियों से भरपूर हैं जिसे हम विभिन्न तांत्रिक अभ्यासों से बढ़ा सकते हैं, तंत्र की यह सदियों पुरानी उद्घोषणा है। जो अपनी नजर में बड़ा लगता है वही बड़ा बनता है। जो जितना बड़ा सपना देखता

है उतना ही महान बनता है। इससे वे शक्तियां आकर्षित होती हैं। थकान की अवस्था में व्यक्ति अपने को पूरी तरह अभिव्यक्त नहीं कर पाता चाहे वह मानसिक हो या शारीरिक। इस स्थिति में व्यक्ति की "आत्म-प्रदर्शन" की जन्मजात प्रवृत्ति या तो दब जाती है या तो मजाक बननें के भय से वह दबा देता है। वास्तव में व्यक्ति थकता नहीं है, थका दिया जाता है ।मांसपेशियों की थकान का विचार मात्र ही मांसपेशियों को थका देता है क्योंकि इससे आत्मशक्ति क्षीण होती है। वास्तव में हम एक अभिनेता हैं और दूसरों पर प्रभाव डालने के लिए किसी काम को थकाने-उबाने वाला बतलाते हैं। उसे कठिन और श्रम साध्य कहते रहते हैं। आधुनिक मनोवैज्ञानिकों ने इस विषय पर खोज किया है कि ऐसे व्यक्ति काम को कठिन, असम्भव और कष्टसाध्य ही नहीं बनाता बल्कि वह स्वयं काम करने में अपने को शारीरिक और मानसिक दृष्टि से थका हुआ महसूस करने लगता है। विश्वसनीय व्यक्ति या गुरु ऐसे व्यक्ति में, विभिन्न तरीके से प्रोत्साहित करके या रचनात्मक कार्य में लगाकर, शक्ति सम्पात कराते हैं और ऐसा व्यक्ति चमत्कारिक काम कर देता है।

अभिमंत्रित मंत्र से शक्ति सम्पात

जाप या तप की उपयोगिता और उपदेयता पर तंत्र में यत्र-तत्र सर्वत्र चर्चा हुई है। जप मंत्रों का ही होता है। वे मंत्र चाहे पंच तत्त्व स्पंदनात्मक और सर्व तत्त्व समन्वयात्मक ईष्ट मंत्र हो, या स्वाभाविक किसी आवेगित साम्वेगिक अवस्था में उच्चरित और अभिमंत्रित गुरुमंत्र। मंत्रों के साथ जाप करने से वस्तु, विषय या व्यक्ति के साथ, या उसकी भावनाओं के साथ परिस्थिति से प्रेरणा लेने और प्रतिरोध की क्षमता बढ़ाने या आध्यात्मिक गुणों से अपने को भरकर ऋद्धि-सिद्धि-समृद्धि को पाने या सच्चिदानन्द की प्राप्ति करने का द्वार खुल जाता है। जाप से मंत्र के साथ हमारे भाव और कार्य का अवस्थीकरण (कन्डीशनिंग) हो जाता है। तंत्र में महादेवजी ने पार्वती जी से तीन बार जोर देकर कहा है–

"जपात सिद्धिर्जपात् सिर्द्धिजपात सिद्धीर्वरानने।"

अर्थात् हे पार्वतीजी में प्रतिज्ञा करके कहता हूं कि जप से सिद्धि होती है, जप से जो प्रायः पूर्णवाक्य में हुआ करते हैं। आगे ऐसे ही अभिमंत्रित मंत्र दिए गए हैं, अपने लक्ष्य की पूर्ति की भावनाओं के साथ करने से, चाहे वह लक्ष्य सर्वांगीण स्वास्थ्य पाने के लिए हो या सर्वोत्तम व्यक्तित्व पाने का या मुक्ति-मोक्ष की कामना का, अवश्य सफलता मिलती है। वे मन का मंत्रों का जाप करने से भी कार्य सिद्धी होती है, ऐसा तंत्र का मानना है। शास्त्रों में ऋजु योग की चर्चा आई है, उसे जान लेना आवश्यक है। सत्संग, कथा श्रवण, कीर्तन और जाप ऋजु-योग के चार अंग हैं। ये चारों मंत्रों के साथ लक्ष्य, भाव अवस्थिकरण का अद्भुत तांत्रिक तारिका है। इससे सर्व कार्य सिद्धि होगी ही।

ऋजु योग से मंत्र प्रभाव में वृद्धि

सत्संग–विशिष्ट अभिमंत्रित मंत्रों की उपयोगिता और व्यवहारिकता के सम्वंध में मित्रों के साथ खुलकर चर्चा करना है। कथा श्रवण-उससे सम्बन्धित व्यक्तियों के स्वास्थ्य लाभ की कथा-कहानी की चर्चा करते रहना और सुनना-सुनाना है।

कीर्तन–उसे लयबद्ध बनाकर सस्वर पाठ करना और इसी के अनुसार ताल-लय से थिरकना और कीर्तन करना तथा जाप-अभिमंत्रित मंत्रों का सुबह उठते ही और रात को विस्तर पर शयन के लिए जाते ही, 15 या 20 बार दुहराना या पुनरावृति करना ही जाप है। शास्त्रों में 80 बार या 108 वार जाप करने की व्यवस्था दी गयी है।

ऋषियों ने कहा है–तत्त्वं अनादि निधनं ब्रह्म शब्द दुक्षरम,
विवर्तऽऽ थ भावेन प्रक्रिया जगतो यतः।

शब्द साधना ही योगमाया साधना

वाणी की साधना और कठोर व्रत एक दीर्घ साधना और सर्वांगीण स्वास्थ्य और सर्वोत्तम व्यक्तित्व पाने का सरल और सुगम मार्ग है। जीवन की वास्तविकता, यथार्थता और सुख, शब्द साधना में ही है। शब्द ही ब्रह्म है, इसे भी ऋषि ने “अक्षरं परमोनादः” शव्द ब्रह्मेति कश्यते की पुष्टि की है। शब्द ही नाद ब्रह्म है। चेतन और अचेतन मन को प्रभावित और आर्विभूत यह शब्द ही, सरलता से कर लेता है। यही जीवन, प्राण और सभी व्याधियों की महा औषधि है। यही योगमाया है। यह अभिमंत्रित की गई योग माया साधना है। सिर्फ निम्नलिखित विभिन्न वाक्यों को सुबह-शाम 10 बार उच्चारण कर मानस पटल पर प्रतिदिन लिख देना है।

अहम् को बचाने में जीवनी शक्ति का अपव्यय होता है

एक व्यक्ति दूसरे को प्यार और इज्जत तभी दे सकता है, जब वह स्वयं अपने से प्यार करता हो और अपनी इज्जत और मूल्य को पहचानता हो। जिसमें आत्मविश्वास नहीं होता या अपने आप के प्रति विश्वस्त और निश्चित नहीं होता, वह स्वयं व्याकुल और घबराया हुआ रहता है। वह सदा यह जानने की कोशिश में लगा रहता है कि दूसरे हमारे संबंध में क्या सोचते हैं या हमें प्यार करते हैं या नहीं। हम जब आर्थिक या सामाजिक दृष्टि से असुरक्षित रहते हैं, तब हमारा सम्बन्ध चाहे वह पारिवारिक या सामाजिक या संगठनात्मक हो इस बात पर निर्भर नहीं करता कि वह क्या चाहता है, बल्कि इस बात पर निर्भर करता है कि हम उस व्यक्ति से क्या चाहते हैं। ऐसे व्यक्ति की जीवनी शक्ति अपने अह्म को बचाने में खर्च हो जाती है। और जीवन में असफल और अस्वस्थ बना रहता है। आत्म विश्वासी या विश्वसनीय व्यक्ति की शक्ति अपने अहंकार

को बचाने में नहीं, दूसरों को आगे बढ़ाने, उसे उत्साहित करने और लगनशील बनाने में खर्च होती है और इस क्रम में वह जो मान, प्रतिष्ठा और प्यार दूसरों से पाता है। उससे वह शक्ति आह्लादिनी रूप लेकर उसकी झोली स्वास्थ्य, सफलता और आनन्द से भर देती है।

ऐसा होता ही है–अध्यात्मिक शक्तियां और विभूतियां केवल बुलाने से ही नहीं आतीं, उन्हें पाने के लिए तांत्रिक अभ्यासों को लगातार महीनों करके अभ्यस्त होना पड़ता है, उस की आदत डालनी पड़ती है और वैसी ही जीवन शैली को अपनाना पड़ता है। यह जीवन भर के अथक प्रयास से आती है। ऐसी श्रद्धा युक्त चमत्कारिक शक्तियों के स्फुरण के लिए निम्न तरीकों के अपनाने से आम लोग भी इसे पा सकते हैं।

ऐसा होता ही है–आचार्य रजनीश के उस सूत्र को याद रखिए–जेठ की गर्मी में अधिक गर्मी होती ही है। पूष का जाड़ा बदन को हिलानेवाला होता ही है। भादों की वर्षा झड़ी लगा देने वाली होती ही है। लेकिन अहा कितनी गर्मी है, जाड़ा है, बर्षा हैं। यह बार-बार दुहराकर इससे होने वाली तकलीफों को हम कई गुणा बढ़ा लेते हैं। "ऐसा होता ही है" सूत्र की याद आते ही उससे होने वाली तकलीफों से छुटकारा पा जाते हैं उसी प्रकार मन में पत्नी, माता-पिता, बाल-बच्चों या हित-मित्र के किसी व्यवहार, बात और कार्य से मन में तनाव हो गया है तो उसे मन-ही-मन इस सूत्र को ध्यान में रखते हुए सुलझा डालिए। अगर दूसरे की भूल है या अपनी भूल है, तो इसे ईमानदारी से एक खिलाड़ी की मानसिकता (स्पोर्टस लाइक स्प्रिट) की तरह मान लीजिये। तनाव से मुक्ति मिल जायेगी।

सब के साथ जीना सीखिए–विभिन्नता प्रकृति का नियम है इसीलिए सृष्टि में एक समान कोई भी चीज नहीं पायी जाती। समान दिखते हुए भी किसी चीज को अगर गौर से देखा जाय तो कहीं-न-कहीं फर्क दिखेगा ही। मनुष्य भला इसका अपवाद कैसे होता? व्यक्तिगत विभिन्नता मिलेगी हीं। एक विषय को दो व्यक्ति दो तरह से सोचेंगे, विचारेंगे और कार्य करेंगे ही। एक दूसरे के कार्य-कलापों में फर्क आएगा ही। उसका रहन-सहन, बात विचार और खान-पान एक जैसा होगा हीं नहीं यह मानकर चलना होगा। अपने-अपने दृढ़ विश्वास का पता लगाइए और सबके साथ जीना सीखिए।

अपने साथ एकान्त में रहना सीखिए–हम प्रायः वैसा सोचते-विचारते और करते हैं, जैसा हमारा परिवारिक परिवेश, हित-मित्र, संगी-साथी और काम करने का स्थान होता है। वहां पर हमारा सम्बन्ध अधिक गहराई से दृढ़ होता जाता, जहां जिस वस्तु, व्यक्ति और विषय के अधिक समय तक सम्पर्क में रहते हैं। यह स्थिति आत्म विस्मृति और भौतिक स्मृति की होती है। एकान्त, जहां पहाड़, जंगल, नदी या सुन्दर पार्क, बाग-बगीचा आदि हो, आत्मस्मृति या आत्मज्ञान का परिवेश होता है। अकेले में ही हम सच और झूठ, भला और बुरा, प्रेम और घृणा तथा सुख और दुख का निर्णय कर पाते हैं। एकान्त हममें अपने प्रति तथा

दूसरों के प्रति कोमल भाव का सृजन करता है। जैसे अणु विखण्डित होकर शक्ति का गोला बन जाता है। उसी प्रकार एकान्त चाहे वह कुछ क्षण का ही क्यों न हो, हममें चमत्कारिक शक्तियों का प्रस्फुरण करता है। आंखें बन्द कर, बिना विचारों और भावों को छोड़े प्रतिदिन आधे घंटे का बैठना भी शक्ति स्फुरण के लिए आवश्यक है। इसलिए अपने साथ एकान्त में समय बिताना सीखिए।

अपने प्रति सकारात्मक रुझान पैदा कीजिये—मानसिक रुझान, चाहे वह किसी व्यक्ति के प्रति हो या विषय के प्रति या वस्तु के प्रति, उस विषय को अच्छी तरह समझने और करने, व्यक्ति के साथ प्रेम और सौहार्द पूर्वक जीवन बिताने और वस्तु को कष्ट साध्य काम करके भी प्राप्त करने, उसे साफ सुथरा और सजाकर सुरक्षित स्थान में रखने में हमारी दिलचस्पी बनी रहती है। अन्यमनसकता या बोरियत रुझान और दिलचस्पी का दुश्मन नहीं, बल्कि जीवनी शक्ति को दिग्भ्रामित करने और अपने आप में निम्न मूल्यांकित (अण्डर एस्टीमेट) की प्रवृत्ति को विकसित कर देता है। ऐसा व्यक्ति बार-बार बोरियत का रोना रोते-रोते बोरियत का प्रेत पाल लेता है और उसे हर काम बोर लगने लगता है। अन्त में वह काहिल, कामचोर और निकम्मा बनकर अस्वस्थ, असफल और दुःचिन्तक बन जाता है। काम करने की आदत डालिए और इसके लिए परिस्थिति, व्यक्ति और वस्तु के साथ समझौता करना सीखिए। इसे ही काम के साथ अभियोजन कहा गया है। बोरियत या धूलकण मृदु होता है इसलिए उसमें हल्कापन, कोमलता, सहज और सहर्ष समर्पण तथा महानता पायी जाती है। महानता इतनी कि सबको सिरोधार्य। पत्थर कठोर होता है इसलिए पहाड़ की तरह भारी उपेक्षित इतना कि व्यक्ति रास्ते से पत्थर उठाकर फेंकते, अहंकारी ऐसा कि यात्री के थोड़ा असावधान होने पर पैर तोड़ देते, धूल चटा देते और एक उदण्ड की तरह इस घटना पर बजाय पश्चाताप करने के सिर उठाए और सीना ताने गर्व से बैठे रहते हैं। हम अपने व्यवहार में कितना मृदु हैं दूसरों के साथ उतना ही हमसे मधुर संबंध होगा और दूसरों के साथ जितना बढ़िया मधुर सम्बंध होगा, हम उतना ही महान होंगे। महान वही है जिसका स्वस्थ, सफल, आकर्षक और आहलादित व्यक्तित्व है। मृदुता जीवन को नई दिशा देती है, स्वास्थ्य और सफलता का नया रास्ता दिखाती है तथा 20 वीं सदी भागदौड़ की जिन्दगी में भी खुशी और आनन्द से भर देती है।

मृदुता हमारे जीवन में मधुरता घोल देती है। ऐसी स्थिति में हम दूसरों के साथ मधुर व्यहार करने लगते हैं। दूसरों के साथ हमारा सम्बंध मधुर बनने लगता है। मित्रों, सहयोगियों और शुभचिन्तकों का तांता हमारे दरवाजे पर लग जाता है। जहां मित्र सहयोगी और शुभचिन्तक हों, वहां सफलता स्वास्थ्य और खुशी अपने आप दौड़ी आने लगती है। मृदुता की अभिव्यक्ति शब्दों और वाक्यों में होती है। मृदुता ही शब्दों और वाक्यों को अभिमंत्रित कर मंत्र बनाती है। यही कारण है कि एक मृदु शब्द या वाक्य से ही बिगड़ा काम बन जाता है। एक कटु शब्द या वाक्य वर्षों तक दिल में चुभता रहता है "अंधे का बेटा अंधा होता

है" द्रौपदी के इस कटुवाक्य ने महाभारत जैसा युद्ध करायां, क्योंकि दुर्योधन उसे वर्षों तक भूल नहीं पाया था। लेकिन संत भीखण जी, जो एक पेड़ के नीचे बैठे थे, उनका परिचय जानकर एक बड़े जमींदार ने कहा—मैंने तो समझा था आपके पास बहुत वैभव होगा लेकिन आप तो अकिंचन हैं। संत भीखण जी के मृदुल वाक्य थे—भाई तुम्हीं बताओ, मेरे पास वैभव होता तो मैं भी आपकी तरह जमीन्दार होता। मृदुता और नम्रता ही तो संतों की पूंजी है चाहे उसे आप उसका अंकिचन नाम दे लो, हमें कोई एतराज नहीं। इस मृदु व्यवहार से वह जमीन्दार उनका जीवन-प्रयन्त भक्त बना रहा।

अन्यमनस्क़ता को दूर करने के लिए मुस्कुराते रहिए। हंसी-ठिठोली, हास-परिहास रुझान और दिलचस्पी बढ़ाने की अच्छी औषधि है। अगर मौका मिले तो अपनी कार्य कुशलता बढ़ा कर अपने में संतुलन बनाकर या विषय वस्तु या व्यक्ति का परिवर्तन कर अन्यमनस्कता को दूर किया जा सकता है।

अपने प्रति सकारात्मक रुझान पैदा कीजिए—यह जीवन की सबसे बड़ी सम्पदा और समृद्धि है। शारीरिक, स्वास्थ्य, मानसिक संतुलन और आध्यात्मिक विकास इसी की भूमिका होती है। हमारा मानसिक रुझान अगर सकारात्मक हुआ तो औरों को हम अपनी ओर मित्रवत भावना से आकृष्ट करते हैं और नकरात्मक होने से दुश्मनी के लिए औरों को उकसाते हैं। नकारात्मक रुझान होने से भय, चिन्ता और सन्देह सदा पीछे पड़ा रहता है, जो हमें अस्वस्थ असफल और दुश्चिन्तक बना देता है। हमारा मानसिक रुझान ही यह तय करता है कि हम सदा नैराश्य के झूले में झूलते रहेंगे या आशा की किरण भी जीवन में फूटेगी। शास्त्रों में कहा गया है—व्यक्ति का जैसा मानसिक रुझान होगा, मरणोपरान्त भी वैसा ही शरीर मिलेगा। वास्तव में सकारात्मक रुझान का व्यक्ति, क्रिया शक्ति, मनः शक्ति, कल्पनाशक्ति, बौद्धिक शक्ति और इच्छा शक्ति को आकृष्ट और स्फुरण करता है, जिससे उसमें भय, आलस्य, संदेह और अन्ध-विश्वास से लड़ने की ताकत आती है। इससे रोगी-निरोग, असफल-सफल और दुःखी व्यक्ति खुश हो जाता है।

मधुर सम्बन्ध हमारा स्वभाव है—मधुर सम्बन्ध चाहे अपने प्रति हो या औरों के प्रति हमारी चमत्कारिक शक्तियों का सबसे बड़ा स्रोत है। इसकी अभिव्यक्ति व्यक्ति के बात, व्यवहार और बोल-चाल और कार्य-कलाप से होती है। अगर अपने आप के प्रति हमारा मधुर सम्बंध है, तो हम निर्भीक बनेंगे ही। स्वावलम्बन और आत्मविश्वास हममें भरेगा ही। लक्ष्य में रचनात्मकता की वृद्धि होगी ही। हमारा मधुर सम्बन्ध औरों के प्रति होगा ही। जो औरों से मधुर सम्बन्ध नहीं रखता वह अपने प्रति भी उदार नहीं। वह अशान्त, दुःचिन्तक और प्रमादी है। ऐसा व्यक्ति रोगी होगा ही। किसी कार्य में सफलता उसके लिए खरहे का सींग साबित होगी ही। सुख और आनन्द का मुंह देखना उसके लिए दुर्लभ होगा ही।

मृदुलता हमारा गुण है और मधुरता हमारा स्वभाव। मृदुलता के कारण ही

हमारा दूसरों के साथ मधुर संवंध होता है या बना रहता है। मृदुलता का विपरीत शब्द कठोरता है। धूलकण मृदु होते हैं और पत्थर कटोर। मृदुलता में कोमलता समर्पण, हल्कापन तथा महानता, चारों गुण पाये जाते हैं जबकि कठोरता में भारीपन, उदण्डता, अहंकार और उपेक्षा पायी जाती है।

काम को खेल और लीला समझिए और भय को भगाइए—भयरूपी भूत मारता नहीं सताता है। वह रक्त पीता है, व्यक्ति का भोजन करता है। ऐसी स्थिति में भय से पीड़ित व्यक्ति मर-मर का जीता है। इसे ही देखते हुए सैक्सपीयर ने जूलियस सिजर नामक नाटक में लिखा है-डरपोक अपनी मौत के पहले ही दस बार मर चुका होता है। मनोवैज्ञानिकों ने अपनी खोज में पाया है कि व्यक्ति डरकर भागता या भागने के कारण डर जाता है। एक कामचोर काहिल और निकम्मा व्यक्ति पहले काम करने से भागता है और बाद में किसी कार्य को करने में उसे डर लगने लगता है। वह अपनी चमत्कारिक शक्तियों का सदुपयोग नहीं कर पाता। कठिन काम को देखकर व्यक्ति को पहले भय लगता है और वह भयभीत हो कर धीरे-धीरे काम से ही जी चुराने लगता है और सारा जीवन रोगी बन कर जीता है। तंत्र कहता है—भयावह परिस्थिति में प्रविष्ट हो जाइये भय से मुक्ति मिल जाएगी। श्मशान से भय लगना स्वभाविक है मगर श्मशान में जाना-आना शुरू कर देने से व्यक्ति उस भय से मुक्त हो जाता है।

कोई भी व्यक्ति, जो भयरूपी भूत का गुलाम हो चुका है, उसके सामने सदा सन्देह और चिन्ता रूपी प्रेत खड़ा रहता है। किसी काम को करने में अपनी शक्ति पर उसे संदेह होता रहता है इसलिए अपने प्रत्येक वाक्य में वह अगर (इफ) और मगर (बट) लगाया करता है और उसे सदा फल की चिन्ता सताती रहती है—सफलता मिलेगी या असफलता। इसलिए वह अपने प्रत्येक सम्बंध और कार्य को नफा-नुकासान की दृष्टि से देखता रहता है। इसलिए उसका न अपने आप से मधुर सम्बंध होता है और न किसी अपने पारिवारिक सदस्य से। एक भयभीत व्यक्ति के सामने सदा दरिद्रता, आलोचना, वीमारी, अपमान, वियोग, गुलामी और मृत्यु का प्रेत खड़ा रहता है। सृजनकर्ता प्रभु के प्रति, भय, से बड़ा अनादर और कुछ हो ही नहीं सकता है। इस भूत को, हमें स्वयं सक्रिय रहकर, ललकार भरी समस्याओं का डटकर मुकाबला करना होगा और कठिन काम को योगेश्वर श्री कृष्ण की तरह खेल-खेल में करना होगा। श्री कृष्ण द्वारा किए गए सारें कठिन और भयावह कार्य, कृष्ण लीला, इसीलिए कहा जाता है। खेल में हमारी शक्तियों का स्फुरण बड़ी तेजी से होता है। और इसी कारण एक खिलाड़ी खेल से प्यार करता है, हार-जीत से नहीं इसीलिए वह अपने हर काम में जीवंत बना रहता है। काम को खेल और लीला समझिए और भय को भगाइए।

लक्ष्य के प्रति श्रद्धा और विश्वास रखिए—श्री तुलसीदास जी ने रामायण में लिखा है—भवानी शकरौ बंदे श्रद्धा विश्वास रूपिणौ। हमारी श्रद्धा ही भवानी (शक्ति) और विश्वास महादेव (सफलता) है। श्रद्धा और विश्वास का सम्मिलित नाम या उप-उपादान आशा है। आशा में स्व, पर और परम सत्ता के प्रति श्रद्धा

और विश्वास बना रहता है। इस स्थिति में व्यक्ति की अपने प्रति विश्वसनीयता, ऊर्जा, जीवनी शक्ति से उसकी झोली भर देती है। वह दीनचर्या से लेकर परोपकार और ईश वंदना के लिए उल्लसित, उत्फुल और उद्धत रहता है और इसी क्रम में वह कब स्वस्थ, सफल, आकर्षक और आह्लदिलत व्यक्तित्व पा लेता है, उसे पता ही नहीं होता। आशा ही समुज्जवल भविष्य की कुंजी है। आशा, श्रद्धा और विश्वास का उप-उत्पादन भी है और यही किसी काम को करने, संबंध को बनाए रखने और जीवन प्रयत्न सक्रिय रखकर स्वस्थ रहने की अचूक दवा भी आशा से बड़ी कोई पेटेन्ट दवा नहीं और निराशा से बड़ा कोई असाध्य रोग नहीं। किसी योजना को बनाने, उसे पूरा करने और उसे पूर्ण होने तक उत्साहित आशा ही करती रहती है। आशा ही हमारी खुशी का आधार, काम को पूरा करने की प्रेरणा और उज्ज्वल भविष्य है।

आशावादी बनें और सर्वांगीण स्वास्थ्य पाएं—जो भविष्य की ओर आशा भरी निगाह से देखता है, वही अपनी इच्छाओं की पूर्ति कर सकता है, सफलता को असफलता में बदल सकता है और असाध्य बीमारी को दूर की स्वस्थ और निरोग रह सकता है। आशा हीं जीवन को सक्रिय और सतर्क बनाए रखती है। यही हममें आत्मविश्वास करा कर हमारी विश्वसनीयता को कायम रखती है। हमारी विश्वसनीयता ही हमारी और हमारे सगे-सम्बन्धी रूपी बगीचे की उपज भूमि है जहां जीवन की हर समृद्धि चाहे वह भौतिक हो या आध्यात्मिक, पुष्पित, पल्लवित हो फलती है। आशा एक आध्यात्मिक गुण है, जो श्रद्धायुक्त प्रार्थना से सयुंक्त होकर पूर्ण विश्वास के साथ प्रभु से सम्पर्क कराती है। यही व्यक्ति की सामान्य और साधारण शक्ति को असाधारण और चमत्कारिक जीवनी शक्ति में बदल देती है। एक बार आशा भरी निगाह से प्रभु की ओर देखो, आर्त होकर पुकारो, अपने-आप में विश्वसनीयता और दूसरे व्यक्ति के कार्य और वस्तु में श्रद्धा होगी ही। प्रभु ही श्रद्धा और विश्वास का मूर्त रूप है। इसे ही इष्ट बनाओ और गीता के शब्दों में "यर्ता इष्टः ततो जयः" कहा गया है। आशावादी बनें और सर्वांगीण स्वास्थ्य को पाएं।

कृपाकांक्षी अकिंचन नहीं होता—जिस प्रकार खाली घड़ा ही भरता है, सूखे खेत में ही पानी की आवश्यकता होती है और शिशु की देख-रेख और लालन-पालन के लिए वात्सल्य की जरूरत पड़ती है, उसी प्रकार कृपाकांक्षी की झोली में ही प्रभु के वरदानों की वर्षा होती है। कृपा की इच्छा रखनेवाले व्यक्ति को पूर्वाग्रह से मुक्त होना ही होगा। पूर्वाग्रह से मुक्त होकर कृपा की इच्छा करनी ही होगी। हर स्वस्थ, सफल और आकर्षक व्यक्ति ने ऐसा किया है तभी सर्वोत्तम भक्तित्व को पाया है। जिसने कृपालु की कृपा पाने की कला नहीं सीखी वह जीवन में कमी सफलता, आकर्षण और खुशी का रास्ता नहीं पा सका। कृपा पाना और बांटना एक कला है। प्रभु कहीं और मंदिर, मस्जिद या गिरजा घर में नहीं बैठे होते। वह हम सब में विराजमान हैं। "शरीरः शिवंम् मंदिनरम्" और "शिवोहम" तांत्रिक सूत्र इसी तथ्य का खुलासा करता है। अपने से ही कृपा करना

और उस कृपा को मुक्त हाथ से बांटना एक कला है, एक विशिष्ट योग्यता है।

यह हमें सदा याद रखना है कि अगर किसी ने हमारे हृदय में विशेष स्थान बनाया है तो वह किसी-न-किसी रूप में हमारी सेवा करके ही और हमने भी अगर उसके हृदय में स्थान पाया है तो उसी मात्रा में सेवा बांट करके ही। कृपा पाना और उसे बांटना एक आध्यात्मिक गुण है। किसी प्रकार का बहाना या इंकार प्रभु का अनादर है। उनकी कृपा को खोना है। अपने साथ उनके सम्पर्क सूत्र को काटना है। वास्तव में वही बड़ा है, जो वह सबमें बड़ा सेवक है। हम जो भी दूसरे के लिए और दूसरों को करते हैं वास्वत में वह अपने लिए ही होता है। हममें जितना अधिक सेवा, भाव या कर्तव्य भाव होगा हम उतने ही बड़े सुसंस्कृत व्यक्ति होंगे। उच्च संस्कृति कर्तव्य और सेवा परायण है। अधिकार तो सहचर है कर्तव्य का। जिस पर प्रभु की कृपा होगी, उसमें कर्तव्य और सेवा का भाव उतना ही अधिक होगा और उसी मात्रा में बर्दाश्त करने की क्षमता भी होगी। कर्तव्यबोध, गुण विवेचन और बर्दाश्त करने की प्रवृत्ति अध्यात्मिक गुण है। कृपाकांक्षी के लिए वरदान अभयदान है। वराहमय मुद्रा है। श्री आनन्द मूर्ति जी के शब्दों में इसे ही स्वार्थ के साथ परमार्थ का अभियोजन (सब्जेक्टिव ऐप्रोच विथ आब्जेक्टिव एडजस्टमेंट) है। केवल स्वार्थ की बात करते रहने से मस्तिष्क बन्द हो जाता है। परमार्थ (अभियोजन) से मस्तिष्क खुलता है। खुला मस्तिष्क का व्यक्ति किसी विषय, व्यक्ति और समय पर संस्कृति की उच्च परम्परा की अभिव्यक्ति करता है, और प्रतिफल से निरोग, सफल और समृद बनता जाता है। कटी पंतग की तरह एक स्वार्थी व्यक्ति उड़ता रहता है। जिसका न आदि होता है और न अंत। कृपाकांक्षा रूपी सम्पर्क सूत्र से वह वास्तविंकता से जुड़ा होता है। इसीलिए कटि पतंग का अन्तिम परिणाम हवा में ही फट जाना और उसका अस्थि पंजर जमीन पर पड़ा रहना होता है। खुलेमन से ही हम कृपाकांक्षी हो सकते हैं और प्रभु की कृपा पा सकते हैं। कृपाकांक्षी अकिंचन नहीं होता वह तो शहंशाह होता है।

कार्य ही विश्रम नैराश्य और भय की दवा है—उस व्यक्ति से बड़ा व्यक्ति कोई हो ही नहीं सकता जो श्रम प्रतिष्ठा से प्यार करता हो और श्रम मर्यादा का स्वयं प्रतिमूर्ति हो। श्रम को प्रतिष्ठा देने वाला और स्वयं कामगार होता है। व्यक्ति नहीं, श्रम फलता है, हमें समृद्धशाली बनाता है। और इसी क्रम में हम स्वास्थ हो जाते हैं। वह कभी खाली नहीं रहता, किसी-न-किसी काम में वह अपने को व्यस्त रखता है। अकर्मण्य और बेकार व्यक्ति का मस्तिष्क शैतान की कार्यशाला बना रहता है।, जिससे केवल बीमारी, दु:चिन्ता और अशंका का उत्पादन होता है। श्रम को मर्यादा (प्रतिष्ठा) देने वाला व्यक्ति ही मर्यादित और प्रतिष्ठित व्यक्ति है। श्रम प्रतिष्ठा मनुष्य के सम्पूर्ण व्यक्ति का उच्चकोटि की अभिव्यक्ति है।

हमारी इच्छाएं अनन्त हैं। हम आवश्यकता मुताबिक उसकी पूर्ति चाहते हैं। इसलिए उसकी पूर्ति योजनाबद्ध तरीके से काम करने से होती है। हमारी उन

आवश्यकताओं की मांग और आपूर्ति का सम्पर्क सूत्र श्रम प्रतिष्ठा है। यही सक्रियता, रचानात्मक क्रियाशीलता और सुनियोजित कल्पनाशीलता है। सारे श्रम, प्रभु द्वारा सिद्ध कर्म हैं और कर्म ही पूजा है। सिद्ध मंत्र है। कुशल कर्म का प्रदर्शन प्रभु की वराहमय मुद्रा है और उत्तम स्वास्थ्य, सफलता, समृद्धि और आनन्द उसका वरदान। अपनी इच्छाओं में से किसी एक इच्छा को वरीयता के अनुसार तांत्रिक विधि से लक्ष्य बनाइए और लक्ष्य भेदन के लिए जो भी स्रोत उपलब्ध हो उसे लेकर काम में जुट जाइये। अकेले ही चल पड़िये। अगर कोई संगी साथी नहीं मिलता है तो काम के लिए क्या है और क्या नहीं है इसकी परवाह न कीजिये। उसे प्रभु पर छोड़ दीजिये। जिस ढंग से आप करना चाहते हैं उसी प्रकार कीजिए। प्रारम्भ करने की देर है आधा काम पूरा होने में देर नहीं लगेगा। कोई काम छोटा नहीं होता। छोटा काम करके ही व्यक्ति बड़ा बनता है। यही है श्रम प्रतिष्ठा से प्यार करना। एक श्रम की इज्जत करने वाला ही कुशल कारीगार कलाकार और वैज्ञानिक होता है। वही समृद्ध और उल्लास से भरा होता है। कार्य ही विभ्रम, नैराश्य और भय की दवा है।

अपने को पहचानें दूसरों को पहचानने का रास्ता अपने आप खुल जाएगा—दूसरों के प्रति समझदारी ही आर्थिक सुरक्षा है। आर्थिक सुरक्षा, रुपया पैसा रखकर, न अपने लिए की जा सकती है, और न दूसरे आश्रितों को दी जा सकती है, वे हमारी सेवाएं जिसे दूसरों को हमने दी हैं या दे रहे हैं या देंगे वे ही हमारी आर्थिक सुरक्षा है। उन सेवाओं का प्रतिफल ही सुरक्षा है। वास्तव में सामाजिक सुरक्षा का ही एक भाग आर्थिक सुरक्षा है। सामाजिक सुरक्षा देने के क्रम में अपने आप हमारी सुरक्षा हो जाती है उसमें एक आर्थिक सुरक्षा भी है। हमारी प्रमुख आठ मूल प्रवृत्तियां हैं।

1. प्रेम का आवेग,2. भय 3. विषय 4. आत्म रक्षण, 5. आत्माभिव्यक्ति और आत्म प्रतिष्ठा 6. पाने और जमा करने की प्रवृत्ति, 7. शारीरिक-मानसिक आजादी, 8. प्रताड़ण और पीड़ा। यह व्यक्ति के जीवन का संचालन एक जैसा ही करती हैं लेकिन इनकी अभिव्यक्ति स्थान, समय और व्यक्ति के अनुकूल भिन्न-भिन्न तरह से होती है। अपनी सूझ-बूझ के अनुसार ही इन प्रवृत्तियों को हम पहचानते हैं और उसके अनुसार अपना मित्र, सहयोगी और सहभागी बनाते हैं। वे ही हमारी आर्थिक सुरक्षा की ढाल बनते हैं। "अपने को पहचानो दूसरों को पहचानने का रास्ता खुल जाएगा।"

हमारी सेवाएं ज़िसे दूसरों को, विप्रोचित, क्षत्रियोचित, वैश्योचित और शुद्रोचित सेवा के माध्यम से दिया है, देते रहे हैं या देगा, वे ही हमारी स्वयं की सामामिजक, आर्थिक सुरक्षा होगी। इन सेवाओं को अगर हमने दूसरों को, रोजी, रोजगार और रोजगार परक योजनाओं में दिया है तो हम अवश्य समृद्धिशाली बनेंगे। मैंने स्वयं अपने जीवन भर की कमाई को, कभी अपने गुरुभाइयों की राय पर और कभी अपने गुरुदेव के आदेश पालन के क्रम में हंसते-हंसते लुटा दिया है और आज उसी की प्रतिफल है कि जीवन के हर क्षेत्र में समृद्धशाली हूं।

खतरा मोल लेना हमारी मूल प्रवृत्ति है–हम काम करते हैं इसलिए कि कार्य ही व्यक्ति की सक्रियता और जीवनी शक्ति का स्रोत है। जो काम में लगा रहता है, जीवंत रहता है, खुश रहता है और वही कुछ कर पाता, चाहे वह परिवार या व्यक्ति या समाज के लिए ही करे। वैज्ञानिको ने "हम काम क्यों करते हैं" इसे अपने शोध का विषय बनाया है। और खोज जारी है। फिर भी कुछ सामाजिक वैज्ञानिकों का मत है कि लोग अपनी निम्नतम आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए काम करते हैं, वे हैं–आवास, शिक्षा, चिकित्सा, भोजन और वस्त्र। कुछ लोगों का मत है कि संगठन के प्रति भक्ति, परिवार और समाज के प्रति जिम्मेदारी, भौतिक सुखों की आर्थिक चाह, जमा करने की मूल प्रवृत्ति की तुष्टि आदि के लिए काम करते हैं। वास्तव में उपर्युक्त सारे उत्तर एकांगी और अपूर्ण हैं। तंत्र कहता है–खतरा मोल लेना मनुष्य की मूल प्रवृत्ति है और उससे भयभीत रहना पशुवृत्ति। इस आदत के कारण ही हम खतरा मोल लेते हैं और हिम्मत, उल्लास आदि, जो जीवनी शक्ति की अभिव्यक्ति है, अपने सम्पूर्ण व्यक्तित्व शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक के साथ जुट पड़ते हैं और बदले में जीवंत होकर अच्छा स्वास्थ्य, पूर्ण सफलता और खुशियों से झोली भर लाते हैं।

जो खतरों से डरता है वह अनिश्चयता का कैदी बना रहता है। न वह किसी कार्य के संबंध में जल्द फैसला ले पाता है, न शुरू किये हुए काम को जारी रखने के लिए हिम्मत जुटा पता है और न उस काम को पूरा करने के लिए उसमें उल्लास और उत्साह ही रह पाता है। कहीं डरते-डरते उसने किसी काम को पूरा भी किया तो "बेमन की शादी और कनपट्टी में सिन्दूर" की उक्ति चरितार्थ करता है। उसका सन्देह और दुःचिन्ता का शिकार वह पूर्ण रूप से काम के दौरान हो चुका होता है और शारीरिक, मानसिक बीमारियों के चपेटे में आ चुका होता है। इसे ध्यान में रखते हुए श्री श्री आनन्द मूर्ति जी ने कहा है–काम ही मनुष्य को बड़ा बनाता है। अपने त्याग, सेवा और साधना से बड़ा बनेगा।

चाहे खेल हो, या नौकरी या व्यवसाय या संगठन, बिना खतरा मोल लिए न हममें सक्रियता आती है और न सफलता। खतरा मोल लेने वाला ही किसी विषय पर शीघ्र निर्णय ले पाता है और बिना "अगर-मगर" का सहारा लिए शीघ्र ही काम शुरू कर देता है। और कुछ ही समय में सफलता प्राप्त करता है नए-नए आविष्कारों के पीछे खतरा मोल लेने की प्रवृति ही काम करती है। जो खतरा मोल नहीं लेता वह जिम्मेदारी लेने से कतराता है। ज्ञान की नई-नई खोज की इच्छा ही उसमें नहीं जागती। किसी आपात्कालीन स्थिति से जूझने के लिए तैयार होना, खतरा मोल लेना है। निर्माणात्मक खतरा हमेशा तथ्य, तैयारी और समझदारी पर निर्भर करता है लेकिन इसमें देर करने से हिम्मत टूटने का खतरा बना रहता है। भय वृत्ति खतरा लेने में आड़े आती है, जो स्वास्थ्य, सफलता और खुशी तीनों का दुश्मन है।

खतरा लेने के अभ्यास करते रहने से उससे सम्बंधित भय जाता रहता है। इसके अभ्यास के लिए आपात स्थिति की प्रतीक्षा हमें नहीं करनी चाहिए। अपने

प्रतिदिन की दिनचर्या में हमें जल्द फैसला लेने, निर्णय लेने के बाद किसी तरह की बहानेबाजी न करने और जिन कारणों के चलते भयभीत हो हिम्मत हार चुके थे, उन्हें ही करने की आदत डालने से अपने आप आत्मविश्वास अन्तरदृष्टि हममें आएगी ही। नए-नए अच्छे सम्बन्ध बनेंगे। लोग दाद देंगे और हमारा एक अद्वितीय व्यक्तित्व उभर कर सामने आएगा। किसी काम को शुरू करने से पहले यह कहना मुश्किल है कि उस काम कें खतरा अधिक है या कम। इसलिए शुरुआत कर देना किसी काम को आधा कर देना होता है। पूर्ण छानवीन कर लिये गये फैसले में भी हम शत्-प्रतिशत सुनिश्चित नहीं हो पाते कि उस काम में कितना खतरा है। चाहे जितनी सावधानी से फैसला लिया जाये, इच्छित लक्ष्य और परिस्थितियों के बीच कुछ-न-कुछ फासिला रहेगा ही। यह हम पर निर्भर करता है कि लक्ष्य की दूरी तय करने के लिए चल पड़ें या किनारे खड़े हो सिर खुजलाते रहें। स्वास्थ्य और सफलता के पीछे यही रहस्य है।

भूल करने की हिम्मत कीजिएः-

याद रखिए भूल-चूक से सीखने की एक प्रमुख विधि है। मनुष्य से भूलें होती ही हैं। व्यर्थ की बातों को भूलना अच्छी स्मृति का लक्षण है। जीवन को बनाने के लिए "भूल करने की हिम्मत करना" बहुत जरूरी है। जीवन में स्वस्थ रहने और सफल होने के लिए अपनी भूलों को बुद्धिमानी से इस्तेमाल करना होता है। बिना भूल किए किसी विषय का कोई विशेषज्ञ नहीं हो सकता। जार्ज बर्नार्डशा के शब्दों में-व्यक्ति लुढ़क कर और अपने को मूर्ख बनाकर ही सीखता है। जो अपनी भूल और असफलता को सोच-सोच कर भयभीत रहता है वह अपनी जान को खतरे में डालकर किसी काम को करने की प्रसन्नता से वंचित रह जाता है। इस बात का इतिहास साक्षी है कि जिसने जितनी बड़ी भूल की है और जितना बड़ा खतरा जीवन में मोल लिया है वह उतना ही बड़ा बना है। "भूल पर लोग क्या कहेंगे?" इस चक्कर में भी हम अपने स्वास्थ्य और सफलता को गंवा देते हैं।

यह मानकर चलना होगा कि परमात्मा के अलावा सभी व्यक्तियों से किसी काम को करने में थोड़ी बहुत-भूल होगी ही। सम्भव है कि कुछ लोग मजाक उड़ायें या उस भूल पर बड़े बूढ़ों या सम्बंधित अधिकारी की दो बातें सुनने को मिलें। लेकिन भूल-चूक करते-करते, उसका निराकरण करते-करते और लोगों का मजाक बनते-बनते, हम उस विषय के विशेषज्ञ बन जाते हैं। "हमारी कृति को सभी पंसद करेंगे ही" यह सोच कर कोई कलाकार, लेखक या वैज्ञानिक अपना सृजन या अनुसंधान शुरू नहीं करता। वह इसलिए अपने काम में दत्तचित होकर लगा रहता है कि उसे उस काम को करने में आनन्द आता है। जिसने अपने आप भूल करने की हिम्मत जुटा ली वे ही उच्च कोटि के कलाकार, लेखक और वैज्ञानिक के रूप में आज प्रतिष्ठित है। जिसने अपनी भूल को स्वीकारा, उसने पूर्णता को प्राप्त किया और स्वस्थ रहकर दीर्घायु बना। अपने परम प्रिय, मित्र और

गुरुभाई आचार्य सद्‌भावानन्द के शब्दों में जो भूल हो गई उस पर पश्चाताप क्या करना? उसे मरम्मत, पुनर्निर्माण कर या हार को सफलता में कैसे बदला जाये उस पर काम शुरू करना है।

अपनी भूलों को मजाक के रूप में लीजिए और आगे बढ़ते जाइए। हमारा स्वास्थ्य और सफलता भूल-चूक के स्वाभाविक रास्ते से गुजरती है। आज के सारे वैज्ञानिक आविष्कार और खोज, दिल को दहलाने वाली भूलों को करने के बाद ही प्राप्त हुआ है। व्यक्तिगत भूलों को मन में पालने वाला "अपराध भावना" का शिकार हो जाता है और जीवन में वह स्वस्थ रह ही नहीं सकता। आज जिस तेजी से सामाजिक मूल्यों का अवमूल्यन हो रहा है। खाद्य पदार्थों में जिस बेरहमी से मिलावट हो रही है और जिस बेसब्री से व्यक्ति इस प्रतियोगितामय संसार में जी रहा है, उसमें मानसिक संतुलन और नए-नए रोग का प्रचलन होना स्वाभाविक है। लेकिन इससे हतोत्साह न हो हमें यथाशीघ्र तंत्रोपैथी की विधियों से जीने और उसकी क्रियाओं से स्वास्थ्य लाभ के लिए प्रयत्नशील होना पड़ेगा।

गतिशील बनिए और शक्ति सम्पन्न होइए

व्यक्ति ही शक्ति का भंडार है। उसे कहीं से पाने की नहीं उसके स्फुरण की आवश्यकता होती है। शक्ति की पहचान व्यक्ति के काम के प्रति उत्साहित, प्रेरित उत्तेजित और लगनशील देखकर लगाया जा सकता है। वास्तव में सृजनात्मक शक्ति के चार प्रमुख अंग हैं–उत्तेजित, प्रोत्साहक, प्रेरक और लग्नोमाद। शक्ति खेल और काम के बीच किसी समय और कभी भी आ जाती है और शक्ति का जिस प्रकार भण्डार नहीं हो सकता उसी प्रकार अगर उसका समय पर उपयोग नहीं किया गया तो वे बेकार चली जाती है या समाप्त हो जाती है। इस शक्ति का रूप, ललकार भरी परिस्थितियां, सुरसा की तरह मुंह फैलायी समस्या और जीवन में खतरे के समय देखने को मिलता है। गति और शक्ति में गहरा संबंध है, इससे फिजिक्स के छात्र अच्छी तरह परिचित हैं।

वस्तुतः गतिशीलता ही शक्ति है और शक्ति ही गतिशीलता है। मृत में शक्ति नहीं होती है इसलिए गतिहीन हो जाता है। जीवन अलौकिक और दिव्य शक्तियों से भरा पड़ा है। गतिशील बनिए और शक्ति सम्पन्न होइए। गतिशीलता का अभ्यास, केवल अपने चलने और बोलने के तरीके पर ध्यान देने से ही हो जाता है। तंत्र कहता है (1) नितम्बों पर बल देकर चलने, खड़े होने, बैठने और बोलने से, व्यक्ति मानसिक और शारीरिक थकावट से छुट्‌टी पाकर तरोताजा हो जाता है। चलने, बोलने और काम करने की वह अच्छी मनःस्थिति में होता है। यह गतिशीलता और शक्ति सम्पन्न कराने की सरल और सुगम कूंजी है। (2) गुस्सा और झुंझलाहट को दबाने से कई बीमारियां उत्पन्न होती हैं और अभिव्यक्ति से सामाजिक समस्या आ खड़ी होती है इसलिए गुस्सा के आते ही किसी-न-किसी काम में लग जाएं, जिसमें थोड़ा शारीरिक श्रम करना पड़े। इससे गुस्सा न दबेगा और न अभिव्यक्त होगा, वह शक्ति जल्दी ही काम को अच्छी तरह पूरा करा

देगी। (3) आशावादिता सकारात्मक चिन्तन और उद्यमशीलता आध्यात्मिक गुण है और उससे अत्यधिक शक्ति सम्पात होता है। इस आध्यात्मिक गुण से भरपूर व्यक्ति कभी बीमार नहीं पड़ता, अगर बीमार पड़ा तो जल्द अच्छा हो जाता है और सर्वांगीण स्वास्थ्य का आनन्द लेता है (4) अपनी नजर में जो बड़ा होता है वही सम्मान पाता है इसलिए अपनी उत्सुकता और उद्विग्नता को शान्त करने की प्राथमिकता देने के साथ सामाजिक अभियोजन को न भूलें, स्वास्थ्य और सफलता अपने आप आएगी।

असाध्य रोग नाम की कोई चीज नहीं है

प्रत्येक व्यक्ति असम्भव को सम्भव करने की योग्यता और शक्ति रखता है। एक डॉक्टर की हैसियत से हम जानते हैं कि 90% व्यक्ति के रोग साधारण और सामान्य होते हैं। 5% रोग में ही थोड़ी उलझन होती है। वस्तुतः अपनी भय वृत्ति के चलते तथा संयम और उपचार के नियमों की जानकारी न रखने के कारण ही 5% रोगों को हम उलझा देते हैं और उनको असाध्य रूपी भूल के रूप में खड़ा कर बेमौत मरते हैं। इसलिय अगर हम स्वस्थ रहना चाहते हैं तो कोई रोग असाध्य भी होता है तो उसे मानने से इन्कार कीजिये। भाग्य और होनी के अस्तित्व को भी नकारिए। जो हम चाहते हैं वही होता है। जिसकी हमें चाह नहीं है वैसी परिस्थिति जीवन में कभी आएगी ही नहीं। प्रत्येक परिस्थिति बदली जा सकती है और हर भूल को सुधारा जा सकता है। प्रायः हम अकारण अंधविश्वास, लज्जा और दरिद्रता के भय से भयभीत रहते हैं और अपने को असुरक्षित महसूस करते हैं। असुरक्षा का भाव मन में आते ही हम, शंका, संदेह, अनिश्चतता और ईर्ष्या का शिकार हो जाते हैं। यह स्थिति ही हमें तरह-तरह की बीमारियों की ओर ढकेलती है और हम बीमार हैं तो बीमारी को असाध्य बनाने का उपक्रम करती है।

जो दूसरों से भयभीत रहता है, वह दूसरों के लिये भयोत्पादक भी बन सकता है। एक भयभीत व्यक्ति अपने लिये तो आतंक और अभिशाप है ही साथ-ही-साथ परिवार, समाज और मानव जाति के लिए भी बोझ है। वह स्वयं तो दुःख भोगता ही है, परिवार, समाज और सम्बंधियों को भी आतंकित और दुखित किये रहता है। एक खरगोश जंगल में अखरोट के पेड़ के नीचे सोया हुआ था। पेड़ के पके अखरोटों में से एक उसके नाक पर आं गिरा और उसे आशंका हुई कि कहीं आकाश तो टूट कर नहीं गिर पड़ा। वह डर के मारे भागा और आकाश टूट कर गिरने और उससे सम्भावित खतरे को ,प्रायः उसने सभी जानवरों को भाग-भाग कर कह सुनाया। दहशत के मारे खरगोश के साथ ही सभी जानवर भागने लगे। अंत में सियार ने सभी भागते हुए जानवरों को रोक कर आतंकित हो भागने का करण पूछा और जहां आकाश गिरा है उस स्थान पर ले चलने के लिए खरगोश को कहा। खरगोश, जब उस स्थान पर सारे जानवरों को लेकर पहुंचा तो सियार ने अखरोट का एक फल वहां गिरा पाया। सभी जानवरों को

यह जान कर भय से मुक्ति मिल गई और निर्भीक होकर वे अपनी-अपनी जगह पर चले गये। इस प्रकार भयभीत व्यक्ति अफवाह फैलाता है, दंगा का कारण बनता है। भय से मानसिक संतुलन बिगड़ जाता है, जिससे आदमी अकर्मण्य बनता है या गलत फैसला लेता है या फैसला लेने में अनावश्यक देरी कर देता है। परिस्थिति में प्रविष्ट करने की जल्द हिम्मत कीजिए स्वास्थ्य और सफलता आपका कदम चूमेगी। जो डरता है, वह कमजोर होता है, उसे सभी डराते हैं और कोई सहयोग नहीं करता।

सक्रियता ही व्यक्ति को बड़ा बनाती है

श्री श्री आनन्द मूर्ति जी ने इस उपयोगी मंत्र को दिया है-सक्रियता ही व्यक्ति को बड़ा बनाती है। अपनी सेवा, त्याग और साधना से बड़ा बनें। किसी अंग-प्रत्यंग का निष्क्रिय होना, मन का गिरना तथा भयभीत रहना आदि बीमारी के आने की सूचना है। सक्रियता से अंग-प्रत्यंग की मांसपेशियों का संकोचन प्रसारण तथा मर्दन-मथन स्वमेव होता रहता है। इससे उसे कोई बीमारी होती नहीं या होती भी है तो जल्द ही दूर हो जाती है। जब हम स्वस्थ रहेंगे तभी बड़ा बनेंगे। शारीरिक स्वास्थ्य और मानसिक सन्तुलन ही बड़ा काम करने का माध्यम है। मन का गिरना मस्तिष्क की निष्क्रियता का चिन्ह है। एक सक्रिय व्यक्ति का मन कभी गिर भी नहीं सकता। अगर मन गिरा तो हमें समझ लेना चाहिए कि भय रूपी भूत का आक्रमण हो चुका है।

भय का डरावना भूत दिखाई पड़ते ही आपको समझ लेना चाहिए कि आप में जिसे जागते रहना चाहिए वह सो गया है या मर गया है, उसे जल्द ही दफनाने या जगाने का प्रयत्न करना चाहिए। याद रहे, हमारा सर्वोत्तम स्वास्थ्य, उत्कृष्ट सफलता और हार्दिक खुशी हमारी बुद्धि, शिक्षा, अनुकूल परिस्थिति सम्पत्ति नहीं बल्कि हमारी निर्भिकता और सक्रियता है। हम प्रायः बाह्य या आंतरिक भय से निष्क्रिय बने रहते हैं और इस स्थिति में या तो कोई काम शुरू ही नहीं करते या प्रारम्भ करके बीच में ही छोड़ देते हैं या काम को पूरा करते-करते इतनी आशंका, सन्देह और भय से भर जाते हैं कि असफलता और बीमारी हाथ लग पाती है। हमें यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि हम असीम के अंश हैं, फिर हम भय के घेरे में कैसे आ सकते हैं। भयभीत व्यक्ति तो प्रभु की कृपा से भी वंचित रह जाते हैं। भय प्रायः हमें आत्मसंतुलन, सामूहिक संसूचन और प्रतिष्ठा संसूचन के माध्यम से अज्ञानतावश, प्रेत के रूप में सताता रहता है। सदा हम पर सवार हो अस्वस्थ, असफल और दुखी बनाये रखता है। भय रूपी प्रेत बाधा को सक्रियता रूपी डंडे से मार भगाइए।

सक्रियता केवल काम करना ही नहीं या अपने फायदे की बात सोच-सोच कर काम में लगा रहना ही नहीं बल्कि सहयोगी हित-मित्र एंव समाज के लिए सेवा भावना, उनके लिये अपनी कमाई के कुछ भाग को त्यागने की भावना और ऋधि-सिद्धि और समृद्धि की साधना (श्रद्धा और विश्वास) भावना से करना ही

सर्वांगीण स्वास्थ्य का अधिकारी बनना है। सर्वांगीण स्वास्थ्य से हमारा मतलब है-शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक स्वास्थ्य से। वे जो समस्याओं से घिरे हैं और उनके पास उसका कोई तत्काल समाधान नहीं है, उन्हें उसी तरह की दूसरों की समस्याओं को समाधान करने में लग जाना चाहिए। ऐसा करने से उन समस्याओं के प्रति नकारात्मक चिन्तन, सकारात्मक चिन्तन में बदल जाएगा और दूसरों की समस्याओं का हल निकालते-निकालते अपनी समस्या का हल भी निकल आएगा। प्रभु भी ऐसा ही चाहेंगे और चाहते हैं।

संघर्ष ही जीवन है

विस्तार, विकास, प्रगति और प्रतिरोध प्रकृति के गुण हैं। यह प्रकृति की संघर्षशीलता की अभिव्यक्ति है। व्यक्ति संघर्ष करके ही उपर्युक्त प्राकृतिक गुणों को अपने में ला सकता है और सर्वांगीण स्वास्थ्य का आनन्द उठा सकता है। संघर्ष ही जीवन है यह मान कर ही हमारा विस्तार हो सकता है, हम प्रगति कर सकते हैं, हम विकसित हो सकते हैं तथा अपने में बीमारियों से जूझने की प्रतिरोधात्मक शक्ति विकसित कर सकते हैं। सम्पत्ति अर्जन करना और समृद्धिशाली बनना, संघर्ष करना है। लेकिन हमारा अधिकांश जीवन आवश्यकता से अधिक धन कमाने, उसके रख-रखाव और सुरक्षा की चिन्ता और भय से हम थक जाते हैं और अपने को युवावस्था में ही मार डालते हैं। वास्तव में संघर्ष का अपना उपयोगी और निश्चित उद्देश्य है, लक्ष्य की पूर्ति करना, मन को उत्साह से भरना, इच्छा शक्ति को बढ़ाना, बुद्धि को तेज करना प्रभु के प्रति प्रणति होना। अपनी कल्पनाशीलता को उत्साहित कर पुराने सिद्धान्तों और विचारों को आधुनिक वैज्ञानिक खोजों और आविष्कारों के संदर्भ में परखना, उसे व्यवहार में लाना, और इस पृथ्वी पर जन्म देने की प्रभु की इच्छा की पूर्ति करना संघर्ष है, तंत्रोपैथी इसकी मिसाल है।

वास्तव में संघर्ष हमें, आलस्य की मुर्छा को तोड़कर आत्मसंतुष्टि के लिए तथा सर्वांगीण स्वास्थ्य और सम्पूर्ण व्यक्तित्व विकास के लिए, धमा चौकड़ी मचाने को बाध्य करता है। संघर्ष में अपने को डालिए और उसका विशेषज्ञ बन जाइए। अपने आप आपमें अपनी इच्छाओं की पूर्ति करने की शारीरिक, और मानसिक शक्ति आ जाएगी। शक्तिशाली वनने में तंत्रोपैथी के शारीरिक, मानसिक और अध्यात्मिक अभ्यासों को करना होगी। सांसारिक संघर्ष दुर्वल मन से नहीं होता। काम में लग जाइए शक्ति अपने आप दौड़ी आएगी। प्रकृति निष्क्रियता को कभी बर्दाश्त नहीं करती। हर योनि में आलस्य, बेकारी और भय के चलते मृत्यु होती है और मानव जीवन पर भी यह प्राकृतिक नियम लागू होता है। प्रकृति "परिवर्तन नियम के चलते" प्रवाहयुक्त और सयुंक्त बनाए रखती है। एलेक्ट्रोन और प्रोटोन से पृथ्वी, सूर्य चांद आदि गतिशील बने रहते हैं। यही कारण है कि प्रकृति, वस्तु, व्यक्ति और परिस्थिति को या तो गतिशील रखती है या उसका सर्वनाश कर देती है। इसमें न कोई समझौता होता है और न अपवाद।

मजबूत वृक्ष सुरक्षित जंगलों में नहीं मौसम की अधिक गर्मी और धूप के थेपड़ों से संघर्ष करते हुए खुली जगह पर पाया जाता है। उसी तरह प्रकृति प्रत्येक व्यक्ति को भी संघर्ष और परेशानी में डालकर उसे बड़ा मजबूत और भाग्यशाली बनाती है। स्वस्थ, सफल, दिर्घायु और खुश रहने के लिए संघर्ष एक आवश्यक प्रक्रिया है। बिना प्रतिरोध का जीना कायरतापूर्ण जीना है, मर-मर कर जीना है। संघर्ष में थोड़ी-बहुत परेशानी और उत्पीड़न तो होता ही है, लेकिन उससे क्षतिपूर्ति, पौरुष, शक्ति और ज्ञान को बढ़ाकर हो जाती है।

पिछले 15 साल से मैं स्वयं तंत्रोपैथी द्वारा सफल, आकर्षक, स्वस्थ और आह्लादित व्यक्तित्व पाने के व्यावहारिक दर्शन को देने, इससे सम्बंधित पुस्तकों को लिखने और छपाने और तांत्रिकी संयम और उपचार संस्थान के लिए संघर्षरत रहा हूं। मैं उस समय भी संघर्ष से नहीं घबराया जब जेल में उपयुक्त पुस्तकें नहीं मिलीं, दिल्ली में तंत्रोपैथी में प्रथम भाग छपते-छपते रोककर संगठन के कार्य से अन्यत्र जाना पड़ा और उपयुक्त स्थान चयन के लिये अघोषित प्रतिबंध अपने कहे जाने वाले लोगों द्वारा लगाया गया। लेकिन इसके दौरान मैंने पाया कि मैं आध्यात्मिक सरिता में गोते लगा रहा हूं। वे शक्तियां हमें उपलब्ध होती जा रही हैं जिनकी हमें इच्छा थी। अपने भीतर की शक्तियों को संघर्ष के दौरान ही हमने खोजा और उनके प्रस्फुरण और उचित प्रयोग का रास्ता भी हमें सूझा और इससे हमारे शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक आवश्यकताओं की पूर्ति भी होती रही। संघर्ष के दौरान ही हमें, "भूमा आदत शक्ति के नियम" ला ऑफ कास्मिक हैबिट फोर्स का पता चला और संघर्षों से जूझता रहा। प्रभु विभिन्न विकट संघर्षों के बीच परीक्षा लिये बिना, जन सेवा में नहीं उतरने देता। इससे बड़ा पारिश्रामिक और परितोषिक भला और क्या हो सकता है?

दूसरों की बात को सुनें ज्यादा, अपनी सुनाएं कम

अच्छा श्रोता बनना और अपनी कम सुनाना शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक स्वास्थ्य के लिए बहुत जरूरी है। इस प्रतियोगिता और प्रतिस्पर्धा से भरी दुनिया में लोगों की सुनने की कम और सुनाने की अधिक प्रवृत्ति होती है। यही कारण है कि हम सुनते-सुनते बोलने लगते हैं और बोलते-बोलते सुनने का अभिनय करते हैं। हम पूरी तरह से जब बात सुनते हैं, तब उसके मुताबिक काम करने की योजना बनाते हैं जब दूसरों की सुनते ही नहीं तो फिर कुछ करने, कुछ सीखने और कुछ समझने का हमें मौका कहां मिलता है। हम बोलते भी हैं सिर्फ बोलने के लिए। इसलिये हम क्या बोलते हैं, उसका प्रभाव दूसरों पर क्या पड़ता है या दूसरा सुन रहा है या नहीं, इस पर कभी हमने विचार ही नहीं किया। सुनने पर पाश्चात्य देशों में बहुत अधिक प्रयोग हुए हैं। रशियन वैज्ञानिक आई. पी. पायलॉव ने अच्छे श्रोता के शारीरिक, मानसिक परिवर्तनों की माप के लिए "वोरियंट रेफलेक्स" नाम के एक यंत्र का आविष्कार किया है।

हमने देखा है कि एक कुत्ता जब किसी आवाज को सुनता है या गति को देखता है तब मुर्गे की तरह गर्दन उठा लेता है। उसके हृदय की गति धीमी हो जाती है और उसका मस्तिक और पूरा शरीर सतर्क हो, आवाज को सुनने और गति को देखने और पहचानने की निःशब्द कोशिश करता है। श्री पायलाव ने व्यक्ति के जोर से पढ़ने और गौर से रंग-बिरंगी मछली देखते रहने पर पाया कि बोलने पर रक्त गति तेज और मछली देखते वक्त गति धीमी पड़ जाती है, जबकि शान्त बैठने और आराम करने में हृदय गति सामान्य बनी रहती है। अपने स्वास्थ्य, प्रगति और सफलता के लिए एक सूत्र हमेशा याद रखें:—बातें बातें होतीं, हर बात और गति पर प्रतिक्रिया करना श्वान (कुत्ता) प्रवृत्ति है। बातें सुनें, गति देखें निर्लिप्त भाव से और काम की बातें करें—सार संक्षिप्त और प्रेम से।

अधीर होकर अपनी बातें सुनाने और दूसरों की बातों को न सुन कर बीच में ही टपक पड़ने वाले व्यक्ति के अध्ययन में पाया गया कि आमदनी कम पर ऊंचा स्तर, प्रतिष्ठित पद पर अधिकार सीमित, अनुभव और व्यावहारिकता से विभ्रमित और उपेक्षित नौजवान और बुजुर्ग, अपनी योग्यता और अकर्मण्यता को छिपाने की मानसिकता से ग्रसित किशोर और किशोरियां अधिक बोलने के शिकार होते हैं। शान्तचित्त हो ध्यान और धैर्य से सुनने के बाद, बार-बार सोचने के बाद बोलना स्वास्थ्य के लिए अच्छा होता है। "न अति वक्ता न अति चुप" वाली प्रवृत्ति को विकसित करना अधिक उत्तम है।

वस्तुतः जब हम बातें करते हैं तब हमारे शरीर का अंग-प्रत्यंग और अणु-अणु पूर्णरूप से संलिप्त रहता है। जो हम बोलते हैं उसके साथ हमारा सम्पूर्ण शरीर बोलता है। हमारी भाषा हृदय की होती है और वह पूरी तरह हमारे शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक स्वास्थ्य से सम्बधित रहती है। यही कारण है कि पहली बार व्याख्यान देने में वक्ता अपने हाथ-पांव को ठंढा होना महसूस करते हैं। बोलने में हमारा दिल और फेफड़ा दोनों बोलता है और प्रभावित होता है। इस प्रकार हमारे बोलने और रक्तचाप में गहरा सम्बन्ध होता है। संतुलित बात करने से रक्तचाप बढ़ने लगता है जबकि दूसरों की बात सुनते रहने से रक्तचाप गिरता है। जन्म लेने के कुछ दिनों बाद ही कुछ शिशुओं पर वैज्ञानिकों ने परीक्षण किया और पाया कि चिल्लाते वक्त शिशु का रक्तचाप दुगना हो जाता था तथा शरीर बहुत कड़ा हो जाता था। अधिक बात करने वाले व्यक्ति के शरीर में भी अधिक तनाव हो जाता है और रक्तचाप असामान्यरूप से बढ़ जाता है। ऐसे लोगों का शरीर व्यक्ति का और चिल्लाना शिशु का होता है। यह व्यवहार इतना वीभत्स हो जाता है कि उस पर कोई ध्यान नहीं देता।

वास्तव में किसी बात-चीत्त का आनन्द हम पूर्णरूप से तभी ले पाते हैं, जब ज्यादा सुनें, श्वांस सामान्य रूप से लेते रहें और बातें भी तब करें जब श्वांस की गति सामान्य हो और धीरे-धीरे मीठे स्वर में ही बातें करें। जब हम इस जटिल संसार का एक हिस्सा अपने को मान लेते हैं और अपनी व्यक्तिकता को निम्न और छोटा समझने लगते हैं तभी हम रक्तचाप और हृदय रोग का शिकार

होते हैं। हम जो भी बातें करते हैं उस समय हमारे शरीर में कुछ रासायनिक परिवर्तन होता रहता है। "किसी पर लाल पीला होना" या बातें करते वक्त हाथ-पांव ठंडा होना या ढीले होकर खड़ा होना आदि प्रमुख कहावतें इस शारीरिक परिवर्तन की ओर ही इशारा करती हैं।

मनोवैज्ञानिकों ने वर्षों की खोज के बाद पाया है कि बातें करते वक्त, हमारा शरीर भी पूरी तरह बातों के साथ लिप्त और सक्रिय बना रहता है। शब्द मन की भाषा है और उन शब्दों के साथ शारीरिक रासायनिक परिवर्तन दिल की भाषा है। अधिक बोलने से शरीर और मन पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है। रक्त संचार तंत्र और श्वांस-प्रश्वांस तंत्र बुरी तरह से प्रभावित होती है। बिना सोचे-समझे बोलना अधिक बोलना है। और उसी मात्रा में बीमारियों को आमंत्रित करना है। वे बीमारियां शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकार की हो सकती हैं। यही कारण है कि रक्तचाप और स्नायु सम्बन्धी बीमारी आज के नेता, अभिनेता, विक्रेता और धार्मिक व्याख्यानदाता में अधिक पायी जाती है। इसीलिये रक्तचाप और हृदय रोग के रोगी को डॉक्टर पूर्ण आराम के साथ बातें न करने की राय देते हैं। क्योंकि सामान्य बातें करने से भी रक्तचाप बढ़ता है।

जो लगातार ऊंचे शब्दों में बातें करता जाता है वह दूसरों की बातें सुनता ही नहीं और अगर कहीं उसे सुनाई पड़ गईं तो वह बर्दाश्त नहीं करता और प्रतिवाद में और तेजी और जोर से बातें करने लगता है। बस वह अपनी बातें सुनाता जाता है चाहे उसकी बातें कोई सुन रहा हो या नहीं। ऐसा व्यक्ति एक श्वांस में ही अपनी बातें सुनाने की कोशिश करता है। इसलिए या तो वह स्वांस की बीमारी से पीड़ित रहता है या स्वांस की बीमारी होने की सम्भावना ऐसे व्यक्ति में बनी रहती है। ऐसे व्यक्ति में रक्तचाप और हृदय रोग के होने की संभावना भी बनी रहती है। इसलिये दूसरों को सुनें अपनी सुनाएं कम और श्वांस रक्तचाप और हृदय रोग से बचे रहें।

कर्तव्य ज्ञान और व्यक्तिगत क्षमता ही आध्यात्मिक विभूतियां हैं

मेरी पूरी जवानी मजदूर आन्दोलन से जुड़ी रही है। एक बार मैं एक मजदूर आन्दोलन के लिए फैसला लेने में अनावश्यक देर कर रहा था क्योंकि उसमें अधिक धन व्यय, असफलता और पुलिस के साथ झंझट मोल लेने का अधिक खतरा था। इसी उधेड़बुन में अपने गुरुदेव के दर्शन के लिए मैं पहुंचा। वे टहलने के लिये बाहर निकल रहे थे और मैंने अच्छा अवसर समझकर साष्टांग प्रणाम किया। प्रभु ने मेरी परेशानी के अनुकूल निम्न शब्दों में आशीर्वाद दिया जो आज तक मेरा मार्गदर्शक बना हुआ है "वीर बनो, बहादुर बनो जितना तुमसे होता है कर डालो बाकी तुम्हारा बाबा करेगा।" यह हमें भय पर विजय प्राप्त कर वीर और बहादुर बनने का आदेश था तथा कर्तव्य ज्ञान और व्यक्तिगत क्षमता रूपी

आध्यात्मिक विभूतियों द्वारा बाकी काम पूरा हो जाने की भविष्यवाणी थी(बाकी काम तुम्हारा बाबा करेगा।) यह अर्थ हमें तब पूरी तरह समझ में आया, जब मैंने उस मजदूर आन्दोलन को शुरू करा दिया। आन्दोलन ने इतना जोर पकड़ा कि हजारों मजदूरों की एकता के समक्ष बिहार सरकार को झुक कर मोटिया मजदूर अधिनियम पास करना पड़ा और यूनियन को मान्यता दे श्रम विभाग को अन्य विवादों पर मालिकों के साथ सम्मानपूर्ण समझौता कराना पड़ा।

अगर हमने भय से जिस काम को करने के लिये फैसला नहीं लिया था लेने में अनावश्यक देर की थी, तो उसका सफलता के लिये या तो हमने कोई प्रयत्न नहीं किया या डरते-डरते शुरू किया और एक छोटे झटके के बाद चुप बैठ गए या देर करने से दुश्मन को सम्भलने और, सहयोगियों को हतोत्साहित करने से सफलता के शुभावसर को खो दिए। भय हमारे सारे आवेग-सम्वेग, उत्साह-उमंग और ललक और लगन को लकवा का रोगी बना देता है। भय ही हमारे सारे शरीर मांसपेशियों को ढीला कर देता है तथा मस्तिष्क और जीवनी शक्ति को सुस्त और मूर्ख बना देता है। "जिन ढूंढ़ा तिन पाइयां गहरे पानी पैठ, जो बौरा डुवन डरा रहा किनारे बैठ।" रहीम की इस उक्ति को याद कर गहरे पानी में हमने छलांग लगा दी, कुछ हिम्मत करके या परिस्थिति द्वारा ढकेल दिया गया और तैरता हुआ मैं किनारे पहुंच गया। हमारे हाथ में सफलता का मोती, प्रतिष्ठा और बहादुरी समय-समय पर जितना दांतों से हम चबा सकते थे, जान-बूझ कर उससे बड़ा काटा काट लेने के लिए लिया गया फैसला है।

ऐसी स्थिति में हमारी मूलभूत शक्तियां-व्यक्तिगत कार्यक्षमता, गंभीर फैसला लेना, पूर्णता प्रदर्शन-सहनशीलता, रचनात्मक क्रियाशीलता,आदि इतनी बढ़ जाती है, जितनी सामान्य स्थिति में इसका अनुभव नहीं करते। साहस, उत्साह और उमंग हमारे शरीर और मन में एक तरह की आपातकालीन स्थिति की घोषणा कर देता है। और उसी मात्रा में ललकार भरी परिस्थिति से मुकाबिला करने के लिए हमारी शारीरिक-मानसिक प्रतिक्रिया भी होती है। हमारी शारीरिक-मानसिक क्षमता (स्वाभिमान, प्रतियोगात्मकता, प्रतिरोधात्मकता आदि) तथा कर्तव्य परायणता ही हमारी आध्यात्मिक विभूतियां हैं जो बाकी काम को पूरा करती हैं। ये शक्तियां सर्वांगीण स्वास्थ्य के लिए अति महत्वपूर्ण हैं। अगर आप साहसी हैं तो गति का नियम आप का साथ देगा, सफलता और स्वास्थ्य को सुनिश्चित करेगा। आत्मविश्वास और असंदिग्धता का उप-उत्पादन साहस है। एक आत्मविश्वासी और असंदिग्ध व्यक्ति ही किसी विषय पर जल्द फैसला लेता है, जल्द कार्य को प्रारम्भ कर देता है और अवसर और मौका को हाथ से जाने नहीं देता।

"मौका की तलाश में उछल पड़ें, ललकार भरी स्थिति का डट कर मुकाबला करें, जीवन को प्यार करें, इसके लिये प्रभु के कृतज्ञ बनें और आभार प्रदर्शित करें तथा हमेशा अपनी क्षमता से अधिक में जीने की कोशिश करें। सफलता और स्वास्थ्य अपने आप कदमबोसी करेगा।"

प्रतिष्ठा ली जाती है, कोई देता नहीं

इज्जत पाना आपका जन्म सिद्ध अधिकार है। नर-नारी सभी परम सत्ता, परम चेतना या परम पुरुष के अभिन्न अंग हैं। इज्जत उन्हें विरासत में मिली है। इज्जत भौतिक वस्तु नहीं। यह एक अध्यात्मिक गुण है। इसे कोई देता नहीं, हमें अपने में विकसित करके पाना होता है। हमारा सम्बन्ध मुख्यतः दूसरों के प्रति हमारे शिष्ट, विनम्र और मधुर बात-व्यवहार तथा प्रेम, सौहार्द, सहानुभूति, सहयोग आदि संवेदशीलता पर निर्भर करता है। हमें इज्जत पाने के लिये दूसरों की समुचित इज्जत करनी होगी। लेकिन दुर्भाग्य से हम ऐसा कर नहीं पाते। लोग दूसरों पर सवार हो जाते और उस पर छा जाते हैं, उसे बातों-बातों में धमकियां देते रहते हैं, उससे मांग करते, पूछते और परीक्षा लेते हैं यह सब हम तब तक करते जाते हैं जब तक वह इसका प्रतिवाद नहीं कर देता। जब वह प्रतिवाद कर देता है तथा उपेक्षा और उग्रता की मानसिकता अपना लेता है। तब हम अन्त में बहाने-बाजी करने लगते हैं वा बगलें झांकने लगते हैं और बे-इज्जत हो जाते हैं। कुछ लोग “ना” कहना नहीं जानते और इसलिए भी अपमानित होते और आत्म-प्रतिष्ठा को बली चढ़ाते हैं।

इज्जत पाने के लिये निम्न बातें याद रखें और प्रगति के पथ पर बढ़ते जायें। वहाना करने से साफ-साफ कहना सीखें और अपनी बातों में अगर-मगर का प्रयोग भूलकर भी नहीं करें। इससे आप दूसरों के सामने नंगे हो जाते हैं और आपके खोखलेपन को दूसरा समझ जाता या आप की कथनी और करनी पर उसे संदेह होने लगता है। अपनी जिम्मेदारी को दूसरों पर न डालें और तथ्यात्मक बातें ही दूसरों के साथ करें। निष्क्रिय लोग प्रायः आशा करते हैं कि बिना कहे दूसरे लोग उनकी समस्या को समझ लेंगे, इसलिये दूसरों से आप सीधी-सीधी और साफ-साफ दो टूक बातें करें। दूसरों को यह भला लगेगा या बुरा वह उस समस्या का तत्काल समाधान कर पाएगा या नहीं इसकी चिन्ता आप न करें। अपनी जिम्मेदारी दूसरों पर न डालें और हाथ में काम आने के पहले ही उसके पक्ष-विपक्ष की बातें समझ लें। समस्याओं का मुकाबला सावधानी से करें और काम में सदा तत्पर रहें। आंखों में आंखें डाल कर घरेलू वातावरण में आत्मीयता के साथ दूसरों से बातें करें और साफ-साफ बातें करने में गुस्सा को अपने से अलग रखें। खाली धमकी कभी न दें। एक बार कुछ करने का फैसला किया तो उसे कर गुजारें। याद रहे सकारात्मकता से निश्चयता की यात्रा आसान नहीं दुर्गम और कंटकाकीर्ण होता है। संभव है कि उपर्युक्त बातों से दूसरों के साथ कुछ क्षण या समय के लिये तनावग्रस्त और खराब हो जाये। लेकिन इसके लिए परवाह न करें। अंत में जो कीमत मिलेगी उससे आपकी इज्जत बढ़ेगी और आपकी एक सक्षम व्यक्ति के रूप में विशिष्ट पहचान होगी।

मन, अवचेतन मन, सकारात्मक रुझान और स्वास्थ्य

छान्दोग्य उपनिषद में कहा गया है कि मनुष्य जो भोजन करता है उसके स्थूल भाग से विष्ठा, मध्य भाग से रक्त, अस्थि, और मांस सूक्ष्म भाग से मन बनता है। मनुष्य का मन वह यंत्र है, जिससे वह भौतिक वस्तुओं से संबंध स्थापित करता है, विभिन्न परिस्थितियों से उसे जोड़ता है, सर्वांगीण स्वास्थ्य और सर्वोत्तम स्वास्थ्य प्रदान करता है तथा आध्यात्मिकता की उच्च शिखर पर भी उसे ला खड़ा करता है। अगर उस पर नियंत्रण स्थापित कर लिया जाये, तो व्यक्ति की वह एक चमत्कारिक जीवन दे सकता है। यह एक प्रकृति प्रदत्त अनूठा उपहार है, जिसकी कीमत को हम बहुत कम समझ पाए हैं और जिसका सबसे अधिक गलत इस्तेमाल करते हैं। मन ही प्रभु का आसन है जहां से व्यक्ति और सच्चिदानन्द से सम्बन्ध स्थापित होता है। मन ही वह स्विच बोर्ड है जिसके चलते हम सारी समस्याओं का हल पा लेते हैं हमारे सारे सपने साकार हो जाते हैं और हमारी सारी आशाएं पूरी हो जाती हैं। इसके तीन गुण हैं-सत्त्व, रज, और तम। सत्त्व गुण व्यक्ति में आध्यात्मिकता, ज्ञान और शक्ति भरता है। रजोगुण उसे कर्मनिष्ट और कर्तव्यनिष्ठ तथा तमोगुण उसे आलसी, अज्ञानी और जड़ बना देता है। यह सूक्ष्म पंच महाभूतों का काम करता है। प्रकृति त्रिगुणात्मक है इसलिए मन में तीनों गुण पाये जाते हैं। सोचना-विचारना मन का मुख्य काम है। पुश-पक्षी प्रेरणा या प्रकृति के अनुसार काम करते हैं जबकि मानव मन के साथ बुद्धि और विवेक का सहयोग रहता है। जैसी दृष्टि होगी वैसी सृष्टि और जैसी मन की भावना होगी वैसा ही हमें संसार दिखेगा और जीवन में बनेंगे। तंत्र इसलिए दृष्टि और भावना परिवर्तन, सम्वर्द्धन और सृजन के लिए विभिन्न विधियों और क्रियाओं पर जोर देता है जिससे मनुष्य सर्वांगीण स्वास्थ्य और सर्वोत्तम व्यक्तित्व को पा सके।

मन का प्रकृति के साथ अटूट सम्बन्ध

अखिल ब्रह्माण्ड में अलौलिक धारा बहती रहती है। कोई चित स्थिर नहीं, सभी इस पृथ्वी पर गतिशील है। मन भी कभी बैठा नहीं रहता उसे खाली रखना, "खाली दिमाग शैतान का घर" की उक्ति चरितार्थ करना है। खाली रहने से वह प्रायः भूतकाल के खट्टे मीठे अनुभव, वर्तमान के जीवन यापन और उसे खुशहाल बनाने के भागदौड़ तथा भविष्य के सुनहरे सपनों का ताना बाना बुनता रहता है। उसे अगर सकारात्मक चिन्तन और आशावादिता का प्रशिक्षण न दिया जाये और बार-बार अभ्यास कराकर इसकी आदत न डाल दी जाय तो मन नकारात्मक चिन्तन और निराशावाद से भर जाता है और व्यक्ति को अस्वस्थ और असफल बनाकर जीवन भर दुखी किए रहता है। मन की शक्ति का विकास कर अखिल ब्रह्माण्ड की अलौकिक शक्तियों और धाराओं का हम एक अंश बन सकते हैं और उन शक्तियों से समृद्ध हो जीवन में सच्चिदानन्द प्राप्ति भी कर सकते हैं।

इसी कारण पहाड़ों-जगंलों और फुलवाड़ियों में मन की शक्ति और एक आन्तरिक उत्फुलता का अनुभव करते हैं। पशु-पक्षियों के सान्निध्य में हम प्रेम और सौहार्द पाते हैं तथा नदी नालों और झरनों का कल कल-नाद हमें आत्मविभोर कर देता है। प्रकृति की गोद में हमें संस्कृति सृजन, सम्वर्द्धन और प्रकटीकरण का अच्छा सुअवसर मिलता है। पुराने जमाने में तीर्थाटन और आज के विनोदी यात्रा (ऐक्सकर्शन टूर) में बहुत अधिक का अन्तर नहीं। साल में एक बार स्थान परिवर्तन के लिए देवी-देवताओं के दर्शन की व्यवस्था की गई थी और वे देव देवी स्थल प्रकृति के सुरम्य स्थल पर ही बने होते हैं।

मन की चिन्तनधारा ही सौभाग्य या दुर्भाग्य

हमारे मानसिक चिन्तन-मनन धारा में तारतम्यता और एकता होती है। जैसे ही तारतम्यता और एकता का धागा टूटता है। मन टूट जाता है। मन का चिन्तन पतंग की तरह होता है, जो किसी वस्तु विषय को व्यक्ति को आधार मानकर उड़ता रहता है। सृजनहार ने मन की इस धारा पर पूरा नियंत्रण लाने का स्वाभविक नियंत्रण की कला सिखा दीया है और एक पिता की तरह इसकी कूंजी भी मनुष्य के हाथ में थमा दीया है। इस पर उसने अपना कोई अधिकार नहीं रखा है। मन की तारतम्यता रूपी धागा हमारे नकारात्मक चिन्तन और निराशावादी विचारों से उलझता है और अत्यधिक दुश्चिन्ता विषाद और अप्रत्याशित हर्ष की स्थिति में टूट जाता है। और व्यक्ति असामान्य या पागल बन जाता है और उसे बनाने बिगाड़ने वाला वह स्वयं है। सौभाग्य और दुर्भाग्य मन की ही देन है। मन को नियंत्रण और अनुशासित कर मनुष्य मनचाहे भौतिक और आध्यात्मिक उपलब्धि को पा सकता है। इसीलिये तंत्र में कहा गया है–मन ऐव मनुष्याणं कारण वंदयन्मोक्षयोः। मन के प्रमुख निम्नलिखित कार्य हैं और हमारी सफलता, स्वास्थ्य, आकर्षण और आह्लाद सिर्फ इस बात पर निर्भर करता है कि हमने अपने मन को पूरी तरह इसके लिये इस्तेमाल किया है।

मन की प्रमुख क्रियाएं

(1) मन का पहला काम है, इच्छा करना। वह अनन्त इच्छाएं कर डालता है। (2) अपनी बुद्धि और विवेक से काम लेना और उन इच्छाओं में से किसी एक या दो को चुनकर उसे लक्ष्य बना लेना और अर्जुन की तरह लक्ष्यभेद के लिए तैयार हो जाना (3) हमारा आवेग सम्वेग हमें प्रभावित करता रहता है। जिसके लक्ष्य प्राप्ति के प्रयत्नों में बाधा पहुंचती है। इसलिये उसे नियंत्रित करने के लिए तांत्रिक अभ्यास करते रहना। (4) लक्ष्य प्राप्ति के लिये विभिन्न योजनाओं की वह कल्पना करता है, उसे पूरा होने की सम्भावनाओं के लिये मार्ग दर्शन करता है। (5) किसी कार्य को करने, उससे सम्बंधित विघ्न-बाधाओं को दूर करने और अच्छी तरह उसे कर गुजरने के लिये वह स्वयं निर्णय लेता है। (6) बातें सबकी सुनता है लेकिन मन अपने ढंग से अपने अनुभव, ज्ञान, विश्वास और मान्यताओं के आधार पर निर्णय लेता है। मन अपनी पांचों कर्मेन्द्रियों द्वारा स्वयं

भोग करता है और अपने लक्ष्य के साथ वह सम्पर्क भी रखता है। वह स्मरण कर तत्कालिक कार्यों को अच्छी तरह करता रहता है और व्यर्थ की बातों को भूल (विस्मरण) जाता है। मन का यह एक विशिष्ट गुण है। जिससे वह पूरे कार्यकाल में संतुलित नहीं रहता है। (8) वह अपने अभ्यासों से अतिन्द्रिय ज्ञान को विकसित कर, उसका प्रयोग कार्य की सफलता और स्वास्थ्य के लिये करता है तथा (9) अपने अवचेतन मन, जिसके भीतर चेतन और परम सत्ता दोनों आसन जामये बैठे हैं और जहां सारी समस्याओं का समाधान मौजूद है, उससे सम्पर्क स्थापित करने में स्विचबोर्ड का काम करता है।

अपनी कल्पना से मन सर्वाधिक प्रभावित

मन इच्छा करता है और यह उसकी सबसे बड़ी क्रिया है। इच्छा करने से ही सब कुछ नहीं होता। मन उसे नियंत्रण करने की कला में भी माहिर है। इच्छाएं नियंत्रित हों लेकिन एक विशिष्ट दिशा में उसका बहाव न हो, लगाव न हो तो वे अंत में पूरी कैसे होंगी इसलिये किसी इच्छा को संकल्प लेकर लक्ष्य बनाना मन का ही काम है। इसलिये मन इच्छा करता है, वह गलत दिशा में न मुड़ जाये इसलिये उसे नियंत्रित करता है इच्छा को संकल्पित लक्ष्य या इष्ट वना लेता है। मन द्वारा ही किसी इच्छा की दिशा में काम प्रारम्भ करने की हरी झंडी दिखाई जाती है, फिर इच्छा शक्ति उसी तेजी और तत्परता से काम में सहयोग देने लगती है। मन द्वारा कोई फैसला लिये जाने के वक्त बुद्धि पीठासीन, जज या अध्यक्ष का काम करती है। यह अपना फैसला सभी परिस्थितियां में दे सकता है। अगर इसकी इजाजत मन दे दे। लेकिन मन प्रायः अपने आवेग-संवेग के चक्कर में पंच कर्मेन्द्रियों के सुखद अनुभवों में और कभी काल्पनिक भूल भलैया में विवेक के फैसले की अवहेलना कर देता है। मन की यही सबसे बड़ी कमजोरी होती है। मन के विकास में कल्पना बड़ा सहयोग करती है। तन्त्र की मान्यता है कि जो बड़ा सपना देखता है वही बड़ा बनता है। जानवर को सपने नहीं आते इसलिये जिन्दगी भर वह जानवर बना रहता है। इसीलिये विवेक का व्यक्तितत्व निर्माण में बहुत बड़ा हाथ होता है। इसके सहारे मनुष्य अध्यात्म का सफर कर सकता है। भविष्य की परियोजना बना सकता है और हवा से भी तेज गति से अपने कार्य की सफलता की दिशा में बढ़ सकता है। कहा गया है कि प्यार के लिये आवेग और उससे सम्बंधित कल्पना के शिकार व्यक्ति, अगर वह घर नहीं बसा लेता, उस घाटे की पूर्ति कभी नहीं हो सकती।

मन की कल्पना शक्ति से असाध्य रोग दूर किया जा सकता है।

कल्पना का गलत दिशा में निर्देशित होना व्यक्ति को "हाईपोकोंट्रिया" का मरीज बना देता है और सही दिशा में निर्देशित कर उस रोग का इलाज भी किया जा सकता है। कल्पना का व्यक्तितत्त निर्माण में बहुत बड़ा हाथ होता है। इसके सहारे मनुष्य इच्छानुसार भौतिक वस्तुओं को पा सकता है, अध्यात्म का सफर कर सकता है, भविष्य की परियोजना को सफल कर सकता है तथा अपने

दिवा स्वप्न को भी साकार रूप दे सकता है। नियंत्रित कल्पना वास्तविकता और विवेक की भूमि पर खड़ी हमें सफल, स्वस्थ और आकर्षक व्यक्तित्व प्रदान कर सकती है। और अनियंत्रित कल्पना जीवन में तूफान लाकर, हमें जीवन भर दुःखी, द्ररिद्र और अभागा बना सकती है। वैज्ञानिकों ने अपनी ख़ोज के आधार पर अधिकृत रूप से पाया है कि कल्पना व्यक्ति में इतनी अधिक शक्ति उत्पन्न करती है और इतना अधिक उसके शरीर और मन पर प्रभाव डालती है कि शरीर और मन की प्रतिरोधक क्षमता पूर्ण रूप से सक्रिय हो जाती है और शरीर न की वास्तविक बीमारियों को भी जल्द ही दूर कर देती है। कल्पना मानव मन का एक बहुत बड़ा संस्थान है। इसकी क्षमता असीमित है लेकिन हमेशा इसके ऊपर इच्छा शक्ति और विवेक का निरीक्षण और नियंत्रण होना बहुत जरूरी है। आत्मा की आवाज नैतिक या आध्यात्मिक कल्पना को उत्साहित करता है। अगर इसे सावधानी से काम करने दिया जाय तो यह हमारी इच्छाओं के चयन और समय पर चेतावनी भी दे सकता है। हमारी पंच इन्द्रियां विश्वनीय सूचना नहीं देतीं इसलिये हमारी कल्पना का गलत दिशा में निर्देशन हो जाता है। मन इन्हीं के सम्पर्क से बाह्य दुनिया से सम्पर्क करता है और इसी के मुताबिक कल्पना करता रहता है। हमारी स्मरण शक्ति, आपूर्ति क्रिया स्थल है और आवेग-सम्वेग से प्रभावित होते रहने के कारण यह अधिक अविश्वसनीय है हमारी कल्पना के साथ महत्त्वपूर्ण सहयोग होता है। इसलिए इसका नियंत्रण होना बहुत जरूरी है। हमारा अतिन्द्रिय ज्ञान आकाशवाणी की तरह प्राप्ति कर लेने के बाद हमारी कल्पनाशीलता को सही दिशा निर्देशन मिलता है। इससे हमारी संवेदनात्मक शक्ति विश्व की अन्य भौतिक शक्यिों से कहीं अधिक बढ़ जाती है।

अवचेतन मन शक्तिशाली पर, स्वास्थ्य के लिए प्रशिक्षण आवश्यक

हमारे मन के तीन स्तर हैं चेतन, अवचेतन और अतिचेतन। इन में से चेतन की भूमिका हमारे सर्वांगीण स्वास्थ्य और सर्वोत्तम व्यक्तित्व के लिए महत्त्वपूर्ण होती है। चेतन मन व्यक्ति में सर्वशक्तिमान है और वह चेतन मन को भी नियंत्रित करता रहता है। वह हमारी सभी समस्याओं का हल ढूंढ़ निकालता है अगर इसने हमारे लक्ष्य और उद्देश्य को वास्तविक रूप में अपना लिया तो सफलता और स्वास्थ्य अवश्य मिलता है। इसमें हमारे सकारात्मक और नकारात्मक विचारों को तथा आशावादी और निराशावादी चिन्तन को उसी के मुताबिक उसी के सदृष्य और उसी मात्रा में भौतिक चित्रों का आवरण कर लेने की अद्भुत शक्ति होती है और चेतन मन को अपने जैसा ही तार्किक और प्राकृतिक तरीकों से लक्ष्य की प्राप्ति के लिए लगा देता है। चेतन मन अवस्थीकरण (कन्डिशनिंग) अवचेतन मन द्वारा ही पूर्ण रूप से किया जाता है। इसके लिए विश्वास और मन का होना आवश्यक है। अवचेतन मन को पूरी तरह से नियंत्रित करना असम्भव नहीं, पर कष्ट साध्य है। इसमें वर्षों लग जाते हैं। एक आध्यात्मिक व्यक्ति अपनी साधना से इसे पूर्ण नियंत्रित कर लेता है। लेकिन जन

साधारण तो अपनी सफलता और स्वास्थ्य को लिए आसानी से किसी विशिष्ट कार्य, इच्छा, उद्देश्य और योजना को कार्य रूप देने के लिए उस ओर मोड़ा जा सकता है। यह निष्क्रिय व्यक्ति में भी सदा सक्रिय रहता है। और अगर इसे लक्ष्य की दिशा में निर्देशित नहीं किया गया तो यह जिस परिस्थिति में हम रहते हैं उसी से साहचर्य स्थापित कर लेता है और प्रभावित हो जाता है चाहं हम चाहें या नहीं। तंत्रोपैथी में इस बात का ही अभ्यास कराया जाता है कि अनचाही बातें हम अवचेतन मन में जाने कैसे बन्द करें और जो पहुंच चुकी हैं उनको कैसे निकाल बाहर करें।

अवेचतन मन के द्वार को खोलने की तकनीक

अवचेतन मन या अन्तर्मन जागृत मन की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली और सक्रिय होता है। जागृत या चेतन मन तो निद्रा में सुसुप्त हो जाता है पर अन्तर्मन सक्रिय बना रहता है। कभी यह चेतन मन के सैद्धान्तिक अनुभवों के आधार पर निराकार सृष्टि की रचना करता, कभी पूर्व जन्म के संस्कारों के द्वारा आंख मिचौनी करता तो कभी दूर दराज की सैर सपाटे भी कर आता है। इसे ही हम स्वप्न के नाम से जानते हैं। इसमें देखी हुई छवि और चित्र, सुनी हुई बातें पैदा हुआ विषय, हमारे दुखद-सुखद अनुभव आदि को संजोकर रखने की अद्भूत प्रवृत्ति है। इस अन्र्तमन को खोलने की तकनीक जान लेने के बाद हम अवांछित विचारों को मन से जाने नही देंगे जो पहुंच गए हैं। उन्हें निकल बाहर करेंगे और सकारात्मक और आशावादी विचारों को ही उसमें स्थान देंगे। उससे हम हर क्षेत्र में सफल और हर स्तर पर स्वस्थ होंगे। हमारे अन्तर्मन में चेतन मन की आज्ञा से ही भय, अंधविश्वास और सन्देह हो जाता है और एक बार इनका स्थान मिल जाने के बाद चेतन मन इसे विना हुज्जत के मानता रहता है।

हम जितना अधिक किसी विषय, वस्तु या व्यक्ति के संबंध में सोचते विचारते और अध्यन करते हैं, हमारा मन उसी ओर अधिक जाता है। अवचेतन मन सूक्ष्म शरीर का अभिभाज्य अंश होने के कारण मनुष्य के साथ मरता नहीं, वल्कि अपनी सम्पूर्ण क्षमताओं या दुर्बलताओं के साथ दूसरा जन्म ग्रहण करता है। अन्तरमन की कुंजी पाने के लिये निम्न प्रयोग आवश्यक हैं।

1.अन्तर्मन से जो काम कराना चाहते हैं, उसे साफ-साफ शब्दों में लिखकर प्रतिदिन सोते समय 10 बार दुहराएं।

2.दुहराते वक्त मानसिक दृष्टि से उस काम को होते हुए भी देखें और अंत में उसे नमस्कार कर आभार प्रदर्शित करें।

3.इसके अभ्यास करने के पूर्व स्वयं प्रसन्नाकृति बनाकर प्रसन्न मुद्रा में मन को उमंग और खुशी से भर दीजिए। यह आन्तरिक भाव आपकी इच्छाओं को पूरा करेगा।

4.इसके साथ नटराजमुद्रा, कर्म-ज्ञान-उद्वोधक विधि का भी अभ्यास करना जरूरी होता है।

हमारा मानसिक रुझान ही हमारे व्यक्तित्व का आकर्षण है। यह सकारात्मक और नकारात्मक दो प्रकार का होता है। हमारे जीवन में सकारात्मक रुझान ही मित्रवत काम करता है। सकारात्मक रुझान हमारे स्वस्थ्य और सफलता दोनों के लिय आवश्यक है। रुझान ही जीवन में हमें सबसे अधिक सक्रिय करने में सहयोग देता है। एक सकरात्मक सुझान का व्यक्ति जीवन में आदेश देता है, अपने आकर्षक व्यक्तितव से दूसरों को अपनी ओर आकृष्ट करता है और हमेशा स्वस्थ रहता है। एक नकारात्मक रुझान का व्यक्ति जीवन भर आदेश पालक दूसरों द्वारा आकृष्ट होने और रोगी व्यक्तितव को व्यक्ति होता है। अगर हमारा सकारात्मक लक्ष्य है। तो उत्कृष्ट अभिलाषा के माध्यम से मानसिक रुझान को हम नियंत्रित कर सकते है। मानव कल्याण की लालसा और अभिलाषा का होना जरूरी है। इसी सेहमारी सकारात्मक रुझान की आशा बंधेगी। हम जितना खतरनाक कष्टसाध्य और मेहनत का काम कल्याण भावना से करते हैं उसकी क्षतिपूर्ण भी उसी रफ्तार और मात्रा में हमारी मानसिक, शारीरिक और आध्यात्मिक क्षति की पूर्ति होती है। इसके लिए सामूहिक सभादर (आब्जेक्टिव ऐडजस्टमेट) के साथ व्यक्ति इच्छापूर्ति (सबजेक्टिव ऐप्रोच) की आदत डालना, अच्छा मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य का होना निर्भयता और दूसरों के साथ मधुर संबंध पूर्ण विश्वास के साथ सफलता की आशा, श्रम के प्रति प्रतिष्ठा और प्यार का भाव, पूर्वाग्रह से मुक्त हो कर किसी विषय पर चिन्तन, मनन तथा स्वयं अनुशासित हो कर दूसरों को समझने की क्षमता का होना जरूरी है और यही जरूरी है और यही अपने मानसिक रुझान को नियंत्रित करने का तरीका भी है।

सकारात्मक रुझान के लिये तांत्रिकी अभ्यास

हमने देखा है कि हमारे स्वास्थ्य, सफलता और खुशी के लिए, मन, अवचेतन मन और मन के रुझान की कितनी बड़ी भूमिका होती है। मन जो पंच इन्द्रियों द्वारा सोचता, विचारता है और पंच कर्मेन्द्रियों द्वारा उसे कार्य रूप देता है। वे प्रायः भौतिक वस्तुएं होती और आत्म सुख से प्रमाणित होती हैं। हमारा अन्तरमन (अवचेतन मन) उसी के अनुभव आवरण से स्वयं ढक लेता है। और मन को वैसा ही करते रहने के लिए आदेश देता रहता है। क्योंकि अवचेतन मन की क्रिया मानसिक रुझान है। यह मानसिक रुझान ही अवचेतन मन का आदेश और निर्देश है जिसे हमारा मन जीवन भर एक आदेशपालक की तरह पालन करता है। अगर अवचेतन मन जाने अनजाने नकारात्मक विचारों, निराशावादी चिन्तनों और निष्क्रियात्मक अवधारणाओं को बार-बार भेजता रहा और हमने विभिन्न तांत्रिक क्रियाओं द्वारा उसमें अवरुद्ध पैदा नहीं किया या बाधा नहीं डाली तो निश्चय ही हम दुर्भाग्य के मारे होंगे और रोग, दुख संताप

(दुश्चिन्ता) और क्षुधानल (गरीबी) कभी हमारा पीछा नहीं छोड़ेगी। हमें अवचेतन मन के उस द्वार को ऐसे विचारों के लिए दरवाजा को बन्द करना ही होगा और जो भीतर पहुंच गए हैं उन्हें निकालना ही होगा। अगर सचमुच में हम स्वस्थ, सफल और खुश रहना चाहते हैं तो सकारात्मक चिन्तन, आशावादी विचारों और सक्रिय अवधारणाओं से अन्तर्मन को भरकर उसमें सकारात्मक रुझान को पैदा करना ही होगा। उसके लिए तंत्रोपैथी के निम्न अभ्यासों को मात्र 45 मिनट के लिए अपने नित्यक्रिया में सम्मिलित करना होगा।

मन बहुत अधिक सम्वेदनशील होता है और मस्तिष्क के माध्यम से वह भौतिक कार्यों को करता है मन बीमार होने से मस्तिष्क निष्क्रय हो जाता है और मास्तिष्क के निष्क्रिय होने से सारा शरीर निष्क्रिय और बीमार हो जाता है। मन का चिन्तन पहले आंखों में फिर गले और इसके बाद मांसपशियों के माध्यम से अभिव्यक्त होता है। क्रोध पहले आंखों से झांकता है, फिर गले से बोलता है और इसके बाद मारपीट पर उतरता है। दुःख पहले आंखों से प्रकट होता, फिर गले से इजहार या गुहार करता है और इसके बाद शरीर से प्रस्तुत होता है। इसलिए मन को उद्दीप्त करने के लिए शारीरिक मुद्राएं, मंत्र और यंत्र का सहारा लेना पड़ता है। प्रतिदिन सिर्फ 45 मिनट इसके लिए समय देने 5 मिनट कर्मज्ञान उद्बोधन की विधि का अभ्यास करने से ही अवचेतन मन का सम्पूर्ण प्रशिक्षण होगा, अन्तर्मन का कपाट खुल जाएगा। और सकारात्मक रुझान पैदा होकर हमारी झोली को सफलता, सौभाग्य स्वास्थ्य और खुशियों से भर देगी।

अंतर्मन के अवस्थिकरण के लिए मंत्र, यंत्र का मन के उद्दीपन के लिए मुद्रामंत्र और यंत्रों का और सकारात्मक रुझान पैदा करने के लिए कर्म-ज्ञान उद्बोधन विधि का कुछ दिन का अभ्यास करने से हम इसमें अभ्यस्त हो जाते हैं। इसके लिए तांत्रिकी संयम और उपचार संस्थान में एक महीना पूर्ण विज्ञान करने के लिए समय निकालकर इनका अभ्यास कर लेना आवश्यक हो जाता है।

ऋद्धि-सिद्धी-समृद्धि और स्वास्थ्य

मूर्धन्य दार्शनिक श्री पी. आर. सरकार ने "प्रभासिद्धान्त" की परिभाषा में कहा है त्रिगुणात्मक, सृष्टिमात्रिका अप्रेषात्रिकोण धारा। प्रकृति स्वभाव से ही संतुलित त्रिकोण धारा की ओर बहती है। जहां इस धारा से व्यवधान आता है, प्रकृति उसे संतुलित करने की दिशा में प्रयत्नशील हो जाती है। प्रकृति के तीन गुण हैं–सत्त्व, रज और तम। इन तीनों का संतुलन ही सृष्टि है, जीवन है और विश्व ब्रह्माण्ड है। जहां यह संतुलन बिगड़ता प्रकृति स्वभाविक रूप से संतुलित करने का प्रयास करती है। लेकिन अगर उन कामों में किसी प्रकार का व्यवधान पड़ा या उसके स्वभाव के विपरीत धारा मोड़ने की कोशिश की गयी तो इसकी प्रतिक्रिया उसी मात्रा में बढ़ती है और कभी-कभी भयानक हो जाती है। आज हम वायुमण्डल प्रदूषण और इकोलोजिकल असंतुलन का शिकार इसी कारण हुए हैं। शारीरिक वातचीत और कफ का असंतुलन और इन तीनों में 'प्रभा' लाने

की प्राकृतिक त्रिकोण धारा ही शारीरिक बीमारी मानसिक, असंतुलन और आध्यात्मिक संताप (अपराध की भावनात्मक प्रताड़ना और आत्महत्या) है इसे आधुनिक वैज्ञानिकों, मनोवैज्ञानिकों, और मनोचिकित्सकों ने ला ऑफ कोसमिक हेविट फोर्स ला ऑफ बलेन्स, ला ऑफ कम्पेनसेशन, ला ऑफ इनक्रिजींग रिटर्न और ला ऑफ डिमिनिशिंग रिटर्न के माध्यम से भौतिक, शारीरिक और मानसिक क्रिया-कलापों (फेनामेना) को बतलाया है। इन नियमों की विस्तार से चर्चा हम इस पुस्तक के अंतिम परिच्छेद में करेंगे। यहां हम ऋद्धि, सिद्धी और समृद्धि में प्रकृति द्वारा प्रमात्रिकोण बनाने के क्रम (अशेष धारा) में किस प्रकार व्यक्ति सर्वांगीण स्वास्थ्य और सर्वोत्तम व्यक्तित्व को पा लेता है या प्रकृति का कोप भोजन बनता हैं। चर्चा करेंगे। व्यक्ति प्रकृत्ति के साथ जीने की आदत डालकर ही सुखी और स्वस्थ रह सकता है। इसी परिपेक्ष में हम ऋद्धि, सिद्धि और समृद्धि की चर्चा करेंगे। ऋद्धि भौतिक, शारीरिक और मानसिक, सिद्धि मानसिक, आध्यात्मिक तथा समृद्धि शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक स्तर पर प्रगति ही मनुष्य की स्वाभाविक प्रगति की स्थिति है। यही सर्वोत्तम स्वास्थ्य और सर्वांगीण व्यक्तित्व है।

ऋद्धि, सिद्धि और समृद्धि का संतुलन ही स्वास्थ्य है

भौतिक, मानसिक और आध्यात्मिक स्तर पर प्रभा स्थापित होने पर ही हमारी वास्तविक, प्रगति होगी। क्योंकि हमारे भौतिक और शारीरिक विकास का सीधा और गहरा सम्बन्ध हमारे मानसिक और आध्यात्मिक विकास से है। अगर हमारा भौतिक विकास बहुत अधिक हो जाता है लेकिन मानसिक और आध्यात्मिक विकास से उसका संतुलन नहीं हो पाता, तो वह समृद्धि नहीं कही जा सकती। उसी प्रकार अगर हम शारीरिक-मानसिक से दृष्टि से विकसित हो जाते लेकिन भौतिकता और आध्यात्मिकता के साथ संतुलन नहीं बनाए रखते हैं तो हम परम ऋद्धि या मानसिक अध्यात्मिक दृष्टि से आत्यधिक प्रगति कर जाते हैं लेकिन भौतिक और मानसिक दृष्टि से संतुलित नहीं होते तो हम परमसिद्धि को प्राप्त नहीं होते और प्रभा स्थापित करने के क्रम में प्रकृति का कोप भाजन हमें किसी-न-किसी रूप में कभी न कभी होना ही पड़ता है इसलिए हमें ऋद्धि, सिद्धि और समृद्धि में संतुलन बनाए रखना ही होगा। प्रभा ही हमारे व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन का विकास और प्रगति है तथा सांस्कृतिक और सामाजिक जीवन का सार, सर्वोचता और सम्मान है। भौतिक, मानसिक और आध्यात्मिक संतुलन (प्रभा) की मात्रा के आधार पर ही व्यक्ति, समाज और संस्कृति की सर्वोच प्रगति और सम्मान का अन्दाजा हम लगा सकते हैं किसी व्यक्ति की बीमारी का भय करना, सामाजिक अधोगति और सांस्कृतिक गिरावट का अन्दाजा हम उस व्यक्ति के तीनों स्तरों पर प्रभा की मात्रा को जानकर ही पता लगा सकते हैं। तंत्रोपैथी में रोग निदान की यह एक प्रमुख प्रक्रिया है।

मोक्ष, मुक्ति और सिद्धि चाहने वाले व्यक्ति का लक्ष्य आध्यात्मिक विकास

होता है लेकिन सिद्ध में संतुलतन (प्रभा) लाने के लिए उसे भौतिक और मानसिक विकास के लिए भी प्रयत्नशील रहना होगा। उसी प्रकार वैज्ञानिक, साहित्यकार, कलाकार आदि औद्योगिक विकास कर ऋद्धि प्राप्त करने के इच्छुक व्यक्ति को अपना प्राकृतिक संतुलन (प्रभा) बनाए रखने के लिए भौतिक और आध्यात्मिक विकास से मुख नहीं मोड़ना होगा। भौतिक सुख और आनन्द के उद्देश्य से काम करने वाले व्यक्ति को मानसिक और आध्यात्मिक प्रगति की ओर ध्यान देना होगा। ऐसा नहीं होने से व्यक्ति ऋद्धि, सिद्धि और समृद्धि पाने में असफल तो रहेगा ही साथ-ही-साथ लक्ष्य की प्राप्ति में शारीरिक व्याधियों और मानसिक असंतुलन का उसे बुरी तरह सामना करना पड़ेगा। अध्यात्म ही सामाजिक और सांस्कृतिक अभिव्यक्ति है। एक आध्यात्मिक व्यक्ति सामाजिक और संस्कृत होना ही और जो समाज के प्रति जिम्मेदार होगा और सुसंस्कृत होगा वही प्रगति करेगा ही, समृद्ध होगा ही वह निरोग रहेगा ही, समृद्धि के दो प्रमुख गुण हैं। समय, श्रम और मानसिक रुझान।

समृद्ध बनने के लिए श्रम की प्रतिष्ठा करनी होगी। श्रम ही हमारी प्रकृति है और प्रकृति का नियम है। श्रम चाहे हम ज्ञानी बनना चाहते हैं स्वस्थ रहना चाहते हैं, प्रसन्न रहना चाहते हैं, या कुछ पाना चाहते हैं तो हमें श्रम करना ही होगा। समृद्धि का ताला श्रम से ही खुल सकता है। ऋद्धि और समृद्धि की कुंजी मेहनत ही है। परिश्रमी व्यक्ति कभी थकता नहीं किसी काम से, वह मुख नहीं मोड़ता चाहे वह जितना कठिन हो और हर काम को खेल-कूद में करता है। जिसे हम श्रम करके पाते हैं वही हमारा है और उससे हम प्रेम करते हैं। आदर के साथ उसे सुरक्षित और संजोकर रखते हैं। बिना मेहनत की पायी हुई वस्तु की हम कदर नहीं करते और व्यर्थ में उसे गंवा देते हैं। हम कोई भी काम चाहे धीरे ही क्यों न करते हों दूसरे के भले के लिए होना चाहिए। फूल चाहे कैसा भी उगाएं सुन्दरता और सुगन्ध देखने और सूंघने को मिलेगी ही। और कुछ गंध (इत्र बेचने वाला) दे या न दे सुगन्ध तो वह दे ही जाता है। जो श्रम नहीं करता वह सचमुच में पापी है बेकार व्यक्ति को खाली दिमाग से ही शैतानी सूझती है। दुश्चिन्ता, बीमारी और नकारात्मक चिन्तन के जीवाणु पालते हैं वही, जो आलसी, कामचोर, काहिल और डरपोक होता है। अगर मन तनाव और दबाव से भरा है तो वह गान या किचन गार्डेन में काम करने लगिए आधे घंटे में तनाव से मुक्ति मिल जाएगी। श्रम सेवार्थ स्वास्थ्य वर्धिनी दवा और समृद्ध बनने की प्रभु की दुआ है।

श्रम की तरह ही समय भी समृद्धि के प्रमुख गुणों में है। जब हम समृद्ध बनने की दिशा में आगे बढ़ते हैं। तब छोटी-मोटी असफलता और क्षणिक बुरे दिन भी देखने को मिलते हैं। समृद्ध होना फूलों का सेज नहीं है कभी-कभी कांटों का ताज भी पहनना पड़ता है। समय की गाछ में ही फल लगाता है, समय उसे पकाता ओर खाने योग्य बनाता है। समय छोटी-मोटी असफलताओं, व्यवधानों और बुरे दिनों की प्राकृतिक चिकित्सा है यही हमारे रास्ते के कांटों को चुनने

वाला और सभी व्यवधानों को उपयुक्त प्रभावों में बदलने वाला ट्रांसफार्मर है।

यथार्य चिन्तक जो अनुभव करते, सुनते और मजसूस करते हैं, उसे ही वे वास्तविक और यथार्थ मानते हैं। इनकी परिकल्पनाएं और परिस्थितियां सैद्धान्तिक होती हैं। इसलिए ये प्रायः बेकार, बेमतलब और बेकार की बातें करते रहते हैं और जीवन में निकम्मा साबित होते हैं। संश्लेषणात्मक चिन्तन और आदर्शवादी चिन्तन इनके लिए बेमानी होता है। ऐसे व्यक्ति अपने लक्ष्य को अपने ढंग से देखते हैं और दूसरे अगर उनके दृष्टिकोण से सहमत नहीं हुए तो आश्चर्य करते हैं ये अपना वादा नहीं तोड़ते और आर्दश के लिए जीते और मरते हैं ये बीमारी से अकसर सर्तक रहते हैं। इसलिए इनका सामान्य स्वास्थ्य प्रायः बिगड़ा हुआ रहता है।

धृष्ट चिन्तक जीवन के सम्बन्ध में सकारात्मक विचार रखते हैं और जीवन्त जीवन जीते हैं। ये यथा समय कार्य को उसी दिन निबटा लेते हैं और हंसी खुशी से जी लेते हैं। ऐसे लोगों के सामने समस्याएं नहीं के बराकर होती हैं। पूर्ण आशावादी ऐसे लोग होते हैं और कल हमें और सुयोग मिलेगा ही, इस पर इन्हें पूरा भरोसा होता है। ऐसे ये वास्तविकता को जानने और आगे बढ़ने की दूर दृष्टि रखते हैं। कल सुअवसर मिलेगा ही इस पर भरोसा कर जो भी उपलब्ध रहता है उसी से काम चला लेते हैं। ये नवप्रवर्तक, नयी-नयी खोज करने वाले, नयी पद्धति से कार्य करने वाले और नए-नए साधन और स्रोतों से भरे होते हैं। ये दूर दृष्टि रखते हैं और वास्तविकता को आत्मसात कर लेते हैं। यह समझौतावादी होते हैं और दूसरों के साथ अभियोजन करने की इनमें अद्‌भुत क्षमता होती है तथा किसी भी परिस्थिति में ये अपने को समायोजित कर लेते हैं। विरोंधियों को मात देकर असम्भव कार्य को सम्भव कर दिखाते हैं और समझौता और अभियोजन की कला से पूर्ण होते हैं। ऐसे लोग स्वस्थ, दीर्घायु और सुखी रहते समय हमारी सारी विभागीय चिकित्सक और भौतिक मानसिक और आध्यात्मिक वृत्ति को पूरा करने वाला है। यह हृदय ही चोट का और मन के नासूर को धैर्य और सूझबूझ में बदलता है। क्योंकि ये समृद्धि के रास्ते के सबसे बड़े रोड़े हैं। अगर हमने समय का साथ नहीं दिया तो हमारी जवानी के एक एक क्षण व्यर्थ चले जाएंगे और दीन-हीन माहीन, दुःखी और रोगी बने रहेंगे। हमारा हरक्षति को पूरा करने वाला समय ही राजवैद्य है। यह हार को जीत में, असफलता को सफलता में और अपने कुकर्मा को सुकर्मा में बदलने का मौका देता है। यह परसत्ता की आदत शक्ति (कास्मीक हैबिट फोर्स) है और क्षति पूर्ति के नियम के मुताबिक अपने ढंग से काम करने के योग्य हमें बनाता है। यही घाटे और आमद का नियम से जाना जाता है। समय हमें अपनी भूलों को सुधारने का निराधार भय से छुटकारा दिलाने तथा अज्ञानता को पाण्डित्य में बदलने में मदद करता है। समय को खोना समृद्धि के शुभावसर को टालना है।

समय समृद्धि का सबसे प्रमुख अंग है

समय का मूल्य पहचानना आसान नहीं। इसके लिए हमें आदत डालनी होगी। आदत आसनी से नहीं पड़ती। आदत डालने के लिए अभ्यास करना होता है।

अभ्यास भी व्यक्तिक्रम हो जाता है। अगर अभ्यास को श्रद्धा और विश्वास से न किया जाय। ऋषियों ने श्रद्धा और विश्वास युक्त अभ्यास को साधना कहा हैं। किसी साधना के लक्ष्य का निर्धारण करने के लिए यह आवश्यक हो जाता है, कि पहले अपनी अनंत इच्छाओं में से किसी एक इच्छा को, जिसे हम पूरी करना चाहते हैं और जिससे अपने भले के साथ-साथ समाज की प्रगति में भी सहायक होता हो संकल्पित कर इष्ट बनाते हैं। तंत्र में संकल्प किसी बड़े-बूढ़े या विशिष्ट व्यक्ति या विश्वसनीय हित-मित्र या परिवार के सदस्य के सामने किया जाता है। इसी का परिवर्तित रूप आधुनिक शिलान्यास समारोह और पौराणिक रूप भूमिपूजन पुर्नरक्षण और समहुत कर्म काण्ड है। समय के सदुपयोग का अभ्यास करना चाहिए।

समय हमारी दौलत है इसलिए आप एक क्षण भी व्यर्थ न गंवाकर अपने विकास में लगाएंगे और अनर्गल प्रलाप जुआ-ताश आदि खेलने तथा बिना मतलब इधर-उधर घूमकर समय काटने को पाप और आत्महत्या समझेंगे। अपने समय की योजना इस प्रकार बनाएंगे कि प्रतिदिन हीं काम करेंगे और उन्हीं लोगों से मिलेंगे जिससे हमारी प्रगति हो, शान्ति और प्रसन्नता मिले। हम सेवा का बीज बोएंगे। जिससे "कर भला तो हो भला" की उक्ति चरितार्थ हो। समय कम है और काम अधिक करना है, इसलिए समय का अपव्यय नहीं करेंगे। हमारा काम नियत समय पर पुरा हो, इसके लिए अपने सहयोगियों को उत्साहित किया करेंगे, उनका गुण विवेचन करेंगे और हर परेशानी में यथा शक्ति मदद के लिए प्रस्तुत रहेंगे। पूर्वाग्रह किसी के प्रति कभी न पालेंगे और कार्य पूरा होने पा हृदय से अपने सहयोगियों सहकर्मियों और अनयुायियों को धन्यवाद देंगे। कहीं मै उपर्युक्त बातों को भूल न जाऊं इसलिए इसे प्रतिदिन सोने से पूर्व तब तक अभ्यास करता रहूंगा जब तक इसकी आदत न पड़ जाये। समृद्ध होने की एक कला है। समृद्धि श्रम की कला है, चिन्तन की कला है, प्रेम करने की कला है। मित्र बनाने और नेतृत्व करने की कला है तथा भरपूर पारिवारिक, सामाजिक और व्यक्तिगत जीवन जीने और आनन्दित रहने की कला है। इन कलाओं में अनाड़ी व्यक्ति कभी समृद्धिशाली बन ही नहीं सकता।

श्रम एक कला है। लिटर की डिक्शनरी में श्रम, किसी काम को अच्छी तरह करने के लिए तकलीफ और परेशानी उठाना है के रूप में परिभाषित किया गया है। इस परिभाषा में काम करने की खुशी को दर किनार कर दिया गया है। अच्छी तरह एक काम को करने में व्यक्ति, उस कला की निपुणता को हासिल कर लेता है। जिसे वह जानता नहीं था इसलिए एक नए काम को सीखने की उत्सुकता और उल्लास, सीखे जाने पर और उसे अच्छी तरह कर लेने की खुशी और दर्शक द्वारा उसकी की जाने वाली प्रशंसा का आन्नद श्रम में सम्मिलित रहता है। बड़े-से-बड़े काम को खेल-खेल में करने की मानसिकता को विकसित करना, श्रम में सम्मिलित परेशानियों और तकलीफों को कम कर देता है। अपनी पसंद का काम चुने चाहे वह जीवन यापन के लिए नौकरी हो, व्यवसाय हो या राजनीति।

अगर एक बार लक्ष्य का चुनाव कर लिया तो जब तक कोई सैद्धांतिक घटना न घटे तब तक उस पर अफसोस न करें। काम में जल्द फैसला लें। उस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए शारीरिक और मानसिक दृष्टि से लग जाएं। यद्यपि मनुष्य की श्रम शक्ति और श्रम क्षमता अत्यधिक और अनन्त है लेकिन जो सभी कुछ करना चाहता है वह कुछ भी नहीं कर सकता। इसमें भूले व्यक्ति असीमित शक्ति और बुद्धि रखते हुए भी कई कामों में एक साथ लगने और सोचते रहने से बिखर जाता है। और रोगी, असफल और दुखी हो जाता है। अगर एक काम पर केन्द्रित हो कर काम किया जाये तो व्यक्ति के लिए कोई काम असम्भव नहीं है। अमेरिकन कहावत के मुताबिक "एक ओर प्रवाहित मन सिंगल ट्रैक माइन्ड" की सफलता में बाधक सारे अवरोधों और रोड़ों को चकनाचूर कर सफल होता है। वह सभी कामों में दिलचस्पी लेता है लेकिन एक काम को एक बार करता है। एक श्रमिक को सफलता में पूर्ण भरोसा होना चाहिए। क्योंकि असफलता व्यक्ति की शक्ति, ऊर्जा और आत्म विश्वास को बर्बाद कर देता है। जो असम्भव में विश्वास करता है वह जीवन भर गैर जिम्मेदार बना रहता है, उससे कोई काम शुरू ही नहीं किया जाता। वे जो अपने लिए, परिवार और समाज के लिए कुछ करना चाहते हैं उन्हें हमेशा मानसिक दृष्टि से देखते रहना चाहिए कि इस काम को हम से अच्छा और कोई कर ही नहीं सकता है। काम में अनुशासन का अर्थ काम से सम्बंधित आवेग सम्वेग पर अनुशासन। और हम देखते भी है की आवेश-सम्वेग में बह कर हम काम को करने के अयोग्य बन जाते हैं इसीलिए काम के लिए अपने सारे आवेगिक-साम्वेगिक सम्बन्धों को त्याग करना ही होगा। सभी बड़े लोग जानते थे कि समय-समय पर कैसे काम से अवकाश पाया जाता है। वे अपनी सारी जिम्मेदारी अपने सम्बंधी और मित्रों पर छोड़ कर पहाड़ जंगल या दर्शनीय स्थल जाया करते और पूर्ण अवकाश का मजा लेते। जो दूसरों के आदेश पर काम करते उनमें घामण्ड नहीं होना चाहिए। अगर अपने अधिक से द्वन्द्व अपनी अहम की रक्षा के लिए हुआ तो आदेश का परिचालन निश्चित या असम्भव हो जायेगा। नेता में विश्वास समूह को साथ रखता है। अगर नेता के प्रति भक्ति प्रशंसात्मक अभिव्यक्ति और खुलापन हो तो नेता से कोई भूल होते देख हिम्मत से उसी सुधार के लिए कहा जा सकता है क्योंकि लक्ष्य पाने में सफलता का उद्देश्य इसमें छिपा होता है।

काम करना बेइज्जती है और दैवी सजा है, यह सामंती युग में अधिक प्रचलित था। शारीरिक मानसिक काम करना गुलामी और दासता है, यह पूंजीवादी युग में भी नव धनाढ्य वर्ग में नवयुवकों में प्रचलित है और औद्योगिक विवादों हड़तालों और मजदूर मालिक वैमनस्य का यही कारण है। उत्पादित वस्तुओं की अविश्सनीयता और दैनीय गुणवत्ता का मालिक मुनाफा के लिए पचास हथकण्डे अपनाता है। और श्रमिक अधिकार की रक्षा के लिए उससे बुरी तरह झगड़ता और मरने मारने के लिए तैयार रहता है। काम कर्तव्य भावना से किया जाये मालिक, श्रमिक की जिम्मेदारी लें और आदर करें, श्रमिक प्रबंधक की जिम्मेदारी को इज्जत की नजर से देखे और दोनों एक दूसरे के प्रति। मालिक मुनाफा में

श्रमिक की भागीदारी करे और श्रमिक उत्पादन में गुणवत्ता और विश्वसनीयता को बढ़ाकर आगे बढ़े, तो किसी भी काम में सफलता निश्चय ही मिलेगी और मालिक और मजदूर शारीरिक मानसिक दृष्टि से कम बीमार होंगे बनिया ऋणी के मानसिकता वाले लोगों में रक्त चाप हृदय रोग और मधुमेह की बीमारी का कारण हैं। और अधिक धन कमाने की हवस उसे सुरक्षित रखने और उसका अपव्यय हो जाने की भय। स्वस्थ्य रहने और सफल होने के लिए श्रम की प्रतिष्ठा करनी होगी। काम दो प्रकार का है–श्रम और परिश्रम शारीरिक काम को परिश्रम कहते हैं और मानसिक काम को श्रम और परिश्रम दोनों ही सफलता और स्वस्थ्य के लिए जरूरी है। किताबों को पढ़ने और कुछ लिखते रहने की हाबी विकसित करना व्यक्ति की प्रगति के लिए आवश्यक होता है।

काम चाहे मानसिक हो या शारीरिक, थकान होना स्वभाविक है। परिश्रम करने से शरीर की मासपेशियों का संकोचन-प्रसारण होता रहता है इसलिए शरीर की थकान का होना अवश्यंभावी है। लेकिन मस्तिष्क में कोई मांसपेशी नहीं होती, इसलिए मानसिक कार्य से मस्तिष्क को थकने का कोई औचित्य नहीं। मानसिक श्रम करने में आंख और गर्दन की मांसपेशियां थक जाती है। इसलिए व्यक्ति थकान का अनुभव करता है। काम के थकान होने से रात को गहरी नींद में सोना पूर्ण विश्राम के लिए बहुत जरूरी है। तंत्रोपैथी में इसके लिए बाबा की खोज की गई है जो बहुत ही सरल और सुगम है। वैसे बिस्तर पर पेट के बल लेटकर बिना प्रयत्न के शरीर के पूरे भार को बिस्तर पर देना और मानसिक दृष्टि से देखना कि बिस्तर पर शरीर का भार क्षण-प्रतिक्षण बढ़ता जा रहा है। ऐसा करने से कुछ क्षण में ही नींद आ जाएगी। सोने के पूर्व बिस्तर पर चित लेट जाएं और हाथ को सिर की तरफ तथा पैर में पूरा तनाव देते हुए बिस्तर पर एक किनारे से दूसरे किनारे पर 5 बार बायें से दायें और दायें से बायें लुढ़कते रहे एक तीसरी विधि है कि बिस्तर पर लेटे-लेटे शरीर को ढीला कर देना और श्वांस प्रश्वांस की गति में बिना विघ्न पहुंचाए उसे देखते रहें।

समृद्धि एक चिन्तन कला है। हममें से अधिकांश लोग काम तो करते हैं पर उससे पूर्ण रूप से आजीवन अनभिज्ञ रहते हैं अधिकांश लोग काम को कोई तरजीह या महत्व नहीं देते और कुछ लोग जान बुझकर काम से जी चुराते और किसी न किसी बहाने आगे चलते हैं। कुछ काम में लगे रहते हैं। लेकिन आगे चलते हैं। कुछ काम में लगे रहते हैं लेकिन चित्त कभी भूत के खट्टे-मीठे अनुभवों, कभी वर्तमान की परेशानियों और कभी भविष्य की चिन्ताओं में भटकता रहता है। इन स्थितियों में ही काम को शुरू करने, उसे जारी रखने और उसको पूरा करने में हमारा चिन्तन ही, स्वयं बाधा बनकर खड़ा हो जाता है और हम असफल, अस्वथ्य और दुःचिन्तक बन जाते हैं। यह सब हमारी चिन्तन शैली पर निर्भर करता है। सोचना विचारना हमारा आन्तरिक परिवेश है जैसा हम सोचते विचारते हैं, उसी ढंग से काम करते है और साथ-ही-साथ काम में सफल-असफल स्वस्थ-अस्वस्थ और सुखी-दुखी होते रहते हैं। काम कम और हमारे चिन्तन

अधिक हमें सुखी और दुःखी किए रहता हैं। व्यक्ति के सोचने की पांच प्रमुख शैलियां हैं संश्लेषणात्मक चिन्तन, विश्लेषणात्मक चिन्तन, आदर्शवादी चिन्तन, घृष्ट चिन्तन (प्रैगमेटिस्ट) और यथार्थ चिन्तन। ये चिन्तन-शैलियां ही हमारे काम करने के ढंग और चरित्र का निर्धारण करती हैं।

संश्लेषणात्मक चिन्तन शैली–के व्यक्ति की रचनात्मक क्रियाशीलता अद्भूत होती है। वह किसी काम को जल्द शुरू कर देता, जी जान से इस काम में लगा रहता और उसको सफल बनाने के हर सम्भव प्रयत्न चाहे वह जोखिम से भरा पड़ा क्यों न हो निर्भिक होकर पूर्ण आत्मविश्वास के साथ करता रहता और अन्त में उसे सफल कर के ही छोड़ता है। ऐसे व्यक्ति में दूसरों को प्रभावित करने की क्षमता बहुत होती है। और वह रास्ता चलते विश्वसनीय मित्र बनाकर उससे अपना काम निकाल लेता है। और उसका भी छोटा-मोटा कुछ काम करके उसके दिल को जीत लेता है। ऐसे व्यक्ति काल्पनिक और दार्शनिक होते हैं, तथा सामान्य लोग वास्तविकता से थोड़ी दूर रहते हैं। जिससे इन्हें प्रायः विवादों के घेरे में आ जाना पड़ता है। इन्हें किसी काम को करने और देखने की विचित्र दृष्टि होती है तथा कई दृष्टिकोण से उस पर जांचते और देखते हैं। संश्लेषणात्मक चिन्तक आश्चर्य चकित करने वाले विचारों की झड़ी लगा देते हैं। तथा दूसरों का उत्साह बढ़ाते हुए पूर्ण व्यावहारिकता से काम लेते हैं। सामान्य विचार रखने वालों के साथ समझौतावादी तथा अच्छे श्रोता होते हैं। अगर लक्ष्य जीवन मूल्यों, नैतिकता और दूसरों के भले की बातें हों तो तुरन्त ही मान जाते हैं। तथा नैतिक मूल्यों की उपेक्षा करने वालों की वे बड़ी आलोचना करते हैं। ऐसे व्यक्ति की नजर सदा भविष्य पर लगी रहती है और जिनसे कभी जरूरत भी नहीं पड़ सकती, वैसे लोगों की मदद भी वे करते रहते हैं। ऐसे लोग लब्बी योजनाओं की बातें करते दूसरों के सम्बन्ध में वास्तविक दृष्टिकोण रखते तथा दूसरों को कष्ट नहीं पहुंचाना चाहते लेकिन कभी कभी ये उबल पड़ते हैं। इनका स्वास्थ्य मध्यम श्रेणी का रहता है और अपने आदर्शवादी आदत के चलते असाध्य बीमारियों को आमंत्रण देते रहते हैं।

विश्लेषणात्मक चिन्तन–किसी काम को पूरा करने का एक सर्वोत्तम रास्ता है। विश्लेषणात्मक चिन्तक समस्याओं के तह तक जाता है मेहनत से उससे सम्बन्धी तथ्यों को इकट्ठा करता है। तथा बड़ी सावधानी से सही सूत्र की वह तलाश करता है। जहां सूत्र उसे हाथ लगा उस पर तब तक दृढ़ रहता है जब तक उससे भी तगड़ा सूत्र हाथ नहीं आ जाता। ऐसे व्यक्ति विशुद्ध चिन्तक होते हैं। चिन्तन पर अमेरिका की एक खोज के आधार पर पाया गया कि आबादी के 15 प्रतिशत व्यक्ति किसी-न-किसी रूप में सभी प्रकार की चिन्तन शैली का प्रयोग करते हैं। 33 प्रतिशत किसी एक चिन्तन शैली में चिन्तन करना पंसद करते हैं तथा 50 प्रतिशत लोग दो या तीन चिन्तन शैली, अपने चिन्तन में अपनाते हैं। स्वास्थ्य सफलता और खुशी के लिए हमें भी जहां जैसी जरूरत हो

वैसी ही शैली का प्रयोग करना चाहिए। रविवार को परिवार के साथ पूरी छुट्टी मनाकर पूरा सप्ताह उत्साह और उल्लास के साथ काम कीजिए। अपने सभी कामों को व्यक्तिगत नहीं, सामूहिक रूप देकर कीजिए और काम करने के कुछ नयी योजनाओं, नयी पद्धतियों और नए प्रयत्नों के लिए कोशिश करते रहना चाहिए। धृष्ट चिन्तक वास्तविक रूप में समृद्धिशाली बनने के योग्य होते हैं।

हमारा जैसा चिन्तन होगा वैसी ही हमारी मानसिक रुझान होगी। और हमारी सफलता असफलता और स्वस्थ होना मानसिक रुझान पर पूर्णरूप से निर्भर करता है। अपने चिन्तन शैली में हम तंत्रोपैथी के विभिन्न अभ्यासों द्वारा पूर्ण रूप से परिवर्तन ला सकते हैं। सकारात्मक चिन्तन शैली आशावादिता और जीवन में गत्यात्मकता सकारात्मक मानसिक रुझान की ही देन है। उन्होंने ही जीवन में प्रगति की है जिनका सकारात्मक मानसिक रुझान रहा है। और समृद्धिशाली बनने के लिए श्रम और समय की इज्जत की है। सकारात्मक मानसिक रुझान ही आध्यात्मिकता का प्रथम और अंतिम सोपान है। एक बार अपने पूज्य गुरुदेव श्री श्री आनन्द मुर्ति जी के श्री चरण कमलों में उनके समक्ष बैठा था और सोच रहा था कि क्या पता वर्षों साधना करने के बाबजूद भी हमारा आध्यात्मिक विकास हो रहा है या नहीं। अर्न्तयामी गुरुदेव हमारी मानसिक स्थिति को समझे और हम से ही पूछ बैठे–"क्यों जी उपाध्याय अगर भगवान तुम्हारे साथ रहते हों, तुम्हारे साथ काम करते हों, तुम्हारे साथ हंसते बोलते हों, फिर तुम उन्हें पहचानोगे कैसे कि वे भगवान है।" मुझसे कुछ जवाब देते नहीं बन पड़ा। मैं चुप बैठा उनकी आंखों में देखता रहा। कृपालु हमारी असमर्थता को समझ गए और मुस्कराकर बोले–"तुम्हारे भगवान आध्यात्मिकता के मूर्त रूप हैं। वे सकारात्मक चिन्तन, आशावादिता और गत्यातमकता की साकार प्रतिमूर्ति है। यही उनका परिचय है। अब तो तुम अपने भगवान को आसनी से समझ जाओगे।" जी बाबा! फिर प्यार भरे मधुर शब्दों में उन्होंने समझाना शुरू किया। "अगर तुम 50 प्रतिशत से अधिक सकारात्मक चिन्तन आशावादिता और गत्यात्मक क्रियाशीलता में आगे की ओर बढ़ रहे हो, या बढ़े हो, या बढ़ने का प्रयत्न कर रहे हो तो अवश्य ही तुम्हारी आध्यात्मिकता की प्रगति हो रही है। अगर नकारात्मक चिन्तक, निराशावादी और निष्क्रिय गुरु वस्त्र धारी हो भी तो वह आध्यात्मिक दृष्टि से बहुत पिछड़ा हुआ है तो उसकी संगत भी छोड़ देनी चाहिए। इसके बाद एक मीठी मुस्कान से मेरी ओर उन्होंने देखते हुए मुझसे फिर प्रश्न किया–" तुम्हारी आध्यात्मिक प्रगति हो रही है इसमें तो तुम्हें अब कोई संदेह नहीं? जी बाबा! कहते हुए मैंने पूज्य गुरुदेव का चरण चूम लिया।

अन्य बीमारियों के लिए प्रमुख मुद्राएं

तंत्र ने कहा है कि जो विश्वब्रह्माण्ड में है वह पिण्ड में है। अग्नि, जल, वायु, पृथ्वी और आकाश से यह विश्वब्रह्माण्ड बना है इसलिए ये तत्त्व पृथ्वी के सारे चर-अचर, जड़-जंगम और अचेतन-चेतन में भी पाया जाता है। सारे

जीवधारियों में मनुष्य पूर्ण विकसित प्राणी है। इसलिये ये पांचों तत्त्व सन्तुलित और समानुपतिक रूप में शरीर में पाये जाते हैं। इनका असंतुलित होना ही शरीर में किसी बीमारी का आना है। तांत्रिकी ने अपने प्रयोगों के आधार पर हाथों की पांच अंगुलियों को इन पांच तत्त्वों का प्रतिनिधि माना है। अंगूठा अग्नि का, तर्जनी वायु का, मध्यमा आकाश का , अनामिका पृथ्वी का और कनिष्ठा जल का प्रतिनिधित्व करती है। इन अंगुलियों को आधार मानकर वे विभिन्न तरह की मुद्राओं का सृजन क्रिया और विभिन्न रोगों को दूर करने के लिए इन मुद्राओं का कम-से-कम 5 से 10 मिनट तक प्रति दिन करने की व्यवस्था दी है।

मुद्राओं को करने के लिए पांचों अंगुलियों को इतना फैलाएं कि तलहटी पर पूरी नस तनाव ग्रस्त हो जाय और इसके बाद मुद्राओं की आकृति निम्न प्रकार बनाएं।

(1) **पृथ्वी मुद्रा**–में अंगूठे और कनिष्ठा अंगुली के अग्रभाग को एक दूसरे से मिलाएं और 5 मिनट दबाव दें। इससे शारीरिक और मानसिक कमजोरी दूर होती और साधक तरो-ताजा महसूस करता है।

(2) **वरुण मुद्रा**–इस मुद्रा में अंगूठे और अनामिका के अग्रभाग को एक दूसरे से मिलाकर 5 मिनट के लिए दबाव दिया जाता है। इससे चर्म रोग दूर होता है। और त्वचा में चमक आती है।

(3) **ज्ञान मुद्रा**–अंगूठे और तर्जनी के अग्र भाग को एक दूसरे से मिलाने से ज्ञान मुद्रा बनती है। इससे अनिद्रा, स्मृति की कमजोरी या स्मृति भंग एकाग्रता की कमी आदि रोग दूर होते हैं।

(4) **सूर्य मुद्रा**–अंगूठे और अनामिका के अग्र भाग को एक दूसरे से मिलाकर दबाव देने से सूर्य मुद्रा बनती है। इससे मोटापा दूर किया जा सकता है और रक्त से कोलोस्ट्रोल काम किया जा सकता है।

(5) **हृदय मुद्रा**–इस मुद्रा में तर्जनी अंगुली के अग्रभाग को अंगूठे की जड़ में और मध्यमा और अनामिका के अग्र भाग को अंगूठे के अग्र भाग के ऊपर रख कर दबाव देते हैं। इससे हृदय रोग श्वांस रोग, सर्दी, जुकाम आदि भी दूर हो जाते हैं।

* * *

डायमंड पॉकेट बुक्स में

स्वास्थ्य एवं योग संबंधी महत्वपूर्ण पुस्तकें

रेकी (स्पर्श चिकित्सा के अदभुत रहस्य)	99.00	भैषज्य भास्कर	50.00
रेकी (स्पर्श से सुखी प्राकृतिक चिकित्सा)	60.00	जड़ी-बूटियों से इलाज	30.00
सार्वभौमिक ऊर्जा रेकी	60.00	स्वमूत्र चिकित्सा	30.00
भोजन द्वारा स्वास्थ्य	40.00	हकलाना और आपका बच्चा (प्रश्न उत्तर)	40.00
नशा व एड्स से बचाव	40.00	मानसिक रोग कारण और निवारण	40.00
बचिए स्वास्थ्य के दुश्मनों से	40.00	अस्थमा, एलर्जी, कारण और निवारण	30.00
चुम्बक चिकित्सा	30.00	दादी माँ के घरेलू नुस्खे	40.00
मधुमेह : कारण, इलाज	30.00	आँखों के रोग और उनका इलाज	30.00
सिर दर्द : कारण और निवारण	30.00	घरेलू इलाज	30.00
गुर्दा व मूत्र संस्थान के रोग	30.00	कमर दर्द, कारण और निवारण	40.00
कैंसरः कारण, इलाज	40.00	श्वांस संबंधी रोग और उनका उपचार	30.00
हार्ट अटैकः कारण, इलाज	30.00	स्त्री रोगों की सहज चिकित्सा	30.00
ब्लड प्रैशर कारण और इलाज	30.00	त्वचा रोग! कारण और निवारण	40.00
एक्यूपंचर गाइड	30.00	हड्डी रोग कारण और निवारण	30.00
एक्यूप्रेशर गाइड	30.00	मोटापा कैसे घटाएं	30.00
पारिवारिक होम्योपैथिक गाइड	40.00	कद कैसे लंबा करें	30.00
आयुर्वेदिक औषधियां	40.00	सम्पूर्ण आरोग्य ज्योति	60.00
ऐलोपैथिक गाइड	60.00	नाड़ी भविष्य (चौंका देने वाला चमत्कार)	30.00
सम्पूर्ण प्राकृतिक चिकित्सा	30.00	योगासन और स्वास्थ्य	30.00
सूर्य चिकित्सा	40.00	योग से रोग निवारण	30.00
तनाव मुक्ति के उपाय	30.00	योग स्त्रियों के लिए	30.00
अपना स्वास्थ्य अपने हाथ	40.00	योग पुरुषों के लिए	30.00
फलों व सब्जियों के रस से चिकित्सा	30.00	प्राणायाम कुंडलिनी और हठयोग	30.00

डायमंड पॉकेट बुक्स (प्रा.) लि.
X-30, ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फेज़-II, नई दिल्ली-110020
फोन नं. 6841033, 6822803, 6822804 फैक्स नं. 91-011-6925020

1000 पुस्तकों का सूचीपत्र निःशुल्क मंगवायें। पुस्तकें V.P.P. से मंगवायें। कोई सी तीन पुस्तकें एक साथ मंगवाने पर डाक व्य
फ्री। डाक व्यय प्रति पुस्तक 10/-

डायमंड पॉकेट बुक्स में

महिलापयोगी एवं सैक्स संबंधि महत्वपूर्ण पुस्तकें

खी, भरवां, रसेदार सब्जियां कड़ियां व दालें	40.00	बच्चों के सुन्दर नाम (बालकों के नाम) कलर	40.00
दक्षिण भारतीय व्यंजन	40.00	बच्चों के सुन्दर नाम (बालिकाओं के नाम) कलर	40.00
पंजाबी व्यंजन	40.00	3500 बच्चों के सुन्दर नाम	25.00
गुजराती व्यंजन	40.00	स्तन सौंदर्य	20.00
ठाइयां, आइस्क्रीम, पुडिंग, केक और पेस्ट्री	40.00	मेंहदी से श्रृंगार	20.00
चाइनीज व्यंजन	40.00	आधुनिक मेंहदी डिजाइन्स	30.00
जूस, शरबत तथा अन्य पेय पदार्थ	40.00	लोकगीत (पंजाबी, मारवाड़ी, हिन्दी विवाह व विभिन्न	
गलई व्यंजन	40.00	त्यौहारों पर गाये जाने वाले नये लोकप्रिय गीत)	50.00
यमंड कुकरी गाइड	25.00	मैरिज मैनुअल (युवा दम्पति के लिए सैक्स गाइड)	30.00
चार, मुरब्बे, चटनी	25.00	मेडिकल सैक्स गाइड	40.00
काहारी व्यंजन	25.00	वृहद् वात्स्यायन कामसूत्र	30.00
साहारी व्यंजन	25.00	सैक्स समस्याएं और समाधान	30.00
श्ते के व्यंजन	25.00	सैक्स के 101 सवाल	40.00
वल के व्यंजन	40.00	सैक्स समस्याएं और उनकी औषधियाँ	25.00
इक्रोवेव कुकिंग	40.00	सैक्स पावर कैसे बढ़ाएं	25.00
क्लोरिज व्यंजन	40.00	सैक्स शक्ति कैसे बढ़ाएं	40.00
यर स्टाइल (हेयर स्टाईल के चित्रों सहित)	30.00	संभोग शक्ति कैसे बढ़ाएं	25.00
म ब्यूटीशियन कोर्स (घर में ब्यूटी पार्लर कैसे खोलें)	40.00	तंत्र शक्ति साधना और सैक्स	30.00
म हिंटस	40.00	विवाहित जीवन और सैक्स	40.00
डीज स्लिमिंग कोर्स	30.00	सैक्स और पति पत्नी	40.00
नचाही सन्तान कितनी आसान	30.00	सैक्स और स्त्री पुरुष	40.00
डीज हेल्थ गाइड	40.00	निसंतान दम्पति	
र्भवती व शिशु पालन	30.00	(संतान प्राप्त करने के उपाय)	40.00
ी हैल्थ गाइड	30.00	बच्चों को सैक्स की शिक्षा कैसे दें	30.00
टी गाइड	40.00	सैक्स किशोर-किशोरियों के लिए	30.00

डायमंड पॉकेट बुक्स (प्रा.) लि.
X-30, ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फेज़-II, नई दिल्ली-110020
फोन नं. 6841033, 6822803, 6822804 फैक्स नं. 91-011-6925020

0 पुस्तकों का सूचीपत्र निःशुल्क मंगवायें। पुस्तकें V.P.P. से मंगवायें। कोई सी तीन पुस्तकें एक साथ मंगवाने पर डाक व्यय फ्री। डाक व्यय प्रति पुस्तक 10/-

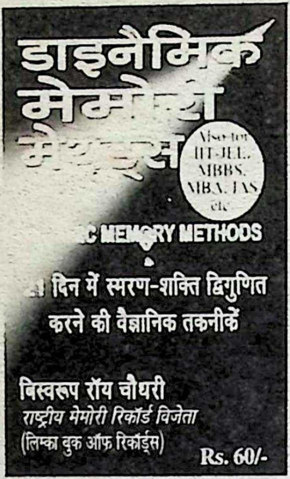
डाइनैमिक
मेमोरी
मेथड्स
Also for IIT-JEE, MBBS, MBA, IAS etc
...C MEMORY METHODS
... दिन में स्मरण-शक्ति द्विगुणित
करने की वैज्ञानिक तकनीकें
बिस्वरूप रॉय चौधरी
राष्ट्रीय मेमोरी रिकॉर्ड विजेता
(लिम्का बुक ऑफ रिकॉर्ड्स)
Rs. 60/-

याददाश्त तेज करने का मंत्र

पुस्तक के लेखक **बिस्वरूप राय चौधरी** अपनी असाधारण स्मृति के लिये विख्यात हैं। **लिम्का बुक ऑफ रिकॉर्ड्स** में उनका नाम राष्ट्रीय मेमोरी रिकॉर्ड विजेता के रूप में दर्ज है। **गिन्नीज बुक ऑफ वर्ल्ड रिकॉर्ड्स** से भी इन्हें प्रशस्ति पत्र मिल चुका है। आजकल विस्वरूप 'टाइम्स ऑफ इण्डिया' में **मेमोरी कंसल्टेंट** हैं। **'डाइनैमिक मेमोरी मेथड्स'** में मानव मस्तिष्क और स्मरण करने की प्राचीन और आधुनिक तकनीकों को सीखने की वैज्ञानिक पद्धतियों की विस्तार से सरल भाषा में व्याख्या की गयी है। पुस्तक में यह भी बताया गया है कि स्मृतिवृद्धि के विभिन्न सूत्रों को समन्वित करके इतिहास की घटनाओं, भूगोल के नक्शों, लम्बी-लम्बी तालिकाओं और सूचियों को किस प्रकार से सहज ही याद रखा जा सकता है। पुस्तक में स्मरण करने की विभिन्न पद्धतियों के रोचक उदाहरण भी हैं जिनमें मस्तिष्क के सृजनात्मक अंश तथा तार्किक अंश दोनों का इस्तेमाल एक साथ किया गया है। साथ में स्मरण भाषा (Memory Language) के 100 मेमोरी कोड भी सुझाये गये हैं जिनकी सहायता से पाठक एक स्मरण अनुक्रमणिका (Mental Catalogue) बनाकर अपनी स्मरण-शक्ति सुदृढ़ कर सकते हैं।

'डाइनैमिक मेमोरी मेथड्स' में निम्नलिखित बिन्दुओं पर प्रकाश डाला गया है:

1. **एकाग्रचित्तता कैसे बढ़ाई जाये।**
2. **आधुनिक स्मृति विषयक प्रणालियाँ।**
3. **प्रतियोगात्मक परीक्षाओं की तैयारी के तरीके।**
4. **इतिहास की लम्बी घटनाओं तथा भौगोलिक नक्शों को याद करने के तरीके।**
5. **विस्मृति दूर करने के उपाय।**

'DYNAMIC MEMORY METHODS' ALSO AVAILABLE IN ENGLISH & BENGALI

ENGLISH PRICE Rs. 95.00 & BENGALI PRICE Rs. 60.00

पुस्तकें V.P.P. से मंगवायें
3 पुस्तकें मंगवाने पर डाक व्यय फ्री।

प्रत्येक पुस्तक का डाक व्यय 10 रू०
अतिरिक्त।

डायमंड पाकेट बुक्स

X-30 ओखला इन्डस्ट्रियल एरिया, फेज-II, नई दिल्ली - 110 020.
फोन : 6841033, 6822803, फैक्स : 011-6925020

तन्त्रो पैथी

चिकित्सा की नवीन पद्धति

A.H.W. SAMEER SERIES

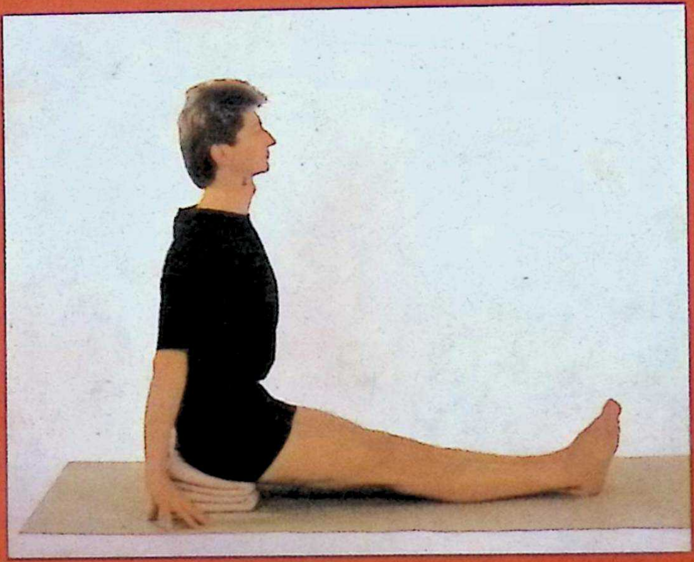

ISBN 81-7182-319-X

डायमंड पाकेट बुक्स

100/-